

असोग-रोहिणी-चरिणं

(अशोक-रोहिणी चरित्र)

(महाकाव्य)

मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत

आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रन्थकार

आचार्य वसुनंदी मुनि



ग्रंथ : असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक-रोहिणी चरित्र) महाकाव्य

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत
आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रन्थकार : आचार्य वसुनंदी मुनि

संपादन : आर्यिका वर्धस्व नंदनी

संस्करण : प्रथम, वर्ष 2023 ई.

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : सदुपयोग

ISBN : 978-93-94199-82-8

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति रजि.

प्राप्ति स्थान :

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति

ई. 16 सैक्टर 51, नोएडा-201301

मो. 9971548889, 9867557668, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली

मो.: 9312401976

सम्पादकीय

प्रस्तावना

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमतां।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा॥

बुद्धिमान् लोगों का समय काव्य शास्त्र अर्थात् स्वाध्याय में व्यतीत होता है किन्तु मूर्ख लोगों का समय व्यसन, निद्रा अथवा कलह में बीतता है।

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैलक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥

निर्दोष, गुणालंकारशाली व सरस काव्यशास्त्रों का अध्ययन, श्रवण व मनन आदि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का एवं संगीत आदि 64 कलाओं का विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न करता है एवं कीर्ति व प्रीति उत्पन्न करता है।

सद्साहित्य, ग्रंथ वा शास्त्रों का अध्ययन निःसंदेह जनसामान्य के विचारों को परिष्कृत करने में समर्थ है। कोई भी राष्ट्र, देश, समाज परिवार या व्यक्ति विचारों के परिवर्तित होते हुए परिवर्तन की अनंत संभावनाएँ अपने गर्भ में समाहित कर लेता है। क्योंकि व्यक्ति, समाज वा देश का निर्माण विचारों के आधार पर ही होता है। तभी सद्साहित्य व्यक्ति का सबसे अच्छा मित्र कहा जाता है। साहित्य की हितकर शाब्दिक भावात्मकता ने मानव जाति के चिंतन, अनुशीलन, मंथन के परिणामों को कई विषयों में अभिव्यक्त किया है।

प्रायःकर नवीन दिशा, सकारात्मक विचार और असंकीर्ण चिंतन सद्साहित्य की ही अमूल्य देन है। साहित्य का निरंतर पठन बुद्धि को तीक्ष्णता एवं चिंतन को सद्मार्ग प्रदान करता है। यह मानव जीवन सद्साहित्य से ही अपने इतिहास को महिमामंडित करता है। सद्साहित्य का अनुरागी ही स्वयं को विशिष्ट व विलक्षण बनाता है। सतत् स्वाध्याय प्रेमी की सौम्य मुद्रा पर उसके श्रम के अक्षय वरदान की मुस्कान परिलक्षित होती है।

साहित्य लघु हो अथवा वृहद्, सामाजिक हो या राजनैतिक, धार्मिक हो या पारिवारिक, नैतिक हो या अन्य किसी विषयक किंतु वह पाठकों के स्मृति पटल पर तब तक अंकित नहीं होता जब तब उन बिंदुओं का समायोजन उनके जीवन प्रवाह में न हो और इसलिए धर्म के उन्नायकों, प्रणेताओं व आचार्यों ने दृष्टांत, कथानकों आदि का प्रयोग बहुलता से किया है। कथानकों के माध्यम से तथ्य सरलतापूर्वक हृदयंगम हो जाते हैं।

जैन दर्शन में यह कथाप्रवृत्ति विशेष रूप से मौलिक, प्राचीन व पुष्ट रही है। चारों अनुयोगों में प्रथम स्थान प्रथमानुयोग का ही है। जैन दर्शन में कथानकों की मौलिकता व अधिकता देखकर राहुल सांकृत्यायन को भी कहना पड़ा “विश्व का संपूर्ण साहित्य एक तरफ और जैनों का मात्र प्रथमानुयोग एक तरफ” मनुष्यों की विचारधारा को सही दिशा में गतिमान् करने हेतु यह कथाप्रवृत्ति सबसे सरल है। महापुरुषों के लोकहितकारी कृतित्व, व्यक्तित्व व आत्मलीनता को इनसे ही जाना जा सकता है।

महाकाव्य

मानव जीवन में उत्कर्ष-अपकर्ष, सुख-दुःख, पुण्य-पाप का चक्र ऋतु परिवर्तन, दिन-रात, सागर में आरोह व अवरोह करने वाली उत्तालवीचियों के समान वा साभ्र आकाश में गतिमान मंद वा तीव्र गति से उड़ते हुए सघन मेघों के समान प्रवर्तमान दिखाई देता है। ऐसा क्यों? इन सबका उत्तर किन्हीं महापुरुषों के जीवन वृत्तांत को छंद, रस, भाव, अलंकार आदि के समावेश के साथ रोचक व सुरुचिपूर्ण ढंग से जन सामान्य तक पहुँचाया गया। जिससे व्यक्ति को पाप से विरक्ति, पुण्य में अनुरक्ति वा-धर्म में आसक्ति हो सके।

महाकाव्य का शाब्दिक अर्थ है—“महान् काव्य” अर्थात् ऐसा काव्य जिसकी कथावस्तु, नायकत्व, देशकाल एवं वातावरण व भाषा शैली महान् हो उसे महाकाव्य कहते हैं।

आचार्य भगवन् श्री जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण में काव्य के स्वरूप को परिभाषित करते हुए कहा है—

कवेर्भावोऽथवा कर्म काव्यं तज्ज्ञैर्निरुच्यते।

तत्प्रतीतार्थमग्राम्यं सालंकारमनाकुलम्॥1/94॥

काव्य स्वरूप के जानने वाले विद्वान्, कवि के भाव अथवा कार्य को काव्य कहते हैं। कवि का वह काव्य सर्वसम्मत अर्थ से सहित, ग्राम्य दोष से रहित, अलंकार से युक्त और प्रसाद आदि गुणों से शोभित होना चाहिए।

महापुराणसंबन्धि - महानायकगोचरम्।

त्रिवर्गफलसंदर्भ महाकाव्यं तदिष्यते॥1/99॥

जो प्राचीनकाल के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला हो, जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के चरित्र का चित्रण किया गया हो तथा जो धर्म, अर्थ और काम के फल को दिखाने वाला हो उसे महाकाव्य कहते हैं।

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने महाकाव्य के विषय में कहा है—

महापुरुषवृत्तं वा महाकाव्यं हि उच्यते।

सर्वचरमदेहीनां सच्चरित्रं सदा श्रुते॥

महापुरुषों का जीवन वृत्तांत वा सभी चरमशरीरियों या मोक्षगामी जीवों का चरित्र ग्रंथ में महाकाव्य कहा जाता है

पद्मदलगतः बिन्दुः, मौक्तिकमिव भाषते।

लघुन्यपि महाकाव्यं, महापुरुष-जीवनम्॥

जिस प्रकार कमल के पत्र पर पड़ी जल की बूंद मोती के समान प्रतिभासित होती है उसी प्रकार लघु होने पर भी महापुरुषों का जीवन-चरित्र महाकाव्य कहलाता है।

महाकाव्य के अंतर्गत मानव जीवन की विशद व्याख्या होती है। मानव अपने जीवन में पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि जिन बिंदुओं से प्रभावित रहता है वे सब महाकाव्य में दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें एक नायक होता है जिसका व्यक्तित्व विलक्षण, आकर्षक, उदात्त व अनेक सद्गुणों से परिपूरित होता है। महाकाव्य अनेक रस, भाव, छंद, अलंकार आदि प्रकार से भाषा सौष्ठव ग्रहण किए होता है। यद्यपि महाकाव्य में सभी रस दृष्टिगोचर होते हैं तथापि एक रस मुख्य व शेष गौण रहते हैं।

महाकाव्य अध्याय, पर्व, सर्ग, लंब, नंद आदि में विभक्त होता है किन्तु आठ से न्यून अध्याय महाकाव्य में ग्राह्य नहीं हैं। मूल कथानक के साथ-साथ अन्य कथांश भी आदि से अंत तक दृष्टिगोचर होते हैं। संक्षेप में कहें तो किसी महान् नायक के उन्नत जीवन शैली व कार्यों का वर्णन करने वाली लंबी कथात्मक कविता महाकाव्य है। महाकाव्य वह विधा है जिसे पढ़कर-सुनकर मन उसी प्रकार हिलोरें लेने लगता है जिस प्रकार सागर की ऊर्मियाँ गगन में अदृश्यमान लक्ष्य को छूने के लिए प्रतिस्पर्द्धा कर रही हों।

इस अशोक रोहिणी चरित्र में महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें महाराज अशोक महानायक के रूप में हैं। अनेक रस, अलंकार व छंदादि से युक्त यह महाकाव्य इक्कीस नंदों में विभक्त है। आचार्यों ने पर्व, सर्ग, लंब इत्यादि शब्दों का प्रयोग अध्याय के लिए किया है। यहाँ पूज्य गुरुवर ने 'नंद' शब्द का प्रयोग किया है। आचार्य श्री के गुरुदेव आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के नाम से ही यह 'नंद' शब्द लिया गया है जो आचार्य श्री की उनके गुरुदेव के प्रति निःसीम भक्ति को प्रदर्शित करता है। इस महाकाव्य में सर्व रसों का आस्वादन पाठकगण कर सकेंगे किन्तु इसमें शान्त रस की प्रधानता है।

इसके अंतर्गत अनेक नीतियाँ उसी प्रकार दृष्टिगोचर होती हैं जिस प्रकार रत्नाकर में रत्न। अनेक प्रकार की शिक्षाएँ व नैतिक मूल्यों का कथन इसे जनसामान्य के लिए और अधिक उपयोगी बना देता है। स्थान-स्थान पर जिनागम के गूढ़ सिद्धान्त इसमें दृष्टिगोचर होते हैं एवं उपशम श्रेणी का जो कथन इस ग्रंथ में पढ़ने में आया वह अन्य किसी प्रथमानुयोग के ग्रन्थ में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। विशुद्धि से कर्मों की हानि व विभाव से पुनः कर्मों का वृद्धिगत होना यह वर्णन पाप, विषय-कषायों से भीति उत्पन्न करता है व निःसंदेह विशुद्धि को वृद्धिगत करने में भी सहायक है।

इक्कीस नंदों में कुल 2442 छंद हैं। इन अंकों का योग 3 आता है। आचार्य श्री के ग्रंथों में यह विशेषता दृष्टिगोचर होती है कि उनके अधिकतर ग्रंथ के छंदों का योग 3 ही आता है।

महाकाव्य की भाषा

भाषा विचारों के आदान-प्रदान की प्रबलतम आधारशिला है। भाषा के अभाव में विचार विनिमय संभव नहीं है। ईसवी संवत् से कई शताब्दियों पूर्व भारतवासियों की जनभाषा प्राकृत भाषा रही। यह सबसे प्राचीनतम भाषा है। प्राचीनतम जैन ग्रंथ साहित्य इसी प्राकृत भाषा में उपलब्ध होता है। सम्राट अशोक के शिलालेख भी प्राकृत भाषा में ही उपलब्ध होते हैं।

“प्रकृतिः संस्कृतम्” इस सूत्र के अनुसार कुछ विचारक संस्कृत से प्राकृत की उत्पत्ति मानते हैं जो सम्यक् नहीं है। प्रकृति मूल रूप से अविकार जन्य है। पूर्व में जनबोली प्राकृत ही रही है। “प्रक्रियते यथा सा प्रकृतिः” अर्थात् जिससे मूलतत्त्वों की उत्पत्ति होती है वह प्रकृति है।

नमिसाधु ने रुद्रकृत काव्यालंकार की संस्कृत टीका करते हुए स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि “प्राकृत सभी प्राणियों की सहज वचन प्रणाली है। वह प्रकृति है और उससे होने वाली या वही भाषा प्राकृत है। इसमें व्याकरण आदि अनुशासन व संस्कार नहीं रहता। जो प्राक् पहले की गयी वह प्राक्कृत प्राकृत है। बालक, स्त्रियाँ आदि भी जिसे सहज ही समझ सकें और जो अन्य समस्त भाषाओं की मूल उद्गम स्थली है वह प्राकृत भाषा है। यह मेघ से बरसे हुए जल की तरह एक रूप होकर भी विभिन्न देशों में और भिन्न संस्कारों के कारण संस्कृत आदि उत्तरभेदों को प्राप्त होती है। पाणिनि व्याकरण आदि व्याकरणों से संस्कार को प्राप्त होकर वह संस्कृत कही जाती है।”

गडडवहो के कर्ता वाक्पतिराज ने भी कहा है—

सयलाओ इमं वाया, विसंति एत्तो य णेंति वायाओ।

एंति समुहं चिय णेंति, सायराओच्चिय जलाइं॥93॥

जिस तरह जल समुद्र में प्रवेश करता है और समुद्र से ही वाष्परूप बनकर बाहर निकलता है उसी प्रकार प्राकृत भाषा में से ही अन्य सभी भाषा निकलती हैं।

बालरामायण में कवि राजशेखर ने भी प्राकृत को संस्कृत की योनि कहा है।

आचार्य श्री प्रभाचंद्र स्वामी ने न्यायकुमुदचन्द्र ग्रंथ में निरूपित किया है कि “प्राकृत स्वाभाविक जनबोली है। उसी का व्याकरण से संस्कार होकर ‘संस्कृत’ रूप बना है। उन्होंने कहा—स्वभाव, धातुगण या संस्कृत शब्द? स्वभाव पक्ष में तो प्राकृत ही स्वाभाविक ठहरती है। धातुगण से संस्कृत शब्दों की तरह प्राकृत शब्द भी बनते हैं। संस्कृत शब्दों को प्रकृति कहना नितान्त अनुचित है क्योंकि वह संस्कार है, विकार है। मौजूदा वस्तु में किसी विशेषता का लाना संस्कार कहलाता है, वह तो विकार रूप है अतः उसे प्रकृति कहना अनुचित है। संस्कृत आदिमान् है और प्राकृत अनादि है।”

इसी अनादि, मूलभाषा प्राकृत में “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य लिपिबद्ध किया गया है। आचार्य श्री के ग्रंथों में शौरसेन प्राकृत दृष्टिगोचर होती है यही शौरसेनी प्राकृत सभी प्राकृतों की मूल प्रकृति है। जो प्राकृत-वैयाकरण वररुचि के सूत्र वाक्य ‘प्रकृतिः शौरसेनी’ से स्पष्ट होता है। शौरसेनी के लिए कहा भी है—

राजपत्न्यादिवक्त्रेन्दु - संवास हृदयंगमा।

मृदुगंभीर - संदर्भा शौरसेनी धिनोतु वः॥

—मार्कण्डेय का दशग्रीववध महाकाव्य

रानी के अंतः पुर में रहने वाली अन्य महिलाओं के मुख रूपी चंद्रमा एवं हृदयकमल में जो भलीभाँति निवास करती है, वह लालित्य व गांभीर्य से युक्त शौरसेनी भाषा तुम सबको प्रसन्न करे।

महाकाव्य की विषयवस्तु

“अशोक रोहिणी चरित्र” ग्रंथ का शीर्षक स्वयं ही इसके अंतरंग को अभिव्यक्त कर रहा है। इसमें राजा अशोक व रानी रोहिणी का जीवनवृत्त सुरुचिपूर्ण ढंग से निबद्ध है जो सभी के लिए प्रेरणादायक है, सामान्यजनों को पाप से विरक्त व पुण्य में अनुरक्त करने वाला है।

भगवान् महावीर स्वामी के समवसरण में पहुँचकर मुख्य श्रोता राजा श्रेणिक संप्रतिकालिक व्रत, व्रत विधि व व्रत को पालन करने वालों के चरित्र को जानने की जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। तब श्री इंद्रभूति गौतम गणधर ने उस दिन रोहिणी नक्षत्र होने से रोहिणी व्रत, उस व्रत की विधि

तथा उसके फल को प्राप्त करने वाले महाराज अशोक व महारानी रोहिणी के जीवन वृत्तांत का वर्णन किया।

पूर्व में सिंधुमति व अग्निशर्मा की पर्याय में किए गए मुनि वधादि के कुफल स्वरूप कई बार नरक गति व तिर्यच गति में असहनीय दुःखों को भोगते हुए उन्होंने दुर्गन्धित शरीर वाले पूतीगंधा व पूतीगंध की पर्याय को प्राप्त किया। मुनिराज के उपदेश से पूतीगंध ने रोहिणी व्रत का पालन किया जिससे वह स्वर्ग में देव पुनः राजकुमार अर्ककीर्ति, पुनः अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। पूतीगंधा ने भी मुनिराज के कथनानुसार अपने पाप कर्मों के क्षय के लिए श्रावक व्रतों सहित रोहिणी व्रत का पालन किया जिसके फलस्वरूप वह अच्युत स्वर्ग में उसी देव की देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर देव राजा अशोक व उस देव की देवांगना रानी रोहिणी हुई।

रोहिणी व्रत का माहात्म्य जो आचार्य श्री ने यहाँ दर्शाया है वह पाठकों को निश्चित ही रोमांचित करने वाला है। रोहिणी व्रत के प्रभाव से वह रोहिणी दुःख, शोक, क्लेश, पीड़ा आदि को नहीं जानती थी। अंग देश के राजा मघवा की पुत्री राजकुमारी रोहिणी का विवाह स्वयंवर विधि से कुरुजांगल देश के राजा वीतशोक के पुत्र राजकुमार अशोक के साथ हुआ। उन राजदंपति के जीवन की वह घटना जो रोहिणी व्रत के माहात्म्य को दर्शाती है पाठकों को विस्मित करने वाली व निश्चय ही व्रत को करने की प्रेरणा देने वाली है। पुण्य में अनुरक्त व पापों से विरक्त करने वाली है। संक्षिप्त में उस घटना का विवरण कर हम पाठकों का आनंद कम नहीं करना चाहते। अतः उसे जानने के लिए पाठकगण स्वयं ग्रंथ का अध्ययन करें।

राज्यादि का उपभोग कर पुनः संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर राजा अशोक प्रथम बालयति तीर्थकर श्री वासुपूज्य भगवान् के गणधर हुए और मोक्ष को प्राप्त किया। महारानी रोहिणी ने भी आगे मोक्ष को प्राप्त किया।

यह महाकाव्य अत्यंत रोचक है। आचार्य श्री ने अनेक रस, छंद, भाव व अलंकार आदि एवं नीतियों का समावेश कर आबाल-वृद्ध सभी के लिए इसे अति रुचिकर बना दिया है।

महाकाव्य में रस व भावों का समावेश

जिस प्रकार भोजन करने वाला व्यक्ति शारीरिक पोषण, देह कांति, ओज व शक्ति के संवर्धन हेतु अपनी रुचि के अनुसार कभी मिष्ट, कभी तीखा-चरपरा-क्षारीय वा अम्लीय ग्रहण करता है जिससे उसके शरीर में नाना ग्रंथियों से नाना रस स्रवित होते हैं और वे रस शरीर में न्यून तत्त्वों को पूर्णता प्रदान करते हैं जिससे काया निरोगी, लावण्यमयी, तेज, कांति व ओज से परिपूर्ण होती है उसी प्रकार मन की विशुद्धि, आनंद वा रंजन के लिए भारतीय वाङ्मय में महाकाव्य

की अहम भूमिका है जिसमें कथाकार न केवल कथा कहकर व्यक्ति को उस विषय का परिचय देता है अपितु उसमें विद्यमान रस, अलंकार व भाव व्यक्ति की मनोदशा को परिवर्तित करने में समर्थ होते हैं।

हास्य रस को पढ़ते समय अधर नवोदित उत्पल की भाँति खिल उठते हैं। यथा—

काए णियसंताणं, भुंजाविदाइ गासं णसिगाइ।
मुहे णीरं ण दायिय, अंगोहलाविदो सो ताइ॥३/५८॥

अपनी संतान को भोजन कराती हुई किसी महिला ने ग्रास उसके मुँह में न देकर नाक में दे दिया और जल पिलाने के स्थान पर उसे नहला दिया।

वीभत्स रस को पढ़ते-सुनते समय मन ग्लानि से भरने लगता है। कई बार वीभत्स रस पढ़ते समय यदि वीभत्स रस सामने आ जाए तो पाठक ग्लानि का अनुभव करते हुए अपने नासिका पुटों को क्षणभर के लिए आच्छादित कर देता है। यथा—

ताइ णासिगा सददं, सवंत-दुग्गंधिद-सिलिम्ह-जुत्ता।
मुहं लालासंजुदं, णयणं किण्हमकोयफलं व॥८/२०॥

उसकी नाक से निरंतर दुर्गंधित श्लेष्मा बहता रहता था। मुख से लार बहती रहती थी और उसकी आँखें काले मकोय फल के समान थीं।

शृंगार रस को पढ़ते हुए किसी व्यक्ति की दशा राग रंग में पढ़कर किसी कृषक की तुषारपात से जल रही फसल के समान हो जाती है। पति-पत्नी के हृदय में विद्यमान रति (स्थायी भाव) यदि एक-दूसरे के प्रति हो तो वह विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से शृंगार रस के रूप में परिणत हो जाती है। यथा—

महुमच्छिगा पुप्फेसु, फुल्लंधया जह सरसीरुहेसुं।
ठाएज्जअइगिद्धीए, तह सो ताइअंकेचित्तं॥५/२६॥

जिस प्रकार मधुमक्खी पुष्पों पर और भ्रमर कमलों पर अति आसक्ति से ठहरता है उसी प्रकार वह अशोक उस रोहिणी के अंक व चित्त में ठहरा हुआ था।

जब करुण रस का वाचन वा श्रवण किया जाता है तब उन्हीं शब्दों के प्रवाह में प्रवाहित हो पाठकगण के नेत्र उसी प्रकार अश्रुपूरित हो जाते हैं जिस प्रकार वर्षाकाल की वेगगामी धारा से नदियाँ। यथा—

मोहेण रज्जसहाइ, परिदेवंता आकंदंता तह।
 सव्वपयाजणा तदा, आगच्छीअ चिय रोदंता॥17/91॥
 अहो भयवदो! राओ!, तुमं विणा अणाहोव्व होज्ज वयं।
 तुज्झ छत्तछायाए, हि णिवसेदुं इच्छाम पहू॥17/92॥

मोह के वशीभूत सभी प्रजाजन विलाप करते, क्रंदन करते व रोते हुए राजसभा में आए। कहने लगे हे भगवन्! हे राजन्! आपके बिना हम अनाथ हो जाएँगे। हे प्रभु! हम आपकी छत्र-छाया में ही रहना चाहते हैं।

जब रौद्र रस का पठन करते हैं तब सामने वाले के शब्दों को सुनकर जो क्रोध का भाव पात्र में दृष्टिगोचर होता है तब प्रतीत होता है मानो सब घटना प्रत्यक्षवत् ही हो। यथा—

णयणादो वरिसंतो, अग्गिजालं भासेदि अइकुविदो।
 णिच्छयेण तव मरणं, भमदे सिरोवरि वायालो॥12/105॥

अति क्रोधित विमलकीर्ति नयनों से अग्निज्वाला बरसाते हुए कहता है—रे वाचाल! निश्चय से तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिर पर मंडरा रही है।

धर्मवीर, दानवीर, युद्धवीर और दयावीर के भेद से वीर रस चार प्रकार का कहा गया है। वीर रस से समन्वित पंक्तियाँ पाठकगणों के रोम-रोम को उत्साह से आप्लावित कर देती हैं। यथा—

मोहवाहिणिं खयिदुं, झाणत्थं सुक्कलेस्सामाढिं च।
 दुसंजम-सिरत्ताणं, धरित्तु विसोहि-सेण्णेण सह॥2/8॥
 तप्परो कंतिवंतो, सो भेयविण्णाणसेणापदिणा।
 सुणाण-मंतिणा परम-विरायढालेण मुणिरायो॥2/9॥

मोह रूपी सेना के नाश के लिए उन योगी ने ध्यान रूपी अस्त्र, शुक्ललेश्या का कवच, इंद्रिय व प्राणी संयम रूपी टोप धारण किया। परम वैराग्य की ढाल लेकर सम्यग्ज्ञान रूपी मंत्री, भेदविज्ञान रूपी सेनापति और विशुद्धि रूपी सेना के साथ वे कांतिवान् मुनिराज कर्मक्षय के लिए तत्पर हुए।

अद्भुत रस पठन करते हुए चित्त में विस्मय और मुख पर आश्चर्य की रेखाएँ चित्रित हो जाती हैं। रोहिणी का दुःख, रुदनादि को नहीं जानना और धाय माँ का इस पर आश्चर्य से युक्त होना। अथवा अशोक द्वारा लोकपाल को फेंके जाने पर देवों द्वारा उसका सम्मान, अभिषेक आदि होना जो सभी के लिए आश्चर्य से परिपूरित करने वाला था अथवा व्रत पालन से दुर्गंधित पूतीगंध का शरीर उसी भव में सुगंधित हो जाना इत्यादि। यथा—दुःख न जानने वाली रोहिणी का प्रश्न—

देवेहि माणणीयं, पस्सिय लहुडिंभं पसण्णचित्तं।
पफुल्लिदा दु रोहिणी, पुच्छदि किं दुहमिदं देवो!॥6/80॥

रोहिणी देवों के द्वारा सम्मानीय अपने छोटे पुत्र को प्रसन्नचित्त देख बहुत आनंदित हुई। पुनः वह पूछती है—हे देव! क्या ये ही दुख है?

अशोक-रोहिणी चरित्र का अंगी (प्रधान) रस शांत है। शांत रस का आलंबन लेने वाले मंद कसायी, भद्र परिणामी भव्य जीव तृषित चातक की भाँति अध्यात्म रस का पान करने हेतु आतुर हो जाते हैं। शांत रस में डूबा हुआ आसन्न भव्य रूपी षट्पद स्वात्मरस रूपी मकरंद का आस्वादन करता है। इतना ही नहीं उनके मुख पर शांत भावों को देख भव्यों का मन भी उसी प्रकार शांत हो जाता है जैसे मूसलाधार वर्षा से दावाग्नि की ज्वालाओं से जलता हुआ वन शांत हो जाता है।

संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति, धन-जीवन-यौवन की, नश्वरता, श्री मुनिराज के दर्शन, उनकी दिव्य देशना, तपस्या, साधना, ध्यान व मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति आदि का वर्णन इसके अंतर्गत है। यथा—

माणुसभवं धरित्ता, कदा गहिस्सामि महव्वदाइं च।
पाणिपत्त-दियंबरो, कदा एगंतवासी होज्ज॥12/7॥

वह चिंतन करता है—अहो! मनुष्यभव धारण कर मैं कब महाव्रतों को ग्रहण करूँगा, कब पाणिपात्र में आहार लेने वाला एकांतवासी दिगंबर साधु होऊँगा।

इस प्रकार अशोक रोहिणी चरित्र में अंगांगीभाव से प्रायः सभी रस प्रवाहित हुए हैं।

नव रस से समन्वित महाकाव्य निःसंदेह पाठक के चित्त की शोभा (वृत्तियों) को उसी प्रकार कोटिगुणित वृद्धिगत कर देता है जिस प्रकार नवरत्न से जड़ित अत्यंत सुंदर हार कंठ में धारण करने पर स्त्री के सौंदर्य को।

महाकाव्य में अलंकारों का समावेश

जिस प्रकार आभूषण वा अलंकार स्त्री का सौंदर्यकरण करते हैं उसी प्रकार अलंकार भाषा को सुसंस्कृत, अलंकृत व हृदयंगम करने योग्य बना देते हैं। काव्य की कोमलकान्तपदावलियाँ पाठक के चित्त को विषयबद्ध कर देती हैं जिससे वे शास्त्र समुद्र में सुखद अवगाहन करने लगते हैं। अशोक-रोहिणी चरित्र में कई अलंकारों का सन्निवेश है उनमें कुछ का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

अत्यंत सुंदर अनुप्रास अलंकार युक्त गाथा—

अणेगरयण-झल्लरी, झलझलंता झसयाइ-आयारे।
झणझणंता झसिंध-दूईव दु झुल्लंता तत्थ॥3/66॥

‘झ’ अक्षर की आवृत्ति से बार-बार होने से यहाँ वृत्यानुप्रास अलंकार है।

मोहाइ - सव्वकम्मणासगं, पणमामि भव्व - मण - विआसगं।
अप्पगुणायरं च जिणदेवं, सदिंदेहिं सय पूजिददेवं॥11/101॥

प्रथम व द्वितीय चरण के अंत में ‘आसगं’ और तृतीय व चतुर्थ चरण में ‘देवं’ होने से यहाँ अन्त्यानुप्रास अलंकार है।

उपमालंकार युक्त गाथा—

विअसिदा कुमुदणीव, णासिगाइ अणिया रक्तिम सुहगा।
पाडलं व अहरो दंतावली य दाडिमबीअं व॥12/29॥

यहाँ बालिकाओं की उपमा खिली हुई कुमुदनी से, अधरों की गुलाब से व दंतावली की उपमा अनार के दानों से दी गई है।

उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप करने वाले रूपकालंकार से सज्जित गाथा—

इत्थं कम्मसत्तुणो, घादिय अपुव्वकरणजयखेत्तम्मि।
सचरित्तवेजयंती, पविसेदि सुहुमसंपराये॥21/25॥

कर्म रूपी शत्रु, अपूर्वकरण रूप विजयक्षेत्र एवं चारित्र रूप पताका। कर्मादि पर शत्रु आदि का आरोप यहाँ किया गया है।

उपमेय में उपमान की संभावना दिखलाने वाले उत्प्रेक्षालंकार से शोभित उदाहरण रूप एक गाथा—

ओणेज्जा व्व पइडीइ, रयणा व्व रणझणंता कंकणेहि।
सेट्टोडलसंजुत्ता, ओच्छविया ओमोयेहिं च॥3/86॥

रोहिणी ऐसी लग रही थी मानो साँचे में ढालकर (रति) ही बनाई गई हो।

मानवीकरण अलंकार युक्त एक गाथा—

अत्थमाणरत्तक्को, रोसेण णियाणणं लुक्कंतोव्व।
तं दस्सं पस्सेदुं, पीडं सोढु-मसक्कत्तादु॥9/64॥

“अस्त होते हुए सूर्य का चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था।”

किसी शब्द की आवृत्ति दो बार होने पर पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है। यथा—

पुण-पुण परियंदित्ता, पावमुत्तीए चिय उवाओ किं॥१९/८६॥

इस प्रकार इस महाकाव्य में पूर्णोपमा, मालोपमा, भ्रान्तिमान्, दृष्टान्त, स्वाभाविक, ऊर्जस्वित, यमक, संदेह, भावोदय, काव्यलिंग, संकर इत्यादि अलंकार प्रयुक्त हैं

महाकाव्य में छंदों का समावेश

महाकाव्य में गाथा, वसंततिलका, शार्दूल विक्रीडित, पृथ्वी, स्रग्धरा, मंदाक्रांता, अनुष्टुप्, दोहा, हरिणी, शिखरिणी, इंद्रवज्रा, मालिनी, चौपाई, हरिगीतिका, सान्द्र, रथोद्धता, त्रोटक, अपरवक्त्र या वैतालीय, भुजंग-प्रयात, पथ्यावक्त्र, वंशस्थ, नाराच, मत्तयगइंद व द्रुतविलंबित इस प्रकार कुल 24 छंद प्रयुक्त हैं।

महाकवि आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

जिस बहुमुखी व्यक्तित्व को हम आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के नाम से जानते हैं वह अनेक व्यक्तित्वों का समन्वित रूप है जिसमें सागर सा गांभीर्य, अंशुमाली का तेज, वैश्वानर की दीप्ति, सुधाकर की सौम्यता, जल की सरलता, हिमाद्री का आँचल्य, मरुत का उद्दाम वेग, वसुंधरा की क्षमा और ध्रुव का धैर्य है।

सूर्य को प्रकाश की, सिंधु को जल की, सरस्वती को शब्दों की आवश्यकता ही नहीं फिर भी लोक सूर्य, सिंधु, सरस्वती की पूजन के लिए दीप, जल व शब्दों का समायोजन करता ही है। आचार्य गुरुवर स्वयं ज्ञान के सिंधु हैं। प्रतिपल ज्ञानमय उपयोग रहने से “अभीक्षण ज्ञानोपयोगी” की संज्ञा को सार्थक करने वाले हैं। नय, न्याय, सिद्धांत, अध्यात्म, वास्तु, ज्योतिष, छंद, अलंकार, व्याकरण आदि विषय इनके अधिगत हैं। आगम के शुभाक्षरों का प्रतिबिंब उनकी आँखों पर लिखा रहता है। जब वे बोलते हैं तो साक्षात् वाग्देवी उनके मुखमंच पर नर्तकी के समान अवतीर्ण हो जाती है। ज्ञान का माधुर्य उनके रोम-रोम से परिलक्षित होता है।

उनकी अनेकांतमयी वाणी में नवयुग के अभिनव प्रत्यूष की अमर भैरवी निर्नादित होती है जिसे सुनकर आत्मगौरव जागृत होता है और तमस् के अभेद्य आवरण को चीरती हुई असंख्य किरणें युग को अभिनव आलोक से पूर देती हैं। रात्रिदिव आत्मचिंतन मनन में लीन ये साधक कभी प्राकृत की रत्नशिविका में यात्रा करते हैं तो कभी संस्कृत के सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं। कभी अन्य भाषाओं की वीथियों से गुजरते हैं तो कभी संस्कृति, धर्म व सभ्यता तथा भगवान् महावीर स्वामी के तीर्थ के संरक्षण व संवर्द्धन का महान् दायित्व संभालते हैं।

एक विद्या या कला में निष्णात तो बहुत जन संभव हैं किन्तु सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा धर्म में आयी विकृतियों को परिष्कृत करने वाले और स्वयं की विकृति को दूर कर स्वशुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने में पुरुषार्थरत् सभी विद्या व कला एक ही व्यक्तित्व में दिखे तो यह आश्चर्य से कम तो नहीं। सिद्धान्त का अध्ययन कराते हुए उन मनस्वी में कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य भगवन् श्री वीरसेन स्वामी की छवि प्रतिबिंबित होती है, आध्यात्मिकता का रसास्वादन करते हुए उनमें साक्षात् आचार्य भगवान् श्री कुंदकुंद स्वामी की स्मृति जीवंत हो उठती है, कर्म प्रकृतियों का व्याख्यान करते हुए उनमें सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य भगवन् श्री नेमिचंद्र स्वामी का व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है, परमत खंडन व स्वमत मंडन एवं विभिन्न युक्ति व तर्कों से युक्त उनकी तार्किक शैली उनमें आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी का दिग्दर्शन कराती है। महाकाव्यों का वरदान जैन वाङ्मय को देने वाले इन महाकवि में आचार्य श्री जिनसेन स्वामी के दर्शन सहज ही हो जाते हैं तथा अनेक भव्य जीवों को कल्याण मार्ग प्रशस्त करने हेतु उनकी अमृतमयी वाणी का नाद जब होता है तब मेरी भक्ति व श्रद्धा उन्हें तीर्थकर के रूप में नमन कराती है।

आचार्य श्री द्वारा प्राकृत भाषा में रचित यह दूसरा महाकाव्य है। आचार्य भगवन् श्री जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण में उल्लिखित किया है—

**सुश्लिष्टपदविन्यासं प्रबन्धं रचयन्ति ये।
श्राव्यबन्धं प्रसन्नार्थं ते महाकवयो मताः॥1/98॥**

जो अनेक अर्थों को सूचित करने वाले पदविन्यास से सहित, मनोहर रीतियों से युक्त एवं स्पष्ट अर्थ से उद्भासित प्रबन्धों-काव्यों की रचना करते हैं वे महाकवि कहलाते हैं।

शृंगारादि रसों, भावों व विभिन्न अलंकारों का प्रयोग करते हुए उदात्तादि गुणों से परिपूर्ण नायक से युक्त कोई इतिहास-पुराण प्रसिद्ध वृहद् काव्य के रचनाकार महाकवि के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त करते हैं। 21वीं सदी में अब तक तीन महाकाव्यों की रचना करने वाले महाकवि आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने न केवल जैन जगत् को अपितु विश्व साहित्य को अमूल्य धरोहर प्रदान की है।

अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ कि सम्पूर्ण दिगंबर जैन वाङ्मय में प्राकृत भाषा में इतना वृहद् महाकाव्य आजतक प्राप्त नहीं होता। अतएव जैन वाङ्मय में यह महाकाव्य इस 21वीं सदी का ही नहीं अपितु इस काल का प्राकृत भाषा का प्रथम वृहद् अद्वितीय महाकाव्य है।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज से लेकर सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज तक की गौरवशाली परंपरा का निर्वहन परम पूज्य अभीक्षण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज कर रहे हैं और मोक्षमार्ग में श्रम के साथ जिनशासन के संरक्षण व संवर्द्धन में श्रम रत हैं और इसी को चिर जीवन्तता प्रदान करने हेतु अभी तक अर्द्धशतक से अधिक प्राकृत ग्रंथों की रचना कर चुके हैं और वर्तमान में भी उनकी लेखनी सतत् प्रवाहमान है।

पूज्य आचार्य श्री द्वारा रचित इन ग्रंथों के लिए यही सदी ही नहीं अपितु कई सदियाँ कृतज्ञ रहेंगी क्योंकि ये ग्रंथ मानव कल्याण व देश हित के लिए मार्गदर्शन करने हेतु बहुमूल्य है।

उपसंहार

प्रस्तुत “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य मानवीय मूल्यों का उचित मूल्यांकन करने में, संस्कारी व्यक्तियों की सर्वप्रिय निधि सुसंस्कारों का संरक्षण करने में, सभ्यता व संस्कार के साँचे में ढाले गए सज्जन पुरुषों को संबल प्रदान करने में एवं अज्ञानता, कषायोद्रेक, प्रमाद बहुलता व कुसंगति के कारण कुपथ पर गमन करने वाले दीन-हीन पुण्यात्माओं के लिए सुपथ प्रदर्शक ज्योत्सना के समान समर्थ है। इसमें मंदाकिनी सी पवित्रता, हिमगिरी से संस्पर्शित वायु जैसी शीतलता एवं चित्तोद्गार से उत्पन्न होने वाले अनुभव की मधुरता का अनुपम समन्वय है।

आचार्य गुरुवर की श्लाघनीय व अनुकरणीय ग्रंथ वाचन पद्धति उनके सरल व सहज व्यक्तित्व और दूरदर्शिता का परिणाम है। आचार्य श्री अपनी मौलिक कृतियों को जन-जन तक पहुँचाने से पूर्व विद्वत्गणों के मध्य उनकी वाचना रखते हैं। उपस्थित सभी विद्वानों की वार्ताओं पर गंभीरतापूर्वक विचारकर सर्व हठाग्रह से रहित स्वीकार्य पक्षों को ग्रंथ में संशोधित वा लिपिबद्ध कर पुनः वाङ्मय का दिव्य उपहार भव्यात्माओं तक पहुँचाते हैं। सदैव की भाँति इस बार भी ग्रंथ प्रकाशन से पूर्व इस ग्रंथ की वाचना डॉ. शीतलचंद जी जयपुर, डॉ. विनोद जी रजवांस, डॉ. पुलक जी गोयल, डॉ. आशीष जी शाहगढ़, श्री मनोज जी शास्त्री आहार जी की उपस्थिति में 26, 27, 28 जून 2023 में हुई थी। अब पूज्य आचार्य गुरुदेव की अनुकंपा से यह महाकाव्य आपको स्वाध्याय हेतु प्राप्त हो रहा है। पूज्य गुरुदेव की असीम कृपादृष्टि से इस वृहद् महाकाव्य के संपादन का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। यद्यपि इस वृहद् कार्य के संपादन की सामर्थ्य तो मुझ अल्पज्ञा में नहीं है किन्तु फिर भी यह कार्य जो दृष्टिगोचर हो रहा है वह आचार्य गुरुवर के चरणों का प्रसाद ही है। मिहिर की दिव्य रश्मियों से श्वेतरंजन भी हीरक के समान दैदीप्यमान हो उठता है, वह विशेषता उस काँच खंड की नहीं अपितु अंशुमाली के अंशुओं की ही है।

जिस प्रकार मिश्री का टुकड़ा भी मिश्री ही होता है, गंगाजल की बूंद भी गंगाजल होती है, स्वर्ण का एक कण भी स्वर्ण होता है उसी प्रकार इस महाकाव्य की दो-चार पंक्तियों के

श्रवण व पठन से भी ऐसे आनंद की अनुभूति होती है जैसे ग्रीष्म ऋतु में सहसा पुष्पवाटिका से संस्पर्शित मरुत् का झोंका व्यक्ति को आनंद से परिपूरित कर देता है। नदी, सागर, सरिता वा झील में गोता लगाने वाले महानुभावों को जो आनंद जलकेली में नहीं आता होगा उससे ज्यादा आनंदानुभूति स्वाध्यायरसिकों को इस महाकाव्य के पठन में होगी।

इस ग्रंथ के संपादन में हमें शब्दातीत आनंद की अनुभूति हुई है। आर्यिका वर्धस्व नंदनी माता जी का अविस्मरणीय सहयोग सदैव ही सर्व कार्यों में प्राप्त होता है। आर्यिका श्रेयनंदनी, आर्यिका सुरम्य नंदनी, आर्यिका यशोनंदनी माता जी व संघस्थ बा. ब्र. प्रज्ञा दीदी आदि ब्रह्मचारिणी बहनों के बिना इस वृहद् कार्य की संपन्नता संभव नहीं थी।

प्रस्तुत ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर राजा अशोक और रानी रोहिणी की ये सुन्दर पेंटिंग धर्मानुरागिणी श्रीमति संगीता जी जैन, नोएडा ने बनाई है। अपनी अद्भुत कला के माध्यम से वे जिनशासन की प्रभावना में सदैव संलग्न रहें एतदर्थ उन्हें परिवार सहित पूज्य गुरुदेव का शुभाशीष एवं ग्रंथ के मुद्रण, प्रकाशन इत्यादि में सहयोगी समस्त पुण्यात्मा महानुभावों को पूज्य आचार्य गुरुवर का मंगलमय शुभाशीष।

यदि इस ग्रंथ के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। भवागमननिर्गमन शृंखला को नष्ट करने में तत्पर, जिनेंद्र मुद्रांकित, निर्ग्रन्थ गौरव, पंचमकाल में तीर्थकर के समान धर्म की प्रभावना करने वाले परम पूज्य अभीक्षण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज का दीर्घकालीन सान्निध्य भूमिवासियों को प्राप्त हो, युगों-युगों तक उनके ज्ञान, तप, संयमादि का सौरभ समस्त विश्व को सुरभित करता रहे, उन्हें आरोग्य लाभ हो एवं परम-निःश्रेयस की दुर्विलंघ्य घाटियों को शीघ्र पार करने में समर्थ हों, इन्हीं भावनाओं के साथ परम पूज्य अभीक्षण ज्ञानोपयोगी महाकवि आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमना नमोस्तु.... नमोस्तु.... नमोस्तु भगवन्।

—आर्यिका वर्धस्व नंदनी

दो शब्द

साहित्य सृजन की दृष्टि से जैन शासन में वर्तमान समय महत्वपूर्ण है क्योंकि जैनधर्म के अनुयायियों की मूल भाषा प्राकृत है। प्राकृत प्रकृति से मेल रखती है। इसलिए प्राकृत में किया जाने वाला लेखन जन-जन का उपकारी है और धर्म-संस्कृति का संवाहक है। धर्म-संस्कृति का भाव रखकर ही प्रज्ञा और प्रतिभा के धनी श्रामण्यधर्म का सम्यक् आचरण करने वाले आध्यात्मिक सन्त, ज्ञान-ध्यान में सतत् लवलीन रहने वाले आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज ने त्रिशताधिक ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन और अनुवाद किया है।

विचारों में दृढ़ता, अन्तःकरण में भव्य-करुणा और चिन्तनपूर्ण धार्मिक जीवन रूप समग्र व्यक्तित्व के धनी आचार्य श्री वसुनन्दी मुनिराज की “अशोक-रोहिणी-चरियं” नामक प्राकृत भाषा की रचना का सम्यक् प्रकार से अवलोकन और विचार किया। रचना चरित काव्यात्मक है। इस विधा में सैकड़ों ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं। यह काव्य सम्राट अशोक और महारानी रोहिणी के समग्र जीवन चरित को उपस्थित करने वाला है। इसलिए इसे महाकाव्य की कोटि में स्वीकार करना चाहिए।

कृतिकार के अन्दर जिनश्रुत और श्रुतधारकों के प्रति विनय कूट-कूटकर भरी हुई है। इसीलिए वे इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम तीर्थकरों को नमन करते हैं। मंगलाचरण में तीर्थकरों की विनय करने के उपरान्त, अनुबद्ध केवली, द्वादशांग के धारक, ग्यारह अंग और 10 पूर्व के धारक फिर ग्यारह अंग के धारक और एक अंग के धारक आचार्य भगवन्तों की स्तुति करके पूज्य पञ्च-परमेष्ठियों, कृत्रिम-अकृत्रिम जिन-बिम्बों को नमस्कार किया है। आगम के प्रति तो उनकी अगाध श्रद्धा है इसीलिए उन्होंने लिखा है—

आगम-वयणाणि सुणिय, सुमरिदूणं विअसेदि मम चित्तं।

सेवित्तु णाणामियं, णंददि णिहि-पत्त णिद्धणोव्व॥

आगम के वचनों को सुनकर, स्मरण कर मेरा चित्त विकसित होता है। ज्ञानामृत का सेवन कर भव्य जीव ऐसे आनन्दित होता है जैसे रंक को कोई निधि ही प्राप्त हो गई हो।

आरातीय आचार्यों का उल्लेख करते हुए मुनि परम्परा के समुद्धारक चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज और परम्परा में हुए श्री देशभूषण आचार्य फिर श्वेतपिच्छाचार्य श्री

विद्यानन्द जी का उल्लेख कर आचार्य परम्परा को जो उन्हें जोड़ती है उसका वर्णन किया है। यह चरित काव्य है इसमें महाराजा वीतशोक और महारानी विद्युत्प्रभा के पुत्र सम्राट अशोक और मघवा राजा के आठ पुत्रों और पुत्री रोहिणी का वर्णन कर चरित काव्य को तैयार किया गया है।

सम्राट अशोक और महारानी रोहिणी के जीवन का समग्र जीवनवृत्तान्त का वर्णन करने वाला यह चरितकाव्य 21 नंदों (सर्गों) में 2442 छंदों में रचा गया है।

उस चरित महाकाव्य में विविध छन्द, अलंकार और रस हैं। कर्मभूमि, भोगभूमि का विवेचन भी है। कल्पवृक्षों आदि का विशद् व्याख्यान महत्त्वपूर्ण है।

प्रकृति चित्रण के साथ जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, नदी, सरोवर, पर्वत, नगर, ग्राम आदि का सुन्दर प्रतिपादन है। राजकीय वैभव का वर्णन करते हुए राजदूत आदि की व्यवस्था, महलों और अंतःपुर आदि का भी रमणीक वर्णन किया गया है।

काव्य सम्बन्धी सभी तत्त्वों का समावेश कर कथा को चारुता प्रदान की गई है। धार्मिक दृष्टि और सैद्धान्तिक विवेचना की दृष्टि से यह अति महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है।

श्रावक के द्वादश व्रतों और पञ्च महाव्रतों के वर्णन के साथ जहाँ चरणानुयोग समावेश है वहीं उपकथाओं के माध्यम से अनेक राजा-महाराजा के जीवन-चरित्र उपनिबद्ध हैं जो प्रथमानुयोग की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं। चारों अनुयोगों सम्बन्धी विषय सामग्री एक ही काव्य में संजोने का उपक्रम कृतिकार के वैदुष्य का परिचायक है।

रत्नत्रय का महत्त्व बताकर सम्यग्दर्शन का अन्यत्र सुलभ न होने वाला विवेचन सर्वमान्य है। इसमें बताया गया है सर्वकाल व क्षेत्र में सम्यग्दर्शन ही जिनधर्म का मूल है। यह सम्यग्दर्शन भव्य जीवों को मोक्ष का प्रथम सोपान है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान और चारित्र की विशेषताओं को सम्यक् रूप से प्रतिपादन करने वाला श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

काव्य के सर्वाङ्गीण अनुशीलन करने पर प्रतीत होता है कि संस्कृत में जो महाकाव्य होते हैं, उसी के अनुरूप प्राकृत में लिखी गई यह रचना प्राकृत महाकाव्य के रूप में स्वीकार करनी चाहिए। प्राकृत भाषा की यह कृति वर्तमान में सम्पूर्ण प्रबुद्ध जनों को प्रभावित करने वाली है और सर्व जनमान्य है।

इस ग्रन्थ रत्न में जैनधर्म सिद्धान्त सम्बन्धी सभी विषयों की सम्यक् प्ररूपणा होने से साहित्य जगत् में इसे विशिष्ट सम्मान अवश्य प्राप्त होगा।

प्रबुद्धवर्ग तो इसे स्वीकार करेगा ही साथ में जन-सामान्य के लिए भी ज्ञानार्जन का निमित्त बनेगा। यह ग्रन्थ प्राकृत भाषा के पाठ्यक्रम में लगाया जाए ऐसी विश्वविद्यालयों की पाठ्यक्रम समितियों से आग्रह करते हुए यह अपेक्षा करता हूँ कि समस्त प्रबुद्ध जन इसको साहित्य के क्षेत्र में विशेष गौरव प्रदान करेंगे। मूल ग्रन्थ को लोकप्रियता मिले और सर्वजन संवेद्य होने से इतिहास में अमरता रहे इसी मंगल भावना के साथ ग्रन्थकार ज्ञान-चरित्र के पुञ्ज आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज की लेखनी की अनुशंसा करता हूँ और उन्हें नमन करता हूँ।

—डॉ. श्रेयांस कुमार जैन

अध्यक्ष-अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद्

पुरोवाक्

परमपूज्य सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य विद्यानन्द जी महाराज के सुशिष्य आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज द्वारा प्राकृत भाषा में विरचित “असोगरोहिणीचरियं” महाकाव्य का विहंगावलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ। आर्यिका वर्धस्वनंदनी जी द्वारा सम्पादित बोधि एवं समाधि के निधान तथा बोध एवं शोध की दिशा में नवीन भावरश्मियों को उपहार प्रदान करने वाले इस महाकाव्य में आचार्य श्री ने हस्तिनापुर नरेश वीतशोक एवं रानी विद्युत्प्रभा के पुत्र राजकुमार अशोक तथा चम्पापुर नरेश मधवा एवं रानी श्रीमती की पुत्री राजकुमारी रोहिणी के पावन चरित्र का पौराणिक शैली में अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है।

इक्कीस नन्दों में विभक्त इस महाकाव्य में रोहिणी नक्षत्र के उदय रहने पर होने वाले रोहिणी व्रत के महनीय माहात्म्य का हृदयग्राही मनोरम वर्णन किया गया है, जो सहज ही श्रावकों के लिए प्रेय के साथ-साथ श्रेय का भी साधक है। यद्यपि यह प्रथमानुयोग का धर्मकथात्मक शास्त्र है, तथापि इसमें लोकालोक का विवेचन होने से करणानुयोग, श्रावक एवं श्रमण के चारित्र का प्रतिपादन होने से चरणानुयोग तथा अनेकत्र तत्त्वों के स्वरूप का वर्णन होने से द्रव्यानुयोग का भी यथेष्ट कथन किया गया है। आचार्यश्री की समवेत रूप से चारों अनुयोगों के हार्द को अन्तर में उतार देने की कला आश्चर्यजनक है। कथा के प्रवाह को अवान्तर कथाओं से जोड़ने के लिए साङ्ग पञ्चसन्धियों की संयोजना फलागम में रसभङ्ग नहीं होने देती है।

भाषा की दृष्टि से इस महाकाव्य में मुख्य रूप से शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग है, किन्तु क्वचित्-कदाचित् अर्धमागधी की प्रवृत्तियाँ भी दृष्टिगत हो जाती हैं। भाषा में स्वतः समागत अलंकार महाकाव्य की रोचकता में निमित्त बन जाते हैं। सम्पूर्ण महाकाव्य के लक्षणों से उपेत यह शास्त्र श्रावकों को हेयोपादेय का निश्चित रूप से निदर्शक बनेगा। पूज्य आचार्यश्री के पादपद्मों में सविनय प्रणति/ सादर कोटिशः नमोऽस्तु।

—प्रोफेसर जयकुमार जैन

जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म एवं दर्शन विभाग,
जैन विश्व भारती संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
लाङ्गूँ (राज.)

प्रस्तावना

“असोग-रोहिणी-चरियं” प्रथमानुयोग की कृति है। जो प्रथमानुयोग के सिद्धान्तों को प्रदर्शित करती है। इसमें अशोक और रोहिणी चरित के साथ रोहिणी व्रत के माहात्म्य का भी वर्णन है। जैनागम को चार अनुयोगों में विभक्त किया गया है।

इसमें प्रथम, प्रथमानुयोग है। जिसमें शलाका पुरुषों, महापुरुषों और पुण्य-पुरुषों के जीवनवृत्त का प्रतिपादन किया जाता है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में प्रथमानुयोग के स्वरूप का कथन इस प्रकार किया है—

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।

बोधि - समाधि - निधानं बोधति बोधः समीचीनं॥43॥

सम्यक्-श्रुतज्ञान परमार्थ विषय का कथन करने वाले एक पुरुषाश्रित कथा और त्रेसठ शलाका-पुरुष सम्बन्धी कथारूप पुण्यवर्धक, रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि अर्थात् धर्म और शुक्लध्यान की प्राप्ति का निधान प्रथमानुयोग है।

आचार्यश्री वसुनन्दी जी महाराज ने असोग-रोहिणी-चरियं में प्रथमानुयोग के स्वरूप का विस्तार से कथन किया है।

पढमाणुजोगं सव्वपहाण - हेदू सव्वसारभूदं॥

सेट्ट-मोक्ख-पंथस्स दु, सहजं तह सरल-मच्चंतं॥3॥¹

अर्थात् प्रथमानुयोग सर्व सारभूत है, अत्यन्त सरल व सहज है। श्रेष्ठ मोक्षमार्ग के लिए सर्व प्रधान कारण है।

तह पढमाणुजोगं दु, अप्पवियार - णासगं सव्वाणं॥

बोहि-समाहि-णिहाणं, सुणाण-वेरग्ग-वड्ढगं च॥6॥²

अर्थात् सभी अनुयोगों में यह प्रथमानुयोग आत्मविकार नाशक, सभी के लिए बोधि व समाधि का खजाना है तथा सम्यग्ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि करने वाला है।

जिसमें एक पुरुष की मुख्यता से जो वर्णन होता है वह चरित्र कहलाता है। जिसमें त्रेसठ शलाका पुरुषों के संबंध में वर्णन होता है वह पुराण कहलाता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होना बोधि है। जिन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र था उसकी परिपूर्णता समाधि कहलाती है।

पद्मपुराण, हरिवंशपुराण और आदिपुराण आदि प्रथमानुयोग के ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में वर्णित कथायें, उपकथायें, पाठक के मन को प्रभावित करके उसे धर्ममार्ग में लगाने में प्रशस्त भूमिका निभाती हैं। आचार्यों ने इन कथाओं को सर्वप्रथम पढ़ने का निर्देश दिया है क्योंकि ये मन में स्थित मिथ्या-धारणाओं का निरसन कर सम्यक्त्व की स्थापना करती हैं। ये कथाएँ अनेक प्रकार की होती हैं। कथा के दो भेद हैं—

(1) **विजिगीषु कथा**—वादी और प्रतिवादी में अपने पक्ष को स्थापित करने के लिए जीत-हार होने तक जो परस्पर में वचन प्रवृत्ति होती है, वह विजिगीषु कथा कहलाती है।

(2) **वीतराग कथा**³—गुरु तथा शिष्य में अथवा राग-द्वेष रहित विशेष विद्वानों में तत्त्व के निर्णय होने तक जो चर्चा चलती है वह वीतराग कथा है।

धवला (1, 1), भगवती आराधना, गोम्मटसार आदि ग्रन्थों में चार प्रकार की कथायें कहीं हैं।

(क) **आक्षेपणी कथा**⁴—जिसमें मति आदि सम्यग्ज्ञानों का तथा सामायिक आदि सम्यक् चरित्रों का निरूपण किया जाता है वह आक्षेपणी कथा है। तत्त्वों का निरूपण करने वाली आक्षेपणी कथा है।

(ख) **विक्षेपणी कथा**⁵—परमत की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थापना करने वाली विक्षेपणी कथा है। जिस कथा में जैनमत के सिद्धान्तों का और पर मत का निरूपण होता है वह विक्षेपणी⁶ कथा है।

(ग) **संवेजनी कथा**—ज्ञान, चारित्र, तप व वीर्य इनका अभ्यास करने से आत्मा में कैसी-कैसी अलौकिक शक्तियाँ प्रकट होती हैं। इनका वर्णन करने वाली कथा को संवेजनी कथा⁷ कहते हैं।

(घ) **निर्वेजनी कथा**⁸—शरीर, भोग और जन्म परम्परा में विरक्ति उत्पन्न करने वाली कथा निर्वेजनी कथा है। पाप के फल का वर्णन करने वाली कथा को निर्वेजनी⁹ कथा कहते हैं।

महापुराण¹⁰ में कथा के और भी अन्य भेद किये गये हैं जैसे विकथा, सत्कथा, धर्म कथा आदि। विकथा¹¹—पाप की हेतुभूत कथा विकथा कहलाती है। ये चार हैं—स्त्री-कथा, राज-कथा, चोर-कथा, भोजन-कथा।

मूलआराधना¹² में और गोम्मटसार जीवकाण्ड में 25 विकथाओं का उल्लेख है।

स्त्री-कथा, अर्थ-कथा, भोजन-कथा, राज-कथा, चोर-कथा, वैर-कथा, परपाखण्ड- कथा, देश-कथा, भाषा-कथा, गुणबन्ध-कथा, देवी-कथा, निष्ठुर- कथा, परपैशुन्य-कथा, कन्दर्प-कथा, देशकाल के अनुचित-कथा, भंड-कथा, मूर्ख-कथा, आत्मप्रशंसा-कथा, परनिन्दा-कथा, पर जुगुप्सा-कथा, परपीड़ा-कथा, कलह-कथा, परिग्रह-कथा, कृषि आदि आरम्भ कथा, संगीत चारित्र कथा। ये कथायें पापास्रव कारक हैं।

सत्कथा¹³—मोक्ष पुरुषार्थ में उपयोगी होने से धर्म, अर्थ और काम का कथन करना सत्कथा कहलाती है। जिससे जीवों को स्वर्गादिक अभ्युदय तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है वास्तव में वही धर्म कहलाता है। उससे संबंध रखने वाली कथा को सद्धर्म कथा¹⁴ कहते हैं।

इन कथाओं के माध्यम से सत्पुरुषों के जीवन चरित्र, उनके आदर्श और उनकी धर्म निष्ठा आदि का कथन किया जाता है। ऐसा ही अशोक रोहिणी चरित्र है जिसमें रोहिणी आदि व्रतों के स्वरूप और माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

वदं असुह-संवरस्स, अइसय-पुण्ण-णिब्बंधणं णेयं॥

अइपहडी संकमंति, णिच्चं तेण पुण्णपइडीसु॥29॥¹⁵

अर्थात् व्रत अशुभ के संवर व अतिशय पुण्य का कारण जानना चाहिए। व्रत के प्रभाव से पाप प्रकृतियाँ भी नित्य पुण्य प्रकृतियों में संक्रमित होती हैं। व्रत अविपाकी निर्जरा एवं परम्परा से मोक्ष का कारण हैं।

थीलिंगं छिंदेदुं, सम्मत्तजुद - महव्वदं पालेज्ज।

असुहसंवरो य पउर - णिज्जरा समत्तभावेणं॥91॥

सम्मसङ्गाए जो वि, पालदि बहुवदमेगं भव्वो वा॥

पावेदुं सारज्जं, समत्थो णिव्वाणसोक्खं च॥92॥¹⁶

अर्थात् स्त्रीलिंग के छेदन के लिए सम्यक्त्व युक्त महाव्रतों का पालन करना चाहिए। समत्वभाव से अशुभ का संवर और उसकी प्रचुर निर्जरा होती है। जो भी भव्य जीव सम्यक् श्रद्धापूर्वक एक या बहुत व्रतों का पालन करता है वह स्वर्ग का साम्राज्य पुनः निर्वाण सुख प्राप्त करने में समर्थ होता है। संस्कारों के विषय में आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज ने कहा है कि—

तं पत्तेयं पिदरं, सुसक्कारं खलु सगसंताणाण।

धम्ममज्जादाए य, सिक्खावेज्जा अणुसासणं सया॥44॥¹⁷

अर्थात् प्रत्येक माता-पिता को सदा अपनी संतानों को धर्म व मर्यादा के लिए सुसंस्कार व अनुशासन सिखाना चाहिए। अनुशासन के बिना कोई भी परमपद प्राप्त करने में समर्थ नहीं है।

नारी के गौरव को कहते हुए उन्हें मंगल कहा है। अतः नारी को संस्कारित करने का निर्देश भी दिया है।

णारी सुपुण्णवंता, सुधम्माणुरत्ता जम्मि गेहम्मि।

पण्णा य सीलवंता, ठाएज्ज सुहं संती तत्थ॥79॥¹⁸

अर्थात् जिस घर में धर्मानुरक्ता, पुण्यवान्, बुद्धिमान् और शीलवान् नारी निवास करती है वहाँ सुख-शान्ति भी निवास करती है।

जत्थ सुसक्कारजुदा, पुण्णवंत-कुलवंता धम्मरदा।

मज्जादा- रक्खिगा य, णारी सय तत्थ सुब्धिक्खं॥80॥¹⁹

अर्थात् जहाँ सुसंस्कारों से युक्त पुण्यवान्, कुलवान्, धर्म में रत रहने वाली एवं मर्यादा की रक्षा करने वाली नारियाँ होती हैं वहाँ सदा सुभिक्ष रहता है। जहाँ दुःख व शोक युक्त नारी रहती हैं वहाँ प्राकृतिक प्रकोप, कलह, दुर्भिक्ष, अशान्ति और दुःख होता है।

अनेक स्थानों पर ज्योतिष का वर्णन भी किया है।

पुण्णाहे सुहजोगे, सुणक्खत्ते चंदे सगगिहीए।

गुरुम्मि उच्चे सुह-गयकेसरि-जोगे तह केंदम्मि॥122॥²⁰

अर्थात् शुभ दिन, शुभ योग, शुभ नक्षत्र में जब चन्द्र स्वग्रही अर्थात् कर्क राशि पर था, गुरु उच्च का अर्थात् कर्क राशि पर था, केन्द्र में दोनों साथ होने से गजकेसरी योग था।

इसी प्रकार इसमें अध्यात्म और सिद्धान्त के साथ कर्म व्यवस्था, श्रावक धर्म, श्रमण धर्म, पुण्य का प्रभाव और फल, पाप कर्म के दुष्परिणाम आदि का विस्तार से कथन किया है। असोग-रोहिणी-चरियं ग्रन्थ, महाकाव्य के सभी मानकों पर खरा उतरता है। इसमें इक्कीस नंद हैं। इसकी भाषा छन्दों के सिद्धान्तों से अनुशासित, नवरसों से ओत-प्रोत एवं अनेक अलंकारों से अलंकृत है।

आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज द्वारा लिखित “असोग-रोहिणी-चरियं” में आपने कथा वस्तु को तो रुचिकर एवं सरसता प्रदान की ही है; साथ ही इसमें संस्कार, संस्कृति, शिक्षा, राजनीति, नारी शिक्षा, कर्तव्यबोध, कला विज्ञान, जैनागम, कर्मसिद्धान्त, अनुयोगों का स्वरूप एवं ज्योतिष आदि के गाम्भीर्य का स्पष्ट भाषा में उल्लेख किया है साथ ही शिष्टाचार, सदाचार,

विनय एवं मोक्ष पर चलने के निर्देशों के साथ उनकी विधि का भी प्ररूपण किया है।

प्रस्तुत महाकाव्य “असोग-रोहिणी-चरियं” विश्वनाथ, दंडी, भामह आदि के द्वारा दिए गए महाकाव्य के मानकों पर भलीभाँति खरा उतरता है। कथानक, विस्तार, विन्यास, नायक, रस, फल, शैली ये महाकाव्य के आधार बिन्दु हैं। जो प्रस्तुत महाकाव्य में दृष्टिगोचर होते हैं। इस महाकाव्य में 21 नंद हैं। इस महाकाव्य में अंगी रस शान्त रस है एवं श्रृंगार, वीर एवं करुण रस आदि अंग रूप में अवस्थित हैं। इसमें प्राकृतिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों की गम्भीर चर्चा की गई है। उपकार्य उपकारक भाव अनेक स्थानों पर दृष्टि गोचर होता है। जीवन में व्रत, संयम एवं अध्यात्म का सजीव चित्रण कर उनके फल को भी प्रतिपादित किया है। इस महाकाव्य का फल सत्य की प्राप्ति और मोक्ष की उपलब्धि है। महाकाव्य की कथा इतिहासाश्रित तो है ही साथ ही इतिहास के अनेक आयामों का उद्घाटन भी किया है।

इस महाकाव्य की भाषा प्राकृत है। सभी नंदों में प्रत्येक नंद एक ही छंद में है किन्तु सर्गान्त में छन्द परिवर्तित किया गया है। इसमें वर्णित सभी रस, अलंकारों, संधियों, सामाजिक, राजनैतिक, मानव जीवन, संस्कार, शिक्षा, संस्कृति के उद्घोषक छन्दों को भी प्रस्तुत करने का भाव है, किन्तु विस्तारभय से प्रस्तुत नहीं कर रहा हूँ। जिज्ञासु महानुभाव इस महाकाव्य का अवश्य अध्ययन करें।

आर्यिकारत्न वर्धस्वनन्दनी माता जी ने इस ग्रन्थ का कुशल सम्पादन कर इसे श्रेष्ठता प्रदान की है। आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज के ससंघ सान्निध्य एवं निर्देशन में इस ग्रन्थ का संशोधन, संवर्धन डॉ. शीतलचन्द्र जैन जयपुर, पं. विनोद कुमार जैन रजवांस, डॉ. आशीष कुमार जैन आचार्य सागर, पं. पुलक जैन जबलपुर द्वारा एवं पं. मनोजकुमार जैन अहार जी के संयोजकत्व में सम्पन्न हुआ जो श्लाघनीय है।

यह कृति जनोपयोगी तो है ही साथ ही वर्तमान में विस्मृत होते जा रहे श्रमण संस्कृति के संस्कारों को पुनः स्थापित करने में भी समर्थ है। इसके माध्यम से धर्माचरण करने वाले, व्रतादिकों का पालन करने वाले एवं जैनधर्म और संस्कृति के प्रति समर्पण का भाव वृद्धिगत होगा। परम पूज्य आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज के चरणों में कोटिशः नमोस्तु।

1. असोग-रोहिणी-चरियं, नंद 2 गाथा 3

संदर्भ ग्रन्थ सूची

2. असोग-रोहिणी-चरियं, नंद 2 गाथा 6
3. न्यायदीपिका 3/34
4. धवला पुस्तक, 1.1
5. धवला 1.1
6. भगवती आराधना 655, 853
7. भगवती आराधना 657
8. भगवती आराधना 657, 854
9. धवला 1.1
10. महापुराण 1, 118-120
11. नियमानुसार 67
12. मूलआराधना 853-856
13. महापुराण 1, 118
14. महापुराण 1, 121
15. असोग-रोहिणी-चरियं, नंद 1 गाथा 29
16. असोग-रोहिणी-चरियं, नंद 9 गाथा 91-92
17. असोग-रोहिणी-चरियं, नंद 8 गाथा 44
18. असोग-रोहिणी-चरियं, नंद 8 गाथा 79
19. असोग-रोहिणी-चरियं, नंद 8 गाथा 80
20. ओग-रोहिणी-चरियं, नंद 2 गाथा 122

—पं सनतकुमार विनोदकुमार जैन

रजवांस सागर (म.प्र.)

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृ.स.
<p>पढम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • मंगलाचरण • ग्रंथकर्तृ प्रतिज्ञा • जंबूद्वीप की रचना • भरतक्षेत्र के आर्यखंड में मगधदेश, राजगृही नगरी का वर्णन, राजा श्रेणिक व रानी चेलना वर्णन • विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण आगमन • पुण्य महिमा • राजा श्रेणिक का परिवारजनों सहित वंदनार्थ जाना एवं तीर्थकर प्रभु की स्तुति करना • राजा श्रेणिक द्वारा पूछे जाने पर भगवान् द्वारा व्रत-उपवास का सुफल वर्णन • रोहिणी व्रत माहात्म्य एवं राजा श्रेणिक द्वारा व्रत विधि एवं व्रत-पालनकर्ता के विषय में जिज्ञासा। 	1
<p>विदिय-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • श्री गणधरदेव द्वारा रोहिणी व्रत में प्रसिद्ध राजा अशोक व रानी रोहिणी के चरित्र कथन का संकेत • राजा वीतशोक की रानी विद्युप्रभा का गुण वर्णन, रात्रि में रानी द्वारा महाराज की उदासी का कारण पूछना, उसके उत्तर में महाराज द्वारा रानी से प्रतिप्रश्न एवं पुत्र प्राप्ति का आश्वासन। • रानी द्वारा पूछे जाने पर राजा वीतशोक द्वारा कुलकरों का वर्णन रानी विद्युत्प्रभा द्वारा रात्रि में सात शुभ स्वप्नों का देखना एवं प्रातःकाल राजा से उन स्वप्नों का फल पूछना। • निमित्तज्ञानी द्वारा स्वप्नों के शुभ फलों का कहना • शुभ दिन आदि में पुत्र का जन्म, जन्मकुंडली एवं पुत्र का नामकरण आदि का वर्णन • राजकुमार अशोक का बाल्यकाल, शिक्षा एवं उनके गुणों का वर्णन। 	23

<ul style="list-style-type: none"> • चार अनुयोग वर्णन • कुरुजांगल देश, हस्तिनागपुर नगरी वर्णन व ग्रंथकर्ता द्वारा इस पुण्य नगरी को नमन • हस्तिनागपुर नगरी के राजा वीतशोक के राज्य वर्णन सहित याचक, दुष्ट, चोर, विनम्र, • धर्मी, सदाचारी, शिष्ट आदि के लक्षण वर्णन 	
<p>तिदिय-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • इसी भरतक्षेत्र में अंगदेश, चंपापुर नगरी, राजा मघवा के राज्य का वर्णन • राजा मघवा के 8 पुत्र व रोहिणी नामक एक पुत्री प्राप्ति • राजकुमारी रोहिणी का सौंदर्य व संस्कार वर्णन • राजकुमारी रोहिणी का जिनचैत्यालय जाकर जिनदेव की पूजन करने के पश्चात् गंधोदक देने हेतु पिता के समीप पहुँचना एवं पुत्री को देखकर पिता के मन में उसके विवाह का विचार आना • राजा द्वारा मंत्रिमंडल के साथ रोहिणी के लिए सुयोग्य वर चयन हेतु विचार-विमर्श एवं स्वयंवर विधि से विवाह होने की घोषणा • स्वयंवर के लिए विभिन्न राजकुमारों को आमंत्रण भेजना एवं प्रजाजनों का स्वयंवर देखने के लिए जाने की उत्सुकता का वर्णन • स्वयंवर मंडप आकर्षण एवं राजा मघवा द्वारा सभी आगंतुक अतिथियों का सम्मान एवं स्वयंवर नियम प्रस्तुतिकरण • रोहिणी द्वारा श्रेष्ठ वर प्राप्ति की जिनेंद्र प्रभु के समक्ष भावना भाना, पंचवर्णी माला लेकर स्वयंवर मंडप में प्रवेश, रोहिणी का सौंदर्य वर्णन एवं धाय माँ द्वारा रोहिणी को आगन्तुक राजकुमारों का परिचय कराना • स्वयंवर में आए हस्तिनापुर के राजकुमार अशोक को वरमाला पहनाकर रोहिणी द्वारा वर का चयन • अन्य आगन्तुक राजा व राजकुमारों द्वारा क्रोध प्रदर्शन, तभी मगध के राजा द्वारा राजकुमार अशोक को युद्ध की चेतावनी, मगधेश व अशोक के बीच युद्ध वर्णन, अशोक द्वारा मगधेश को बंधनबद्ध करना एवं राजकुमार अशोक की विजय घोषणा • शुभ लग्नादि में राजकुमार अशोक व रोहिणी का विवाह, राजा मघवा द्वारा भेंट देना आदि का वर्णन। 	<p>45</p>

<p>चदुत्थ-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • माँ श्रीमति के द्वारा शिक्षा देकर रोहिणी की विदाई एवं हस्तिनागपुर में नव वधु का प्रवेश • हस्तिनागपुर के निकट नंदनवन में ऋद्धिधारी मुनिराज का आगमन, राजा वीतशोक का सपरिवार मुनिदर्शन को जाना, मुनिराज का धर्मोपदेश, उपदेशोपरांत राजा वीतशोक व रानी द्वारा अणुव्रत ग्रहण • उल्कापात देखकर राजा वीतशोक को वैराग्योत्पत्ति पिता द्वारा पुत्र अशोक को राजनैतिक शिक्षा व राज्याभिषेक वर्णन • गुणधर्म मुनिराज द्वारा राजा वीतशोक का निर्ग्रथ दीक्षा लेना पुनः घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान, गंधकुटी रचना व निर्वाण प्राप्त करना • राजा अशोक द्वारा न्यायपूर्वक राज्यसंचालन वर्णन। 	<p>67</p>
<p>पंचम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • राजा अशोक व रानी रोहिणी के मध्य वार्तालाप व दांपत्य सुख भोग वर्णन • राजा-रानी के मध्य पृच्छना स्वाध्याय के माध्यम से हुई सैद्धांतिक धर्मचर्चा का वर्णन • एक बार रात्रि के अंतिम पहर में रोहिणी द्वारा शुभ स्वप्नों का दर्शन व मुनिराज द्वारा उनका फल वर्णन • गर्भवती रोहिणी का धर्मध्यान पूर्वक नवमास व्यतीत करना व पुत्रोत्पत्ति वर्णन। 	<p>89</p>
<p>छट्ट-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • पुत्र जन्मोत्सव व नामकरण, शिष्य जीवन में गुरु महत्व वर्णन व अनुक्रम से अन्य 7 पुत्र व 4 पुत्री प्राप्ति • राजभवन के उपरिम भाग में राजा-रानी का बैठना, धाय माँ का छोटे पुत्र लोकपाल को गोदी में लाना, तभी अग्रिम राजपथ पर कुछ महिलाओं का रुदन करते हुए निकलना, उन्हें देख रोहिणी का धाय माँ से पूछना, धाय माँ का संवाद, अशोक का लोकपाल को छत से फेंकना, देवों के द्वारा लोकपाल का सम्मान, राजा अशोक द्वारा रानी रोहिणी के पुण्य की प्रशंसा। 	<p>109</p>

<p>सत्तम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • हस्तिनागपुर नगरी में चारण ऋद्धिधारी युगल मुनिराज का आगमन, राजपरिवार सहित राजा का मुनिराज के दर्शन हेतु गमन, राजा द्वारा योगिभक्ति युक्त मुनिराज की स्तुति करना • मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश। 	<p>125</p>
<p>अट्टम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • राजा अशोक द्वारा मुनिराज से रोहिणी के दुःख व शोक नहीं जानने का कारण पूछना • मुनिराज द्वारा रोहिणी के पूर्वभव (पूतिगंधा की पर्याय) कहना • तीव्र पापोदय युक्त पूतिगंधा की वीभत्सता (कुरूपता) वर्णन • पूतिगंधा द्वारा सुव्रता आर्यिका को आहारदान एवं वैयावृत्ति • हस्तिनागपुर के निकट नगर में अमितास्रव पिहितास्रव नामक ऋद्धिधारी मुनिराज का आगमन, पूतिगंधा का परिवार सहित मुनिवंदना को जाना एवं धर्मोपदेश श्रवण। 	<p>140</p>
<p>णवम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • पूतिगंधा द्वारा मुनिराज से अपने पूर्वभव पूछना, अमितास्रव मुनिराज द्वारा सिंधुमती की पर्याय में की गई मुनिनिंदा व समाधिगुप्त मुनिराज को कषायवश कड़वी तूमडी के आहार देने से अर्जित पाप के फलस्वरूप कुष्ठरोग से मरणकर छटवें नरक पुनः तिर्यच-नरकादि अनेक कुर्योनियों में भ्रमण वर्णन • मुनिराज द्वारा पापकर्म के क्षय हेतु पूतिगंधा को रोहिणी व्रत ग्रहण प्रेरणा, व्रतविधि वर्णन, पूतिगंधा द्वारा रोहिणी व्रत पालन, सोलहवें स्वर्ग में देवी होना, वहाँ से च्युत हो रोहिणी होना। 	<p>156</p>
<p>दसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • राजा अशोक द्वारा मुनिराज से अपने पूर्वभव पूछना • मुनिराज द्वारा पूतिगंध पर्याय का वर्णन • राजा सिंहसेन द्वारा पृच्छना करने पर विमलमदन केवली से पुत्र पूतिगंध के पूर्वभव ज्ञात होना • केवली द्वारा पूतिगंध की पूर्व की अनेक तिर्यच पर्याय एवं सोमशर्मा नामक पर्याय का वर्णन। 	<p>173</p>

<p>एयारस-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • मुनिघात के फलस्वरूप सोमशर्मा का अनेक कुयोनियों में भ्रमण कर पूतिगंध होना • पिहितास्रव मुनिराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण, समाधिमरण सौधर्मस्वर्ग में देव पुनः वहाँ से च्युत हो लोकपाल होने का वर्णन। 	192
<p>बारसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • पूतिगंधा के जीव का प्राणत स्वर्ग से च्युत हो राजा विमलकीर्ति का अर्ककीर्ति नामक पुत्र होना • श्रुतकीर्ति उपाध्याय के पास अर्ककीर्ति व उसके मित्र मेघसेन का विद्याध्ययन • अर्ककीर्ति को पिता द्वारा देश निकाला देकर दंडित किया जाना, अर्ककीर्ति द्वारा वीतशोकपुर में चंद्रकवेध को वेधना, विमलवाहन राजा की आठों कन्याओं के साथ विवाह-होना, चित्रलेखा द्वारा अर्ककीर्ति का हरण, विजयाद्ध स्थित सिद्धकूटवर्ती जिनमंदिर के द्वार खुलना, वीतशोक सहित 31 कन्याओं का लाभ, अंजनगिरि हाथी को वश में करना, राजा प्रभंजन की आठ पुत्रियों का लाभ होने का वर्णन • अर्ककीर्ति का अपनी जन्मस्थली में आगमन, पिता के साथ युद्ध व मिलन वर्णन • विमलकीर्ति की निर्ग्रथ दीक्षा व मोक्ष प्राप्ति वर्णन। 	210
<p>तेरसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • अर्ककीर्ति द्वारा राज्यसंचालन • मेघविघटन देख अर्ककीर्ति को वैराग्य, तत्त्वचिंतन, शीलगुप्त मुनिराज से निर्ग्रथ दीक्षा, इंगिनी पूर्वक समाधिमरण, अच्युत स्वर्ग में उत्पत्ति व वहाँ से च्युत हो अशोक होने तक का वर्णन। 	233
<p>चउद्दसम-णंदो</p>	247
<ul style="list-style-type: none"> • राजा अशोक के सात पुत्रों के पूर्वभव, पूर्वभव में सातों का यशोधर मुनिराज से निर्ग्रथ दीक्षा लेना, उत्तमसमाधिमरण कर सौधर्मस्वर्ग में देव होना पुनः च्युत होकर राजा अशोक के सात पुत्र होना 	

<ul style="list-style-type: none"> • अष्टम पुत्र लोकपाल का पूर्वभव, श्रीभद्र विद्याधर की पर्याय में मुनिराज से ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप श्रवण 	
<p>पंचदसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • राजा अशोक की चारों पुत्रियों के पूर्वभव, विजयाब्द पर्वत, दक्षिणश्रेणी, अलकानगरी, राजा सागरसेन, रानी कमला की चार पुत्रियों का सुव्रताचार्य के दर्शनार्थ जाना, मुनिराज से पंचमी व्रत ग्रहण, मरणकर सौधर्मस्वर्ग गमन इत्यादि वर्णन। 	266
<p>सोलसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • राजा अशोक की न्यायप्रियता व कुशल राज्यसंचालन वर्णन • राजा अशोक व रानी रोहिणी का मुनिराज को आहारदान देना, पंचाश्चर्य प्रकट होना आदि वर्णन। 	280
<p>सत्तरसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • श्वेत केश देख महाराज अशोक का तत्त्वचिंतन व वैराग्योत्पत्ति वर्णन। 	299
<p>अट्टारसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • राजा अशोक का श्री वासुपूज्य भगवान् के समवसरण में जाना, भगवान् की स्तुति करना, पंचमुष्ठी केशलोच व मुनिदीक्षा लेना, सुमति नामक आर्यिका से रोहिणी की आर्यिका दीक्षा, मुनिराज अशोक को चार ज्ञान प्रकट होना व श्री वासुपूज्य भगवान् का गणधर होना इत्यादि वर्णन। 	314
<p>एगूणवीसइम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • योगिराज श्री अशोक गणधर का उपशम श्रेणी पर आरोहण वर्णन। 	325
<p>वीसम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • उपशम श्रेणी अवरोहण वर्णन। 	346
<p>एगवीसइम-णंदो</p> <ul style="list-style-type: none"> • योगिराज अशोक गणधर को केवलज्ञान, दिव्यध्वनि खिरना व मोक्षप्राप्ति वर्णन। • रोहिणी आर्यिका का परम्परा से मोक्ष प्राप्ति वर्णन • ग्रंथकर्ता द्वारा अनेक प्राचीन आचार्यों सहित गुरुपरंपरा को नमन, प्रशस्ति। 	363

आचार्य वसुनंदी मुनिराज कृत

असोग-रोहिणी-चरियं

(अशोक-रोहिणी चरित्र)

महाकाव्य



मंगलाचरण

1. सव्वा तित्थयरा खलु, जुगपादलुढिदिंदेवकुमारा।
सत्तकरुणट्टचित्ता, - सुरवरपातिदचमरचारा य॥1॥
2. मोक्खलच्छीणिवासा, झाणासिणा छिंदिदकम्मपासा।
भामंडल-सहस्सक्क - भासा पणकल्लाणवित्तं॥2॥
3. णिरुविदा सिआवाया, सया रयणत्तय-सिंगारहारा।
भत्तीए णमंसामि, कसाय - सप्पदप्पणासा य॥3॥ (तिअं)
4. सुव्वय - संजम - समाहि - जुदा सेय - फल - पदायगा णिच्चं।
सव्वणहु - सिद्ध - साहु, सिद्धंत-गंथं णमंसामि॥4॥

जिनके दोनों चरणों में इंद्र, देवकुमार लोट रहे हैं, जिनका चित्त समस्त जीवों पर करुणा से आर्द्र है, इंद्र जिन पर चंवर ढोर रहे हैं, जो मोक्ष रूपी लक्ष्मी का निवास हैं, जिन्होंने ध्यान रूपी कृपाण के द्वारा कर्मपाश को छेद दिया है, जिनका भामंडल हजारों सूर्यों की कांति से सहित है, पंच-कल्याणक ही जिनका धन है, जिन्होंने स्याद्वाद का निरूपण किया, जो रत्नत्रय रूपी सुंदर हार को धारण करने वाले हैं, कषाय रूपी सर्प के दर्प को जिन्होंने नष्ट कर दिया है उन सभी तीर्थकरों को मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) भक्तिपूर्वक सदा नमस्कार करता हूँ॥1-3॥ सुव्रत, संयम और समाधि से युक्त, श्रेय-फल प्रदायक सर्वज्ञ प्रभु, सिद्ध, साधु और जिनागम को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ॥4॥

5. तुरिययालस्स पढमं, तित्थयर-मज्जियणाहं दु पणमामि।
सासणयालम्मि जस्स, सत्तति-अहिय-सय-तित्थयरा॥5॥
6. महाभिसगोव्व सय जो, करिदुं चित्तसुद्धिं विजय-हेदू।
वयणं महोसहीव दु, जस्स सो वसेज्ज मम चित्ते॥6॥
7. पंचकल्लाण-विहूदि जुदा उसहादीदु वीर-जिणंतं।
संपइयाले भरहे, धम्मपवट्टगा णमंसामि॥7॥
8. सुभावेहिं वंदामि, सिरिमंदराइ-वीस-तित्थयरा हु।
विदेहे विज्जमाणा, सव्वा तिव्व-भत्ति-रायेण॥8॥
9. उसहसेणाइ-सव्वा इड्ढिजुदा चउणाणजुदा णिच्चं।
कडुअ सुद्धं थिरं सग-चित्तं गणहरा णमंसामि॥9॥
10. ते दाएज्जा सत्तिं, मज्झं णाणावरणाइं खयिदुं।
केवलणाणलद्धीइ, य सगसहाव-संपत्तीए॥10॥
11. इंदभूदिगोदमं च, सुहम्मसामिं लोहाइरियं वा।
जंबूसामिं णमामि, इमा तिअणुबद्धकेवलिणो॥11॥

चतुर्थ-काल के प्रथम तीर्थंकर जिनके शासनकाल में एक सौ सत्तर (170) तीर्थंकर हुए उन श्री अजितनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ॥5॥ जो चित्त की शुद्धि करने के लिए महावैद्य के समान हैं, विजय के हेतु हैं, जिनके वचन महाऔषधि के समान हैं वे श्री अजितनाथ भगवान् मेरे चित्त में वास करें॥6॥ वर्तमानकाल में भरत क्षेत्र में पंचकल्याणक विभूति से युक्त श्री वृषभनाथ भगवान् से श्री महावीर भगवान् तक सभी धर्म प्रवर्तकों को नमस्कार करता हूँ॥7॥ विदेह क्षेत्र में विद्यमान सभी श्री सीमंधर आदि बीस तीर्थंकरों को शुभ भावों से व तीव्र भक्ति के अनुराग से नमस्कार करता हूँ॥8॥ अपने चित्त को शुद्ध व स्थिर करके चार ज्ञान से युक्त, ऋद्धिधारी श्री वृषभसेन आदि सभी गणधरों को नित्य नमस्कार करता हूँ॥9॥ वे सभी केवलज्ञान की प्राप्ति, निज स्वभाव की प्राप्ति एवं ज्ञानावरण आदि कर्मों के क्षय के लिए मुझे शक्ति प्रदान करें॥10॥ श्री इंद्रभूति गौतम स्वामी, सुधर्म स्वामी अपर नाम लोहाचार्य व जंबूस्वामी इन तीन अनुबद्ध केवलियों को नमस्कार करता हूँ॥11॥

12. विष्णुं च नंदिमित्तं, अवराजिदं गोवर्द्धणं णिच्चं।
भद्रबाहुं पंचसुद - केवली सुदसारं लहिदुं॥12॥
13. सच्चमहव्वदं सया, णिद्दोसं पालेदुं तिसुद्धीइ।
लहिदुं केवलणाणं, णमंसामि तिव्वभत्तीए॥13॥ (जुम्मं)
14. अणंतवीरादो सिरिधर-केवलि-जिणंतं सया सव्वा॥
थुवेमि गुणं पाविदुं, हरिदुं सगचित्तकालुस्सं॥14॥
15. पुज्ज-पण-परमेट्टीण, जिणबिंबाण किट्टिमाकिट्टिमाण।
जिणचेइयालयाणं, णमो णमो सया भत्तीए॥15॥
16. आगम-वयणाणि सुणिय, सुमरिदूणं विअसेदि मम चित्तं।
सेवित्तु णाणामियं, णंददि णिहिपत्तणिद्धणोव्व॥16॥
17. णाण-पयासं देदुं, अण्णाण-तिमिर-विणासिदुं सक्कं।
जिणवयणं बेदहंग-संजुद-भारदिं णमंसामि॥17॥
18. सिआवाय-लंछण-जुद-सिरिजिणधम्मं पणमामि भत्तीइ।
जीवाणमभयप्पदं, पाविदं मए जस्स सरणं॥18॥

श्री विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु इन पाँच श्रुतकेवलियों को श्रुतसार की प्राप्ति, त्रिशुद्धिपूर्वक सत्य महाव्रत के निर्दोष पालन एवं केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए तीव्र भक्ति से विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥12-13॥ श्री अनंतवीर्य प्रभु से श्री श्रीधर केवली तक सभी जिनों की अपने चित्त की कलुषता के नाश एवं गुणों की प्राप्ति के लिए सदा स्तुति करता हूँ॥14॥ पूज्य पंचपरमेष्ठियों को, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिंबों को एवं जिन-चैत्यालयों को भक्तिपूर्वक सदा नमस्कार हो-नमस्कार हो॥15॥ आगम के वचनों को सुनकर, स्मरण कर मेरा चित्त विकसित होता है। ज्ञानामृत का सेवन कर भव्य जीव ऐसे आनंदित होता है जैसे रंक को कोई निधि ही प्राप्त हो गई हो॥16॥ ज्ञान का प्रकाश करने व अज्ञान तिमिर का नाश करने में समर्थ जिनवचन वा द्वादशांग युक्त भारती (सरस्वती) को मैं नमस्कार करता हूँ॥17॥ स्याद्वाद चिह्न से युक्त एवं संसार के समस्त जीवों को अभय प्रदान करने वाले उस श्री जिनधर्म को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ जिसकी शरण मैंने प्राप्त की॥18॥

19. सूरिं संतिसायरं, जिणधम्मपवट्टुगं चरियचक्किं।
तित्थयरोव्व पणवीस-सय-वीर-मोक्खद्धे थुवेमि॥19॥
20. पणमामि तस्स सिस्सं, महातवस्सि-पायसायर-सूरिं।
तस्स पहाणसिस्सं दु, इंदिय-विजेदुं तिजोगेण॥20॥
21. भारदे जस-पसारग-मज्झप्पजोगिं मण्णोण्ण-संतं।
घोर-दुद्धर-तवजुदं, जयकित्तिं सूरिं पणमामि॥21॥ (जुम्मं)
22. संघे आयंस-संत-मच्चंत-भत्तीए दु णमंसामि।
भारद-गौरवं वरं, पहाणं णिग्गंथ-साहूसु॥22॥
23. दियंबरेसु रयणं व, देसस्स भूसणं व आइरियं दु।
संघ - वरसंवाहगं, मण्णं सासणेण पसिद्धं ॥23॥
24. जिणसासणुण्णदिकरं, जिणसिद्धखेत्तुद्धारगं णिच्चं।
सिरि-देसभूसणं हं, वंदेमि भत्ति-अणुरायेण॥24॥ (तिअं)
25. रट्टु-संतं सिद्धंत-चक्किं मे पच्चक्खुवयारगं चा।
जेट्टु - सेट्टु - मायंसं, धम्माणुसासग - माइरियं॥25॥
26. जिणसासण-पहावगं, सण्णाण-पणोल्लयं अइ-विसिट्ठं।
विदूहि लद्ध-उक्किट्टु-पूया-भत्तिं माणणीयं॥26॥

पच्चीस सौ (2500) वीर निर्वाण संवत् में तीर्थंकर के समान जिनधर्म का प्रवर्तन करने वाले चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज की स्तुति करता हूँ॥19॥ पुनः उनके शिष्य महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज को नमस्कार करता हूँ। पश्चात् उनके प्रधान शिष्य भारत में यश का प्रसार करने वाले, अध्यात्म योगी, मनोज्ञ संत, घोर दुद्धर तप से युक्त आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज को अपनी इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए त्रियोग से नमस्कार करता हूँ॥20-21॥ संघ में आदर्श संत, सर्व निर्ग्रन्थ साधुओं में उत्कृष्ट व प्रधान, भारत गौरव, दिगंबरों में रत्न के समान, संघ के श्रेष्ठ संवाहक, शासन के द्वारा मान्य, प्रसिद्ध, देश के आभूषण स्वरूप, जिन शासन की उन्नति करने वाले, जिन तीर्थ व सिद्ध क्षेत्रों के उद्धारक आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को भक्ति के अनुराग से वंदन करता हूँ॥22-24॥ मेरे प्रत्यक्ष उपकारक राष्ट्र संत, सिद्धांत चक्रवर्ती, आदर्श, धर्मानुशासक, ज्येष्ठ व श्रेष्ठ आचार्य,

27. देसस्स वर-णेदूण, मग्ग-पदंसगं सव्व-हिद-कंखि।
सिदपिच्छि-धारगं हं, जंगम-विस्सविज्जालयं च॥27॥
28. पिदरं व संरक्खगं, सण्णाणाइ-बहु-गुणपदायगं च।
गुरुवर-विज्जाणंदं, तिसंझासु णमामि भत्तीइ॥28॥(चउक्कं)
29. वदं असुह-संवरस्स, अइसय-पुण्ण-णिब्बंधणं णेयं।
अहपइडी संकमंति, णिच्चं तेण पुण्णपइडीसु॥29॥
30. अविवागि-णिज्जराए, कारणं परंपरेणं मोक्खस्स।
तेसुं जेहिं रोहिणि-वद-फलं पाउणिदं ताणं॥30॥
31. असोग-रोहिणीणं च, पुण्णचरित्तं सव्वकल्लाणाय।
भणामि सुद्धभावेहि, वद-महिमा-पदंसणत्थं च॥31॥(जुम्मं)
32. जह वि णो समत्थो हं, वण्णिदुं असोग-रोहिणी-चरियं।
वंछामि कहिदुं तह वि, पुज्ज-गुरुण किवादिट्ठीइ॥32॥
33. जह अक्क-णिमित्तेणं, भासेदि मोत्तिअं व णीरबिंदू।
वइरोव्व कच्चखंडं, चरियं सोहदि गुरु-किवाए॥33॥

जिनशासन प्रभावक, सम्यग्ज्ञान के संप्रेरक, अति विशिष्ट विद्वानों के द्वारा उत्कृष्ट पूजा व भक्ति को प्राप्त, माननीय, देश के उत्कृष्ट नेताओं के मार्गप्रदर्शक, सर्व हिताकांक्षी, श्वेतपिच्छी के धारक, चलते-फिरते विश्वविद्यालय, माता-पिता के समान मेरे संरक्षक, सम्यग्ज्ञानादि बहुत गुणों को प्रदान करने वाले आचार्य गुरुवर श्री विद्यानंद जी मुनिराज को तीनों संध्याकालों में भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥25-28॥ व्रत अशुभ के संवर व अतिशय पुण्य का कारण जानना चाहिए। व्रत के प्रभाव से पाप प्रकृतियाँ भी नित्य पुण्य प्रकृतियों में संक्रमित हो जाती हैं॥29॥ व्रत अविपाकी निर्जरा एवं परंपरा से मोक्ष का कारण हैं। उनमें जिन्होंने रोहिणीव्रत के फल को प्राप्त किया उन अशोक-रोहिणी के पुण्य-चरित्र को सर्वकल्याण व व्रत की महिमा दिखलाने के लिए शुद्ध भावों से कहता हूँ॥30-31॥ यद्यपि अशोक -रोहिणी चरित्र को कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ तथापि पूज्य गुरुओं की कृपादृष्टि से मैं यह चरित्र कहने की इच्छा करता हूँ॥32॥ जैसे सूर्य के निमित्त से जल की बूंद मोती के समान प्रतिभासित होती है अथवा काँच का खंड हीरे के समान प्रतिभासित होता है उसी प्रकार यह चरित्र गुरु कृपा से शोभा को प्राप्त होता है॥33॥

34. जिणचरणंबुज - फासिद - जलं अच्चंत - अदिसय - संजुत्तं।
हरदि गंधोदगं तं, रोयं सोगं भयं भवीण॥34॥
35. तह हवंतो असक्को, पुज्जणीय-आइरिय-पसादेणं।
महाचरियं लिहेदुं, पयासरदो चित्त-सुद्धीइ॥35॥ (जुम्मं)
36. जह घण-पज्जणं चिय, अवयज्झिदूणं च रवदे मोरो।
असक्क - मिगी मिगिंदं, अब्भेदि णियसिसु - रक्खट्टं॥36॥
37. जह कुहिलो कुहुं कुहुं, कुणदे अंब-मंजरिं पस्सित्ता।
तह परहिदभावणाइ, सगरोयणिवारणट्टं तह॥37॥
38. मम चित्तविसुद्धीए, रहिदो खादि-आइ-लाह-भावादु।
सिस्साण णिवेदणेण, पवट्टो हं धम्मरायेण॥38॥ (तिअं)
39. मज्झलोए सुहणामधेयासंखेज्ज - दीवसमुद्दा या
तम्मि णाहीव पढमो, जंबुदीवो जंबुरुक्खादु॥39॥
40. छ-कुलायलेहिं हिमवण-महाहिमवण-णिसह-णील-रुम्मीहि।
सिहरिणा य विभाजिदो, इदं दीवो सत्तखेत्तेसु॥40॥

जिस प्रकार जिनेन्द्रप्रभु के चरण कमलों से संस्पर्शित जल अत्यंत अतिशयकारी होता है, वह गंधोदक भव्यों के रोग-शोक व भय को नष्ट करता है। उसी प्रकार अशक्य होते हुए भी मैं पूजनीय आचार्यों के प्रसाद से चित्त की विशुद्धिपूर्वक महाचरित्र लिखने में प्रयासरत हुआ हूँ॥34-35॥ जिस प्रकार घने बादलों को देखकर मोर आवाज करता है अथवा अपने शिशु की रक्षा के लिए हरिणी असमर्थ होते हुए भी शेर से भिड़ जाती है अथवा जैसे आम्र बौर को देखकर कोयल कुहु-कुहु करती है उसी प्रकार परहित की भावना से, अपने रोग के निवारण के लिए, ख्याति आदि लाभ के भावों से रहित होकर, शिष्यों के निवेदन से, धर्मानुराग से मैं चित्त की विशुद्धिपूर्वक चरित्र लिखने में प्रवृत्त हुआ हूँ॥36-38॥ मध्यलोक में शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। वहाँ मध्य में नाभि के समान प्रथम द्वीप है। उस द्वीप में जंबूवृक्ष होने से वह जंबूद्वीप नाम से प्रसिद्ध है॥39॥ यह द्वीप छः कुलाचलों के माध्यम से सात क्षेत्रों में विभाजित है। छः कुलाचलों के नाम क्रमशः हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि व शिखरिन् हैं॥40॥

41. तह भरद - हेमवद - हरि - विदेह - रम्मग - हेरण्ण - खेत्ताणि।
एरावदखेत्तं चिअ, केवलणाणि-कहिदागमेण॥41॥
42. दक्खिणो भरदखेत्तं, उत्तरे एरावद-खेत्तं जाण।
मज्झे विदेह-खेत्तं, सस्सदा सुहा कम्मभूमी॥42॥
43. विदेहस्स चिय मज्झे, विज्जंत-पढम-सुदंसणमेरुम्पि।
भद्दसाल-णंदण-सोमणस-पंडुग-अरणाइं च॥43॥
44. तत्थ सोडस-अकिट्टिम-चेइयालयाणि तेसु पत्तेयं।
अट्ट-पाडिहेर-जुत्त-अट्टोत्तर-सय-जिणबिंबाणि॥44॥
45. ताणि चेइयालयाणि, जिणबिंबाणि सव्वाणि भत्तीए।
परियंदामि सव्वदा, सस्सद-सुद्धप्पलब्धीए॥45॥
46. पुव्व-पच्छिमा भागा, सुमेरूदु होज्ज विदेहखेत्तस्स।
सीतासीतोदाहिं, अध ताणं वि बे-बे-भागा॥46॥
47. चदुवक्खारगिरीदो, तियविभंगणदीए अट्टखंडा।
पत्तेयं भागस्स दु, होज्जा इत्थं जिणुद्धिदं॥47॥

तथा उनके द्वारा विभाजित सात क्षेत्र क्रम से इस प्रकार हैं—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत् व ऐरावत। ऐसा केवलज्ञानी सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित आगम में कहा गया है॥41॥ जम्बूद्वीप के दक्षिण में भरत क्षेत्र, उत्तर में ऐरावत क्षेत्र व मध्य में विदेह क्षेत्र जानना चाहिए। यह विदेह क्षेत्र शुभ शाश्वत कर्मभूमि है॥42॥ विदेह क्षेत्र के ठीक मध्य में प्रथम सुदर्शन मेरु विद्यमान है। वहाँ पर भद्रसाल, नंदन, सौमनस व पांडुक वन हैं॥43॥ वहाँ चार वनों में सोलह अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। उन प्रत्येक में अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त एक सौ आठ जिनबिम्ब विराजमान हैं॥44॥ उन सभी जिनबिंबों व जिन चैत्यालयों को शाश्वत शुद्धात्म उपलब्धि के लिए नित्य भक्तिपूर्वक मैं नमस्कार करता हूँ॥45॥ सुमेरु पर्वत से विदेह क्षेत्र के पूर्व विदेह व पश्चिम विदेह भाग होते हैं। सीता व सीतोदा नदी से उनके पुनः दो-दो भाग होते हैं॥46॥ पुनः उन चार भागों में से प्रत्येक में चार वक्षारगिरी व तीन विभंगनदी के माध्यम से आठ खंड होते हैं॥47॥

48. बत्तीस-उवविदेहा, विण्णेया सस्सद-कम्ममहीए।
पढम-जंबूदीव-ठिद-विदेहखेत्तम्मि सुरम्मा दु॥48॥
49. खेत्तवेक्खाइ भरदो, णउदि-समहिद-सय-हिदेगो भागो।
कालावेक्खाइ दसम-भागो तह कम्मभूमीए॥49॥
50. हेमवद-हेरणवद-सस्सदा तह जहण्णभोयभूमी।
हरी य रम्मग-खेत्तं, सस्सदा मज्झमभोयमही॥50॥
51. विदेहमज्झे उत्तर-दक्खिणोसुं उत्तमभोयभूमी।
उत्तर-देव-कुरु तह, सस्सदा सुहणामा णेया॥51॥
52. मेरुस्स चउविदिसासु, जिणालयसंजुदा चउगयदंता।
तेसुं जिणबिंबाइं, बत्तीस-समहिद-चउसयाणि॥52॥
53. ईसाणे मल्लवाण-गिरी तह सउमणसो अग्गेयम्मि।
णेरइए वायव्वे, विज्जुदपहो गंधमायणो॥53॥
54. भरदस्स छक्खंडा हु, तह गंगा-सिंधु-रयदायलादो।
तेसुं पंच मिलिच्छा, अज्जजुदो इग-अज्जखंडो॥54॥

इस प्रथम जंबूद्वीप में विदेह क्षेत्र नामक शाश्वत कर्मभूमि है। उसमें मनोहर बत्तीस उपविदेह जानने चाहिए॥48॥ क्षेत्र की अपेक्षा से भरत क्षेत्र जंबूद्वीप का 1/190वाँ भाग है और काल की अपेक्षा से यह कर्मभूमि का दसवाँ भाग है॥49॥ यहाँ हैमवत व हैरण्यवत शाश्वत जघन्य भोगभूमि हैं एवं हरि व रम्यक् क्षेत्र शाश्वत मध्यम भोगभूमि हैं॥50॥ विदेह क्षेत्र के मध्य में उत्तर दिशा में उत्तरकुरु व दक्षिण दिशा में देवकुरु इस प्रकार शुभ नाम वाली शाश्वत उत्तम भोगभूमि हैं॥51॥ सुमेरु पर्वत के चारों विदिशाओं में जिनालय से युक्त चार गजदंत हैं। उन सभी जिनालयों में चार सौ बत्तीस (432) जिनबिंब हैं। अर्थात् प्रत्येक गजदंत पर स्थित सिद्धकूट पर एक-एक जिनालय है, प्रत्येक जिनालय में 108 जिनबिंब हैं। इस प्रकार चार गजदंत के चार जिनालय व कुल जिनबिंब $108 \times 4 = 432$ हैं॥52॥ ईशान कोण में माल्यवान् गजदंत, आग्नेय कोण में सौमनस गजदंत, नैऋत्य दिशा में विद्युत्प्रभ गजदंत एवं वायव्य कोण में गंधमादन गजदंत है॥53॥ गंगा नदी, सिंधु नदी व रजताचल अर्थात् विजयाद्ध पर्वत के माध्यम से भरत क्षेत्र के छः खंड होते हैं। उन छः खंडों में पाँच म्लेच्छखंड व आर्यजनों से युक्त एक आर्यखंड है॥54॥

55. धादगि-पुक्करद्धेसु, रयणा बेगुणी जंबुदीवादो।
अङ्गाइज्जदीवेसु, कम्ममही भोयभूमीओ॥55॥
56. तीसूण-बेसय-अज्जखंडा जम्मंति जत्थ महपुरिसा।
तित्थयर-अद्धचक्की, चक्की हलि-कामदेवादी॥56॥
57. पण्णासाहिय-सयूण-सहस्सं दु मिलिच्छखंडा णेया।
अङ्गाइज्जदीवेसु, तत्थुप्पण्णा ण लहदि सिवं॥57॥
58. भरदस्स अज्जखंडे, अंग - बंग - कलिंग - विदर्भ - चेदी।
कुरुजंगल-पोयणपुर-कंपिल्ल-वच्छ-कण्णाकुमारी य॥58॥
59. इंदपत्थ - कण्णाडय - सागेद-केरल-मगध-मालवा या
कासी-वराड-अवंति-कउसल-सोरट्टाइ-देसा॥59॥ (जुम्मं)
60. महापुण्णवंतेहिं, भव्वेहि तदा समाकिण्ण-मगधो।
मणोहर-णयरी तस्स, रायहाणी रायग्गही दु॥60॥
61. सा सुहग-रायहाणी, णिम्मिदा वत्थुसत्थाणुसारेण।
पुण्णोदयेण भवीहि, लहिदं सया सग्गोव्व सुहं॥61॥

द्वितीय धातकीखंड व तृतीय पुष्करार्द्ध द्वीप में रचना जंबूद्वीप से दुगुनी-दुगुनी है अर्थात् धातकीखंड व पुष्करार्द्ध द्वीप में कुलाचल व क्षेत्र जंबूद्वीप से दूने-दूने हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप में पंद्रह कर्मभूमि व तीस भोगभूमियाँ हैं॥55॥ ढाई द्वीप में (170) एक सौ सत्तर आर्यखंड होते हैं। जहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्द्धचक्रवर्ती, बलभद्र, कामदेव आदि महापुरुष जन्म लेते हैं॥56॥ ढाई द्वीप में (850) आठ सौ पचास म्लेच्छ खंड जानने चाहिए वहाँ उत्पन्न जीव कदापि मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते॥57॥ भरत क्षेत्र के आर्यखंड में अंग, बंग, कलिंग, विदर्भ, चेदि, कुरुजांगल, पोदनपुर, कांपिल्य, वत्स, कन्याकुमारी, इन्द्रप्रस्थ, कर्नाटक, साकेत, केरल, मगध, मालवा, काशी, वराट, अवंती, कौशल व सौराष्ट्र आदि शुभ नाम वाले देश थे॥58-59॥ तब वहाँ महापुण्यवान् भव्य जीवों से समाकीर्ण मगध नामक देश था। उसकी मनोहर राजधानी राजगृही नगरी थी॥60॥ वह सुभगा राजधानी वास्तु शास्त्र के अनुसार निर्मित थी। भव्य जीव सदैव वहाँ निज पुण्योदय से स्वर्ग के समान सुख को प्राप्त करते थे॥61॥

62. देवपूया - दया - जव - तव - दाण - तित्थजत्ता - सीलेसुं।
तहा संजमाइ-पुण्ण-कज्जेसुं संजुदा सव्वा॥62॥
63. आसण्णभव्वजीवा, आसण्णभव्व-संगदिं हि लहेज्ज।
जह रसाल-उववणम्मि, रसाल-रुक्खा ण करीराण॥63॥
64. इक्खुवाडम्मि इक्खू, हि होज्जा णेव गारिएल-रुक्खा।
सोहंति सीहमज्झे, सीहो हंसो हंसमज्झे॥64॥ (जुम्मं)
65. सीलवदाइं भव्वा, पालेज्ज पव्वदिणेसु सत्तीए।
अण्णविसेसपुण्णं पि, उववासादिं करेज्ज सया॥65॥
66. होंति पुण्णवंताणं, सुपुण्णकारणं पव्वदिवसाइं।
सव्वदा सज्जणाणं, णिगगंथ-संगदीव णियमा॥66॥
67. सुसक्किदी सव्वदा य, कुलमज्जादा सया पालिदव्वा।
णायणीदी य सगकुल-मज्जादा हु अलंघणीया॥67॥
68. जलासयस्स सोहा य, मिट्ठ-सच्छ-णीरेण जह हवेज्जा।
सच्छसलिलस्स हु तदा, उत्तम-रम्म-जलासयेणं॥68॥
69. जह कुलीण-सक्कारिद-रायकुडुंबादो दु पासादस्स।
रायादीणं सोहा, सेट्ठरायपासादेहिं च॥69॥

वहाँ सभी जीव देवपूजा, दया, जप, तप, दान, तीर्थयात्रा, शील तथा संयम आदि पुण्य कार्यों में रत रहते थे॥62॥ उचित है आसन्न-भव्य जीव, आसन्न-भव्य जीवों की संगति प्राप्त करते हैं जैसे आम के बगीचे में आम के वृक्ष ही होते हैं, बबूल के नहीं। जैसे गन्ने के खेत में गन्ने ही होते हैं, नारियल के पेड़ नहीं होते अथवा सिंहों के मध्य सिंह एवं हंसों के बीच हंस ही शोभायमान होते हैं॥63-64॥ वहाँ भव्यजीव पर्व के दिनों में शक्तिपूर्वक शील व्रतादि का पालन करते थे एवं सदा उपवास आदि अन्य विशेष पुण्य भी करते थे॥65॥ पुण्यवानों के लिए पर्व के दिन वैसे ही समीचीन पुण्य का कारण होते हैं जैसे सज्जनों के लिए निर्ग्रन्थों की संगति नियम से सदा पुण्य का कारण होती है॥66॥ सज्जनों के द्वारा सुसंस्कृति, सभ्यता एवं कुल की मर्यादा सदा ही पाली जानी चाहिए। न्याय, नीति व निज कुल की मर्यादा अलंघ्य अर्थात् उल्लंघन के योग्य नहीं होती॥67॥

70. णदि-भूसणं च णीरं, इक्खुदंडाणं महुरिमा णिच्चं।
सुगंधो पुष्पाणं दु, रयणाणि सायरभूसणं च॥70॥
71. विज्जत्थीणं विज्जा, भूसणं संजमो णिग्गंथाणं।
दाणं पूया करुणा, सेट्ट-भूसणं सुगिहत्थाण॥71॥
72. देसभत्ती सूरस्स, रायस्स भूसणं तहा सच्चं दु।
णारीणं सीलं सय, रयणत्तयं चिय जोगीणं॥72॥
73. सीहस्स परक्कमो य, भदत्तं भूसणं च बलिहस्स।
गयस्स साहिमाणं च, बालभूसणं चंचुरत्तं॥73॥
74. सेट्टदेसस्स सोहा, सेट्ट-णयर-जणादीदो तह होदि।
णागरिआणं सोहा, सुपइडि-संजुत्त-देसेणं॥74॥ (सत्तगं)
75. विक्कमो णायसीलो, पयावच्छलो अणेग-गुण-सहिदो।
सुंदरो बुद्धिणिउणो, सेणिगो बिंबसारो णिवो॥75॥
76. तस्स धम्म-सुपोसिगा, सुहयरा भोयपदा अद्धंगिणी।
कासि-राय-चेडगस्स, चेलणा सुभद्दाइ पुत्ती॥76॥

जिस प्रकार जलाशय की शोभा मिष्ट स्वच्छ जल से होती है एवं स्वच्छ जल उत्तम मनोहर जलाशय में सुशोभित होता है। जैसे कुलीन, संस्कारित राजपरिवार से महल की शोभा होती है एवं श्रेष्ठ राजप्रासादों से राजा आदि की शोभा होती है। जैसे नदी का आभूषण जल है, गन्नों का आभूषण मधुरता है, पुष्पों का आभूषण सुगंध, सागर का आभूषण रत्न है, विद्यार्थियों का आभूषण विद्या, निर्ग्रंथों का आभूषण संयम एवं समीचीन गृहस्थों का आभूषण दान, पूजा व करुणा-दया है। जैसे शूरवीर का आभूषण देशभक्ति, राजा का आभूषण सत्य, नारियों का आभूषण शील एवं योगियों का आभूषण रत्नत्रय है। जैसे सिंह का आभूषण पराक्रम, वृषभ का आभूषण भद्रता, गज का आभूषण स्वाभिमान एवं बच्चों का आभूषण चंचलता होती है वैसे ही श्रेष्ठ देश की शोभा श्रेष्ठ नगरों, नागरिकों आदि (धर्म, संस्कृति, सभ्यता, कला) से होती है एवं नागरिकों की शोभा अच्छी प्रकृति से संयुक्त देश से होती है॥68-74॥ राजा श्रेणिक, जिसका एक नाम बिंबसार भी है विक्रमी, न्यायशील, प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाला, सुंदर, बुद्धि में निपुण व अनेक गुणों से सहित था॥75॥ उसकी भोग प्रदान करने वाली, धर्म की सम्यक् पोषिका, सुख देने वाली अर्द्धांगिनी काशी देश के राजा चेटक व रानी सुभद्रा की पुत्री चेलना थी॥76॥

77. सुहदा कामधेणू व्व, सा राणी चेलणा दु भूवदिस्सा।
ताए सुहसक्कारं, पयाए अवि चिंतामणीव॥77॥
78. जह सेट्ट-विज्जधराण, होदि लक्ख-साहिगा सया विज्जा।
तह रायस्स पुण्णेण, कप्पहुमोव्व पुण्णसीला॥78॥
79. ववसायीणं मित्तं, धणं रायाणं च णाय-पियत्तं।
सिसूण मादू पदिणो, गिहे सयायारिणी इत्थी॥79॥
80. जिणभत्ता धम्मभाव-जुत्ता परमसुंदरी सद्धिटी॥
उदत्ता णिग्गंथ-गुरु-पय-सेविगा विणयसीला य॥80॥
81. भिच्चाण विणयधम्मो, विज्जत्थीणं महागुणो विणओ।
सहावो पदिवदाणं, जोगीणं च मोक्खकुंजीव॥81॥
82. पया-वच्छला सगपइ-चित्तहारिणी जिणागमणुरत्ता।
जिणिंदच्चगा सुपुण्ण-वड्डगा वदाइ-सुकज्जेहि॥82॥

वह चेलना रानी राजा के लिए कामधेनु के समान सुख प्रदान करने वाली थी एवं उसके सुसंस्कार प्रजा के लिए भी चिंतामणि रत्न के समान सुखप्रद थे॥77॥ जैसे विद्या श्रेष्ठ विद्याधरों के लक्ष्य को साधने वाली होती है उसी प्रकार राजा के पुण्य से वह रानी चेलना राजा के लिए कल्पवृक्ष के समान इच्छित भोगों को प्रदान करने वाली एवं पुण्यशीला थी॥78॥ उचित ही तो है व्यवसायियों-व्यापारियों के लिए धन मित्र है, राजाओं के लिए न्याय-प्रियता मित्र है, बच्चों के लिए माता मित्र है एवं पति के लिए घर में सदाचारिणी स्त्री मित्र है॥79॥ महारानी चेलना परम सौंदर्य से युक्त, जिनभक्ता, धर्म भाव से युक्त, सम्यग्दृष्टि, उदार, निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरणों की सेविका एवं विनयशील थी॥80॥ उचित ही कहा है कि सेवकों के लिए विनय धर्म है, विद्यार्थियों के लिए विनय महागुण है, पतिव्रता स्त्रियों का विनम्रता स्वभाव है एवं यह विनम्रता ही योगियों के लिए मोक्ष की कुंजी के समान है॥81॥ प्रजावत्सला महारानी चेलना, अपने पति के चित्त का हरण करने वाली, जिनागम में अनुरक्त, जिनेंद्रप्रभु की अर्चा करने वाली एवं व्रत आदि श्रेष्ठ समीचीन कार्यों द्वारा अपने पुण्य का वर्धन करने वाली थी॥82॥

83. एयदिवसे सेणिगो, सीहासणारूढो रज्जसहाइ॥
सहसत्ति वणपालेण, णिवेदिदं दु आहम्मिन्ता॥83॥
84. विणयेण अहो राओ! तव पुण्णेण खेम-कुसला रज्जे।
परम-पुण्णोदयादो, विहरंति णिग्गंथा देसे॥84॥ (जुम्मं)
85. छरिदूण फल-फूलाणि, बोल्लिदं समप्पंत-वणपालेण।
विउलाचल-पव्वयम्मि, तित्थयर-सिरि-महावीरस्स॥85॥
86. समवसरणो आवीअ, बारससहासज्जिदो सुरादीण।
चेइयप्पासादाइ-अट्ट-भूमीहि जुदो गगणे॥86॥ (जुम्मं)



एक दिन महाराज श्रेणिक राज्यसभा में सिंहासन पर बैठे हुए थे तभी अचानक वनपाल सभा में आया एवं उसने विनम्रता पूर्वक राजा से निवेदन किया कि हे राजन्! आपके पुण्य से राज्य में सब क्षेमकुशल है। आपके परम पुण्य के उदय से इस देश में निर्ग्रन्थ श्रमण विचरण करते हैं॥83-84॥ पुनः षड्रुतुओं के फल-फूल राजा के समक्ष अर्पित करते हुए वनपाल ने कहा कि हे स्वामी! विपुलाचल पर्वत पर तीर्थकर श्री भगवान् महावीर स्वामी का समवसरण आया है जो आकाश में बारह सभाओं से सज्जित एवं चैत्यप्रासाद आदि आठ भूमियों से युक्त है॥85-86॥

87. सुणिच्चा समाचारं राओ होज्ज परमाणंदजुत्तो।
दाएज्ज वणपालस्स, सुरयणजडिदकंठाहारं॥87॥
88. सगासणादो उट्टिय, ताइ गच्छिय सत्तपदं दिसाए।
अट्टंग-णमणं परम-सद्धाइ करीअ विसुद्धीइ॥88॥
89. होज्ज णिवकंखपुण्णं, भवोवहीए तारिदुं समत्थं।
पुण्णफलेण अरिहाइ-पण-परमेट्टि-संगदिं लहदि॥89॥
90. धम्मणिमित्तं अणिट्ट-विजोगो इट्टजोगो पुण्णेणं।
संजमविट्ठी तेण वि, विणा सिवपहंसो असक्को॥90॥
91. पुण्णफलेणं केवलि-पदं सण्णाणं तहा सच्चरियं।
जिणसासणपहावणा, अचिंत-इट्ठीओ पुण्णेण॥91॥
92. गुणगाहगभावो तह, दोसादु परमविरत्ती पुण्णेण।
सव्वजीवेसु मेत्ती, दुहिजणेसुं करुणाभावो॥92॥
93. पुण्णफलेणं देसे, अहिंसा वड्ढदि सच्चवायि-जणा।
संतुट्टा गंभीरा, परोप्परे धम्मरायजुदा॥93॥

इस समाचार को सुनकर राजा श्रेणिक परम आनंदित हुआ एवं अपने कंठ में पहना हुआ रत्नहार वनपाल को भेंट स्वरूप प्रदान किया॥87॥ तथा अपने सिंहासन से खड़े होकर जहाँ भगवान् विराजमान थे उसी दिशा में सात कदम आगे जाकर परमश्रद्धा व विशुद्धि से श्री तीर्थकर प्रभु को साष्टांग नमस्कार किया॥88॥ पुण्य के फलस्वरूप ही जीव श्री अरिहंत आदि पाँच परमेष्ठियों की संगति प्राप्त करता है एवं वह निःकांक्ष अर्थात् आकांक्षा से रहित पुण्य संसार सागर से तारने में समर्थ होता है॥89॥ पुण्य से धर्म के निमित्त प्राप्त होते हैं, अनिष्ट का वियोग व इष्ट का संयोग होता है, पुण्य से ही संयम की वृद्धि होती है, उसके बिना मोक्ष पथ का अंश भी अशक्य है॥90॥ पुण्य के फलस्वरूप सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र प्राप्त होता है। यहाँ तक कि केवली पद भी पुण्य से प्राप्त होता है, जिनशासन की प्रभावना व अचिंत्य ऋद्धियाँ भी पुण्य से प्राप्त होती हैं॥91॥ पुण्य से गुण ग्रहण करने का भाव होता है, दोषों से परम विरक्ति होती है, पुण्य से ही सभी जीवों में मैत्री भाव व दुःखीजनों में करुणा भाव होता है॥92॥ पुण्य के फलस्वरूप देश में अहिंसा वृद्धिगत होती है तथा नागरिक सत्यवादी, संतुष्ट, गंभीर, परस्पर में धर्मानुराग से युक्त होते हैं॥93॥

94. पुण्यदयादो जीवो, सक्कदि सहजेण पालिदुं सीलां
हिंसं मुसं चोरिअं उज्झिदुं परिग्गहमबंभं॥94॥
95. पुण्येण लहदि जीवो, जहत्थणाणं भव-देह-भोयाणा
तादो विरज्जित्तु भव-वड्ढगकज्जेसु रज्जदि णो॥95॥
96. जिणपूयं गुरुसेवं, सज्झायं जव-तवं तित्थजत्तं
कुव्वंते पुण्यप्पा, दोसवादे अव्वाहारा॥96॥
97. पुण्येण सुपत्तदाण - साहुसेवा - वद - वेज्जावच्चेसु
महापुरिसाणं च गुणकहा-सुणणम्मि रुई पीदी॥97॥
98. पुण्येण जिणदंसणं, भावो चिय थुदिभत्ति-वंदणाणं
जिणणाम-सिमरणं अवि, णेव संभवो विणा पुण्यं॥98॥
99. अणेगचरमदेहीण, दंसणं सेणिग-पुण्येण जदीणा
सुपुण्यपेरिगा सदी, अब्द्धंगिणी चेलणा तस्स॥99॥
100. बोद्धणुयायि-संघसिरि-णिमित्तेण तेण कडुअ उवसग्गं
णिरयाउं बंधिदं च, णवरि तित्थणामं वीरस्स॥100॥

पुण्योदय से जीव सहज ही शील पालन करने में समर्थ होता है एवं पुण्य से ही हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह व अब्रह्म त्याग करने में समर्थ होता है॥94॥ पुण्य से जीव को संसार, शरीर व भोगों का यथार्थ ज्ञान होता है। वह उनसे विरक्त होकर संसार को बढ़ाने वाले कार्यों में रंजायमान नहीं होता॥95॥ पुण्यात्मा जीव श्री जिनेंद्रदेव की पूजा, निर्ग्रथ गुरुओं की सेवा, स्वाध्याय, जप, तप तथा तीर्थयात्रा करते हैं। वे दोषों के कहने में सदैव मौन रहते हैं॥96॥ पुण्य से ही जीव की सुपात्र-दान, साधुसेवा, व्रत, वैयावृत्ति तथा महापुरुषों की गुणकथा सुनने में रुचि व प्रीति होती है॥97॥ पुण्य से ही जिनेंद्र प्रभु के दर्शन होते हैं, उनकी स्तुति, भक्ति व वंदना के भाव होते हैं। पुण्य के बिना जिनेंद्र भगवान् के नाम का स्मरण भी संभव नहीं है॥98॥ राजा श्रेणिक के पुण्य से उसको अनेक यतियों व चरमशरीरियों के दर्शन प्राप्त हुए। उसको सुपुण्य की प्रेरणा देने वाली उसकी अब्द्धांगिनी सती चेलना थी॥99॥ उस राजा श्रेणिक ने बौद्धानुयायी संघश्री के निमित्त से श्री मुनिराज पर उपसर्ग करके नरकायु का बंध किया जबकि भगवान् महावीर स्वामी के निमित्त से तीर्थकर नामकर्म का बंध किया॥100॥

101. सम्मपुरिसद्वं विणा, सुणिमित्तं णेव कया वि फलदं हु।
णेव ओग्गहिज्जदि जदि, असुहणिमित्तं हु तो दुहदं॥101॥
102. पुण्णेणं आरोग्गं, पहावी वयणं जीवण-चरियं चा।
तिव्वपुण्णोदयेणं, पावो वि संकमदे पुण्णे॥102॥
103. सत्तू होज्ज मित्ताणि, अणिट्टकारगा अवि इट्टरूवा।
सावरूवकम्मं चिय, वररूवं तिव्वपुण्णेणं॥103॥
104. इट्ट - विज्जा - सत्ति - गुण - खमा - संति - दया - संपत्तीओ य।
वद-गहणं सक्कारो, पुण्णं विणा संभवो णेव॥104॥
105. णेव कस्स मणुस्सस्स, सुहकारणं दु इट्टसमायारो।
पहु - आगमण - सूयणा, सद्वदीदाणंद - वड्डगा॥105॥



सम्यक् पुरुषार्थ के बिना समीचीन निमित्त कभी भी फलप्रद नहीं होते। यदि अशुभ निमित्त ग्रहण नहीं किया जाता तो अशुभ निमित्त दुःखप्रद नहीं होता॥101॥ पुण्य से आरोग्य, प्रभावी वचन व प्रभावी जीवन चरित्र होता है। तीव्र पुण्योदय से पाप भी पुण्य में संक्रमित हो जाता है॥102॥ तीव्र पुण्य से शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, अनिष्टकारक भी इष्ट रूप हो जाते हैं तथा अभिशाप रूप कर्म भी वरदान रूप हो जाते हैं॥103॥ इष्ट विद्या, शक्ति, गुण, क्षमा, शांति, दया, संपत्ति और व्रत को ग्रहण करना व सुसंस्कार ये सब पुण्य के बिना संभव ही नहीं हैं॥104॥ श्री जिनेंद्र प्रभु के आगमन की सूचना राजा के लिए शब्दातीत आनंद का वर्द्धन करने वाली थी। उचित ही तो है इष्ट समाचार किस मनुष्य के लिए सुख का कारण नहीं होता अर्थात् सबके लिए होता है॥105॥

106. महापुरिसो सय सव्वहिदाय विचारंति णयरम्मि।
तं सव्वजणहिदत्थं, उग्घोसिदं णिवसेणिगेण॥106॥
107. सुवे पहादम्मि सव्व-जोग्ग-णागरिआ जिणसमवसरणं।
गच्छेज्जा भत्तीए, सहिदा रायपरिसदेणं च॥107॥ (जुम्मं)
108. तुच्छलाहस्स वि णरो, सिग्घं धावेदि लाहठाणं तां।
वीरदंसणावसरं, णिल्लुंछेज्ज पुण्णणरो को॥108॥
109. सव्वा सम्माइट्ठी, अइ-आउरा जिणदंसणं करिदुं।
चिंतीअ विसुद्धीए, सव्वणहु - वीयराय - गुणा दु॥109॥
110. पुण्णवंत-सव्वपया, गच्छीअ अयलं वि जिणदंसणाया।
लहिदो परमाणंदो, पस्सित्तु पुण्णफलं तेहिं॥110॥



महापुरुष सदा सबके हित का विचार करते हैं अतः सभी नगरवासियों के हित के लिए राजा श्रेणिक ने नगर में घोषणा करा दी कि कल प्रातःकाल संपूर्ण राजपरिवार जिन वंदना के लिए भक्तिपूर्वक समवसरण की ओर प्रस्थान करेगा। दर्शन करने की योग्यता से युक्त समस्त नगरवासी भी राजपरिषद के साथ समवसरण में चलें॥106-107॥ उचित है कि छोटे से लाभ के लिए भी मनुष्य लाभ स्थान की ओर शीघ्र ही दौड़ता है, तब श्री भगवान् महावीर स्वामी के दर्शन का अवसर कौन पुण्यवान् नर छोड़ता॥108॥ सभी सम्यग्दृष्टि जन श्री जिनदर्शन करने के लिए अति आतुर थे। वे सभी विशुद्धिपूर्वक सर्वज्ञ, वीतराग जिनेंद्र के गुणों का चिंतन कर रहे थे॥109॥ अनंतर राजा श्रेणिक के साथ पुण्यवान् संपूर्ण प्रजा भी श्री जिनदर्शन के लिए विपुलाचल पर्वत की ओर गई। वहाँ पुण्य के फल को देखकर सभी को परम आह्लाद प्राप्त हुआ॥110॥

111. मुणी सावय-साविया, चदुविह-सुर-सुरंगणा संवेगी।
तहा तिरिया विज्जीअ, तत्थ सग-सग-णियद-कोट्टम्मि॥111॥
112. जिणपूयणमच्चणं च, कडुअ तिय-पदक्खिणं णमुक्कारं।
सगठाणे णिवज्जीअ, अवअच्छंता ते सव्वा हु॥112॥
113. भूवइ-सेणियेणं वि, गदगदकंठेण जिणत्थुदिं कडुअ।
णियठाणं गहिदं भत्तीए दिव्वज्झुणी सुणियो॥113॥
114. ताए परमाणंदं, लहित्ता इत्थं संथुदी कुणिदा।
णमोत्थु वीयरायस्स, सव्वदंसिणो सव्वणहुस्स॥114॥
115. णमो अणंतसुहेणं, अणंतवीरियगुणेहि संजुदस्स।
घादिकम्मविहीणस्स, णवकेवललब्धिंसंजुदस्स॥115॥
116. णमो सवरकल्लाणे, समत्थस्स तह धम्मपवट्टगस्स।
महादिसय-संजुदस्स, परमविहूदिजुदजिणवरस्स॥116॥
117. सुद्धप्पगुणभोत्तुस्स, संसाररुक्खमूलहंतुस्स सया।
णमो पावसोसगस्स, अट्ट-पाडिहेर-संजुदस्स॥117॥

वहाँ समवसरण में सभी मुनि, संवेगी श्रावक-श्राविका, चार प्रकार के देव-देवांगना तथा तिर्यच अपने-अपने नियत कोठे में विद्यमान थे॥111॥ वहाँ वे सभी जिनेंद्रदेव की तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार कर पूजन-अर्चना करके आह्लादित होते हुए अपने नियत स्थान पर बैठ गए॥112॥ राजा श्रेणिक ने भी भक्तिपूर्वक गदगद कंठ से जिनेंद्रप्रभु की स्तुति की व अपने स्थान पर बैठ गया और प्रभु की दिव्यध्वनि सुनी॥113॥ उस दिव्यध्वनि के परमानंद को प्राप्त कर राजा ने इस प्रकार जिनेंद्रप्रभु की संस्तुति की। वीतरागी, सर्वदर्शी, सर्वज्ञजिन को नमस्कार हो॥114॥ अनंतसुख व अनंतवीर्य आदि गुणों से सहित जिनेंद्र प्रभु को नमस्कार हो, घाति कर्म से विहीन अरिहंत प्रभु को नमस्कार हो, नव केवललब्धियों से युक्त प्रभु को नमस्कार हो॥115॥ स्व-पर कल्याण में समर्थ, धर्म का प्रवर्तन करने वाले जिनेंद्र को नमस्कार हो। महा अतिशय से संयुक्त प्रभु को नमस्कार हो, परम विभूति से युक्त जिनवर को नमस्कार हो॥116॥ शुद्धात्मा के गुणों का उपभोग करने वाले भगवान् को नमस्कार हो, संसार रूपी वृक्ष के मूल का हनन करने वाले वीर प्रभु को नमस्कार हो, पाप का शोषण अर्थात् पाप को नष्ट करने वाले प्रभु को नमस्कार हो, अष्ट प्रातिहार्य से युक्त वीर प्रभु को नमस्कार हो॥117॥

118. छुहा तिण्हा य रोसो, भीरू रोय-मोह-चिंता मिच्चू।
सेओ खेदो णिद्दा, मदो रदि-जणुव्वेग-णिद्दा॥118॥
119. एदादो अट्टारस-दोसादो विवज्जिदस्स वीरस्सा।
णमो विमल-भावेहिं, अट्टारस-दोसं खयेदुं॥119॥ (जुम्मं)
120. णमो सोहम्मिंदाइ - सदिंदेहिं च वंदणीय - जिणस्सा।
परममत्तंडस्स भवि - हिअय - पउम - सुविअसावयस्स॥120॥
121. सगसुद्धप्पे लीणं, लोयालोय - पयासगतित्थयरं।
सग-भवोदहि-सोसगं, सगसुद्धप्पं लहिदुं थुवमि॥121॥
122. तव दंसणं हरदि सय, मिच्छत्तण्णाणाघाइं भवीण।
सुहासवघसंवराण, अदिसयपुण्णकारणं तथा॥122॥
123. तव दंसणेण होज्जा, पावपइडी पुण्णरूवा णिच्चं।
करेदुं उक्कस्सणं, सक्कं हु पसत्थ-पइडीणं॥123॥
124. करिदु - मवकस्साण - मसुह - पइडीणुदीरणं पुव्वबद्धाण।
आणंदो उप्पज्जदि, पक्खालिदुं पावपंकं च॥124॥

क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, रोग, भय, मद, राग, द्वेष, मोह, चिंता, निद्रा, विस्मय, विषाद, खेद, स्वेद, रति इन अठारह दोषों से विवर्जित वीर प्रभु को अठारह दोषों के क्षय के लिए निर्मल भावों से नमस्कार हो॥118-119॥ सौधर्म इंद्र आदि सौ इंद्रों के द्वारा वंदनीय श्री वर्धमान जिनेंद्र को नमस्कार हो, भव्यों के हृदय रूपी कमलों को विकसित करने के लिए जो परम सूर्य हैं उन महावीर प्रभु को नमस्कार हो॥120॥ निज शुद्धात्मा में लीन लोकालोक को केवलज्ञान के द्वारा प्रकाशित करने वाले, अपने संसार सागर को सुखा देने वाले वीर प्रभु की अपनी शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिए मैं स्तुति करता हूँ॥121॥ हे प्रभो! आपका दर्शन सदैव भव्यों के मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप आदि को हरता है। आपका दर्शन शुभ के आस्रव, पाप के संवर तथा अतिशय पुण्य का कारण है॥122॥ हे प्रभो! नित्य आपके दर्शन से पाप प्रकृतियाँ भी पुण्य रूप हो जाती हैं। आपका दर्शन पुण्य प्रकृतियों का उत्कर्षण करने में भी समर्थ है॥123॥ हे जिनेन्द्र देव! आपका दर्शन पूर्व में बांधी हुई अशुभ प्रकृतियों की उदीरणा करने व उनका अपकर्षण करने में समर्थ होता है। आपका दर्शन पाप पंक को प्रक्षालित करने में समर्थ है। हे प्रभु! आपके दर्शन से अनुपम आनंद उत्पन्न होता है॥124॥

125. दक्खंता भव्वा तव, भामंडलम्मि पस्सिदुं समत्था।
सगसत्तभवा तम्हा, णमामि लहिदुं सकीय-पदं॥125॥
126. जिणवंदणाइ भव्वा, सक्कंति भवबंधणं विच्छेदुं।
जिणवंदणाए हंदि, वंदगा विस्सवंदणीया॥126॥
127. जिणपूयाए लहंति, बहुपुण्णरासिं लोयपुज्जपदं।
मिच्छादिट्ठी भव्वा, सम्मत्ताइ-गुणं णियमेण॥127॥
128. रयणायर-जल-वड्ढग-चंदोव्व गुणवड्ढगा जिणत्थुदी।
वेज्जावच्चं मुणीण, णेयं आरोग्ग-वड्ढगं दु॥128॥
129. णीरक्ककिरणादीहि, वड्ढंति रुक्ख-पुप्फ-फल-पत्ताणि।
जह तह जिणत्थुदीए, णिसग्गिय-गुणा चेयणाए॥129॥
130. परमेट्ठित्थवणेणं, धणधणं देहसुहं आरोग्गं।
पउर-साहणं सम्महंसण-णाणं तवो चरियं॥130॥
131. लहंति त्तिजोगसुद्धिं, जीवा हु सिरिजिणगुणकित्तणेणं।
अणंतरं णस्संते, अघं दुहमणिट्ठसंजोगं॥131॥

हे वीर वर्द्धमान जिनेन्द्र! आपका दर्शन करते हुए भव्यजन आपके भामंडल (आभामंडल) में अपने सात भवों को देखने में समर्थ होते हैं इसलिए स्वकीय शुद्ध पद की प्राप्ति के लिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥125॥ श्री जिनेन्द्र प्रभु की वंदना से भव्य जीव संसार के बंध का विच्छेद करने में समर्थ होते हैं। जिन वंदना से वंदक निश्चय से विश्ववंदनीय हो जाते हैं॥126॥ जिन-पूजा से भव्य जीव बहुत पुण्यराशि व लोकपूज्य पद को प्राप्त करते हैं एवं मिथ्यादृष्टि भव्यजीव नियम से सम्यक्त्व आदि गुणों को प्राप्त करते हैं॥127॥ जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति एवं वैयावृत्ति उसी प्रकार गुणों का वर्द्धन करती है जिस प्रकार चंद्रमा समुद्र के जल की वृद्धि करता है। जिनस्तुति व मुनियों की वैयावृत्ति आरोग्य वर्द्धक जाननी चाहिए॥128॥ जिस प्रकार जल और सूर्य की किरणों आदि के द्वारा वृक्ष, पुष्प, फल, पत्ते आदि वृद्धि को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार जिनस्तुति से चेतना के स्वाभाविक गुण वर्द्धिगत होते हैं॥129॥ परमेष्ठियों के स्तवन से धन-धान्य, दैहिक सुख, आरोग्य, प्रचुर साधन, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व सम्यक् तप प्राप्त होता है॥130॥ श्री जिनेन्द्र देव के गुणों के कीर्तन से जीव त्रियोग की शुद्धि प्राप्त करते हैं अनंतर पाप, दुःख व अनिष्ट संयोग को नष्ट कर देते हैं॥131॥

132. जिणत्थुदि-मित्थं कडुअ, भत्तीइ उप्पुलइओ पणमंतो।
तिलोय-सव्व-पदत्था, जुगवं जाणगो हे वीरो!॥132॥
133. चित्ते तिव्वहिलासा, मे विआणिदुं वद-उववासाणं।
सरूवं ताण सुफलं, अणुग्गहित्ता कह भव्वाण॥133॥ (जुम्मं)
134. कसायं पावविट्ठिं, विहाय चउविहाहार-पजहणं चा
णादव्वो उववासो, अल्लीअणं धम्मज्जाणे॥134॥
135. पावाणि विणस्संते, सव्वसोक्खं उववासेण भव्वा।
किं जप्पिदेण बहुहा, लहंति सेट्ठणिव्वाणपदं॥135॥
136. उववासेण लहंते, धण-भवन-वाहण-विहव-समिद्धी या
त्थी आणाणुसारिणी, सुपुत्त - पुत्ती बंधुवग्गा॥136॥
137. णाणाविह - संसारिय - सेट्ठ - वत्थूणि भोगोवभोगाण।
अदिसय-सेट्ठपुण्णंहु, सारज्ज-मिंदाइ-विहूदी॥137॥ (जुम्मं)
138. हे चउणाण - धारगो! बहुइड्ढिजुदो गणेस - मुणिरायो।
किं अज्जं अवि कस्स वि, विसेस-वदस्स तिही पहुदी॥138॥

इस प्रकार जिनेंद्र प्रभु की स्तुति करके भक्ति से रोमांचित राजा प्रणाम करते हुए कहता है कि तीनों लोकों के सभी पदार्थों को युगपत् जानने वाले हे वीर जिनेंद्र! व्रत-उपवासों के स्वरूप व उनके सुफल को जानने के लिए मेरे चित्त में तीव्र अभिलाषा है। हे प्रभु! कृपा कर भव्यजनों के लिए उसे कहिए॥132-133॥ इस प्रकार पूछने पर गौतम गणधर स्वामी कहते हैं कि कषाय व पापवृत्ति का त्याग कर चार प्रकार के आहारों का त्याग करना व धर्मध्यान में लीन होना उपवास जानना चाहिए॥134॥ उपवास से पापों का नाश होता है, सर्व सुखों की प्राप्ति होती है। बहुत अधिक कहने से क्या लाभ? भव्य जीव तो उपवास से श्रेष्ठ निर्वाण पद भी प्राप्त करते हैं॥135॥ उपवास से जीव धन, भवन, वाहन, वैभव, समृद्धि, आज्ञा के अनुसार चलने वाली स्त्री, सुपुत्र, सुपुत्री व बंधु को प्राप्त करते हैं। नाना प्रकार की भोगोपभोग की सांसारिक श्रेष्ठ वस्तुएँ उपवास से प्राप्त होती हैं। उपवास से अतिशय श्रेष्ठ पुण्य का अर्जन होता है एवं स्वर्ग का साम्राज्य, इंद्रादि की विभूति प्राप्त होती है॥136-137॥ इस प्रकार उपवास का अतिशय फल सुनकर राजा श्रेणिक ने पुनः पूछा मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यय इस प्रकार चार ज्ञान के धारी, बहुत ऋद्धियों से संपन्न हे गणेश! हे मुनिराज! क्या आज भी किसी विशेष व्रत की तिथि आदि है?॥138॥

139. भो! मुख-सोदू णिवो, सुहणक्खत्तं हु रोहिणी अज्जं।
रोहिणीए रोहिणी, वदो सुप्पसिद्धो तिलोए॥139॥
140. रोहिणि-वद-पालणेण, पावदि अइ-थोग-भवेसुं भव्वो।
सस्सद-णिव्वाणपदं, णियमेण णेव संकणिज्जा॥140॥
141. एअस्स अभूदपुव्व-रोहिणिवदस्स सुपालणं केहिं।
पुण्णवंतेहि करिदं, तहा काए विहीए पहू॥141॥

वसंततिलका छंद

142. उल्लंघणेण सुविहीइ कया वि हंहो,
सम्मं फलं सुकिरिया णहि देदि को ई।
देवो! अणुगगहिय भाससु मे हिदत्थं,
कल्लाणकारगवदस्स विहिं वि तम्हा॥142॥
143. एगो तुमं चिय अकारण - बंधु - देवो!
दंसायगो सिवपहस्स सुणाणदादू।
अण्णाण - अंध - अवहारग - सेट्टणाणी,
हं आउरो य सुणिदुं सुविहिं चरित्तं॥143॥

यह सुनकर गणधर देव उत्तर देते हैं—हे मुख्य श्रोता नृप श्रेणिक! आज रोहिणी नामक शुभ नक्षत्र है। रोहिणी नक्षत्र के दिन रोहिणी व्रत होता है। जो तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है॥139॥ रोहिणी व्रत को पालन करने से भव्यजीव अति स्तोक (बहुत थोड़े) भवों में शाश्वत निर्वाण पद को नियम से प्राप्त करता है। इसमें कोई शंका नहीं है॥140॥ रोहिणी व्रत का नाम सुनकर राजा श्रेणिक पुनः उत्सुकता से पूछते हैं—हे भगवन्! इस अभूतपूर्व रोहिणी व्रत का पालन किन पुण्यवान् जीव ने किया एवं किस विधि से उन्होंने व्रत पालन किया॥141॥ अहो! श्रेष्ठ विधि का उल्लंघन करके निश्चय से कोई भी श्रेष्ठ क्रिया कदापि सम्यक् फल प्रदान नहीं करती। अतः हे देव! मेरे हित के लिए कृपा कर कल्याणकारक व्रत की विधि को भी कहिये॥142॥ हे देव! संसारी प्राणियों के लिए आप ही एक अकारण बंधु हैं, आप ही मोक्षमार्ग के प्रदर्शक हैं, सम्यग्ज्ञान के दाता हैं। हे प्रभु! आप ही अज्ञान अंधकार को हरण करने वाले श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। इस रोहिणी व्रत को पालन करने वालों का चरित्र एवं व्रत की विधि को सुनने के लिए मैं बहुत आतुर हूँ॥143॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक- रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में कथा पीठिका वर्णन करने वाला प्रथम नंद पूर्ण हुआ॥

विदिय-णंदो

144. अस्सि वदे पसिद्धा, रायो असोगो रोहिणी राणी।
सासेमि ताण चरियं, वदविहिं पि सुणह थिरमणेण॥1॥
145. पढम-करण-चरण-दव्व-चउ-अणुजोगा आवसिया सुहदा।
सया कल्लाण-हेदू, तेहिं विणा हु मुत्ती णत्थि॥2॥
146. पढमाणुजोगं सव्वपहाण-हेदू सव्वसारभूदं।
सेट्ट-मोक्ख-पंथस्स दु, सहजं तह सरल-मच्चंतं॥3॥
147. जह आबालवुड्ढा दु, हवंति आणंदिदा य खादंता।
पायसं कुंडलिणिं च, घयपूरिं पहुदि-मिट्ठणं॥4॥
148. खिच्चडिअं खादंते, किण्णु दु तेसुं पडिऊलेसुं ते।
उदर - वियार - णासगं, रुइ - छुहा - वड्ढगमणुऊलं॥5॥
149. तह पढमाणुजोगं दु, अप्प-वियार-णासगं सव्वाणं।
बोहि-समाहि-णिहाणं, सुणाण-वेरग्ग-वड्ढगं च॥6॥ (तिअं)
150. जह को वि विज्जत्थी ण, पढिदुं सक्कदि विणा वण्ण-णाणं।
बोहण-मण्णुजोगाण, पढमज्झयणं विणा अवि तह॥7॥

तब गणधर देव ने कहा—इस व्रत में राजा अशोक एवं रानी रोहिणी प्रसिद्ध हुए। उनके चरित्र को एवं व्रत की विधि को भी मैं यहाँ कहता हूँ तुम मन को स्थिर करके सुनो॥1॥ प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ये चारों अनुयोग आवश्यक व सुखप्रद हैं, सदा कल्याण के हेतु हैं, उनके बिना मुक्ति नहीं है॥2॥ प्रथमानुयोग सर्व सारभूत है, अत्यंत सरल व सहज है। श्रेष्ठ मोक्षमार्ग के लिए सर्वप्रधान कारण है॥3॥ जिस प्रकार बच्चों से लेकर वृद्ध तक सभी जन खीर, जलेबी व पूरी-पराठे आदि खाते हुए अति आनंदित होते हैं किन्तु उनके (स्वास्थ्य के) प्रतिकूल होने पर वे सभी खिचड़ी खाते हैं जो उदर विकार का नाश करने वाली, रुचि व क्षुधा की वर्धक एवं स्वास्थ्य के अनुकूल होती है उसी प्रकार सभी अनुयोगों में यह प्रथमानुयोग आत्मविकार नाशक, सभी के लिए बोधि व समाधि का खजाना है तथा सम्यग्ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि करने वाला है॥4-6॥ जिस प्रकार वर्णों के ज्ञान के बिना कोई भी विद्यार्थी पढ़ने में शक्य नहीं होता है उसी प्रकार प्रथमानुयोग के अध्ययन के बिना अन्य अनुयोगों का जानना भी शक्य नहीं है॥7॥

151. अत्थणाणं विणा जह, सह-सिमरणं ण सत्थगो मेत्तं।
पढमाणुजोगणाणं, विणा तह णाणं अपुण्णं हि॥8॥
152. जह इक्खुरसेण विणा, संभवो ण गुड-खंड-सक्करादी।
चरण-करण-दव्वाणं, णाणं वि पढमं विणा जाण॥9॥
153. अप्पवायग - कयारो, रणसद्दो जुद्धवायगो णेयो।
अप्पेण सह रण-कारग-कम्मस्स कारणं भावा॥10॥
154. मोहाइ-जणिद-भावा, पडिवायगो ठाण-मग्गणादीण।
ताणं वा तिलोयस्स, वण्णयं करणाणुओगं दु॥11॥
155. सरीरम्मि हु चरणं व, चरणाणुओगं चउअणुजोगेसु।
णाणेण पालणेणं, विणा तस्स णेव सिवमग्गी॥12॥
156. लोयम्मि अणादीदो, जीवाइ-छद्दव्व- विज्जंताणं।
सुद्धगुणपज्जायाण, णयेण सुद्ध-कहगं अहवा॥13॥
157. ताण सुद्धवट्टणस्स, पमाणेण जाण दव्वाणुओगं।
पुण्ण-पावतच्चाणं, कल्लाणत्थं दु जीवाण ॥14॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार अर्थ ज्ञान के बिना मात्र शब्दों को रटना सार्थक नहीं है उसी प्रकार प्रथमानुयोग के ज्ञान के बिना समस्त ज्ञान अपूर्ण ही है॥8॥ जिस प्रकार इक्षुरस के बिना गुड़, खांड, शक्कर आदि संभव नहीं है उसी प्रकार प्रथमानुयोग के ज्ञान के बिना चरणानुयोग, करणानुयोग व द्रव्यानुयोग का ज्ञान जानो॥9॥ ककार आत्मवाचक व 'रण' शब्द युद्धवाचक जानना चाहिए। आत्मा के साथ युद्ध करने वाले कर्म हैं उन कर्मों का कारण भाव है॥10॥ मोह आदि से उत्पन्न भाव गुणस्थान व मार्गणा आदि के प्रतिपादक हैं, उनका अथवा तीन लोक का वर्णन करने वाला करणानुयोग कहलाता है॥11॥ जिस प्रकार शरीर में चरण (पद) होते हैं उसी प्रकार चार अनुयोगों में चरणानुयोग जानना चाहिए। उसके ज्ञान व पालन किए बिना कोई मोक्षमार्गी नहीं होता॥12॥ लोक में अनादिकाल से जीवादि छः द्रव्य विद्यमान हैं। नय के द्वारा उनके शुद्ध गुण-पर्यायों का कथन करने वाला अथवा प्रमाण से उनके शुद्ध वर्तन का कथन करने वाला एवं कल्याणार्थ पुण्य-पाप व तत्त्वों का कथन करने वाला द्रव्यानुयोग जानो॥13-14॥

158. पढमो जंबूदीवो, मज्जे असंखेज्जदीवसिंधूण।
तिरियलोयम्मि सोहदि, सोहम्मोव्व कप्पवासीसु॥15॥
159. सेलेसु सुदंसणोव्व, चंदोव्व गहेसु लवणं व रसेसु।
मंतेसु महमंतोव्व, सम्मेदोव्व सिवखेत्तेसु॥16॥
160. खीरोव्व सिंधूसु धम्मेसु अहिंसा व्व बंभोव्व वदेसु।
गुरुसुं णिग्गंथोव्व, तह देवेसु लोयंतिगा व्व॥17॥ (तिअं)
161. तस्स जंबूदीवस्स, जम्मादिसाए सुभरद - खेत्तं दु।
भाजिदं हिमव-णगादु, पडंताहिं बेसरिदाहिं॥18॥
162. गंगा - सिंधूहिं बेकूडठिद - जिण पडिमाए अइंचते।
पुण भरदं विभंजता, मिलंति पुव्व-पच्छिम-लवणे॥19॥
163. ताण परिवार-णदीउ, तह ता णेव वहंति अज्जखंडे।
सज्जण-समण्णिदो सो, एगो अज्जखंडो सुहदा॥20॥
164. तस्सिं अज्जखंडम्मि, सुहणामधारगा अणेगदेसा।
धम्म-कम्मं कुणंता, णिवसंते अणेगजीवा दु॥21॥

असंख्यात द्वीप-समुद्रों के मध्य प्रथम द्वीप जंबूद्वीप है। जिस प्रकार कल्पवासियों के बीच में सौधर्मइंद्र सुशोभित होता है, जैसे पर्वतों में सुदर्शन मेरु, ग्रहों में चंद्रमा, रसों में नमक, मंत्रों में महामंत्र, सिद्धक्षेत्रों में सम्मेदशिखर जी, सागरों में क्षीर सागर, धर्मों में अहिंसा, व्रतों में ब्रह्मचर्य, गुरुओं में निर्ग्रथ गुरु, देवों में लौकांतिक देव सुशोभित हैं उसी प्रकार तिर्यक् लोक में जंबूद्वीप सुशोभित होता है॥15-17॥ उस जंबूद्वीप के दक्षिण दिशा में शुभ भरत क्षेत्र है जो हिमवन् पर्वत से गिरती हुई दो नदियों गंगा व सिंधु से भाजित है॥18॥ वे नदियाँ सर्वप्रथम दोनों कूट पर स्थित जिन-प्रतिमाओं का अभिषेक करती हैं पुनः भरत क्षेत्र का विभाजन करती हुई पूर्व व पश्चिम लवण समुद्र में जा मिलती हैं॥19॥ वे नदियाँ स्वयं व उनकी परिवार नदियाँ आर्यखंड में नहीं बहतीं। भरत क्षेत्र में वह आर्यखंड एक, सुखद व सज्जनों से समन्वित है॥20॥ उस आर्यखंड में शुभ नाम वाले अनेक देश हैं। धर्म व कर्म को करते हुए अनेक जीव वहाँ निवास करते हैं॥21॥

165. णयणं व सुहगो तेसु, कुरुजंगलदेसो पसंसणीयो।
तस्स रायहाणी चिय, सुविसालं हत्थिणायपुरं॥22॥
166. इह भूमीए अंतिम-कुलयरस्स सुद-पढम-तित्थयरस्स।
उसहदेवस्स पढमाहारो णिगगंथवत्थाए॥23॥
167. णिव - सोमप्पह - कुमार - सेयंस - दुग्गे पारणारूवो।
तेरस - मास - अट्टदिण - पच्छा गहिदो य आहारो॥24॥
168. जादिसिमरणेण पुव्व-भवं जाणित्तु आहारदाणस्स।
विहिं अवबोहिदूणं, दाएज्ज इक्खुरसाहारं॥25॥
169. इमा पुढवी पवित्ता, मल्लिणाहाइ-बहु- तित्थयराणं।
समवसरणादीहिं च, वंदणीया सुप्पसिद्धा दु॥26॥
170. तित्थपयरजपुणीदा, चउकल्लाणभूमी तित्थिणाणं।
अणेगमुत्तजीवाण, णाण-णिव्वाण-सुभूमी अवि॥27॥
171. तित्थमहीइ वंदणा, पुण्णवड्डगा कम्मक्खयहेदू।
तम्हा पवित्त-भूमिं, तं वंदेमि हं सुभावेहि॥28॥

आनन पर नयनों के समान उन देशों में सुभग, प्रशंसनीय कुरुजांगल नामक देश शोभित है। उसकी राजधानी विशाल हस्तिनागपुर नगरी है॥22॥ इस भूमि पर अंतिम कुलकर नाभिराय के पुत्र व प्रथम तीर्थकर श्री वृषभदेव मुनिराज का निर्ग्रन्थावस्था में प्रथम आहार हुआ॥23॥ राजा सोमप्रभ व राजकुमार श्रेयांस के महल में तेरह महिने आठ दिन पश्चात् उन महामुनिराज ने पारणा रूप आहार ग्रहण किया॥24॥ उन्होंने (युवराज श्रेयांस ने) जाति स्मरण से पूर्वभव को जानकर आहारदान की विधि का बोध कर इक्षुरस का आहार दिया॥25॥ यह सुप्रसिद्ध पृथ्वी श्री मल्लिनाथ आदि बहुत से तीर्थकरों के समवसरण आदि से वंदनीय व पवित्र है॥26॥ यह हस्तिनागपुर नगरी तीर्थकरों की पद रज से पावन, तीन तीर्थकरों श्री (शांतिनाथ जी, कुंथुनाथ जी, अरनाथ जी) की गर्भ, जन्म, तप व ज्ञान भूमि भी है और अनेक मुक्त जीवों की ज्ञान व निर्वाण भूमि भी है॥27॥ तीर्थक्षेत्र की वंदना पुण्य वर्द्धन करने वाली व कर्म क्षय का हेतु है इसलिए उस पवित्र भूमि को शुभ भावों से मैं वंदना करता हूँ॥28॥

172. जस्स आसयेण भवी, तरेदुं भवसायरं दु सक्कंति।
तं खेत्तं तित्थं चिय, जम्मादी तित्थयरादीण॥29॥
173. सुदं वदं तह धम्मो, सम्मत्ताइ-रयणत्तयं तित्थं।
सूरि-आइ-परमेट्टी, चेयणतित्थं विआणेज्जा॥30॥
174. णवदेवदा य तित्थं, उवादाणसत्तिपगासणाए दु।
भव्वाण कारणादो, अप्पा अवि णिम्मलं तित्थं॥31॥
175. बहुगुणसज्जिदो वीदसोग-णिवो इंदोव्व तत्थ देसे।
णायपिओ धम्मपियो, पयावच्छलो पुण्णवंतो॥32॥
176. रायस्स रज्जसहाइ, अमच्चो बेदह-सचिवा पुरोहा।
जयं लहिदुं समत्था, मुख-गोण-सुसेणावदी य॥33॥
177. धणसंपण्णा बहवा, णयरसेट्टी य पयाजणा सिट्ठा।
अहिंसा - वित्थारो य, सच्च-पयासो देसे तम्मि ॥34॥
178. जायगा चोर-दुट्टा, तम्मि देसे अइदुल्लहा पावी।
विहरंते णिग्गंथा, पच्चक्खणाणी णियलीणा॥35॥
179. णिद्धणो य बहुकंखा - जुत्तो पुव्वपावकम्मोदयेण।
अण्णादो समं विणा, कंखदि जायदि जायगो सो॥36॥

जिसके आश्रय से भव्यजीव संसार सागर को पार करने में समर्थ होते हैं, तीर्थकर आदि के जन्मादि के वे क्षेत्र तीर्थ कहलाते हैं॥29॥ श्रुत, व्रत, धर्म, सम्यक्त्व आदि रत्नत्रय तीर्थ हैं। आचार्य आदि परमेष्ठी चेतन तीर्थ जानने चाहिए॥30॥ नवदेवता तीर्थ हैं तथा भव्यों की उपादान शक्ति के प्रकटीकरण का कारण होने से आत्मा भी निर्मल तीर्थ है॥31॥ उस देश में इंद्र के समान राजा वीतशोक राज्य करता था। जो न्यायप्रिय, धर्मप्रिय, प्रजावत्सल, पुण्यवान् व बहुत गुणों से सज्जित था॥32॥ उस राजा की राज्य सभा में अमात्य, बारह सचिव, पुरोहित एवं विजय प्राप्त करने में समर्थ मुख्य व गौण सेनापति थे॥33॥ उस देश में धन-संपन्न बहुत से नगर श्रेष्ठी थे। वहाँ की प्रजा शिष्ट थी। वहाँ अहिंसा का विस्तार व सत्य का प्रकाश था॥34॥ उस देश में याचक, चोर, दुष्ट व पापी जन अति दुर्लभ थे। किन्तु उस पुण्य नगरी में प्रत्यक्षज्ञानी, निज में लीन रहने वाले निर्ग्रन्थ गुरु विहार किया करते थे॥35॥ पूर्व पापकर्म के उदय से जीव निर्धन व अत्यंत कांक्षा से युक्त होता है। जो बिना श्रम किए अन्य किसी से याचना करता है, आकांक्षा करता है वह याचक है॥36॥

180. रुद्धृज्जाणं अह-किरिया रोएज्ज अणिट्टकम्माणि।
दुक्ख-साहणं च जस्स, विआणेज्ज णरो दुट्ठो सो॥37॥
181. अण्णायेण अपुट्ठे, परवत्थूणि कंखेदि गहेदि जो।
सो चोरो णो भुंजदि, पुण्णवत्थुं पावकत्ता य॥38॥
182. भंडा परित्थीरदा, परधणहारगा हिंसगा कामी।
कूरभावजुदा जत्थ, पुण्णज्जणं सुलहं ण तत्थ॥39॥
183. पुण्णपुरिसजुत्तपुण्ण-खेतम्मि दुल्लहा पावभोत्ता दु।
विणयसंजुदा धम्मी सयायारी सिट्ठा बहुहा॥40॥
184. गुणगाहगो गुणीसुं, णम्मो गुरुपादसेवी विणीदो।
सुहगुणेसुं तप्परो, उदाराइ-सुगुण-संपण्णो॥41॥
185. भदो मंदकसायी, सुहलेस्सासंजुदो दयावंतो।
जिणायदण-पीदिजुदो - सवरकल्लाणत्थी धम्मी॥42॥
186. सहिण्हू पिदर-भत्तो, अण्णाय-अभक्ख-परवत्थूणं चा
चागी कत्तव्वजुदो, सुचरियावंत-सयायारी॥43॥

जिसे दुःख के साधन रूप आर्त व रौद्र ध्यान, पाप क्रिया व अनिष्ट कर्म रुचिकर होते हैं उस मनुष्य को दुष्ट जानना चाहिए॥37॥ अन्यायपूर्वक वा बिना पूछे जो पर-वस्तुओं की आकांक्षा करता है, उन्हें ग्रहण करता है वह चोर है। उचित ही है पापों को करने वाला पुण्य वस्तुओं का भोग नहीं कर पाता है॥38॥ जहाँ भांड, पर स्त्री में रत, दूसरों के धन को हरण करने वाले, हिंसक, कामी व क्रूर भाव से युक्त जन रहते हैं वहाँ पुण्य का अर्जन सुलभ नहीं है॥39॥ पुण्य पुरुषों से युक्त पुण्य क्षेत्र में पापों को भोगने वाले दुर्लभ होते हैं। पुण्य क्षेत्र में बहुलता से शिष्ट, विनय से युक्त, धर्मी व सदाचारी लोग होते हैं॥40॥ गुणों को ग्रहण करने वाला, गुणीजनों में नम्र, गुरु के चरणों का सेवक, शुभ गुणों में तत्पर और उदार आदि सुगुणों से संपन्न विनम्र है॥41॥ भद्र (सरल), मंदकषायी, शुभ लेश्या से युक्त, दयावान्, जिनायतनों में प्रीतियुक्त एवं स्वपर कल्याणार्थी धर्मी है॥42॥ सहिष्णु, माता-पिता का भक्त, अन्याय-अभक्ष्य व परवस्तुओं का त्यागी, कर्तव्यनिष्ठ एवं श्रेष्ठ आचरण से युक्त सदाचारी है॥43॥

187. सम्मत्ताइ - गुण - जुदो, हियंकरो महरभासी सुभदो।
संजमी गुणाकंखी, जो सो सिट्टो मुणेदव्वो॥44॥
188. तदा ताइ णयरीए, तह सव्वा पुव्वपुण्णफलभोत्ता।
पुण्णप्पेसुं पावी, हंसेसु बगो व्व ण सोहंति॥45॥
189. रुक्खेसु पुप्फाइं व, सोहिदा सा सीलवयधारीहिं।
अक्कपयासेण भू व्व, उल्लसिदा पुण्णवंतेहिं॥46॥
190. सायरे रयणाइं व, जोदिसविमाणा व जोदिसलोए।
उववणे पुप्फाइं व, पुण्णजणा पुण्णणयरीए॥47॥
191. सघण-रुक्खावलि-जुत्त-खेतम्मि पउर-सुहंकरा वरिसा।
जीमूआ वरिसंते, रुक्खरहिदवल्लरे कयाइ॥48॥
192. तह ताए णयरीए, पुण्णकज्जजुदा पुण्णफलभोत्ता।
बहुहा आसण्णभवी, कयाइ चिय दिग्घसंसारी॥49॥
193. अदिसय-पुण्णवंता ण, णेव महापुरिसा तित्थयरादी।
हवंति पावखेत्तम्मि, मिलिच्छखंडम्मि सलागा व्व॥50॥

जो सम्यक्त्व आदि गुणों से युक्त है, हितैषी, मधुरभाषी, भद्र, संयमी व गुणों का आकांक्षी है वह शिष्ट जानना चाहिए॥44॥ उस समय उस नगरी में सभी पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के फल को भोगने वाले थे। जैसे हंसों के मध्य बगुला शोभायमान नहीं होता उसी प्रकार पुण्यात्माओं के मध्य पापी जीव शोभायमान नहीं होते थे॥45॥ जैसे वृक्षों पर पुष्प सुशोभित होते हैं उसी प्रकार वह नगरी शीलव्रतधारियों के द्वारा सुशोभित थी एवं जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से भूमि उल्लसित होती है उसी प्रकार यह भूमि पुण्यवानों के द्वारा उल्लसित थी॥46॥ जैसे सागर में रत्न होते हैं, ज्योतिर्लोक में ज्योतिष विमान होते हैं एवं उपवन में पुष्प होते हैं उसी प्रकार उस पुण्य नगरी में पुण्यवान् लोग रहते थे॥47॥ वहाँ पर क्षेत्र सघन वृक्षों की आवलियों से युक्त थे। जहाँ प्रचुर, सुखद व शुभकारक वर्षा होती थी, बादल बरसते थे। वृक्ष रहित निर्जन प्रदेश वहाँ कदाचित् ही थे॥48॥ उस नगरी में बहुधा पुण्य कार्यों से युक्त व पुण्य के फल को भोगने वाले भव्यजीव थे। वहाँ कदाचित् ही दीर्घसंसारी कोई थे॥49॥ किसी भी पाप क्षेत्र में वा म्लेच्छखंडों में शलाका पुरुष के समान अतिशय पुण्यवान् एवं तीर्थकर आदि महापुरुष नहीं होते॥50॥

194. पच्चक्खणाणजुत्ता, य देस - परम - सव्वोहि - णाणेहिं।
केइ मुणी मणपज्जय-णाण-जुत्ता विहरीअ तत्थ॥51॥
195. केवलणाणिजिणस्स दु, आगच्छीअ गंधकुडी कयाइं।
तत्थ बहुदाणवीरा, जायगा चिय दुल्लहा णवरि॥52॥
196. तस्स दु पाणवल्लहा, विज्जुदपहा अइसुंदरी सचीव।
कत्तव्वणिट्ठा धम्म-वच्छला पुण्णवत-राणी॥53॥
197. राणीइ विणा राओ, विज्जुदहीण-विज्जुद-उवयरणं वा।
सा अब्द्धंगिणी होच्चु, अवि पुण्णंगिणीव रायस्स॥54॥
198. मिअंगस्स रोहिणीव, सीयारदीव राम - सुमराणं चा।
विज्जुदपहा रायस्स, ण केवलं देह-सुह-हेदू॥55॥
199. णवरि धम्ममगे सय, पणोल्लीअ विणयमहुरवयणेहिं।
सा राणी ण केवलं, रायस्स अवि सेट्ठं मित्तं॥56॥
200. ताए सह सो सुहेण, करीअ धम्मट्टकामपुरिसट्ठं।
धम्मजुदा सा रायं, पडि सुकत्तव्व-परायणा दु॥57॥ (तिअं)

उस देश में देशावधि, परमावधि व सर्वावधि ज्ञानों से युक्त एवं कई मनःपर्यय ज्ञान से युक्त मुनि विहार करते थे॥51॥ वहाँ श्री केवलज्ञानी जिनेन्द्र प्रभु की कदाचित् (कभी-कभी) गंध कुटी आती थी। वहाँ दानवीर बहुत थे जबकि विशेषता यह है कि याचक बहुत दुर्लभ थे॥52॥ उस राजा वीतशोक की प्राणवल्लभा रानी विद्युत्प्रभा थी। जो शचि के समान अति सुंदर थी। वह कर्तव्यनिष्ठ, धर्मवत्सला व पुण्यवती थी॥53॥ रानी के बिना राजा उसी प्रकार प्रतीत होता था जैसे विद्युत् के बिना विद्युत् उपकरण। विद्युत्प्रभा अब्द्धांगिणी होकर भी राजा की पूर्णांगिणी के समान थी॥54॥ चंद्रमा के लिए रोहिणी, राम के लिए सीता व कामदेव के लिए रति के समान ही विद्युत्प्रभा राजा वीतशोक के लिए थी। वह राजा के लिए न केवल देह सुख का हेतु थी बल्कि वह विनययुक्त व मधुर वचनों के द्वारा सदैव धर्ममार्ग में प्रेरिका थी। यह रानी न केवल राजा की श्रेष्ठ मित्र थी अपितु रानी के साथ राजा धर्म, अर्थ व काम पुरुषार्थ सिद्ध करता था। वह धर्म युक्त रानी राजा के प्रति कर्तव्य परायण थी॥55-57॥

201. करभार-विमुक्तपया, णवरि उवहारं देज्ज सगणिवस्स।
तदो राय-भंडारो, सया हि धण-धण्ण-परिपुण्णो॥58॥
202. उवहाररूवधणं दुवारं दायित्तु पया पडिवस्से।
णंदीअ तहा धेणू, दुद्धं णिच्चं सगवच्छस्स॥59॥
203. रुक्खो पुप्फफलाइं, सरिदा जलं रयणायरो रयणं।
मिअंगो सीयलत्तं, जुण्हं जह तह आयामित्तु॥60॥ (जुम्मं)
204. विअरीअ पुरक्कारं, णिवो पारिओसियं सगसत्तीइ।
दुट्टाण देज्ज दंडं, सव्वहिदत्थं सुहसिद्धीइ॥61॥
205. दायगो णंददि इट्ठ-वत्थुइं दायित्ता सज्जणाण।
णूणोणं लहदि देदि, अहियाहियं पेम्मपत्ताण॥62॥
206. अइमहुरो संबंधो, जणगपुत्तोव्व चिय रायपयाए।
तं उहयो हि कंखीअ, दादुं अहियहिय-धण-वत्थुं॥63॥
207. तम्मि देसम्मि होज्जा, दिणं सुवण्णं व रत्ती रजदं वा।
मिहिरो उदयेज्ज पुव्व-दिसाइ कणगरूवो जम्हा॥64॥

वहाँ की प्रजा कर (टैक्स) के भार से मुक्त थी किन्तु विशेषता यह है कि वह अपने राजा के लिए उपहार दिया करती थी जिससे राजा का भंडार सदैव ही धन-धान्य से परिपूर्ण रहा करता था॥58॥ वर्ष में दो बार उपहार रूप धन राजा को देकर प्रजा उसी प्रकार आनंदित होती थी जिस प्रकार गाय अपने बछड़े के लिए दुग्ध देकर, वृक्ष अपने पुष्प-फलों को देकर, सरिता अपना जल, रत्नाकर अपने रत्न एवं चंद्रमा अपनी चाँदनी व शीतलता देकर आनंदित होता है॥59-60॥ सबके हित व सुख की सिद्धि के लिए राजा अपनी शक्ति के अनुसार पुरस्कारों का वितरण करता था, पारितोषिक देता था एवं दुष्टों को दंड भी दिया करता था॥61॥ दाता सज्जनों को इष्ट वस्तुएँ देकर आनंदित होता है। वह कम से कम लेता है एवं स्नेहीजनों के लिए अधिक से अधिक देता है॥62॥ राजा व प्रजा में पिता व पुत्र के समान अति मधुर संबंध थे इसलिए दोनों ही एक-दूसरे को अधिक से अधिक धन व वस्तु देने की आकांक्षा करते थे॥63॥ उस समय उस देश में दिन सोने के समान और रात्रि चाँदी के समान थी क्योंकि पूर्व दिशा में सूर्य स्वर्ण के समान उदित होता है। सूर्योदय के समय व दिन के अंत अर्थात् सूर्यास्त के समय सूर्य स्वर्ण के समान प्रतिभासित होता है एवं रात्रि में चंद्र की किरणें चाँदी के समान शीतल व औषधि रूप होती हैं॥64-65॥

208. उदयसमये दिणंते, मत्तंडो सुवण्णं व भासेज्जा।
चंदकरा हु सीयला, रजदं व ओसहीरूवा य॥65॥ (जुम्मं)
209. लहिय विज्जुदपहं तं, अइ-गोरव-जुत्तो मण्णीअ सगं।
जवीअ धम्मेणं सह, जिणपूयाइं करंता ते॥66॥
210. इग - रत्तीइ राणीइ, सह चिट्ठीअ णिवो अंतेउरे।
वत्तालाव-मज्झम्मि, तदा राणी चिय अल्लवीअ॥67॥
211. भो सामि-महारायो! उदासो किं कारणं तुमं हंदि।
तेण उत्तरिदं णेव, देवी सय सोगमुत्तो हं॥68॥ (जुम्मं)



रानी विद्युत्प्रभा को प्राप्तकर राजा वीतशोक स्वयं को अति गौरव से युक्त मानता था। वे दंपत्ति जिनेंद्र-पूजा आदि करते हुए धर्मध्यान के साथ अपना समय व्यतीत कर रहे थे॥66॥ एक रात्रि राजा अंतःपुर में रानी विद्युत्प्रभा के साथ बैठे हुए थे तभी वार्तालाप के मध्य रानी ने कहा—हे महाराज! हे स्वामी! आप किस कारण उदास हैं? तब उन्होंने उत्तर दिया—हे देवी! मैं उदास नहीं हूँ। मैं राजा वीतशोक सदा शोक मुक्त हूँ॥67-68॥

212. किण्णु पाणपिया हु तव, वदणं पम्माणं दुह-हेदू मइ।
का चिंता तुज्झ मणे, उप्पालेसु णेव संकुचसु॥69॥
213. कहदि संकुचंता सा, किं णो जाणेसि तुमं हे देवो!।
सुदमंतरेण - मित्थी, कहं लोए पसंसणीया?॥70॥
214. रायेण आलिंगिदा, राणी तदा रायणेहभावेण।
धीरवंतो कहदि सो, हे देवी! तुह पुण्णवंता॥71॥
215. तुमं दु विप्पसीदेसु, पाउणस्ससि अइपुण्णवंत-सुदं।
किं णो जाणसि समयं, वीईव ण एगसरिसो सो॥72॥ (जुम्मं)
216. इह हुंडवसप्पिणीइ, परिवट्टणं तुमं अज्जखंडम्मि।
णासि कम्मभूमीए, भोयभूमि-अवसाणादो य॥73॥
217. पडिसुदि-आइ-चउदस-कुलयरेहिं संबोहिदा पया दु।
कुव्विदा भयविमुक्का, णवीण-परिवट्टणादु तदा॥74॥
218. के के कुलयरा हु ते, कहं तेहि करिदा भयमुक्क-पया।
अहो देवो! मम चित्तसंतीइ कहेज्ज वित्थरेण॥75॥

किन्तु हे प्राणप्रिया! आपका मुख निस्तेज, मुरझाया हुआ चेहरा मेरे लिए दुःख का कारण बन रहा है। आपके मन में क्या चिंता है? कहो, तनिक भी संकोच मत करो॥69॥ तब थोड़ा सकुंचाती हुई महारानी कहती हैं कि हे देव! क्या आप नहीं जानते कि पुत्र के बिना नारी लोक में कैसे प्रशंसनीय हो सकती है?॥70॥ तब राजा ने राग व स्नेह के भाव से रानी का आलिंगन किया। पुनः उस धीरवान् राजा ने कहा—हे देवी! तुम पुण्यवती हो। हे देवी! तुम प्रसन्न रहो, तुम्हें अति पुण्यवान् पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी। क्या तुम समय को नहीं जानतीं? पानी की लहरों के समान वह समय भी सदा एक सा नहीं रहता॥71-72॥ अहो देवी! इस हुंडावसर्पिणी काल में इस आर्यखंड में भोगभूमि का अवसान होने से कर्मभूमि में हुए परिवर्तन को तो तुम जानती हो॥73॥ तब नवीन परिवर्तन होने से भय युक्त हुई प्रजा को प्रतिश्रुति आदि चौदह कुलकरों ने भय से मुक्त किया॥74॥ अहो देव! वे कुलकर कौन-कौन थे? उन्होंने किस प्रकार प्रजा को भयमुक्त किया? मेरे चित्त की शांति के लिए कृपया विस्तार से कहिए॥75॥

219. जिणवयणं णियमेणं, चित्तथिरिमाए संति-सुह-हेदू।
भव्वाणं सुपुण्णस्स, असुहादो य विणिवित्तीए॥76॥
220. तम्हा मम पाणपिया, चेइत्ता सुणहि हरिसभावेणं।
जहा मए केवली दु, सुणिदो तहेव उप्पालेमि॥77॥
221. कमसो भोयभूमीइ, चउदस-कुलयरा खलु अवसाणम्मि ।
तेसु पडिसुदी पढमो, हिदमग्गदंसगो पयाए॥78॥
222. पल्लस्स दसमभागो, आउं अट्टदस-सयाइं धणू या
उच्छेहो णायप्पिय - सुपुण्णवंत - महारायस्स॥79॥
223. भोयभूमीए णेव, दिट्ठं पस्सिय तदा सूर-चंदं।
भयणासस्स सरूवं कहीअ अइभयवंतपयाइ॥80॥
224. ते पहावहीणा जोदिरंग-कप्परुक्खाण पहावेण।
किण्णु कालदोसेणं, दिट्ठा पहावमंदत्तादु॥81॥
225. असंखेज्जकोडि-वास-अणंतरं सम्मदी मणू विदियो।
अमम-पमिदं आउं च, तेरस-सय-धणू उच्छेहो॥82॥

जिनवचन नियम से चित्त की स्थिरता, सुख-शांति, भव्यों के पुण्य व अशुभ से निवृत्ति का हेतु हैं॥76॥ अतः मेरी प्राणप्रिया! हर्षभाव से सावधान होकर सुनो। जिस प्रकार मैंने केवली भगवन् से सुना उसी प्रकार मैं कहता हूँ॥77॥ भोगभूमि का अवसान होने पर क्रमशः चौदह कुलकर हुए। उनमें प्रतिश्रुति नामक पहले कुलकर थे जो प्रजा के लिए हित मार्ग दिखाते थे॥78॥ उन सुपुण्यवान्, न्यायप्रिय महाराज की आयु पल्य के दसवें भाग और शरीर की ऊँचाई अट्टारह सौ धनुष थी॥79॥ भोगभूमि में सूर्य, चंद्र कभी दिखाई नहीं देते थे। पहले कभी न दिखने वाले उन सूर्य चंद्र को देखकर भयभीत हुई प्रजा को भय के नाश के लिए उनके स्वरूप को कहा॥80॥ उन्होंने बताया कि ज्योतिरङ्ग जाति के कल्पवृक्षों के प्रभाव से वे सूर्य-चंद्र प्रभावहीन थे अर्थात् कल्पवृक्षों के प्रकाश से उनका प्रकाश तिरोहित रहता था किन्तु अब कालदोष से उन ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों का प्रभाव मंद होने से ये दिखने लगे हैं। (इस प्रकार बताकर प्रजा को भय मुक्त किया)॥81॥ पुनः असंख्यात करोड़ वर्षों के अनंतर सन्मति नामक द्वितीय कुलकर हुए। उनकी आयु अमम के बराबर वर्षों की थी और शरीर की ऊँचाई तेरह सौ अर्थात् एक हजार तीन सौ धनुष थी॥82॥

226. गगणंगणे तारिगा, पस्सिय भीरू पया य संभंता।
पण्णवीअ जोदिरंग-पहाव-अइमंदादु दिट्ठा॥४३॥
227. पुणो असंखेज्ज-कोडि-वास-पच्छा खेमंकरो त्तिदियो।
अट्टपमाणं आउं, अट्टसया-धणू उच्छेहो॥४४॥
228. पयाइ पोसिदा भद्द-परिणामि-सीह-भेरुंडाइ-पसू।
घास-भक्खगा अहुणा, वियारी भीसण-सद्द-जुदा॥४५॥
229. कहिदं तदा भो जणा!, अविस्सस्सणीया काल-दोसेण।
णिल्लुंछेज्ज पसू ता, रक्खाइ णहदाढादीदो॥४६॥
230. असंखेज्ज - कोडि - वास - अणंतरं खेमंहरो चदुत्थो।
तुडिग-पमिदमाउं, पणहत्तरि-अहिय-सत्त-सय-धणू॥४७॥
231. कट्ट - लगुडादीहिं च, सीह - भेरुंडाइ - दुट्ट - पसूदो।
सग-रक्खणं दु तेणं, उवदिसिदं दयावंतेणं॥४८॥
232. पुण सीमंकर-पणगो, कुलयरो आउगं कमलपमाणं।
अवगाहणा पण्णास-णूण-अट्ट-सया धणू तस्सा॥४९॥

एक बार रात्रि में गगनांगन में तारों को देखकर प्रजा भ्रम में पड़ गयी और अत्यन्त भयभीत हुई। उन्होंने प्रजा को उपदेश दिया कि ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों का प्रभाव अतिमंद होने से ये दिखाई दे रहे हैं अतः भयभीत होने की आवश्यकता नहीं॥४३॥ पुनः असंख्यात करोड़ वर्ष पश्चात् क्षेमंकर नामक तीसरे मनु हुए। उनकी आयु अट्ट बराबर थी और शरीर की ऊँचाई आठ सौ धनुष की थी॥४४॥ पहले जो सिंह, चीता आदि पशु थे वे अत्यंत भद्र परिणामी थे, घास आदि खाते थे उनका पोषण प्रजा ही किया करती थी। किन्तु अब वे विकार को प्राप्त होने लगे अर्थात् मुँह आदि फाड़ने लगे और भयंकर शब्द करने लगे थे॥४५॥ तब उन्होंने प्रजा को भयमुक्त करने हेतु कहा हे प्रजाजनों! काल दोष के कारण अब ये पशु अविश्वसनीय हो गए हैं अतः पशुओं के नख, दाढ़ आदि से अपनी रक्षा के लिए उन्हें छोड़ दो॥४६॥ पुनः असंख्यात करोड़ वर्षों के अनंतर क्षेमंधर नामक चौथे कुलकर हुए। जिनकी आयु तुटिक प्रमाण वर्षों की थी और शरीर की ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष थी॥४७॥ उन दयावान् राजा ने लकड़ी-लाठी आदि के द्वारा सिंह, व्याघ्र आदि दुष्ट पशुओं से अपनी रक्षा करने का उपदेश दिया॥४८॥ पुनः असंख्यात करोड़ वर्षों पश्चात् सीमंकर नामक पाँचवें कुलकर हुए। उनकी आयु कमल प्रमाण वर्षों की थी और शरीर की अवगाहना सात सौ पचास धनुष थी॥४९॥

233. कप्परुक्खाण ताणं, फलाण अप्पत्तादो कुलयरेण।
करिदा सीमा ताणं, जणेसुं विवाद-संतीए॥90॥
234. छट्टमो सीमंधरो, कुलयरो णलिण-पमाणं आउं चा।
पणवीस-समहिद-सत्त-सया धणू हु देहुच्छेहो॥91॥
235. उवजुत्त-कारणेणं, अइ-कलह-पिट्टणादीण संतीइ।
सीमा करिदा ताणं, अणेग-रुक्ख-झाडादीहिं॥92॥
236. पउम-पमाणं आउं, सत्तसया धणू देहुच्छेहो या।
कुलयर-विमलवाहणो, सत्तमो सुपसंतो भद्दो॥93॥
237. अस्स - गयाइ - पसूण, अंकुस-तोत्तादीण पउत्तेणं।
उवरि आरोहणं चिय, उवदिसिदं विमलवाहणेण॥94॥
238. अट्टम-चक्खुस्माणो, पणहत्तरि-अहिय-छस्सया धणू या।
देहावगाहणा तह, आउगं पउमंग-पमाणं॥95॥

उस समय कल्पवृक्षों की संख्या अल्प रह गई और उनका फल भी अल्प हो गया अतः लोगों में विवाद होने लगा। तब इस विवाद की शांति के लिए उन कुलकर राजा ने कल्पवृक्षों की सीमा नियत कर दी अर्थात् इस स्थान तक के कल्पवृक्षों का प्रयोग इतने लोग करें और उस स्थान के कल्पवृक्षों का प्रयोग उतने लोग करें॥90॥ पुनः असंख्यात करोड़ वर्षों बाद सीमंधर नामक छठवें कुलकर हुए। उनकी आयु नलिन प्रमाण वर्षों की थी एवं उनके शरीर का उत्सेध सात सौ पच्चीस धनुष था॥91॥ उपर्युक्त कारण से ही अर्थात् जब कल्पवृक्ष व उसके फल बहुत अल्प रह गए तब लोगों में भारी कलह और मारामारी होने लगी अतएव शांति की स्थापना हेतु उन्होंने अनेक वृक्ष व झाड़ियों के द्वारा कल्पवृक्षों की सीमा कर दी॥92॥ इनके बाद असंख्यात करोड़ वर्षों पश्चात् विमलवाहन नामक सातवें कुलकर हुए जो अति प्रशांत व भद्र थे। उनकी पद्म प्रमाण आयु थी और शरीर की ऊँचाई सात सौ धनुष थी॥93॥ उन विमलवाहन कुलकर ने घोड़ा, हाथी आदि पशुओं पर अंकुश, तोत्र (सोंटा, चाबुक, डंडा या पेनिया) आदि के प्रयोग से चढ़ने व सवारी करने का उपदेश दिया॥94॥ पुनः असंख्यात करोड़ वर्षों के बाद चक्षुष्मान् नामक आठवें कुलकर हुए। उनकी आयु पद्मांग प्रमाण वर्षों की थी एवं उनके शरीर की अवगाहना छह सौ पचहत्तर धनुष थी॥95॥

239. अदिट्टपुव्व-संताण-मुहं खणं पस्सित्तु मिदा अहुणा।
अज्जा भीदा करिदा, भयमुक्का सम्मुवदेसेण॥96॥
240. कोडि-वास-अणंतरं, जसव्वाणो कुलयरो णवमो पुण।
कुमुद-पमाणं आउं, पण्णासणूणसत्तसया य॥97॥
241. तस्स उवदेसेणं दु, आसीवायं देच्चा णियसिसूण।
खणमेत्तं ठाइत्ता, परलोयगमणं सुह-जुगलं॥98॥
242. अहिचंदो दसम-मणू, पणवीस-समहिद-छस्सया धणू य।
देहुच्छेहो आउं, कुमुदंग-पमाणं दयालू॥99॥
243. तस्स सुउवदेसेणं, किड्ढाविदा तदा णियसंताणा।
पिदरेहि ससि-सम्मूहे, तम्हा णाम-सत्थगो तस्स॥100॥
244. कोडि-वास-अणंतरं, एयारसमो कुलयर-चंदाभो।
णउद-पमाणं आउं, छस्सया धणू य उच्छेहो॥101॥
245. णियसंताणेहिं सह, तदा सुहेणं जवंता अंतम्मि।
मरणं लहीअ पिदरो, आणंदेणं उच्छाहेण॥102॥

पहले लोग अपनी संतान का मुख नहीं देखते थे किन्तु अब वे क्षण भर मुख देखकर मृत्यु को प्राप्त होने लगे। उनके लिए यह नया था अतः वे आर्यजन भयभीत हुए। सम्यक् उपदेश के द्वारा उन कुलकर ने प्रजा को भय मुक्त कर दिया॥96॥ पुनः करोड़ों वर्ष व्यतीत होने पर यशस्वान् नामक नौवें कुलकर हुए। वे कुमुद प्रमाण आयु के धारक थे। उनके शरीर की ऊँचाई छह सौ पचास धनुष की थी॥97॥ उनके उपदेश से अब शुभ युगल अपनी संतानों को आशीर्वाद देकर और क्षण भर ठहरकर परलोक गमन किया करते थे॥98॥ इनके करोड़ों वर्षों बाद दयावान् अभिचंद्र नामक दशवें मनु हुए। वे कुमुदांग प्रमाण आयु के धारक थे और उनके शरीर की ऊँचाई छह सौ पच्चीस धनुष थी॥99॥ उस समय उनके उपदेश से माता-पिता ने चंद्रमा के सन्मुख अपनी संतानों को क्रीड़ा कराई अतः उनका अभिचंद्र नाम सार्थक था॥100॥ पुनः करोड़ों वर्ष बाद ग्यारहवें चंद्राभ नामक कुलकर हुए। इनकी आयु नयुत प्रमाण वर्षों की थी एवं शरीर की ऊँचाई छह सौ धनुष थी॥101॥ उनके समय में माता-पिता अपनी संतानों के साथ उत्साह, आनंद व सुख के साथ समय व्यतीत करते हुए अन्त में मरण प्राप्त करते थे॥102॥

246. जोग्ग-समय-अणंतरं, धणू पणहत्तरि-अहिय-पंचसया।
णउतंग-पमिद-माउं, मरुदेवो मणू बारसमो॥103॥
247. उप्पण्णा गिरी णदी, उवएसं णाव-चालणस्स देज्ज।
सिङ्गी-णिम्माणस्स य, मेहवरिसा अवि आढत्तो॥104॥
248. पुण तेरसम-कुलयरो, पसेणजिदो पव्वेगपमिदाउं।
पण्णास - णूण - छस्सय - धणू सुंदर - देहुच्छेहो॥105॥
249. जराउ-अणुकड्डणस्स, उवएसो दायिदो जम्मसमये।
बालग-सरीरादो हु, जुगपरिवट्टणसमयम्मि चिय॥106॥
250. चउदसम-णाहिरायो, एगकोडिपुव्वपमाणं आउं।
पणवीस-समहिद-पंच-सया धणू देहुच्छेहो य॥107॥
251. णाहिणालं दिस्सिदं, सुदुप्पत्तीइ सह तस्स यालम्मि।
तं हु सत्थगो णामो, उवदिसिदं तण्णिकत्तणं च॥108॥
252. धम्मवत्ताइ इत्थं, किच्चा चित्त-संतं सगपियाए।
जवीअ पुण्ण-सव्वरी, वत्थुसरूवं दंसंतेण॥109॥

योग्य समय व्यतीत होने पर मरुदेव नामक बारहवें मनु हुए। उनकी आयु नयुतांग प्रमाण वर्षों की थी एवं शरीर की अवगाहना पाँच सौ पचहत्तर धनुष थी॥103॥ उस समय पर्वत व नदियों की उत्पत्ति हुई। उन्होंने नाव चलाने का एवं सीढ़ी निर्माण का उपदेश दिया। मेघ की वर्षा भी प्रारंभ होने लगी थी॥104॥ पुनः प्रसेनजित नामक तेरहवें कुलकर हुए। उनकी आयु एक पर्व प्रमाण थी और शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पचास धनुष थी॥105॥ उस समय बालक जर सहित जन्म लिया करते थे। तब उन्होंने जन्म समय में बालक के शरीर से जरायु को खींचने का उपदेश दिया॥106॥ इसके पश्चात् नाभिराज नामक चौदहवें कुलकर हुए। उनकी आयु 1 कोटि पूर्व की थी और शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष थी॥107॥ उनके समय में संतान की उत्पत्ति के साथ नाभि की नाल दिखने लगी थी। उन्होंने उसे काटने का उपदेश दिया इसीलिए उनका नाभिराय नाम सार्थक था॥108॥ इस प्रकार धर्मवार्तापूर्वक वस्तु-स्वरूप को दर्शाते हुए राजा ने अपनी प्रिया का चित्त शांत कर पूर्ण रात्रि व्यतीत की॥109॥

253. किच्चा चदुत्थ-ण्हाणं, सगपदिणा सह एयदा सयीअ दु।
अइपेम्मजुदरायेण, भुंजिदं वर-भोय-मिंदोव्व॥110॥
254. कप्परुक्खं च सिंधू, चंदक्को विमाण-सुमेरू ताइ।
णिद्धूमग्गी णिसाइ, अंते सिविणाणि पस्सिदाणि॥111॥
255. सा सुपहादे पसण्ण-चित्तेण उक्कुसीअ रायणियडे।
फलाणि सगसिविणाणं, पुच्छीअ अइविणयभावेण॥112॥
256. तदा रायदरबारे, पुच्छिदाणि चिय सत्तसिविणफलाणि।
पुढविपदिणा कहिदाणि, णिमित्तणाणिणा सुहफलाणि॥113॥
257. कप्परुक्ख-दंसणादु, अइसुही य विउलविहवसंजुत्तो।
सिंधु-पस्सणादो तह, गंभीरो सुमज्जाइल्लो॥114॥
258. केवलणाणी लोयालोयपयासगो मिहिर-णिअणादो।
चंद-पुलोअणादो य, सुहदो सगसमीवत्थाणं॥115॥
259. सुमेरू-णिअच्छणादो, णिच्छलो अकंपो रयणत्तयम्मि।
सुरविमाण-णिअणादो, अवयरेज्ज चयित्तु सग्गादु ॥116॥
260. भो राओ! तव पुत्तो, णिस्संदेहो खयिय सव्वकम्मं।
भोत्ता मोक्खलच्छीइ, णिद्धूमग्गि-आलोअणादु॥117॥ (चउक्कं)

एक बार चतुर्थ दिन स्नान करके उसने अपने पति के साथ शयन किया एवं अति प्रेम से युक्त राजा ने इंद्र के समान उत्तम भोगों को भोगा॥110॥ रात्रि के अंत में महारानी विद्युत्प्रभा ने स्वप्न में कल्पवृक्ष, सागर, चंद्र, सूर्य, देवविमान, सुमेरुपर्वत व निर्धूम अग्नि को देखा॥111॥ वह रानी प्रातःकालीन बेला में प्रसन्नचित्त होकर राजा के निकट गयी एवं अति विनयभाव से राजा से अपने स्वप्नों का फल पूछा॥112॥ तब राजा ने निमित्तज्ञानी से राजदरबार में रानी द्वारा देखे गए सात स्वप्नों का फल पूछा एवं निमित्तज्ञानी ने उन शुभ फलों को इस प्रकार कहा॥113॥ हे राजन्! कल्पवृक्ष को देखने से आपको पुत्र की प्राप्ति होगी जो अति सुखी और विपुल वैभव से युक्त होगा। समुद्र को देखने से वह गंभीर और मर्यादित होगा। सूर्य को देखने से वह लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञानी होगा। चंद्र को देखने से वह पुत्र अपने समीपस्थों के लिए सुख देने वाला होगा। सुमेरु पर्वत को देखने से वह पुत्र

261. फलाणि सव्वसिविणाण, आयण्णिता अइ-आणंद-जुदा।
पुत्तपत्तीव होज्जा, तक्खणम्मि महाराणी सा॥118॥
262. गब्भसंविद्धीइ सह, सुहसंतिरायविहव-धणधण्णाण।
विद्धी वि तत्थ देसे, अइ-हरिसाइया सव्वपया ॥119॥
263. तदा णवमासा गदा, सिग्घं खणं व अइ-आणंदेणं।
पुण्णोदये को वि णो, जाणेदि गच्छमाण-यालं॥120॥
264. गच्छिद-एगखणं अवि, अइसंकिलेस-भावेहि भासेदि।
तिव्वपावोदयम्मि दु, अइ-कट्टेणं एगजुगोव्व॥121॥
265. पुण्णाहे सुहजोगे, सुणक्खत्ते चंदे सगगिहीए।
गुरुम्मि उच्चे सुह-गयकेसरि-जोगे तह केंदम्मि॥122॥
266. मेसे दिवायरम्मि य, भूपुत्तम्मि दसमरासीए सदि।
सणीइ कुंभरासीइ, राहु-केदूसु सुहठाणेसु॥123॥
267. बुहे मिहुणरासीए, सुक्के सत्तमभावे रासीए।
सव्वगिहेसु सुठिदीसु, इत्थं सुहाणंद-वड्डुगो॥124॥

रत्नत्रय में पर्वत के समान निश्चल, अकंप होगा। देव विमान को देखने से ज्ञात होता है कि आपका पुत्र स्वर्ग से चयकर यहाँ जन्म लेगा। हे राजन्! निर्धूम अग्नि को देखने से आपका पुत्र निःसंदेह सर्व कर्मों का क्षय कर मोक्ष लक्ष्मी का भोक्ता होगा॥114-117॥ इस प्रकार स्वप्नों के फल को सुनकर वह महारानी विद्युत्प्रभा इस प्रकार आनंदित हुई मानों कि उसे उसी क्षण पुत्र की प्राप्ति हो गयी हो॥118॥ जैसे-जैसे महारानी के गर्भ की वृद्धि हो रही थी वैसे-वैसे उस देश में सुख, शांति, राजवैभव, धन, धान्य की वृद्धि हो रही थी। वहाँ समस्त प्रजा भी अति हर्षित थी॥119॥ उस समय नव मास एक क्षण के समान शीघ्र ही अति आनंद के साथ व्यतीत हो गए। ठीक ही कहा है कि पुण्योदय में व्यतीत होते हुए काल का पता किसी को नहीं लगता॥120॥ तथा तीव्र पापकर्म के उदय में अति कष्ट से व अति संक्लेश भावों से व्यतीत हुआ एक क्षण भी एक युग के समान प्रतिभासित होता है॥121॥ शुभ दिन, शुभ योग, शुभ नक्षत्र में जब चन्द्र स्वग्रही अर्थात् कर्क राशि पर था, गुरु उच्च का अर्थात् कर्क राशि पर था, केंद्र में दोनों के साथ होने से गजकेसरी योग था॥122॥ सूर्य मेष राशि में था अर्थात् उच्च

268. अदिसयसुपुण्णवंतो, पुत्तो जादो चिय रायभवणम्मि।
सोगविहीणो य सुगुण-जुत्तो संतिदो मंगल्लो॥125॥ (तिअं)



269. तं दायिदं सुणामं, सत्थग-मसोगो रायकुमारस्स।
णिमित्तणाणिणा तदा, सुहउच्छवे अइहरिसेणं॥126॥

270. पालण-पोसणत्तादु, किच्छं णेव विजाणीअ कुमारो।
सव्वसुहभोत्ता तहा, तिप्पो विणओ य णिब्भीओ॥127॥

का था, मंगल दसवीं राशि-मकर राशि पर उच्च का था। शनि कुंभ राशि का अर्थात् स्वग्रही था एवं राहु-केतु भी शुभ स्थानों पर थे। बुध मिथुन राशि पर अर्थात् स्वग्रही था। शुक्र सप्तम भाव में स्व राशि पर था। इस प्रकार सभी ग्रहों के शुभ स्थानों पर होने से सुख व आनंद की वृद्धि करने वाले अतिशय पुण्यवान् पुत्र ने राजभवन में जन्म लिया। वह पुत्र शोकविहीन, सुगुणों से युक्त, शांति को देने वाला व मंगलकारी था॥123-125॥ अतः शुभ जन्म उत्सव में अतिहर्ष से निमित्तज्ञानी के द्वारा उस राजकुमार का अशोक यह सार्थक नाम दिया गया॥126॥ श्रेष्ठ पालन-पोषण होने से राजकुमार किसी दुःख को नहीं जानता था। वह सभी सुखों का भोक्ता, संतुष्ट, विनयी और निर्भीक था॥127॥

271. सेट्टपाढगादो बहु-सुविज्जाहि सुसक्कारिदो कलाहि।
अइर पावीअ विज्जं, वर-खओवसम-जुत्तादो दु॥128॥
272. पावीअ अप्पयाले, सण्णाण-समण्णद-सेट्टसिक्खं दु।
सुपुण्णवंताणं किं, इट्ठत्थं दुल्लहं लोए॥129॥
273. णेव विवेगरित्तदा, बालयाले वि तम्मि अणुकंवो या।
किदण्णू अणुअत्तयो, वुड्ढधी विज्जज्झयणेणं॥130॥
274. चंदकला जह वड्ढदि, देदि सीयलत्तं सुहं सव्वाण।
वड्ढंतो असोगो वि, सुह-कारणं तह सव्वाणं॥131॥
275. संगठिद-चमू व्व तम्मि, असंखगुणा जयिदुं विरोहिचमुं।
दोसचमुं रोहेदुं, सरयचंदामलमरीई दु॥132॥
276. दुहद-वसणेहिं तस्स, चित्तं अवहरिदं दु णेव कया वि।
अब्भंतर-सत्तुजयी, मणस्सी य णिव्विआरी सो॥133॥

श्रेष्ठ क्षयोपशम होने से राजकुमार ने श्रेष्ठ पाठक (शिक्षक) से शीघ्र ही विद्या प्राप्त की। वह राजकुमार बहुत सी श्रेष्ठ विद्याओं व कलाओं के द्वारा सुसंस्कारित था॥128॥ अल्पकाल में ही उसने सम्यग्ज्ञान से समन्वित श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त की। उचित ही है कि पुण्यवानों के लिए कौन सी इष्ट वस्तु लोक में दुर्लभ है? अर्थात् कोई नहीं॥129॥ वह राजकुमार बाल्यावस्था में भी विवेकहीन नहीं था। वह कृतज्ञ, अनुकूल आचरण करने वाला था। विद्या अध्ययन से उसकी बुद्धि परिपक्व हो गयी थी॥130॥ जिस प्रकार चंद्रमा की कला वृद्धिगत होती है तब वह सभी के लिए सुख व शीतलता प्रदान करती है उसी प्रकार बढ़ता हुआ अशोक भी सभी के लिए सुख का कारण था॥131॥ जैसे एक सेना अपनी विरोधिनी सेना को जीतने के लिए आपस में संगठित होती है व विरोधी सेना का प्रतिकार करती है उसी प्रकार शरत्कालीन चंद्रमा की किरणों के सामान निर्मल व कीर्ति उत्पन्न करने वाले असंख्यात् गुण मानो दोषों की सेना को रोकने के लिए उस राजकुमार के भीतर संगठित हुए थे॥132॥ दुःखद व्यसनों ने उसके चित्त का हरण कभी नहीं किया था। वह आंतरिक शत्रुओं को जीतने वाला मनस्वी व निर्विकारी था॥133॥

277. तिब्बवेगजुदसरिदा, जह जह वहदे य तह तह वड्ढेदि।
गुणलंकिद-वड्ढंतो, गुणणंद-वड्ढण-कारणं च॥134॥
278. जोवणम्मि पविसंतो, असोगो ससिविमाणस्स इंदोव्वा।
तस्स बल-बुद्धि-कंती, रूव-लावण्णादी सुहदा॥135॥
279. गुणुप्पण्णो मणोण्णो, अणुराय-उप्पायगो जसो तस्सा।
सुरभिद-जणणुरायकर-कुमुदं व दु रायकुमारस्सा॥136॥

शार्दूल विक्रीडित छंद

280. णिव्वेरो सुहणीदिपालग-गुणी धम्मस्स संपालगो,
दोसादोस-वियारगो दु सददं णिग्गंथभत्तो जसो।
णिच्चं जेण्हसुसासणे अणुरदो सक्कार-संवड्ढगो,
मेत्तिदाणदयाखमाहि सहिदो विस्सस्स खेमंकरो॥137॥



तीव्र वेग से युक्त सरिता जैसे-जैसे आगे प्रवाहमान होती है, वैसे-वैसे वृद्धि को प्राप्त होती है। उसी प्रकार जैसे-जैसे अशोक वृद्धिगत हो रहा था वैसे-वैसे गुणों से अलंकृत हो रहा था। वह सभी के लिए गुण व आनंद की वृद्धि का कारण था॥१३४॥ यौवनावस्था में प्रवेश करता हुआ राजकुमार अशोक चंद्र विमान के इंद्र के समान प्रतिभासित हो रहा था। उसका बल, बुद्धि,

281. विस्सासी सुदयाउसे सुहमणो णम्मो पयावच्छलो,
गंभीरो रयणायरोव्व णिउणो कत्तव्वणिट्टो सया।
णिक्कंखी जिणुवासगो सुहरदो सव्वेहि लब्धायरो,
सो सीहोव्व सुविक्कमी मणहरो सत्थाणुरायी मिदू॥138॥

कांति, रूप, लावण्य आदि सुख प्रदान करने वाला था॥135॥ जिस प्रकार कुमुद सुगंधित एवं लोगों के अनुराग को उत्पन्न करने वाला होता है उसी प्रकार उस राजकुमार का यश उसके गुणों से उत्पन्न, मनोज्ञ और प्रजाजनों के अनुराग को उत्पन्न करने वाला था॥136॥ वह किसी के प्रति भी बैर से रहित, शुभ नीतियों का पालन करने वाला, गुणी, धर्म-पालक, निरंतर दोष व गुणों का विचार करने वाला, निर्ग्रन्थ गुरुओं का भक्त, यशस्वी, जैन शासन में अनुरत, संस्कारों का संवर्द्धन करने वाला, मैत्री, दान, दया, क्षमा आदि गुणों से सहित एवं विश्व के लिए कल्याणकारी था॥137॥ वह राजकुमार अशोक श्रेष्ठ अहिंसाधर्म में विश्वास रखने वाला था, शुभ मन वाला अर्थात् शुभ परिणामों से युक्त था। वह विनम्र, प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाला, रत्नाकर के समान गंभीर, सर्व कार्यों में दक्ष, अपने कर्तव्यों का निष्ठा से पालन करने वाला, सर्व आकांक्षाओं से रहित संतुष्ट था। वह जिनेंद्रप्रभु का उपासक, पुण्य कार्यों में रत, सभी के द्वारा आदर को प्राप्त, सिंह के समान विक्रमी, अपनी चेष्टाओं व गुणों से सभी का मन हरण करने वाला, शास्त्रों का अनुरागी एवं कोमल वाणी, व्यवहार व मन वाला था॥138॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में अशोक की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला द्वितीय नंद पूर्ण हुआ।

तिदिय-णंदो

282. अस्मि भरदखेत्तम्मि, सुसोहिदो दु अंगणामयदेसो।
उसहदेवस्स सुदस्स, सुप्पसिद्धो अंगणामेण॥1॥
283. अंगदेसो पवित्तो, कल्लाणमही दु महापुरिसाणं।
गब्भ-सुजम्मतवणाण-णिव्वाणाहि चिय धण्णा सा॥2॥
284. मम पडिवक्खिया अत्थ, णिवसेज्ज धणधणसंपदादी या
विवत्ती असूयाए, अवयज्जेदि णेव दु तम्हा॥3॥
285. सुधण-धण्ण-रयण-धादु-उप्पायणेण देसो संपण्णो।
तम्हा जहट्टणामा, वसुमदी जादा तक्काले॥4॥
286. अग्गिमंदिर-समीवे, मंदारणगस्स अहवा देसस्स।
चंपापुर - णयरी विक्खादा रायहाणी दु अस्स॥5॥
287. दिवस्स अमरावदीव, देसो पुण्णवंतमाणुसजुत्तो।
मघवाचक्कीव विहवजुत्तो मघवा महाराओ॥6॥

इस भरत क्षेत्र में ही अंग नामक देश सुशोभित था, जो श्री वृषभदेव के पुत्र अंग के नाम से सुप्रसिद्ध था॥1॥ अंग देश एक पवित्र देश था। वह महापुरुषों के गर्भ, सुजन्म, तप, ज्ञान व निर्वाण द्वारा धन्य कल्याणभूमि थी॥2॥ यहाँ लोगों के पास मेरी विरोधिनी (सौत) धन-धान्य, संपदा आदि निवास करती है, मानो इसी ईर्ष्याभाव के कारण विपत्ति वहाँ किसी मनुष्य की ओर देखती तक नहीं थी॥3॥ वह देश श्रेष्ठ धन-धान्य, रत्न, धातु आदि के उत्पादन से संपन्न था अतः तत्काल में वहाँ की वसुमती अर्थात् भूमि का, वसुमती अर्थात् धन वाली नाम सार्थक हो गया॥4॥ अंग देश के अग्निमंदिर वा मंदारगिरी पर्वत के निकट इसकी राजधानी चंपापुर नगरी विख्यात थी॥5॥ स्वर्ग की अमरावती के समान शोभायमान वह देश पुण्यवान् मनुष्यों से संयुक्त था। वहाँ का महाराजा मघवा, मघवा अर्थात् इंद्र के समान अथवा चक्रवर्ती के समान वैभव से युक्त था॥6॥

288. अस्स देसस्स सोहा, विदेहस्स सुह-सुसीमाणयरीव॥
पुण्णवंताण जत्थ, सहजसंजोगो पुण्णेणं॥7॥
289. पुण्णवंत-पुरिसाणं, सामी अवि अच्चंत-पुण्णवंता।
उण्ह-वेस्साणरस्स वि, पहावो य दिस्सदे उण्हो॥8॥
290. जह रसालरुक्खेसुं, रसालो दाडिमो दाडिमतरूसु।
गवेसेज्जा णरो तह, मित्तं कत्थ वि भाविल्लं॥9॥
291. तिच्चपावकम्मदये, सीददे जीवो चउकसायेहिं।
चउविह-अणिट्ठ-वत्थुं, तादो पावेदि बहुदुक्खं॥10॥
292. चउगदीसु भमंतो सय, णेव लहेज्जा चउपुरिसट्ठफलं।
अज्जदि पुण्णुदये बहुपुण्णं सुकिदेहि णरो किण्णु॥11॥
293. तम्मि देसे विहरेज्ज, सूरी पाढगा णिगगंथसाहू।
णियधम्मं सङ्काए, पालीअ अविरद-देसवदी॥12॥
294. गंधरायेण पुप्फं, पडि फुल्लंधया अहिपच्चुअंते।
धम्मभावेण धम्मी, जह तह मुणिवरा पडि णिच्चं॥13॥

इस देश की शोभा विदेह क्षेत्र की सुसीमा नगरी के समान थी, जहाँ पुण्यवानों का पुण्य से सहज संयोग था॥7॥ पुण्यवान् पुरुषों के स्वामी भी अत्यंत पुण्यवान् होते हैं। सही है उष्ण अग्नि का प्रभाव भी उष्ण ही दिखता है॥8॥ जैसे आम्र के वृक्षों पर आम, अनार के वृक्षों पर अनार ही होते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी अपने स्वभाव वाले मित्र को खोज ही लेता है। अर्थात् जो जैसा होता है वह वैसा मित्र खोज लेता है॥9॥ तीव्र पापकर्म के उदय में जीव चारों कषायों से दुःखी होता है इसलिए वह द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव रूप चार प्रकार की अनिष्ट वस्तुएँ एवं बहुत दुःख प्राप्त करता है॥10॥ वह पापी जीव यहाँ चारों गतियों में भ्रमण करते हुए चारों पुरुषार्थ के फल को नहीं प्राप्त करता। किंतु पुण्य के उदय में जीव अच्छे पुण्य कार्यों के द्वारा बहुपुण्य का अर्जन करता है॥11॥ उस देश में आचार्य, उपाध्याय, निर्ग्रन्थसाधु विहार करते रहते थे। वहाँ सभी देशव्रती व सम्यग्दृष्टि श्रावक श्रद्धा से अपने धर्म का पालन करते थे॥12॥ जिस प्रकार गंध के राग से भँवरे पुष्प की ओर खिंचे चले आते हैं उसी प्रकार धर्मभाव से धर्मि जन नित्य ही मुनिराज की ओर खिंचे चले आते थे॥13॥

295. बहुहा णरा तिरिया वि, सद्धिटी अणुव्वदी सव्वदा या
करीअ सगकत्तव्वं, दयाइ-पालणं जिणपूयं॥14॥
296. सुगंथाण-मज्झयणं, दाणं पडि सुह-पडिप्फहा तत्था।
सत्तीए उववासं, सीलपालणं करीअ सया॥15॥
297. कुणित्था तित्थजत्तं, परोवयारं तह वेज्जावच्चं।
महामंत-जवं तदो, पावं णेव तत्थ पस्सेज्ज॥16॥
298. जिणजत्तं महुच्छवं, णिम्माणं जिणबिंबागाराणं।
धम्मो पुण्णजणेसुं, वरिसोव्व दु पाविडयालम्मि॥17॥
299. इक्खुस्स सव्वंगेसु, होदि महुरिमा जह तह णियमेणं।
पुण्णवंताण सोक्खं, पुण्णेणं सव्वपयारेण॥18॥
300. राणी सुपुण्णवंता, अब्दंगिणी सुहा तस्स रायस्स।
पदिअणुगामिणी कला-विज्जाजुत्ता गुणी विणया॥19॥
301. महुरभासिया धम्मी, कत्तव्वणिट्ठा य णंदमुत्तीवा।
सिरीव दु सिरिमदी सा, मणोहरा सुवच्छल्लणिही॥20॥



302. कवोलमंडल-गोरं, मदणेण मिअंगोव्व सेट्टवत्तं।
लावण्ण-सायरस्स दु, इंदू व्व सहासफेणो तं॥21॥
303. तं लहिय मघवा सगं, मण्णेज्जा इंदोव्व पुण्णवंतो।
रायस्स हियमंदिरे, लच्छीव सोहग्गिआ हंदि॥22॥
304. सव्वदा ताण चित्तं, परोप्पर-णेह-विस्सास-णिबद्धं।
जसवंत-अट्टपुत्ता, सिरिवालो तहा गुणवालो॥23॥
305. वसुवाल-पयावाला, वयवालो सिरिहरो गुणहरो या
जसोहरो सिद्धाणं, अट्टगुणा व सुप्पसिद्धा दु॥24॥ (जुम्मं)

बहुधा नर व तिर्यच अणुव्रती व सम्यग्दृष्टि थे। श्रावकजन सदा ही दया आदि का पालन, जिनपूजन इत्यादि अपने कर्तव्यों को करते थे॥14॥ समीचीन-सम्यग्ज्ञान से समन्वित ग्रंथों के अध्ययन व दान के प्रति लोगों में शुभ प्रतिस्पर्द्धा थी। वे सदा शीलधर्म का पालन व शक्तिपूर्वक उपवास किया करते थे॥15॥ वहाँ के मनुष्य तीर्थयात्रा, परोपकार, वैय्यावृत्य एवं महामंत्र की जाप करते थे। वहाँ पाप तनिक भी दृष्टिगोचर नहीं होता था॥16॥ वे लोग जिनयात्रा, धर्ममहोत्सव एवं जिनबिंबों व जिनालयों का निर्माण किया करते थे। जिस प्रकार प्रावृट्काल (वर्षाकाल) में वर्षा होती है उसी प्रकार पुण्यजनों में धर्म की वर्षा हुआ करती थी॥17॥ जिस प्रकार इक्षु दंड के सर्वांग में मधुरता होती है उसी प्रकार पुण्यवानों के पुण्य से सर्व प्रकार से सुख होता है॥18॥ उस राजा की अर्द्धांगिनी रानी शुभा, सुपुण्यवती, पति की अनुगामिनी, कला व विद्या से युक्त, गुणी और विनयी थी॥19॥ वह रानी श्रीमती श्री (लक्ष्मी) के समान, मधुर-भाषिणी, धर्मिष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा, आनंद की मूर्ति के समान मनोहरा व सुवात्सल्य की निधि थी॥20॥ उसका कपोल मंडल गोरा था कामदेव ने उसे और भी गोरा कर दिया था अतएव उसका श्रेष्ठ मुख चंद्रमा के समान दिखायी देता था। वह साक्षात् लावण्य का समुद्र ही थी। उसका मंदहास उसमें फेन का स्थान ले रहा था॥21॥ उसको पाकर राजा मघवा स्वयं को इंद्र के समान पुण्यवान् मानता था। राजा के हृदय मंदिर में वह सौभाग्यवती शोभायमान थी॥22॥ उनका चित्त सर्वदा परस्पर स्नेह और विश्वास से निबद्ध था। उनके यशवान् आठ पुत्र थे—श्रीपाल, गुणपाल, वसुपाल, प्रजापाल, व्रतपाल, श्रीधर, गुणधर और यशोधर। सिद्धों के आठ गुणों के समान ये आठों पुत्र प्रसिद्धि को प्राप्त थे॥23-24॥

306. सिद्धीव एगपुत्ती, आणंदकारगा रोहिणी ताण।
सव्वगुणेहिं जुत्ता, धम्मिष्ठा साणुक्कोसा य॥25॥
307. चउसट्टि-कलाजुत्ता, सुंदरिमाए कमणीया रम्मा।
पुण्णणीर-सुपूरिदा, सुसोहिदा मिअंग-जुणहा व॥26॥
308. पसंत-रोहिणीए दु, हासुज्जलजुणहाइ पुण्णजगदी।
णिम्मलजुडमंता चिय, सुहायरम्मि अत्थे ताए॥27॥
309. मिगणयणी दु ससलंछणोव्व कंती णवरि लंछणहीणा।
देहो य णमणसीलो, कोमलो सुमरधणुलयणं व॥28॥
310. ताए रूवविहवेण, पराइदो उक्कोसेण पुण्णेण।
जीहंत-कामदेवो, विलिज्जित्तु अदेहो जादो॥29॥
311. ससंगकला व कण्णा, वड्ढेज्ज णिम्मला सणिअं सणिअं।
पस्सिय जोवणवत्थं, ताइ रदी वि कुणीअ इस्सं॥30॥

उनके आनंद की कारणभूत रोहिणी नामक एक पुत्री थी जो सिद्धि के समान ही थी। वह सर्वगुणों से युक्त, धर्मिष्ठ एवं दयावान् थी॥25॥ वह चौंसठ कला से युक्त, सौंदर्य से संयुक्त, कमनीया, मनोरमा, सुपुण्य नीर से परिपूरित एवं चंद्रमा की चांदनी के समान सुशोभित थी॥26॥ चंद्रमा के अस्त होने पर भी उस प्रशांत रोहिणी की मुस्कान से संपूर्ण पृथ्वी तल प्रकाशमान् था॥27॥ वह मृगनयनी थी, उसकी कान्ति चंद्रमा के समान थी किन्तु उसमें कभी लांछन (कलंक) नहीं था। उसका शरीर कामदेव की धनुर्वल्लरी के समान नमनशील और कोमल था॥28॥ उस रोहिणी के रूपवैभव, उत्कर्ष व पुण्य से पराजित होकर कामदेव शर्माता हुआ उसमें ही विलीन होकर देह रहित हो गया॥29॥ चंद्रमा की कला के समान वह निर्मल कन्या शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त हो रही थी। उसकी यौवन अवस्था को देखकर रति भी उससे ईर्ष्या करने लगी थी॥30॥

312. अज्जिगाए कण्णाइ, सुसिक्खा चिय आयामिदा ताए।
सुगंधोव्व पुप्फम्मि हु, कण्णाए बहु-सुविज्जाओ॥31॥
313. जुण्हा दु सीयला जह, चंदणं सुगंधिदं गुडो मिट्ठं।
अग्गी उण्हो अक्को, पयासगो चिय सहावेणं॥32॥
314. कडुओ णिंबं खारो, लवणो तहा सज्जणो खलु विणदो।
तह पुव्वपुण्णादो य, रोहिणी बहुगुणसंजुत्ता॥33॥ (जुम्मं)
315. पिदर-सुसक्कारेहिं, कल्लाकल्लिं सुहभत्तीए सा।
जिणच्चणाइं दु कडुअ, णिरुवारेज्जा कल्लवत्तं॥34॥
316. एयदा रोहिणीए, जिणचेइयालयं पच्छंदिदूण।
कुव्विदा जिणदेवस्स, संपुण्णंगजुत्ता पूया॥35॥
317. णिट्ठ-जिणभत्ताए दु, जिणभत्ति-रायेण पूयंताए।
अदिसय-पुण्णकम्माण, आसवो करिदो पुलोमीव॥36॥
318. पूयं कुव्वंताए, अंगमंगं पुलआएज्जा ताइ।
अदिसय-उद्धुसियाए, वत्तं विअसिद-मुप्पलिणीव॥37॥

उस श्रेष्ठ कन्या ने आर्यिका माता जी से सुशिक्षा ग्रहण की। जैसे पुष्प में सुगंध होती है वैसे ही उस कन्या में बहुत सी श्रेष्ठ विद्याएँ थीं॥31॥ जैसे चाँदनी स्वभाव से शीतल, चंदन सुगंधित, गुड़ मीठा, अग्नि ऊष्ण, सूर्य प्रकाशक होता है, नीम कड़वा, नमक खारा और सज्जन विनयी होते हैं उसी प्रकार पूर्व पुण्य से रोहिणी स्वभावतः बहुत गुणों से युक्त थी॥32-33॥ माता-पिता के सुसंस्कारों से वह कन्या प्रतिदिन शुभभक्ति पूर्वक जिनेंद्रप्रभु की अर्चना करके ही जलपान ग्रहण करती थी॥34॥ एक बार की बात है रोहिणी ने जिनचैत्यालय जाकर श्री जिनदेव की संपूर्ण अंगों से युक्त पूजा की॥35॥ उस निष्ठ-जिनभक्ता ने जिनभक्ति के अनुराग से इंद्राणी के समान जिनदेव की पूजन करते हुए अतिशय पुण्य कर्मों का आस्रव किया॥36॥ जिनपूजा करते हुए उस रोहिणी का अंग-अंग पुलकित हो जाता था। अतिशय रोमांचित उस राजकुमारी का मुख खिली हुई कमलिनी के समान था॥37॥

319. जिणच्चणं किच्चा पुण, सेसक्खदं गंधोदग-मोग्गहिया।
णियजणगसमीवे सा, पहुच्चीअ हरसिद-चित्तेण॥38॥



320. मिट्ठिट्ठसिद्धा मणोहरा-ललिअ-हियपिय-वाणी ताए।
सुसक्कार-कयंबिदा, ललंत-चंदचंचलकरोव्व॥39॥

321. अहुणा विवाह-जोग्गा, सुसक्कारजुदसुंदरिमामुत्ती।
णियगुणवंतं पुत्तिं, पस्सिय वियारिदं णिवेणं॥40॥

जिनेंद्र भगवान् की अर्चना कर वह शेषाक्षत और गंधोदक को लेकर प्रसन्नचित्त से अपने पिता के निकट पहुँची॥38॥ उसकी वाणी मिष्ट, इष्ट, शिष्ट, मनोहारिणी, मधुर, विनीत, हितकर व प्रिय थी। वह सुसंस्कारों से अलंकृत एवं विलास करती हुई चंद्रमा की चंचल रश्मि के समान थी॥39॥ सुसंस्कारों से युक्त, सौंदर्य की मूर्ति मेरी यह पुत्री अब विवाह योग्य हो गई है, इस प्रकार अपनी गुणवती पुत्री को देखकर राजा ने विचार किया॥40॥

322. पुण परिणय-संबंधे, वियारिदं रायेण राणीइ सह।
राणीइ मणोभावं , तदा बोहिदूण-माहविदं॥41॥
323. ससेट्ट - मंतिमंडलं, परामरिसस्स विप्पसिअंतेणं।
पुत्तिं पडि जणगस्स दु, कत्तव्वपालणाय लोए॥42॥ (जुम्मं)
324. सुमदि-पहाणमंतिणा, णिवेदिदं सम्मुहम्मि भूवदिस्स।
देज्ज सुजोग्गवरस्स दु, सुकण्णं सयंवर-विहीए॥43॥
325. विदियो मंती रवीअ, रायो! इमो हु उत्तमो वियारो।
इमादो अण्ण-णिवान, वि होज्ज तुमं पडि सुहभावो॥44॥
326. गुणजुदसुंदरिमाए, मुत्तिं णिउणं बहुविज्जाकलासु।
सेट्टकण्णारयणं ण, विलुंपदि गुणाणुरायी को?॥45॥
327. धणत्थी अप्पधणं वि, णेव णिल्लुंछेदि सहजदाए दु।
तो अपुव्वणिहिरूवं कण्णारयणं को मिल्लेज्ज?॥46॥
328. सुदसायराइ - णिम्मलबुद्धिधारग - मंतीहिं इत्थं दु।
परामरिसिदं जम्हा, णिवं पडि सोहदं सव्वाण॥47॥

पुनः पुत्री के परिणय के संबंध में राजा ने रानी के साथ विचार-विमर्श किया। रानी के मनोभावों को समझकर राजा ने प्रसन्न होते हुए लोक में पुत्री के प्रति पिता के कर्तव्य पालन के लिए विवाह संबंधी परामर्श हेतु अपने श्रेष्ठ मंत्रीमंडल को बुलाया॥41-42॥ राजा मघवा के सम्मुख सुमति नामक प्रधानमंत्री ने निवेदन किया कि हे राजन्! इस श्रेष्ठ कन्या को स्वयंवर विधि से ही सुयोग्य वर के लिए देना चाहिए॥43॥ तब दूसरे मंत्री ने भी कहा—हाँ महाराज! यह विचार उत्तम है। इससे अन्य राजाओं को भी आपके प्रति शुभ भाव होगा॥44॥ गुणों से युक्त, सौंदर्य की मूर्ति एवं बहुत विद्या व कलाओं में निपुण श्रेष्ठ कन्या-रत्न को कौन गुणानुरागी नहीं चाहता? अर्थात् सब उसकी अभिलाषा करते हैं॥45॥ धन का आकांक्षी अल्प धन भी सहजता से नहीं छोड़ता फिर ऐसी अपूर्व निधि रूप कन्या रत्न को कौन छोड़ेगा अर्थात् कोई नहीं॥46॥ इस प्रकार श्रुतसागर आदि निर्मल बुद्धि के धारक मंत्रियों के द्वारा परामर्श किया गया क्योंकि राजा के प्रति सभी का सौहार्द होता है॥47॥

329. ता णीदी आढविदा, तिदिययालंते णिव-अकंवणेण।
भरदखेत्ते अज्जं वि, विज्जमाण - सयंवरणीदी॥48॥
330. सयंवरविही सेट्टा, माणणीया रायपरिवारेसुं।
तुमं तं वरं णीदिं, रोहिणीए पडिसंधेज्जा॥49॥
331. संगच्छिदो णिवेणं, परामरिसो दु उग्घोसाविदं चा।
हवेज्जा पाणिग्रहणं, सयंवरविहीइ रोहिणीइ॥50॥
332. कुणिदं विवाहलग्गं, सुणिच्छिदं तदा रायपुरोहेण।
उक्किट्ट-मुहुत्तम्मि य, सयंवरसहाइ पुण्णाहे॥51॥
333. अणेग-णिवा कुमारा, आमंतीअ अच्चंत-आयरेण।
पट्टविय रायदूदा, णिउणा रायकज्जसिद्धीइ॥52॥
334. सयंवरं गच्छेदुं, उच्छाहेण तप्परा सव्वजणा।
तस्स अइ-उच्छाहम्मि, चित्तविचित्तचेट्टा ताणं॥53॥
335. खिविदा णिय णावा खलु, केणं दु विवरीयदिसाए तदा।
पुच्छणे अण्णुत्तरा, केणं कुद्धिदं रुक्खादो॥54॥
336. काइ भाले कज्जलं, काइ णारीइ बिंदी णासिगाइ।
कण्णफूलं करेसु, धारिदं करफूलं कण्णे॥55॥

पुनः एक मंत्री ने कहा हे राजन्! वह स्वयंवर नीति तृतीय काल के अंत में राजा अकंपन के द्वारा प्रारंभ की गई थी। भरतक्षेत्र में आज भी स्वयंवर नीति विद्यमान है॥48॥ राजपरिवारों में माननीय यह स्वयंवर विधि श्रेष्ठ है अतः रोहिणी के लिए आपको उस श्रेष्ठ नीति को स्वीकार करना चाहिए॥49॥ राजा ने उन मंत्रियों के परामर्श को स्वीकार किया एवं घोषणा करायी कि रोहिणी का पाणिग्रहण संस्कार स्वयंवर विधि से होगा॥50॥ तब राजपुरोहित ने स्वयंवर सभा के लिए उत्कृष्ट मुहूर्त व शुभ दिन में विवाह लग्न सुनिश्चित किया॥51॥ राजकार्य की सिद्धि में कुशल राजदूतों को भेजकर अत्यंत आदर के साथ अनेक राजाओं व राजकुमारों को स्वयंवर हेतु आमंत्रित किया गया॥52॥ स्वयंवर में जाने के लिए सभी लोग अति उत्सुकता से तत्पर थे। जाने के अतिउत्साह में उस समय उनकी चेष्टाएँ चित्र-विचित्र हो रही थीं॥53॥ तब किसी ने अपनी नाव विपरीत दिशा में बहा दी, किसी के द्वारा पूछे जाने पर किसी ने कुछ और ही उत्तर दिया। अरे कोई ऊँचे पेड़ से यूँ ही कूद गया॥54॥ किसी स्त्री ने माथे पर काजल लगा लिया किसी ने बिंदी नाक पर लगा ली॥55॥

337. णिउरं धरिदं कंठे, कंठाहारं च पादेसुं काइ।
केयूरं णियमत्थगे, फुल्लगं चिअ णियहत्थेसुं॥56॥
338. मुद्दिगा पदंगुलीइ, णासाभरणं काए वेणीए।
धारिदं अघोवत्थं, उवरि उवरिमवत्थं अहोभागे॥57॥
339. काए णियसंताणं, भुंजाविदाइ गासं णासिगाइ।
मुहे णीरं ण दायिय, अंगोहलाविदो सो ताइ॥58॥
340. गच्छंताए ताणं, तह पाद - पक्खालण-भावेणं।
कलसं व पुत्तं गहिय, कलसं सुदोव्व गहीअ काइ॥59॥
341. वत्थुट्टाणे माणं, देज्ज आवणिया घिदस्स तिल्लं चा।
को अवि कोसियारस्स, ठाणे कप्पासिअं तराइ॥60॥
342. केणं दु अइ-तराए, भुंजिदो चिअ बज्झभागो फलस्स।
अंतभागो य खिविदो, गच्छंतेणं च पुरिसेणं॥61॥
343. को वि अपक्कघडम्मि, णीरं भरीअ पक्कघडुट्टाणे।
आअंछीअ गवेणं, खेत्तं को वि उसहं दुहीअ॥62॥

किसी ने कर्णफूल हाथ में और हथफूल कानों में डाल लिये। किसी ने पायल कंठ में और कंठाहार पैरों में पहन लिया। किसी ने बाजूबंद को मस्तक पर और मांगटीका को हाथों में पहन लिया॥56॥ किसी ने अंगूठी पैरों की अंगुली में पहन ली तो किसी ने नथ चोटी में लगा ली। कोई ऊपर के वस्त्र नीचे और अधोवस्त्र ऊपर धारण करने लगी॥57॥ अपनी संतान को भोजन कराती हुई किसी महिला ने ग्रास उसके मुँह में न देकर नाक में दे दिया और जल पिलाने की बजाय उसे नहला दिया॥58॥ उन वर-वधू के पाद प्रक्षालन के भाव से जाती हुई एक स्त्री ने पुत्र को कलश के समान सिर पर रख लिया और कलश को पुत्र के समान ग्रहण कर लिया॥59॥ कोई दुकानदार वस्तु के स्थान पर बाँट ही देने लगे तो कोई घी के स्थान पर तेल देने लगे और कोई रेशमी वस्त्र के स्थान पर शीघ्रता में सूती वस्त्र देने लगे॥60॥ बहुत जल्दी में जाते हुए किसी पुरुष ने फल का छिलका खा लिया और गूदा फेंक दिया॥61॥ कोई पके घड़े के स्थान पर अपना कच्चे घड़े में पानी भरने लगा। कोई अतिशीघ्रता से गाय से खेत जोतने लगा और बैल को दुहने लगा॥62॥

344. पडिदेगित्थी कोक्कदि, सगपदिं ठासु ठासु य सगडादो।
पुच्छणे भासदे सा, रोहिणीए सुकप्पणाए॥63॥
345. भुल्लीअ हं सव्वं, कहं सा परिहाविस्सदे मालं।
वरं तं वियारंता, उट्टीअ जेण पडीअ अहं॥64॥ (जुम्मं)
346. णिम्माविदो सयंवर - मंडवो सुणिद्देसेण रायस्स।
कुव्विदं जहाजोग्गं, सम्माण-मागद-अदीहीण॥65॥
347. अणेगरयणझल्लरी, झलझलंता झसयाइ-आयारे।
झणज्झणंता झसिंध-दूर्इव दु झुल्लंता तत्थ॥66॥
348. विहिण्ण-रयण - चुण्णेहि, णिम्मिद-रंगावलीहि बहुठाणेसुं।
सहाव्व आखंडलस्स, सोहिदो तदा मंडवो सो॥67॥
349. तदा देसस्स वि सव्व-पुरिसा चिय भासीअ पुरुहूदोव्व।
णारी देवंगणा व्व, कयबरुज्झिया अवि सोहीअ॥68॥
350. सव्वाण णिवज्जेदुं, कलहोय-णिम्मिद-आसणाणि तत्थ।
राय-रायकुमाराण, बहुमुल्ल-बहुरयणजडिदाणि॥69॥

वाहन से स्वयंवर के लिए जाती हुई एक स्त्री गिर पड़ी। उसके पति को ज्ञात नहीं हुआ तब वह आवाज लगाने लगती है—ठहरो! ठहरो! तब उसके पति ने पूछा कैसे गिरी तो वह कहने लगी अरे! राजकुमारी रोहिणी की कल्पना में मैं सब कुछ भूल गई थी। वह किस प्रकार अपने वर को माला पहनाएगी यह विचार करते हुए मैं खड़ी हो गई जिससे मैं गिर पड़ी॥63-64॥ राजा के सुनिर्देश से स्वयंवर मंडप का निर्माण किया गया था। वहाँ आये हुए अतिथियों का यथायोग्य सम्मान किया गया॥65॥ वहाँ मत्स्य आदि के आकार में लटकती हुई अनेक रत्नों की झालरें प्रकाशमान हो रही थीं। झुनझुन की आवाज करती हुई वे झालरें ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानों कामदेव की दूती ही हों॥66॥ बहुत से स्थानों पर विभिन्न रत्न के चूर्णों से निर्मित रंगोली से वह स्वयंवर मंडप सुशोभित था। उस समय वह सौधर्मइंद्र की सभा के समान ही शोभित हो रहा था॥67॥ तब देश के सभी मनुष्य देव के समान व समस्त नारियाँ देवांगना के समान ही प्रतिभासित हो रही थीं। यहाँ तक कि उस समय कचरा साफ करने वाली दासियाँ भी सुशोभित हो रही थीं॥68॥ वहाँ सभी राजागण व राजकुमारों के बैठने के लिए बहुमूल्य बहुत रत्नों से जड़ित स्वर्णमयी सिंहासन थे॥69॥

351. आगद-णिवा कुमारा, विराजीअ चिय सयंवर-सहाए।
सग-सग-जोग्गासणोसु, इंदोव्व तदा उच्छाहेण॥70॥
352. बद्धकरेण णिवेणं, कुव्विदं अहिवादणं अदिहीणं।
उप्पालिदं विणयेण, तुज्जे जाणह सहाणीदिं॥71॥
353. तुज्झ सव्व-पदिट्ठिदा, कुल-मज्जादा-सुरक्खगा णिच्चं।
सक्किदि-संवड्ढगा य, सुसब्भदा-संवाहगा अवि॥72॥
354. सम्माणीया सव्वा, णिवेदमि विणयेण मे पुत्ती।
सोहेज्ज वरमालाइ, जस्स पुण्ण-णर-कंठं सो दु॥73॥
355. होज्जा मे जामादू, पुण्णवंतो मए माणणीयो।
अइवत्तिस्सेदि को वि, जदि हु दंडभाजगो सो तो॥74॥ (जुम्मं)
356. कडुअ सम्माण-मित्थं, णियमं बोहिता मघवा राओ।
ससेट्ठसीहासणम्मि, णिवज्जीअ अइ-उच्छाहेण॥75॥
357. सेट्ठवर-चयणाय खलु, सा णिय-सव्वपुण्ण-मारोलित्ता।
अभिपत्थीअ जिणिंदं, पावेज्जा हं वरं जोग्गं॥76॥
358. जं पडिलंभिदूणं दु, सिलाहेमु अहं णिय-सोहग्गं दु।
मिमं आवज्जिय सो वि, अच्चीकरिदु णियसोहग्गं॥77॥ (जुम्मं)

स्वयंवर सभा में आए राजा व राजकुमार अपने-अपने योग्य आसनों पर उत्साह के साथ इंद्र की भाँति विराजमान हुए॥70॥ राजा ने हाथ जोड़कर सभी अतिथियों का अभिवादन किया एवं विनयपूर्वक कहा कि आप सभी सभा की नीति को जानते हो॥71॥ आप सभी प्रतिष्ठित, कुल-मर्यादा के रक्षक, संस्कृति के संवर्द्धक एवं सुसभ्यता के संवाहक भी हैं॥72॥ मैं राजा मघवा सभी सम्मानीय जनों से विनयपूर्वक निवेदन करता हूँ कि मेरी पुत्री जिस पुण्यवान् नर के गले को वरमाला से सुशोभित करेगी वही पुण्यवान् मेरा दामाद होगा, वही मेरे लिए माननीय होगा। यदि कोई भी इस नियम का अतिक्रमण करेगा तो वह दंडभाजक होगा॥73-74॥ इस प्रकार सबका सम्मान करके नियम को समझाकर राजा मघवा अति उत्साह से अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान हो गया॥75॥ वह रोहिणी श्रेष्ठ वर को चयन करने के लिए अपने सर्व पुण्य को इकट्ठा कर जिनेंद्र भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि मैं श्रेष्ठ वर को प्राप्त करूँ। जिसको प्राप्त कर मैं भी अपने सौभाग्य की सराहना करूँ और मुझे प्राप्त कर वो अपने सौभाग्य की प्रशंसा करे॥76-77॥

359. वरं कुलं च सुवित्तं, वयो सुबुद्धी य णिरोयि-सरीरं।
सुसक्कारो पदिट्ठा, धम्मत्तं च जिण-गुरु-भत्ती॥78॥
360. णीदियारेहि कहिदा, इमा दसगुणा हंदि सेट्टवरस्स।
णियपुण्णेणं पावमु, वरं जुत्तं इमेहि गुणेहि॥79॥ (जुम्मं)
361. कम्महीण - सव्वसुद्ध - सिद्धाणं पणमिदूणं भावेमि।
जाव ण लहमु सिवपदं, ताव मे सहजत्ती धम्मी॥80॥
362. अंतरभावणाहि हं, णमामि उहयलच्छिजुदा जिणिंदा।
मे जीवण-सह-जत्ती, पुण्णं लहिदुं अघक्खयिदुं॥81॥
363. जिणिंद-सिमरणं च गुरु-वंदणं धम्मपालणं णियमेण।
इट्टवत्थुपत्तीए, कारणं खलु पावक्खयस्स॥82॥
364. सोहग्ग-संविट्ठीइ, सव्वाणिट्ठं णिवारिदुं पुण पुण।
विसुद्धीए पणमामि, हं तियालविट्ठि-पणगुरुणो॥83॥
365. णिय-पिदु-संगेदेणं, पडिच्छिय पंचवणिणपुप्फमालं।
सगपिदरं पणिवयित्तु, दोण्णिण-परिचारिआहिं सह दु॥84॥
366. पालय-मादु-सहिदा य, सणिअं सणिअं ओगाहंता सा।
णमोक्कारं सरंता, ओउंठणम्मि जीहंता य॥85॥ (जुम्मं)

श्रेष्ठ कुल, न्यायोपार्जित धन, आयु, श्रेष्ठ बुद्धि, निरोगी शरीर, सुसंस्कार, प्रतिष्ठा, धर्मत्व, जिनभक्ति व गुरुभक्ति, नीतिकारों ने श्रेष्ठ वर के ये दस गुण कहे हैं। हे प्रभु! अपने पुण्य से मैं इन गुणों से युक्त वर को प्राप्त करूँ॥78-79॥ कर्मों से हीन सभी शुद्ध सिद्धों को नमस्कार कर मैं भावना भाती हूँ कि हे प्रभु! जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक मेरा सहयात्री धर्मात्मा हो॥80॥ अंतरंग व बाह्य दोनों लक्ष्मी से युक्त जिनेंद्र भगवान् को मैं अंतरंग की भावनाओं से नमस्कार करती हूँ। हे भगवन्! मेरा जीवन साथी पुण्य की प्राप्ति व पाप के क्षय के लिए हो॥81॥ जिनेंद्र प्रभु का स्मरण, गुरु वंदना व धर्म पालन नियम से इष्ट वस्तु की संप्राप्ति और पाप क्षय का कारण है॥82॥ अतः सौभाग्य की संवृद्धि व सर्व अनिष्टों के निवारण के लिए मैं विशुद्धि पूर्वक पुनः पुनः त्रिकालवर्ती पंच परमेष्ठी भगवान् को नमस्कार करती हूँ॥83॥ अपने पिता के संकेत से पंच-वर्णीपुष्पमाला को ग्रहण कर माता व पिता को प्रणाम कर दो परिचारिकाओं के साथ व पालक माँ अर्थात् धात्री के साथ रोहिणी धीरे-धीरे पग रख रही थी॥84-85॥

367. ओणेज्जाव्व पइडीइ, रयणा व्व रणझणंता कंकणेहि।
सेट्टोडल-संजुत्ता, ओच्छविया ओमोयेहिं च॥86॥
368. परिहाइदूणं हु सो तम्मवणिण-चंडातकं पहट्टा।
चंदिअं परिभवंता, अग्गे रीअ मदणावलीव॥87॥
369. कुरंगच्छी कुमारी, आयंबंत-रत्तप्पलोट्ट-जुदा।
देवी व मज्जादाइ, मदणं च तप्पेदुं रदीव॥88॥
370. तत्थ दु सुमंगलाए, धत्तीए सव्व-राइद-रायाण।
दायिदो उइद-परिचयो, तह वि णेव रंजीअ कस्सि ॥89॥
371. रोहिणिं पस्सिदूणं, के वि उप्पालीअ देवकण्णा या।
जक्खिणी य विज्जाहर-कुमारी गंधव्व-कण्णा दु॥90॥
372. के वि उव्वसी रंभा, तिलोत्तमा य णीलंजसा आदी।
दिक्कण्णा इंदाणी, सची उदाहु चक्कि-पुत्ती या॥91॥

उस समय राजकुमारी रोहिणी ऐसी लग रही थी मानो साँचे में ढाल कर रति ही बनायी गई हो अथवा प्रकृति की श्रेष्ठ रचना ही हो। वह रुनझुन करते हुए कंगनों से युक्त थी, उसका केश विन्यास श्रेष्ठ था, वह आभूषणों से आच्छादित थी॥86॥ आनंद से युक्त ताम्रवर्णी लहंगे (परिधान) को पहनकर चंद्रमा की प्रभा को पराजित करती हुई वह रोहिणी मदनावली के समान आगे बढ़ रही थी॥87॥ मृगनयनी राजकुमारी काँपते हुए लाल कमल के समान ओठों से युक्त थी। वह मर्यादा की देवी के समान ही थी। उस समय वह ऐसी लग रही थी जैसे मानो कामदेव को तृप्त करने के लिए साक्षात् रति ही हो॥88॥ वहाँ सुमंगला धाय माँ ने सभी विराजित राजाओं का उचित परिचय दिया तथापि वह रोहिणी किसी में किंचित् भी रंजायमान नहीं हुई॥89॥ रोहिणी को देखकर कई लोग तो ऐसा कह रहे थे कि ये देव कन्या है, कई कह रहे थे कि यह यक्षिणी है, कई कह रहे थे कि ये विद्याधर कुमारी है और कई कह रहे थे कि यह गंधर्व कन्या है॥90॥ कई जन कह रहे थे कि यह उर्वशी, रंभा, तिलोत्तमा, नीलंघशा आदि है। कई जन कह रहे थे कि ये दिक्कन्या, इंद्राणी शची अथवा चक्रवर्ती की पुत्री है॥91॥

373. देंता परिचय-मित्थं, कहीअ इमो मेहपुरस्स राओ।
हेमरहो विक्खादो, परक्कमी तह सच्चवायी॥92॥
374. तिलगणयरस्स राओ, तिलगो तिलगोव्व सव्वमणुस्सेसु।
बंग - कलिंग - सोरट्ट - विदब्भ - अवंति - मालवाणं॥93॥
375. पोयणपुर - इंदपत्थ - कासि - वच्छ - कच्छ - महाकच्छाणं।
चेदि-चंदणयर-सूर-पुरिच्चाइ - देसाण णिवाण॥94॥
376. परिचयं दु दाएज्जा, ताणं वइसिट्ठं वोच्छमाणा या
पुण भावं रोहिणीइ, बोहिदूणं चरीअ अग्गे॥95॥ (चउक्कं)
377. इमो सेट्टरायसुदो, कुरुजंगलदेसस्स पडिरुवंसी।
हत्थिणायपुरी पुण्ण-भूमी सुप्पसिद्धा लोए॥96॥
378. भूवदि-वीदसोगस्स, विज्जुदपहा पाणवल्लहा तस्स।
सोगहीण-सुदो ताण, असोगो सेट्टो सज्जणेसु॥97॥ (जुम्मं)
379. झसचिंधयोव्व दु महापुण्णफलजुदो कुमारो असोगो।
सायरोव्व गंभीरो, रणंगणे जमोव्व सत्तूण॥98॥

धाय माँ इस प्रकार राजाओं-राजकुमारों का परिचय देती हुई कह रही थी कि अहो राजकुमारी! यह मेघपुर के विख्यात राजा हेमरथ हैं, जो पराक्रमी व सत्यवादी हैं, पुत्री! यह तिलक नगर के राजा तिलक हैं जो सभी मनुष्यों में तिलक के समान हैं। इस प्रकार धाय माँ ने बंग देश, कलिंग देश, सौराष्ट्र देश, विदर्भ देश, अवंति देश, मालव देश, पोदनपुर, इंद्रप्रस्थ, काशी देश, वत्स देश, कच्छ देश, महाकच्छ देश, चेदि देश, चंद्रनगर, शौर्यपुर आदि देशों के राजाओं का परिचय दिया। उनके वैशिष्ट्य को कहती हुई पुनः रोहिणी के भाव को समझकर वह आगे बढ़ती गई॥92-95॥ अहो! ये कुरुजांगल देश के श्रेष्ठ राजा के रमणीय पुत्र हैं। लोक में हस्तिनागपुर नामक पुण्य भूमि सुप्रसिद्ध है। वहाँ के राजा वीतशोक हैं एवं उनकी विद्युत्प्रभा नामक वल्लभा है। उनके सज्जनों में श्रेष्ठ, शोक से रहित यह अशोक नामक पुत्र है॥96-97॥ महापुण्य के फल से युक्त कामदेव के समान यह राजकुमार अशोक सागर के समान गंभीर एवं युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के लिए यम के समान है॥98॥

380. सुणिय ताए वयणाणि, हवेज्ज थिरं दिट्ठी रोहिणीए।
उहयाणं णयणादो, णेह-पेम्मं तदा वरिसीअ॥99॥
381. मत्तंड - दंसणेणं, विहसंते सरसिरुहाइ - पुष्फाणि।
ताए चित्तंबुजं दु, विअसीअ तह परमणंदेण॥100॥
382. पुव्वभवसक्कारेहि, असोगं पडि आगिट्ठा पीदीइ।
मणोभावं विसुद्धं, किच्चा मालं परिहावीअ॥101॥



धाय माँ के वचनों को सुनकर रोहिणी की दृष्टि अशोक की ओर स्थिर हो गयी। तब दोनों के ही नयनों से स्नेह व प्रेम की वर्षा हो रही थी॥99॥ जैसे सूर्य के दर्शन से कमलादि के पुष्प विकसित हो जाते हैं उसी प्रकार अशोक के दर्शन से उस रोहिणी का हृदय कमल भी परमानंद से विकसित हो गया था॥100॥ पूर्वभव के संस्कारों के कारण वह अशोक के प्रति प्रीतिपूर्वक आकृष्ट हुई पुनः अपने मनोभावों को विशुद्ध करके उसने राजकुमार अशोक को वरमाला पहनायी॥101॥

383. रोहिणी तह असोगो, वङ्गीअ परोप्परे सोह-मुहयो।
अंबुजसरोव्व सुवण्ण-रयणं व तह चंद-रत्तीव॥102॥
384. थीए भाल-तिलगं व, कर-रत्तगब्भोव्व पद-णेउरं वा
जुवदि-भूसणं व तहा, तित्थयर-समवसरणोव्व चिय॥103॥
385. तदा सहीहि कुव्विदा, पुप्फविट्ठी उहयम्मि णंदिदूण॥
आणंदो णिस्सदो, अभिज्झिय-वत्थु-संपत्तीव॥104॥
386. अइ-हरिसिदो असोगो, विज्जासिद्धीए विज्जाहरोव्व।
अक्कुदयेण पउमं व, सुमेहवरिसाए भूमीव॥105॥
387. जदा रोहिणीए पण - वण्णजुदमणोहरपुप्फमालाइ।
असोगो सुअलंकिदो, तदा कइवय-राया कुद्धा॥106॥
388. उट्टित्ता पक्कप्पंत-रायेणं परिणयं पस्सिदूणं।
भणिदं भो णिवो किं, अवमाणस्स आमंतिदं दु॥107॥

रोहिणी व अशोक परस्पर एक दूसरे की शोभा को उसी प्रकार वृद्धिंगत कर रहे थे जैसे कमल से जलाशय की और जलाशय से कमल की शोभा वृद्धिंगत होती है, जैसे स्वर्ण से रत्न की और रत्न से स्वर्ण की शोभा वृद्धिंगत होती है तथा जैसे चंद्रमा से उसकी चाँदनी की एवं चाँदनी से उस चंद्र की शोभा वृद्धिंगत होती है॥102॥ वे दोनों इस प्रकार एक-दूसरे की शोभा बढ़ा रहे थे जैसे स्त्री के भाल की शोभा तिलक से व तिलक की शोभा स्त्री के भाल से वृद्धिंगत होती है, जैसे हाथों से मेहंदी की व मेहंदी की शोभा हाथों से वृद्धिंगत होती है। जैसे पैरों की शोभा पायल से व पायल की शोभा पैरों से वृद्धिंगत होती है, जैसे युवति की शोभा आभूषणों से व आभूषणों की शोभा युवति से वृद्धिंगत होती है। जैसे तीर्थकर की शोभा समवसरण से और समवसरण की शोभा तीर्थकर से वृद्धिंगत होती है॥103॥ उस समय सखियों ने आनंदित होकर उन दोनों पर पुष्पवृष्टि की। दोनों का आनंद निःशब्द था जैसे उन्हें वांछित वस्तु की प्राप्ति हो गई हो॥104॥ रोहिणी को प्राप्त कर अशोक उस प्रकार अति हर्षित था जैसे विद्या की सिद्धि से विद्याधर, सूर्योदय से कमल व मेघ वर्षा से धरती हर्षित होती है॥105॥ जब रोहिणी ने पंचवर्ण युक्त मनोहर पुष्पमाला से राजकुमार अशोक को अलंकृत किया तब कई राजा क्रोधित हो गए॥106॥ उस परिणय को देखकर खड़े हो गुस्सा करते हुए एक राजा ने कहा हे राजन्! क्या हमारे अपमान के लिए हमें यहाँ आमंत्रित किया गया है?॥107॥

389. तस्स वयणं सुणिच्चा, अण्णा राया रायकुमारा अवि।
कुद्धा तह उत्तेइदा, विम्हरित्तु सयंवर-णीदिं॥108॥
390. विहवसंपण्णरायो, मगध-देसस्स विक्कंतो भणदे।
अहंकारेण सोहदि, गिद्धेणं सह हंसिणी किं॥109॥
391. सोहदि ण राहुणा सह, रोहिणी मेत्तं विमलचंदेणं।
रे कुमारो रोहिणिं, छड्ढित्तु पलायेज्ज सिग्घं॥110॥
392. तुमं जाणित्तु बालं, खमामो वयं चिय तव अवराहं।
गच्छ गच्छ रे बालो, तुमं सगपाणरक्खाए हु॥111॥
393. असिं गहतो कहदे, रे णिवो! सेणावदि-आसुरत्तो।
णो खमा-जोग्गो तुमं, जम-गिहं चिय पहुच्चावेमि॥112॥
394. तदा असोगो भणदे, भो सेणावदी धारेज्ज धीरं।
वेधव्वं ण कंखेमि, अहं अस्स महाराणीए॥113॥
395. णो इच्छुगो पस्सिदुं, अणाहा चिअ एदस्स संताणा।
मगधेसो पडिमंतदि, भो विसपिंडो सोगसिंधू॥114॥
396. उइद-दंडं दायेमि, तुज्झं तप्परो रे मुहलो! तस्स।
णेव अणट्ठं जप्पदि, आगच्छ पहारेज्जा दु जदि॥115॥

उस राजा के वचन सुनकर अन्य राजकुमार भी स्वयंवर नीति को भूलकर क्रोधित व उत्तेजित हो गए॥108॥ तब मगध देश का वैभव संपन्न पराक्रमी राजा अहंकार से भरकर कहता है अरे! गृद्ध पक्षी के साथ क्या हंसिनी शोभा को प्राप्त होती है॥109॥ यह रोहिणी राहु के साथ नहीं मात्र निर्मल चंद्रमा के साथ शोभा को प्राप्त होती है अतः रे कुमार! तुम शीघ्र ही रोहिणी को छोड़कर यहाँ से भाग जाओ॥110॥ तुम्हें बालक जानकर हम तुम्हारे अपराधों को क्षमा करते हैं। रे बालक! अपने प्राणों की रक्षा के लिए तुम यहाँ से जाओ, जाओ॥111॥ अशोक के प्रति यह सुनकर अतिक्रोधित सेनापति हाथ में तलवार लिए कहता है रे नृप! तुम क्षमा के योग्य नहीं हो, मैं अभी तुम्हें यम के द्वार पहुँचा देता हूँ॥112॥ तब अशोक कहते हैं, हे सेनापति! धैर्य धारण कीजिए मैं इसकी महारानी का वैधव्य नहीं चाहता और इसकी संतानों को भी मैं अनाथ देखने का इच्छुक नहीं हूँ। यह सुनकर वह मगधेश उत्तर देता है अहो! विषपिंड, शोक के सागर मैं

397. तुमं सत्तिजुत्तो मम, अत्थं चिअ पडिसाहिज्जदि अहुणा।
असोगेण कहिदं पुण, सेणावदिं पडि इंगिदं दु॥116॥
398. कुव्वंतो महासयो, अणावस्सग-वाहिणी-हणणं हं।
णेव कंखेमि तम्हा, सयमेव दंडेमि एदं दु॥117॥ (पंचगं)
399. दप्पजुत्तेगागिणा, घोरसंगामो पारंभो तदा।
परोप्परम्मि सम्मुहो, सत्थत्थसुसज्जिदा उहया॥118॥
400. रहट्ठिदासोगेणं, खिविदो सरो हु णस्सेदुं सट्ठं।
सरासरिं पारंभो, अइतिव्ववेगवरिसो व्व चिअ॥119॥
401. धणुटंकारेण तदा, सव्वदिसा कंविदा भयंकरेण।
उप्पण्ण-फुलिंगा सर-आघादेण अग्गि-वरिसा व॥120॥
402. फुक्कंता-सराण अवि, गदी अहिया तदा पवणवेगादु।
गगणमज्झभागो दु, संछण्णोव्व सरपंजरम्मि॥121॥
403. अस्स दु अण्णायि-राय-सहायं जमालयं पहुच्चावमि।
आगदा अण्णराया, पस्सिय कहिदं असोगेण॥122॥

तुझे उचित दंड देता हूँ। रे वाचाल! उस दंड के लिए तैयार हो जाओ। अरे व्यर्थ की बातें मत करो। यदि तुम शक्ति से युक्त हो तो अब मेरे अस्त्र को उत्तर दो। राजकुमार अशोक ने पुनः सेनापति की ओर इशारा करते हुए कहा—महाशय! मैं सेना का अनावश्यक विनाश नहीं चाहता अतएव मैं स्वयं ही इसे दंड दूँगा॥113-117॥ जिन्हें अपने पराक्रम पर गर्व था ऐसे उन दोनों राजाओं ने अकेले ही घोर संग्राम शुरू कर दिया। शस्त्र व अस्त्र से सुसज्जित वे दोनों परस्पर एक-दूसरे के सम्मुख हुए॥118॥ रथ पर स्थित अशोक ने उसकी दुष्टता को नष्ट करने के लिए एक बाण चलाया। अति तीव्र वर्षा के समान बाणों का युद्ध प्रारंभ हो गया॥119॥ तब भयंकर धनुष टंकार से सर्वदिशाएँ कंपायमान हो गईं। उस समय बाणों की टक्कर से अग्नि के कण ऐसे उत्पन्न हो रहे थे जैसे अग्नि की वर्षा ही हो रही हो॥120॥ तब फूँ-फूँ करते हुए बाणों की गति वायु के वेग से भी अधिक प्रतीत हो रही थी। आकाश का मध्यभाग ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वह बाणों के पिंजरे में ही बंद कर दिया गया हो अर्थात् आकाश में बाण ही बाण दिख रहे थे॥121॥ तब बीच में अन्य राजाओं को आता हुआ देखकर अशोक ने कहा कि इस अन्यायी राजा की जो सहायता करेगा मैं उसे यमलोक पहुँचा दूँगा॥122॥

404. तिक्खसरपहारेणं, अण्णोण्ण-केदू खंडिदा सिग्घं।
मगहेस-किरीडं अवि, पाडिदं दु अद्धचंदेणं॥123॥
405. सिग्घागद-रायेणं, जावदु पाडिदं असोग-छत्तं हु।
तावदु तेण खंडिदो, मगहेसस्स चावो सरेण॥124॥
406. धणुविज्जाविसारदं, तं जयिदुं णो संभवो सरेहिं।
वियारित्तु मगहेसो, असिणा सह कुद्दीअ रहादु॥125॥
407. तम्मि वि णिप्फलो वरं, तदा तेणं किद-कुंतपहारो वि।
णिरुंभिदो असोगेण, णियगदाइ अण्णपहारो वि॥126॥
408. परसण्णिदि-बंधिदो हु, अइकुविद मगहेसो असोगेणं।
संखदिव्वज्झुणिणा दु, अजोग-जयो घोसिदो तत्थ॥127॥
409. आयासेण कुव्विदा, पुप्फविट्ठी सुर-सुरंगणाहिं चा।
हरिसिदा हु मघवादी, सव्वा हु चिंतामुत्ता अवि॥128॥
410. जह पराइदो जोद्धो, उदासमणेण णिरिणासदि गेहं।
सयंवरदो सव्वा, मिलाणमुहेण तह वग्गीअ॥129॥

तब बाण के तीक्ष्ण प्रहार से दोनों ने शीघ्र ही एक-दूसरे की ध्वजा खंडित कर दी। राजकुमार ने अर्द्धचंद्राकार बाण से मगध के राजा का मुकुट गिरा दिया॥123॥ शीघ्रता से आते हुए राजा ने जब तक अशोक का छत्र गिराया तब तक उस अशोक ने मगध नरेश का धनुष अपने बाण से खंडित कर दिया॥124॥ यह तो धनुर्विद्या में प्रवीण है, इसको बाणों के द्वारा जीतना संभव नहीं है यह विचार कर मगधेश तलवार के साथ रथ से कूद गया॥125॥ किन्तु उसमें भी वह निष्फल रहा। तब उसके द्वारा किया गया भाले का प्रहार व अन्य प्रहार भी अशोक ने अपने गदा से रोक दिए॥126॥ देखते ही देखते अशोक ने अति क्रोधित मगधेश को बंधनबद्ध कर लिया। तब वहाँ शंख की दिव्यध्वनि से राजकुमार अशोक की विजय की घोषणा की गई॥127॥ आकाश से देव-देवांगनाओं ने पुष्पवृष्टि भी की। राजा मघवा आदि सभी लोग हर्षित व चिंतामुक्त हुए॥128॥ जिस प्रकार एक पराजित योद्धा उदास मन से अपने घर जाता है उसी प्रकार अन्य सभी राजा व राजकुमार म्लान मुख से स्वयंवर से चले गए॥129॥

411. णिमित्तणाणिणा कहिद-उत्तम-मुहुत्ते विवाह-ववत्था।
समारिदा पवरेणं, उच्छाहेणं पल्हायेण॥130॥
412. ताणरासीइ चंदो, णो चदुत्थो अट्टमो बारसमो।
उदयो गुरुसुक्काणं, सगेहे उच्चा मित्तगही॥131॥
413. सव्वा सुहट्टाणेसु, सव्वसुहफलदायगा मंगल्ला।
छट्टमट्टम - बारसम - ठाणाइं सव्वरित्ताइं॥132॥
414. ताण णो जम्म-मासो, सुहमास-वार-तिहि-णक्खत्तेसु या।
सुह-लग्ग-चउघडियासु, सुहजोगे विवाह-दिवसम्मि॥133॥
415. अइ-उच्छाहविहवेण, कराविदो पाणिगहण-सक्कारो।
जिणाहिसेगं च अट्ट-दव्वेहि-अच्चणं तद्धिणे॥134॥ (चउक्कं)
416. आयामिदा बहुविहव-संपत्ती रायेण सगसत्तीइ।
असोग-णिवकुमारस्स, अणेग-रह-पदाइ-सेवगा॥135॥
417. दिग्घयालंतं तत्थ, ठाएज्ज दंपइ-सुहं भोयंता।
ण जाणीअ गदयालं, सोहम्मिंदोव्व सचीव तह॥136॥

पुनः निमित्तज्ञानी ने जो उत्तम मुहूर्त बताया था उस दिन से विवाह की व्यवस्थाएँ श्रेष्ठ उत्साह व आनंद के साथ प्रारंभ कर दी गयीं॥130॥ जब चंद्रमा उनकी राशि का, चौथा, आठवाँ व बारहवाँ नहीं था, जब गुरु व शुक्र का उदय था एवं वे उच्चग्रही या मित्रग्रही थे, जब सब ग्रह शुभ स्थानों पर स्थित थे, वे सभी शुभफलदायक व मंगलकारी थे। कुंडली में छठवाँ, आठवाँ व बारहवाँ भाव रिक्त था, उस समय उन भावों में कोई ग्रह नहीं थे, वर-वधु के जन्म का महीना भी नहीं था। शुभ मास, शुभ वार, शुभ तिथि व शुभ नक्षत्र में विवाह के दिन, शुभ लग्न, चौघड़िया, शुभयोग में अति उत्साह व वैभव से पाणिग्रहण संस्कार कराया। उस दिन उन्होंने जिनाभिषेक व अष्ट द्रव्यों से जिनार्चना भी की॥131-134॥ राजा मघवा ने राजकुमार अशोक के लिए अपनी शक्ति के अनुसार बहुत सा वैभव, संपत्ति, अनेक रथ, पदाति व सेवक दिए॥135॥ वहाँ दीर्घकाल तक सौधर्म इंद्र व शचि इंद्राणी के समान दाम्पत्य सुख को भोगते हुए कितना समय बीत गया वह उन्हें ज्ञात ही नहीं हुआ॥136॥

पृथ्वी छंद

418. सुहेण बहुगच्छमाणसमयं विआणेदि णो,
कुक्कम्मउदयम्मि कच्छवगदीव तं बोलदे।
सुहम्मि गरुडस्स तं अवहरित्तु पावं सया,
णरो सयल-मिच्छदे सुहफलं सुपुण्णं कुरु॥137॥
419. विहूदि-सुह-संति-धण्ण-विउलं समिद्धी तहा,
रमा य सुहसंददी सुवयणं कुडुंबीजणा।
गुणा सुजणसंगदी य वरजेणहधम्मो कला,
इमाणि सुफलाणि तं कुणसु पुण्णकज्जं सया॥138॥

सही है सुख से बीता हुआ बहुत समय भी ज्ञात नहीं होता। पाप कर्म के उदय में समय कछुए की गति के समान धीरे-धीरे व्यतीत होता है और शुभ पुण्य कर्म के उदय में समय गरुड़ की गति के समान शीघ्रता से व्यतीत हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य संपूर्ण पुण्य फल की आकांक्षा करता है अतः पापों का त्याग कर सदैव पुण्य करो॥137॥ प्रचुर विभूति, सुख, शांति, धान्य, समृद्धि, अच्छी स्त्री, अच्छी संतति, मिष्ट वचन, परिवारजन, गुण, सज्जनों की संगति, उत्कृष्ट जैन धर्म एवं सुकलाओं की प्राप्ति ये सभी पुण्य के फल हैं अतः सदा पुण्यकार्य करो॥138॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में रोहिणी की उत्पत्ति व उसके स्वयंवर का वर्णन
करने वाला तृतीय नंद पूर्ण हुआ।

चतुर्थ-पंदो

420. कुरुजंगलदेसादो, पाउणिदो एयदा समायारो।
वीदसोग-भूवदिस्स, रायकुमार-असोगेणं दु॥1॥
421. अइविआउल-असोगो, आयणिणदूणं पिदु-समायारं।
पच्छंदिदुं सदेसं, सुमरंतो तदा सग-पिदरं॥2॥ (जुम्मं)
422. मघवाराय-समच्छे, णियकंखा पागडिदा असोगेण।
तदा उदारचित्तेण, पेसिदा ता किंचिवि दुहेण॥3॥
423. मादूइ तदायाले, कदिवय-सिक्खा दायिदा पुत्तीइ।
ताए वरभविस्सस्स, सज्जणाण सहावो जम्हा॥4॥
424. कहिदमित्थं सुपुत्ती!, सीलवंता उहयकुलदीविगा या
सेट्ठा कुलीण-कण्णा, धम्मवड्ढगा विणय-सरला॥5॥
425. ससुरस्स जणगोव्व सस्सूए मादू व्व जेट्ट-देवराणा।
अग्गओव्व अणुओव्व य, णणंदाए तहा बहिणीव॥6॥

एक बार राजकुमार अशोक ने कुरुजांगल देश से राजा वीतशोक का समाचार प्राप्त किया। पिता के समाचार को सुनकर वह अशोक अपने माता-पिता को याद करता हुआ अपने देश जाने के लिए अतिव्याकुल हुआ॥1-2॥ राजकुमार अशोक ने राजा मघवा के सामने देश लौटने व अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा प्रकट की। तब राजा मघवा ने उदार चित्त से एवं किंचित् दुःख के साथ अशोक व रोहिणी को विदा किया॥3॥ उस समय माँ ने अपनी पुत्री के उत्तम भविष्य के लिए कुछ शिक्षाएँ दीं क्योंकि सज्जनों का यह स्वभाव है॥4॥ माँ ने इस प्रकार कहा हे सुपुत्री! श्रेष्ठ व कुलीन घर की कन्याएँ शीलवान्, दोनों कुलों को प्रकाशित करने वाली दीपिका, धर्म-वर्द्धिका, विनम्र और सरल होती हैं॥5॥ हे पुत्री! ससुर को पिता तुल्य, सासु माँ को माता तुल्य, ज्येष्ठ को बड़े भाई के समान, देवर को छोटे भाई के समान और ननद को बहन के समान सदैव आदर और स्नेह देना। सभी के प्रति मृदु व्यवहार करना एवं विनयपूर्वक वार्तालाप करना ये कुलांगना के सहज लक्षण हैं॥6-7॥

426. देज्ज आयरं णेहं, सव्वं पडि करेज्ज मिदु-ववहारं।
सविणय-वत्तं सया हि, सहजलक्खणं कुलंगणाइ॥7॥ (जुम्मं)
427. णिरहंकार-पवित्ती, समवयंसं पडि य वच्छलभावो।
गुणवड्डणस्स ताणं, दोसाणुवेक्खा अवि कयाइ॥8॥
428. जयिदुं णिय-पदि-हिअयं, समत्था आणाणुअत्तया होज्ज।
मणोणुऊल-पवित्ती, सय णिरहंकारि-भासणं च॥9॥
429. तस्स हिदयर-पिय-कडुअ-वयणाइं वि गहेज्ज सुमणेण।
भारदीय-सक्किदीइ, पदि-पुज्जो सव्वदा जम्हा॥10॥
430. देज्ज दोसं ण कस्स वि, जाणंताजाणंत-किद-तुडीए।
असुह-णिमित्ते मिलणे, णेव करेज्ज कुमणं कया वि॥11॥ (जुम्मं)
431. महामंतस्स जवं च, पुव्वबद्धपावकम्मणिज्जराइ।
करेज्ज पव्वदिवसेसु, उववासं जहासत्तीए॥12॥
432. पुण्णं वड्डेज्ज सया, जिणभत्तीए य सुगुरुसेवाए।
तित्थवंदणाए तह, सज्झायेण पत्तदाणेण॥13॥
433. भो मम णेत्ततारिगा! करेज्ज साउज्जं रज्जकज्जेसु।
विणयेण सुबुद्धीए, सया णियपुज्जपदिस्स तुमं॥14॥

अपने समान आयु वालों के प्रति अहंकार से रहित प्रवृत्ति करना। उनके गुणों के वर्धन के लिए कदाचित् उनके दोषों की उपेक्षा भी करना॥8॥ अपने पति के हृदय को जीतने में समर्थ होना, उनकी आज्ञा का पालन करना, उनके मनोनुकूल प्रवृत्ति करना एवं सदैव अहंकार से रहित संभाषण करना॥9॥ उनके हितकर प्रिय व कटुक वचनों को भी अच्छे मन से स्वीकार करना क्योंकि भारतीय संस्कृति में पति सर्वदा पूज्य ही होते हैं। जाने-अनजाने में हुई गलती का दोष कभी किसी को नहीं देना। अशुभ निमित्त मिलने पर कभी भी मन खराब नहीं करना॥10-11॥ अहो पुत्री! पूर्वबद्ध पाप कर्मों की निर्जरा के लिए महामंत्र की जाप करना। पर्व के दिनों में अपनी शक्ति के अनुसार उपवास करना॥12॥ जिनभक्ति, सुगुरु की सेवा, तीर्थवंदना, स्वाध्याय और पात्रदान के माध्यम से अपने पुण्य को सदैव वृद्धिगत करना॥13॥ अहो मेरी आँखों की तारिका! तुम सदैव विनय पूर्वक समीचीन बुद्धि से अपने पति का राजकार्यो में सहयोग करना॥14॥

434. पयं पडि जदि कयाइं, अइकुविदो दु तव महारायो तो।
तस्स कोहं समित्ता, खमावेज्ज संतचित्तेणं॥15॥
435. धम्मिट्ठ-दुब्बलाणं, असहायाणं होज्ज दयासिंधू।
ममत्तभावेण सया, देज्ज वच्छलं णिय-पयाए॥16॥
436. असोगरायपुत्तस्स, अब्द्धंगिणीदो अणुभूयंता हु।
तस्स सोक्खं च दुक्खं, सव्वदा रंजेज्ज धम्मम्मि॥17॥
437. मादूइ सिक्खं गहिय, ताइ मण्णिदा सयं पुण्णवंता।
पुण्णं विणा ण सक्कदि, गहिदुं सिक्खं पिदर-गुरुण॥18॥
438. अणंतरं असोगेण, चरणं मघवापिदुस्स पणमित्ता।
आपुच्छिदं सकुसलं, अइयादुं विणयुच्छाहेहि॥19॥
439. करिदं सव्व-पबंधण-मुक्कोसेणं रायादेसेणं।
दुहमिस्सिदुच्छाहेण, पेसिदा पुत्ती जामादू॥20॥
440. विउल-धण-धण्ण-साहण - वत्थाभूसणाणि गय - अस्सादी।
देज्ज सुदा-सेवाए, विस्सत्था सेविगा भिच्चा॥21॥

अहो पुत्री! यदि कदाचित् आपके महाराज प्रजा के प्रति अति कुपित हो जाएँ तो उनके क्रोध को शांत कर, शांत चित्त से प्रजा को क्षमा कराना॥15॥ धर्मात्मा, दुर्बल व असहाय जनों के लिए दया का सिंधु बनना। ममत्वभाव से अपनी प्रजा के लिए सदैव वात्सल्य प्रदान करना॥16॥ राजकुमार अशोक की अब्द्धांगिनी होने से सदैव उनके सुख व दुःख का अनुभव करती हुई उन्हें धर्म में अनुरक्त करना॥17॥ इस प्रकार माता से शिक्षा ग्रहण कर उस रोहिणी ने स्वयं को पुण्यवती माना। उचित ही है पुण्य के बिना माता, पिता व गुरु की शिक्षा ग्रहण करने में कोई समर्थ नहीं होता॥18॥ अनंतर अशोक ने पिता मघवा के चरणों में प्रणाम कर विनय व उत्साहपूर्वक सकुशल अपने देश जाने की आज्ञा प्राप्त की॥19॥ राजा मघवा के आदेश से उत्कृष्टता से उनके जाने का सभी प्रबंध कर दिया गया था। दुःख मिश्रित उत्साह से उन्होंने अपनी पुत्री व दामाद को विदा किया॥20॥ राजा ने विपुल धन, धान्य, साधन, वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़े आदि प्रदान किए एवं अपनी पुत्री की सेवा हेतु विश्वस्त दास-दासी भी प्रदान किए॥21॥

441. हत्थिणायपुरणयरिं, टिविडिक्कीअ बहुरयणमुत्ताहिं।
णवा व अइहरिसेणं, सगपुत्तागमणं सुणित्ता॥22॥
442. अइ-उच्छाहेण सव्व-पयाए णियकुमार-णवोढाणं।
पकुव्विदं सुसागदं, अमरावदीव सुहणयरीइ॥23॥



443. पडिदिणे पक्खुब्भीअ, धण-धण्ण-समिद्धी सुहं संती या।
कलादी तम्मि रज्जे, मिअंगोव्व दु सुक्कपक्खस्स॥24॥
444. णंदीसरम्मि कत्तिय-फग्गुणासाढाण अट्टदिवसा व्व।
हण्हणिं भासीअ दु, सुहवसंदमहुच्छवो तत्थ॥25॥

अपने पुत्र के आगमन को सुनकर राजा वीतशोक के आदेश से हस्तिनापुर नगरी को अतिहर्ष के साथ बहु रत्न व मोतियों द्वारा नई दुल्हन की तरह मंडित किया गया॥22॥ उस समय अमरावती के समान शोभायमान उस शुभ नगरी में सभी प्रजाजनों ने अपने राजकुमार व नव वधू का अति उत्साह के साथ स्वागत किया॥23॥ उस राज्य में प्रतिदिन धन, धान्य, समृद्धि, सुख व शांति उसी प्रकार वृद्धिगत हो रही थी जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चंद्रमा वृद्धि को प्राप्त होता है॥24॥ वहाँ की शोभा को देखकर प्रतिदिन ऐसा प्रतिभासित होता था जैसे नंदीश्वर द्वीप में कार्तिक, फाल्गुन व आषाढ़ की अष्टाह्निका ही हो अथवा शुभ बसंत महोत्सव ही हो॥25॥

445. कल्लाकल्लिं करीअ, णरणारी जिणपूयं भत्तीए।
जिणं पडि आगासिया, संपाइमोव्व किंजक्कम्मि॥26॥
446. सगसत्तीए सावय-साविया पालीअ चिय णिट्टाए।
सीलवदं उववासं, अण्णणियमं वि कल्लाणाय॥27॥
447. सहसत्ति एगदिवसे, धम्मणयरि-हत्थिणायपुरि-णियडे।
णंदणविविणसमीवे, आहम्मीअ मुणि-इड्डिजुदो॥28॥
448. तस्स गुरु-णिग्गंथस्स, ओहिणाणिणो चिअ सुहदंसणाय।
सगरज्जे रायेणं, उग्घोसिदं अइहरिसेणं॥29॥
449. रायपरिसदेणं सह, राओ गच्छेज्ज पाविदुं धम्मं।
पुण्णवंता वि सव्वा, चरेज्ज चिय पुण्णकज्जत्थं॥30॥ (जुम्मं)
450. णत्ते सम्माइट्ठी, सव्वा अइ-विआउला दंसणाय।
वरं मिच्छाइट्ठीहि, बोहिदा बाहा रायाणा॥31॥
451. जिण-मुणीण दंसणाय, होज्जा उच्छुगा जिण-महुच्छवस्स।
सम्माइट्ठी जीवा, विवरीया दु मिच्छाइट्ठी॥32॥

नर व नारी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक जिनेंद्र प्रभु की अर्चना-पूजन करते थे। वहाँ के श्रावक जिनेंद्र प्रभु के प्रति उसी प्रकार आकर्षित होते थे जिस प्रकार पराग पर भ्रमर आकर्षित होता है॥26॥ सर्व श्रावक-श्राविका निष्ठापूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार निज कल्याण के लिए शीलव्रत, उपवास व अन्य नियमों का भी पालन करते थे॥27॥ अचानक एक दिन धर्मनगरी हस्तिनागपुर के निकट नंदन वन के समीप ऋद्धिधारी मुनिराज पधारे॥28॥ उन अवधिज्ञानी, निर्ग्रंथ मुनिराज का आगमन सुनकर राजा ने अति हर्षपूर्वक अपने राज्य में घोषणा करायी कि धर्म की प्राप्ति के लिए राजपरिषद् के साथ राजा मुनिदर्शन हेतु जाएंगे। सभी पुण्यवान् जीव भी पुण्य कार्य के लिए चलेंगे॥29-30॥ उस रात्रि में सभी सम्यग्दृष्टि जीव मुनि दर्शन के लिए अति व्याकुल थे जबकि मिथ्यादृष्टियों ने राजा की आज्ञा को बाधा समझा॥31॥ सम्यग्दृष्टि जीव ही जिनेंद्र प्रभु व मुनियों के दर्शन एवं जिन महोत्सव हेतु उत्सुक होते हैं और मिथ्यादृष्टि जीव तो विपरीत अर्थात् अनुत्सुक होते हैं॥32॥

452. घोसणाणुसारेणं, रायो रायकुडुंबं णागरिआ।
भत्तीइ अणुवज्जीअ, सिरिणिग्गंथ-मुणिदंसणाय॥33॥



453. तत्थ पहुच्चिदूणं दु, गुणरायेण पदक्खिणिदं णिवेण।
णिग्गंथ-शुदिं किच्चा, णुमज्जीअ पुण गुरुपदेसुं॥34॥
454. तिसिद-कपिंजलोव्व चिय, धम्मामियं आवज्जिदुं तेणं।
णिण्णिमेसेणं तदा, अवअक्खिदो गुरु-णिग्गंथो॥35॥
455. पुणो धम्मुवएसस्स, णियप्पं तिप्पेदुं दु विण्णविदं।
रायेणं भत्तीए, बद्धकरेहि विणयभावेण॥36॥
456. रायस्स धम्मभावं, पस्सिय विप्पसीअंतेण मुणिणा।
पच्चाहरिदं दु सव्व-भव्वाण कल्लाणाय तदा॥37॥

पुनः घोषणा के अनुसार राजा, राजपरिवार, नागरिक भक्तिपूर्वक श्री निर्ग्रन्थ मुनिवर के दर्शन के लिए गए॥33॥ वहाँ पहुँचकर राजा ने श्री गुरु के गुणानुराग से उनकी प्रदक्षिणा की। पुनः निर्ग्रन्थ गुरु की स्तुति कर उन गुरु के चरणों में ही बैठ गया॥34॥ तब धर्माभक्त को प्राप्त करने के लिए राजा वीतशोक प्यासे चातक के समान निर्निमेष दृष्टि से उन निर्ग्रन्थ गुरु को निरखने लगा॥35॥ पुनः राजा ने दोनों हाथों को जोड़कर विनयभाव से भक्तिपूर्वक निजात्मा को तृप्त करने के लिए धर्म का उपदेश देने हेतु मुनिराज से प्रार्थना की॥36॥ तब राजा के धर्म भाव को देखकर मुनिराज ने प्रसन्न होते हुए सभी भव्यों के कल्याण के लिए उपदेश दिया॥37॥

457. धम्मो दुविहो णेयो, समण-सावगाण धम्मभेयादो।
महव्वय-रूवपढमो, अणुव्वयरूवो सावगाण॥38॥
458. णवरि तादो भवादो, णिव्वाण-कारणं समण-धम्मो वि।
सावय-धम्मो सया हि, परंपराए सिवहेदू य॥39॥
459. समणाण सावयाण य, जाणेज्ज अहिंसा धम्ममूलो दु।
तम्हा सव्वजीवा हु, रक्खेज्ज सव्वपयारेणं॥40॥
460. आमुहंते समणा दु, हिंसं चिय छणिकायजीवाणं।
तियजोगेहि सावया, उस्सिवक्केज्ज तस-जीवाणं॥41॥
461. सच्चं अचोरियं सगदार-संतोसं संगपरिमाणं।
भासिदं सावयाणं, पणणुव्वदं अहिंसाजुदं॥42॥
462. अहिंसा सच्चं अचोरियं बंभचेरं अपरिग्रहं च।
भासिदं समणाणं च, पंचमहव्वदं सिवपयस्स॥43॥ (जुम्मं)
463. धम्मवएसं दायिय, माणुस-पज्जायस्स दुल्लहत्तं।
बोहीअ दु करुणाए, सव्वजीवाण कल्लाणाय॥44॥
464. लवणसायरस्स उहय - तडेसुं पडंत - जूअ - सेलाणं।
संजोग-सुलहो तहवि, किण्णु णो माणुस-पज्जाओ॥45॥

श्रमणधर्म व श्रावकधर्म के भेद से धर्म दो प्रकार का जानना चाहिए। महाव्रत रूप प्रथम श्रमणों का धर्म है एवं अणुव्रत रूप श्रावकों का धर्म है॥38॥ विशेषता यह है कि श्रमण धर्म उसी भव से भी निर्वाण का कारण है तथा श्रावक धर्म सदा ही परंपरा से मोक्ष का कारण है॥39॥ श्रमण व श्रावकों के धर्म का मूल अहिंसा जानना चाहिए इसलिए सर्व प्रकार से सब जीवों की रक्षा करनी चाहिए॥40॥ श्रमण तीनों योगों से छः निकाय के जीवों की हिंसा का त्याग करते हैं और श्रावक त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करते हैं॥41॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदार संतोष और परिग्रह परिमाण ये श्रावकों के पाँच अणुव्रत कहे गए हैं तथा मोक्ष पद के लिए श्रमणों के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत कहे गए हैं॥42-43॥ मुनिराज ने धर्मोपदेश देकर करुणापूर्वक सभी जीवों के कल्याण के लिए मनुष्य पर्याय की दुर्लभता का बोध कराया॥44॥ हे राजन्! चार लाख योजन वाले लवण समुद्र के दोनों तटों पर जूआ व सेल अलग-अलग पड़ा हो। पुनः उनका मिलना फिर भी सुलभ है किन्तु मनुष्य पर्याय सुलभ नहीं है॥45॥

465. एगरायपुत्तेणं, उप्पालिदं एयदा भो जणगो!
तुज्झ वुड्ढावत्था दु, अहुणा मज्झं देज्ज रज्जं॥46॥
466. कहिदं रायेण तदा, भो सुदो! जदि पराजिणिदुं सक्को।
तुमं जूअ-केलीए, तो देज्ज रज्जं अण्णहा ण॥47॥
467. रायभवणम्मि अस्सि, अट्टोत्तर-सहस्स-थंभुत्तुंगा।
उक्किण्णा पत्तेयं, थंभे अट्टोत्तर-सहस्सा॥48॥
468. रायहंसा दु तेसुं, पत्तेयं गीवाए चिय हारा।
अट्टोत्तर-सहस्सा हि, पत्तेयं हारम्मि तेसुं॥49॥
469. तावइया मुत्तिगा हि, एगेगं मुत्तिगं च विजयंतो।
हारमेगं जयेज्जा, इगिग-हारं इमेण कमेण॥50॥
470. हार-मिगिगं जयंतो, विजयेज्ज एगेगं रायहंसं।
तं जयंतो य थंभं, कमेण सव्व-थंभा इत्थं॥51॥ (चउक्कं)
471. अपराजयंतो तुमं, मज्झे जयसि एगवारं अवि जदि।
तो दायिस्सामि अहं, इदं रज्जं अण्णहा णेव॥52॥
472. रज्जपत्ती दुल्लहा, जदवि रायसुदेण जूअ-केलीइ।
किण्णु इमादु दुल्लहं, सेट्ट-माणुसभवपावणं च॥53॥

मुनिराज पुनः दृष्टान्त द्वारा समझाते हुए कहते हैं—एक बार एक राजकुमार ने अपने पिता से कहा—हे पिता जी! अब आपकी वृद्धावस्था है, आप यह राज्य मुझे दे दें॥46॥ तब राजा ने कहा—हे पुत्र! यदि तुम मुझे द्यूत क्रीड़ा में हराने में समर्थ हो गए तो मैं तुम्हें राज्य दे दूँगा, अन्यथा नहीं॥47॥ सुनो, इस राजभवन में एक हजार आठ ऊँचे स्तंभ हैं। प्रत्येक स्तंभ पर एक हजार आठ राजहंस पक्षी उत्कीर्ण हैं। उनमें प्रत्येक राजहंस के गले में एक हजार आठ माला हैं और उनमें से प्रत्येक हार में एकहजार आठ ही मोती हैं। जुए में एक-एक मोती को जीतते हुए एक हार जीतना। क्रम से एक-एक हार को जीतते हुए एक-एक राजहंस पक्षी को जीतना, उन्हें जीतते हुए पुनः एक स्तंभ को जीतना। इसी क्रम से सभी एक हजार आठ स्तंभों को जीतना॥48-51॥ यदि बीच में एक बार भी नहीं हारते हुए तुम जीत जाते हो तो मैं तुम्हें यह राज्य दे दूँगा अन्यथा नहीं दूँगा॥52॥ अहो राजन्! यद्यपि द्यूतक्रीड़ा में राजकुमार के द्वारा राज्य की प्राप्ति दुर्लभ है किन्तु श्रेष्ठ मनुष्यभव को प्राप्त करना इससे भी दुर्लभ है॥53॥

475. अणलेण डङ्गिद-सुक्क-काणण-भस्सस्स पुण परमाणूहि।
तस्स विविणुप्पत्तीव, मणुस्स-भवो अइ-दुल्लहो दु॥56॥
481. खणिओ सिविणं व हंदि, समागमो कंता-सुदाइ-पियाण।
मोहवसेणं वरयो!, भमदे इह घोरसंसारे॥62॥
476. फिट्ठंतफलस्स ताल-रुक्खादो उड्ढंत-काग-मुहम्मि।
पडणं व दु अच्चंतो, दुल्लहो माणुस-पज्जाओ॥57॥
477. सुणिच्चु धम्मवएसं, पडिच्छिदं अणुव्वदं रायेणं।
सगमहाराणीइ सह, अच्चंतविसुद्धभावेहिं॥58॥
478. अण्णपयाजणेहि जम-णियमा अहिपच्चुइदा सत्तीए।
पुणो पच्चागच्छीअ, उवएसस्स सिलाहंता॥59॥
479. हम्मिए ठिद-णिवेणं, आयासादो उक्का फिट्ठंता।
पस्सिदा दु विसयादो, विरज्जिदूणं वियारिदं दु॥60॥
480. पुत्त-मित्तं कलत्तं, रज्जं तहा जोव्वणं धण-धण्णं।
दस्समाणत्थ-सव्वं, णस्सरं दु पडंत-उक्का व्व॥61॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र में चिंतामणि रत्न के गिरने पर उसे पुनः प्राप्त करना दुर्लभ है उसी प्रकार मनुष्यभव दुर्लभ है॥54॥ यद्यपि समुद्र में जल की बूंदों को गिनना फिर भी सुलभ है, ज्योतिष ग्रहों को गिनना सुलभ है किन्तु मनुष्यभव की प्राप्ति अति दुर्लभ है॥55॥ जिस प्रकार अग्नि से जले हुए शुष्क वन की भस्म के परमाणुओं से पुनः उस वन की उत्पत्ति अति दुर्लभ है उसी प्रकार मनुष्य भव दुर्लभ है॥56॥ जिस प्रकार ताल वृक्ष से फल का गिरना व उसी समय कौए पक्षी का वृक्ष के नीचे से उड़कर जाना एवं फल का उसके मुख में आ जाना अत्यंत दुर्लभ है उसी प्रकार मनुष्य पर्याय दुर्लभ है॥57॥ राजा ने धर्मोपदेश सुनकर अत्यंत विशुद्ध भावों से अपनी महारानी के साथ अणुव्रत ग्रहण किए॥58॥ अन्य प्रजाजनों ने भी अपनी शक्ति के अनुसार यम व नियमों को ग्रहण किया। पुनः वे सब उपदेश की प्रशंसा करते हुए अपने घरों को लौट गए॥59॥ एक दिन राजप्रासाद में स्थित राजा ने आकाश से गिरती हुई उल्का को देखा। जिसे देखकर वह विषयों से विरक्त हुआ और विचारने लगा—पुत्र, मित्र, कलत्र, राज्य, यौवन, धन-धान्य एवं संसार में दिखने वाले सभी पदार्थ उस उल्कापात के समान नश्वर हैं॥60-61॥

481. खणिओ सिविणं व हंदि, समागमो कंता-सुदाइ-पियाण।
मोहवसेणं वरयो!, भमदे इह घोरसंसारे॥62॥
482. ममिदं अहमिद-महवा, पप्पोदि दुहं मिच्छाभंतीए।
अहो! अयं माणुसो दु, भुंजेदि मेरुव्व दुक्खं च॥63॥
483. णरभवमिदमुवकसीअ, कयाइ कागतालिज्जणायेणं।
संसार-विअ-जणा सग-हिदे णेव करेज्ज पमादं॥64॥
484. भव-सरीर-भोयादो, होही विरत्तो णिव-वीदसोगो।
बुद्धीए सप्फलं वि, पविट्ठी चिय णियप्पहिदम्मि॥65॥
485. णिवेण समाकारिदो, किदपणामंजली अध णियपुत्तो।
कहिदं राय - रस - हीण - दिट्ठि - संजुद - महारायेण॥66॥
486. जावइय-जरावत्था, मम सरीरं ण जज्जरदि झंझा व्वा।
णेत्तदिट्ठी उत्तमा, कुसलं पदं तित्थजत्ताइ॥67॥
487. गंथसवणस्स सत्ती, विज्जमाणा वरा सुमरण-सत्ती।
गंथज्झयणे णिउणो, णेव य पक्खलिद-वाणी मम॥68॥
488. हं तावइय-दियंबर-णिग्गंथ-दिक्खं पणिण्हदूणं दु।
दुहं भुंजंत-मप्पं, मोएज्ज भवादु अणादीदु॥69॥
489. कंखेमि सकल्लाणं, साउज्जं करेज्ज विरोहं णेव।
जं रज्जलच्छी इमा, हेदू भव-परंपराए दु॥70॥ (पंचगं)

स्त्रीपुत्रादि प्रियजनों का समागम स्वप्न के समान क्षणिक होता है। बेचारा यह जीव! इस मोह के वशीभूत होकर इस घोर संसार में परिभ्रमण करता है॥62॥ यह मेरा है अथवा मैं यह हूँ, इस मिथ्या भ्रान्ति से मनुष्य दुःखों को प्राप्त करता है। अहो! यह मनुष्य मेरु पर्वत के समान दुःखों को भोगता है॥63॥ कदाचित् काकतालीय न्याय से यह नर भव प्राप्त किया है इसलिये संसार के जानने वाले लोगों को अपने हित में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए॥64॥ इस प्रकार राजा वीतशोक संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हुआ। सही ही कहा है बुद्धि का सत्फल निजात्म हित में प्रवृत्ति ही है॥65॥ अगले दिन राजा ने अपने पुत्र को बुलाया। वह पुत्र आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। राजा ने राग वा प्रीति के रस से रहित दृष्टि उस पर डाली और कहा—जैसे तीव्र प्रचंड वायु सब कुछ तहस-नहस कर देती है वैसे जब तक यह वृद्धावस्था मेरे शरीर को जर्जर

490. कत्तव्वं पालिदं दु, मए अहुणा सुरज्जपदं गहेसु।
पालहि मज्जादाए, समुद्दपज्जंतं पुढविं च॥71॥
491. वसणादो दूरचरो, करेज्ज अब्भुदयस्स सय पयाए।
सम्मं कज्जं कयाइ, आगदकट्टं णिवारेज्जा॥72॥
492. गुत्तयरेहिं च पया-कट्टं अवहरेज्ज जाणिदूणं च।
चारचक्खुं व णिच्चं, जाणेदुं दूरदिट्ठीए॥73॥
493. णीदिविदू वज्जरंति, जणणुराग-लहणं णिज्झणं तेसुं।
विहूदीए चिय मुख-णिब्बंधणं णेव बाहेज्ज॥74॥

नहीं करती, जब तक नेत्र शक्ति उत्तम है, मेरे पैर तीर्थयात्रा करने के लिए कुशल हैं, जब तक ग्रंथ सुनने की मेरी शक्ति विद्यमान है, जब तक स्मरण शक्ति श्रेष्ठ है, ग्रंथ के अध्ययन में निपुण हूँ। जब तक मेरी वाणी स्खलित नहीं होती तब तक मैं दिगंबर निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर अनादिकाल से दुःख भोगती हुई आत्मा को संसार से मुक्त कराना चाहता हूँ, मैं अपना कल्याण करना चाहता हूँ। तुम मेरा सहयोग करना, तनिक भी विरोध नहीं करना क्योंकि यह राज्यलक्ष्मी संसार की परंपरा का हेतु है॥66-70॥ अभी तक मैंने अपने सभी कर्तव्यों का पालन किया है। अब तुम राज्यपद ग्रहण करो। तुम मर्यादापूर्वक समुद्र पर्यंत पृथ्वी का पालन करना॥71॥ देखो! व्यसनों से दूर ही रहना, प्रजा के अभ्युदय के लिए समीचीन कार्य करना। यदि कदाचित् कोई कष्ट या आपत्ति प्रजाजनों पर आए तो उसे दूर करना॥72॥ गुप्तचरों के माध्यम से प्रजा के कष्ट का पता लगाकर उन्हें दूर करते रहना। दूर दृष्टि से जानने के लिए अर्थात् दूर की स्थिति देखने के लिए गुप्तचरों को ही तुम अपने चक्षु के समान समझना॥73॥ नीतिज्ञ कहते हैं कि लोगों से अनुराग करना और उनसे अनुराग प्राप्त करना ही विभूति का कारण है। कभी प्रजाजनों का विरोध नहीं करना। विपदा से रक्षा के लिए अपने परिवार को वश में करना, कृतज्ञता से उनका परिपालन करना। कृतघ्न व्यक्ति समस्त लोक को खिन्न कर देता है। साम, दाम, दंड व भेद नीतियों से निष्ठापूर्वक राज्य संचालन करना एवं राजा के छः अंतरंग शत्रुओं पर सदैव विजय प्राप्त करना। वृद्ध, पुरोहित व मंत्रियों से विचार-विमर्श करके ही कार्य करना। सभी के सुख के लिए सदैव दंड नीति और पुरस्कार नीति का पालन करना। तुम अपने विचारों को सदा

494. विवदादो रक्खाए, कुडुंबं वसं च किदण्णत्तेणं।
करेज्ज पालेज्ज सया, कयग्घो आयासदि लोयं॥75॥
495. साम-दाम-दंड-भेय-णीदीहि चिय रज्जसंचालणं च।
करेज्ज णिट्ठाए सड-अंतरंग-सत्तु-विजयी सय॥76॥
496. बुड्ढ-पुरोह-मंतीहि, करेज्ज कज्जं च परामरिसित्ता।
पालेज्ज सव्वसुहस्स, सय दंड-पुरक्कार-णीदिं॥77॥
497. संवुडचित्तविट्ठिं हि, करेज्ज सहिदाय फलाणुमेयाणि।
गूढप्पमंतो च परमंतभेदी पराण अजेयो॥78॥ (पंचगं)
498. रज्ज-संचालणं चिय, करंतो हणिहणि धम्मं पालेज्ज।
ओअग्गेज्ज सुकित्तिं, सव्वदिसासुं विदिसासुं च॥79॥
499. इत्थं सिक्खाए सह, दाएज्ज रज्जभारं सुपुत्तस्स।
सुदो अणुऊलविट्ठी, संगच्छिदं अणुरोहेणं॥80॥
500. पुण सव्वं संबोहिय, अणिच्चाइ-भावणा-उवएसेण।
पुच्छिय अध दिक्खाए, सिग्घं चिय तप्परो होज्ज॥81॥
501. विजोग-हरिस-भावेहि, करिदुं धम्मं गहिदो संकप्पो।
सव्वेहि सगसत्तीइ, कयाइ वाउलचित्तेहिं च॥82॥

गुप्त रखना। जिन कार्यों को तुम करना चाहो उनका किसी को पहले से पता नहीं लगाने देना। कार्य की समाप्ति होने के पश्चात् फल को देखकर लोग उसका केवल अनुमान ही लगा सकें। ध्यान रखना जो अपनी मंत्रणा को गुप्त रखता है और दूसरों की गुप्त मंत्रणा को प्रकट कर लेता है वह अपने शत्रुओं के लिए अजेय होता है॥74-78॥ हे पुत्र! राज्य संचालन करते हुए प्रतिदिन धर्म का पालन करना एवं सभी दिशाओं और विदिशाओं में निर्मल कीर्ति विस्तृत करना॥79॥ इस प्रकार राजा वीतशोक ने अपने पुत्र को शिक्षा के साथ राज्यभार प्रदान किया। पिता के अनुरोध से पुत्र ने भी राज्य स्वीकार कर लिया। उचित ही है कि सुपुत्र वही है जो पिता के अनुकूल वृत्ति करे॥80॥ पुनः राजा वीतशोक ने सभी को अनित्य आदि भावना के उपदेश से संबोधित कर दिगंबर दीक्षा ग्रहण करने के लिए सभी की अनुमति प्राप्त की एवं शीघ्र दीक्षा हेतु तत्पर हुए॥81॥ कदाचित् व्याकुल चित्त से युक्त सभी ने वियोग और हर्ष के मिश्रित भावों से अपनी शक्ति के अनुसार धर्म करने का संकल्प ग्रहण किया॥82॥

502. गुणधम्ममुणिचरणेषु, अध पहुच्चीअ पाववहारगस्सा
णरा जस्स दंसणेण, लहेज्ज सम्मत्ताइगुणा॥83॥

503. जस्स वंदणा भत्ती, हरदि सोग-मवजसं भयं रोयं।
इड्डसुवत्थु-कारणं, विजोग-कारणं अणिट्टाण॥84॥ (जुम्मं)



504. सोगं भय - सत्तुत्तं, रोयं उहट्टंति मुणि - दंसणेण।
होज्ज सुभिक्षत्तं सुह-संती समिद्धी आरोग्गं॥85॥

505. सिरिगुणधम्म - मुणिवरं, णिवेदीअ भवदुक्खहारगाए।
सव्वसुहकारगाए, दियंवर - णिग्गंथ - दिक्खाइ॥86॥

पुनः राजा वीतशोक पापों का संहार करने वाले उन श्री गुणधर्म मुनिराज के चरणों में पहुँचे जिनके दर्शन से ही लोग सम्यक्त्व आदि गुण प्राप्त कर लेते थे, जिनकी वंदना, भक्ति शोक-अपयश-भय व रोग को हर लेती थी। जिनकी भक्ति इष्ट वस्तु की संप्राप्ति और अनिष्ट वस्तु व जनों के वियोग का कारण थी॥83-84॥ सही तो है श्री मुनिराज के दर्शन से शोक, भय, शत्रुता व रोग नष्ट होते हैं तथा सुभिक्षता, सुख, शांति, समृद्धि तथा निरोगी देह होती है॥85॥ राजा वीतशोक ने श्री गुणधर्म मुनिराज से संसार के दुःखों को नष्ट करने वाली, सभी सुखों को करने वाली निर्ग्रंथ दिग्ंबर दीक्षा के लिए निवेदन किया॥86॥

506. संसार-तण-भोयादु, विरत्तीए आइक्खिदं मुणिणा।
आयण्णिय रायो तं, परमवेरग्गभावजुत्तो॥87॥
507. हे भयवो! अणुग्गहिय, महव्वदेहिं सुमंडिदं कुणेसु।
तह गुत्ति-समिदीहिं वि, दाएज्ज सिववयसक्कारं॥88॥
508. गुणधम्ममुणिसमीवे, सव्वपरिग्गहं पडियाइक्खित्तु।
सेट्ठणिगंथदिक्खं, गहीअ णियप्पकल्लाणाय॥89॥
509. हिंस-मलीगं थेयं, अबंभं परिग्गहं पच्चक्खीअ।
मणवयणकायेहिं च, कदकारिदाणुमोदेहि॥90॥ (जुम्मं)
510. पणसमिदि-अक्खणिरोह-सडावस्सगा सत्तसेसगुणा या।
महव्वदेहि सह अट्ठवीसमूलगुणा धारिदा य॥91॥
511. बावीस-परिसह-जयो, बेदहतवो कम्मक्खयिदुं खमो।
उहयो हि बे चरणं व, णिव्वाणमग्गे हु गमणस्स॥92॥
512. कम्मणिज्जराए चिय, संवर-णिब्बंधणं मुणेदव्वं।
समत्तपहावेणं दु, जोगी लहदि णिव्वाणपदं॥93॥
513. जाणह पंच-चिण्हाणि, दियंबरत्तं कमंडलुं पीछी।
करपत्त-भोयणं तह, पदविहारं णिगंथाणं॥94॥

श्री मुनिवर ने संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति प्रदान करने वाला उपदेश दिया जिसे सुनकर राजा परमवैराग्य भाव से युक्त हो गया॥87॥ उसने कहा हे भगवन्! कृपा करके आप मुझे महाव्रतों, गुप्ति व समितियों से मंडित करें एवं मोक्ष व्रत के संस्कार प्रदान करें॥88॥ तब श्री गुणधर्म मुनि के समीप राजा वीतशोक ने सर्व परिग्रह को त्यागकर निजात्म कल्याण के लिए श्रेष्ठ निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण की। मन-वचन-काय व कृत-कारित-अनुमोदना से हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म व परिग्रह का त्याग किया॥89-90॥ श्री वीतशोक मुनिराज ने पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध, षडावश्यक, सात शेष गुण इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुणों को धारण किया॥91॥ बाईस परीषहजय और बारह तप कर्मों का क्षय करने में समर्थ हैं। परीषहजय व तप ये दोनों ही निर्वाण मार्ग में गमन करने के लिए दो चरण के समान हैं॥92॥ कर्म निर्जरा के लिए संवर कारण जानना चाहिए। समत्व के प्रभाव से योगी निर्वाण पद प्राप्त करता है॥93॥ निर्ग्रन्थ साधुओं के पाँच चिह्न जानने चाहिए—कमंडलु, पीछी, दिगंबरत्व (नग्नता), पाणिपात्र में भोजन लेना तथा पैदल विहार करना॥94॥

514. जे के वि हु णिगंथा, बज्झचिणहसंजुदा पुण्णवंता।
पुज्जा आहाराइं, ताण देज्ज हु धम्म-रक्खाइं॥95॥
515. मुणिणा वीदसोगेण, णिदोससंजमो पालिदो सय हि।
बहु-इड्डी पाविदा य, अप्पविसुद्धी परमरूवा॥96॥
516. पाविडयालम्मि रुक्ख-मूले सीदे तरंगिणी-तडम्मि।
उण्हे गिरि-सिहरम्मि दु, झाएज्जा कम्मक्खयेदुं॥97॥
517. रिसिणा पाविदं ओहि-णाणं मणपज्जयणाणं तिणं व।
पुण घादीसु णट्टेसु, सुहं केवलणाणं फलं व॥98॥
518. सुक्कज्झाणबलेणं, पाउणिय सजोगकेवलि-अवत्थं।
णाणा-देसेसु तदा, विहरिदं सव्वकल्लाणाय॥99॥
519. गंधकुडीइ विज्जंत-देवस्स दिव्वज्झुणी णिस्सरिदो।
जिणधम्म-देसणाए, दंसाविदो कल्लाणपहो॥100॥
520. केहि भव्वेहि मोक्खो, केहि संजमो अणुव्वदं केहिं।
केहि लंभिदं उवसम-खयिअ-खओवसम-सम्मत्तं॥101॥

जो कोई भी निर्ग्रन्थ साधु बाह्य चिह्नों से युक्त हैं वे पुण्यवंत एवं पूज्य हैं। धर्म की रक्षा के लिए उन्हें आहार आदि देना चाहिए॥95॥ मुनि वीतशोक ने सदा ही निर्दोष संयम का पालन किया। मुनिवर ने परम रूप आत्मविशुद्धि व बहुत ऋद्धियों को प्राप्त किया॥96॥ वर्षाकाल में वृक्षमूल में, शीतकाल में नदी के तट पर, ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर वे कर्मक्षय के लिए ध्यान करते थे॥97॥ श्री ऋषिराज ने संयम के प्रभाव से तृण के समान अवधिज्ञान व मनःपर्यय ज्ञान को प्राप्त किया पुनः घातिया कर्मों के नष्ट होने पर फल के समान शुभ केवलज्ञान को प्राप्त किया॥98॥ शुक्लध्यान के बल से सयोगकेवली अवस्था को प्राप्त करके नाना देशों में सभी के कल्याण हेतु विहार किया॥99॥ तब गंधकुटी में विद्यमान जिनेन्द्र देव की दिव्यध्वनि निःसृत हुई। जिनधर्म देशना से सभी के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया॥100॥ जिससे किन्हीं भव्यों ने मोक्ष प्राप्त किया तो किन्हीं ने संयम प्राप्त किया, किन्हीं ने अणुव्रत ग्रहण किए तो किन्हीं ने उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया। किन्हीं ने क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया तो किन्हीं ने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया॥101॥

521. किंचणवस्स-पच्छा य, अजोगी खलु सजोगकेवलीदो।
खयिय अंतोमुहुत्ते, असेस-पयडी लहीअ सिवं॥102॥
522. सिद्धाणं अट्टगुणा, सम्मत्त - णाण - दंसण - वीरियं चा।
सुहुम-मवगाहणत्तं, अगुरुलहुत्त-मव्वावाहत्तं अव्वावाहं च॥103॥
523. तेहि गुणेहि संजुदो, विमुक्को य जम्मजरामरणादो।
लोयग्गठिदो णिच्चो, दव्वभावणोकम्मरहिदो॥104॥
524. पच्छा राय-असोगो विरज्जिदूणं भवतणभोयादो।
तच्चं संझाएज्जा, सिरिजिणदिक्खं तु कंखंतो॥105॥



कुछ वर्ष पश्चात् सयोग केवली अवस्था से वे अयोग केवली हुए एवं अंतर्मुहूर्त में सर्व प्रकृतियों का क्षय कर निर्वाण को प्राप्त किया॥102॥ सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाध-ये सिद्धों के आठ गुण होते हैं॥103॥ वे जिनेंद्र प्रभु इन गुणों से संयुक्त हो गए, जन्म-जरा-मरण से सदा के लिए विमुक्त हो गए, लोक के अग्रभाग के निवासी, नित्य एवं द्रव्य, भाव व नोकर्म से रहित हो गए॥104॥ उधर महाराज वीतशोक की दीक्षा के पश्चात् राजा अशोक संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर श्री जिन दीक्षा को ग्रहण करने की इच्छा करते हुए तत्त्वचिंतन करने लगे॥105॥

525. बोहिय विरायभावं, रायकुडुंब-मंतिमंडलादीहि।
असोगो णिवेदिदो दु, भो सामी! तुमं भयवदोव्व॥106॥
526. पयाइ अण्ण-दायगो, पाण-रक्खगो सरणदयो सेट्ठो।
कत्तव्वं पालेज्जा, तव जणगाणाणुसारेणं॥107॥
527. बोहिदूण असोगेण, चिंतिदो भवसरूवो बहुवारं।
हा! मे इदाणिं चरिय-मोहकम्मतिव्वुदयो हंदि॥108॥
528. वियट्ठिमेणं तेणं, रज्जसंचालणं करिदं तदा हु।
स-संतोसविट्ठीए, पुव्वपुण्णं भुजंतेणं॥109॥
529. णायेण रज्जकज्जं, करिदं पयं पडि वच्छलभावेण।
राणिं पडि मित्तभाव-सहिदेण सुणासीरोव्व खलु॥110॥ (जुम्मं)
530. हियमियपियवयणेहिं, जुदा हणिंहणिं मंगलभावेहि।
पुण्णकज्ज-संलीणा, वर-परामरिसगा मित्तं व॥111॥
531. सव्व-रायविज्जाणं, ठाणं सहावादु तिक्ख-बुद्धीइ।
उच्छुहा व्व दु परोप्पर-दंसणस्स भद्दगे पसंति॥112॥

राजा अशोक के इन वैराग्यपूर्ण भावों को समझकर राजपरिवार व मंत्रीमंडल आदि सभी ने उनसे निवेदन किया कि हे स्वामी! आप हमारे लिए भगवान् के समान हैं॥106॥ हे राजन्! समस्त प्रजा के लिए आप अन्न दाता हैं, सभी के प्राणों की रक्षा करने वाले हैं, सभी के त्राण कर्ता हैं, श्रेष्ठ हैं। हे स्वामी! आप अपने पिता की आज्ञा के अनुसार कर्तव्यों का पालन करें॥107॥ इस प्रकार बोध को प्राप्त होकर राजा अशोक ने बहुत बार संसार के स्वरूप का चिंतन किया। उन्होंने विचार किया हाय! अभी मेरे चारित्र मोहनीय कर्म का तीव्र उदय है॥108॥ तब उन कुशल शासक ने अपनी संतोषवृत्ति से व पूर्व पुण्य को भोगते हुए निपुणता से राज्य का संचालन किया। रानी के प्रति मित्रभाव से सहित राजा ने प्रजा के प्रति वात्सल्यभावपूर्वक देवराज इंद्र के समान न्यायपूर्वक राज्यकार्य किया॥109-110॥ महारानी रोहिणी सर्वदा हित-मित-प्रिय वचन ही बोलती थीं। वे मंगलभावों से युक्त सदा पुण्य कार्य में संलग्न रहती थीं। महारानी राजा अशोक के लिए श्रेष्ठ सलाहकार व मित्र के समान थीं॥111॥ राजा अशोक की बुद्धि स्वभाव से अत्यंत तीक्ष्ण थी अतः उस सुख उत्पन्न करने वाले प्रशांत राजा में वे सारी विद्याएँ, जिनका अध्ययन राजाओं को अवश्य ही करना चाहिए, उन सबका स्थान वह था अर्थात् विद्याएँ उसमें ही आकर रहने लगीं। मानो वे पहले से ही एक-दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक थे॥112॥

532. सूरत्तं सीहादो, वसिदा मुणीदु तुंगत्तं गिरीदु।
एसज्जं इंदादो, गंभीरं सिंधूदु तुलिदं॥113॥
533. गुणपुंज - कलाजुदेण, णायसील - सूरवीर - असोगेण।
पिदु-णिद्देसेण किदं, रज्जसंचालणं चक्कीव॥114॥
534. दिअ - अस्स - रह - पदादी, इच्चादी तस्स सोहाणिमित्तं।
णो को वि सत्तू तदा, जसक्कित्ति-आलयो राओ य॥115॥
535. णो जाण कधं राओ, सम-संती आइगुणा पसंसेदि।
दुगुंछेदि मिमं तहा, सो मुंचिदो रुट्टमदेणं॥116॥
536. जलरासीव विसालो, मज्जाइल्लो सेट्टो गंभीरो।
उवरि णिम्लजलजुदो, अंतरे गुणरयणसंजुदो॥117॥
537. वच्छत्थलं दु माए, मुहो वाणीए देहो कंतीइ।
हिअयं खमाए बाहु-जुगलं वीरत्तस्स ठाणं॥118॥
538. सच्च-उदारत्त-खमा-दया-विणयाइ-गुणेहि पत्थिदं दु।
सेट्टासय-वंछिदोव्व, आयरेण णिवालयो होज्ज॥119॥

उसकी शूरवीरता की तुलना सिंह से, जितेन्द्रियता की तुलना मुनियों से, ऊँचाई की पर्वत से, ऐश्वर्य की इंद्र से तथा गंभीरता की सागर से की जाती थी॥113॥ राजा अशोक समस्त गुणों का पुंज था। नाना कलाओं से युक्त, न्यायशील व शूरवीर था। पिता के निर्देश से उसने चक्रवर्ती के समान अपने राज्य का संचालन किया॥114॥ हाथी, घोड़े, रथ व पदाति इत्यादि उसकी शोभा के निमित्त ही थे। तब कोई भी उसका शत्रु नहीं था। वह राजा अशोक यश-कीर्ति का निवास स्थान ही था॥115॥ यह राजा न जाने कैसा है जो सदा शम, शांति आदि गुणों की प्रशंसा करता है और मुझसे द्वेष करता है, मानो इसलिए अहंकार रुष्ट होकर उसे छोड़कर चला गया॥116॥ वह समुद्र के समान विशाल, मर्यादित, श्रेष्ठ व गंभीर था। वह समुद्र के समान ऊपर निर्मल जल से युक्त था एवं अंतरंग में गुणरूपी रत्नों से संयुक्त था॥117॥ उस अशोक का वक्षस्थल लक्ष्मी का, मुख सरस्वती का, शरीर कांति का, हृदय क्षमा का एवं युगल बाहु वीरता के स्थान थे॥118॥ श्रेष्ठ आश्रय को चाहने वाले के समान मानो सत्य, उदारता, क्षमा, दया, विनय आदि गुणों ने भी अपने आश्रय के लिए प्रार्थना की। मानो इसलिए आदरपूर्वक राजा इनका निवास स्थान हुआ॥119॥

539. पयाए भयवदोव्व हु, सुसंरक्खगो वर - संवड्ढुगो या
परम-विस्सासी तहा, पाणोव्व पियो दु ओयंसी॥120॥
540. तस्स णीदीइ सोहा, विहवेणं विहवस्स हु विणयेणं।
विणयस्स पसम-खमाइ, उहयाणं परक्कमेणं च॥121॥
541. णिग्गंथाणुवासगो, पूयगो सिरिवीयराय-जिणाणं।
जिणवयणाणं वसणी, गुरुवयणं सुणेदुं लोही॥122॥
542. सत्त-खेत्तेसु दाणं, देच्चा महाणंदजुत्तो राओ।
धम्मकज्जविहीणम्मि, मण्णेज्जा विथा सगजम्मं॥123॥
543. सत्तूणं कालोव्व हु, सगासिद-पयाए कवयोव्व सो या।
दुट्ठाणं च अणिट्ठो, इट्ठो सुजण-सयायारीण॥124॥
544. कुमुदं व सहिट्ठीण, असोगो सीयल-मिअंगोव्व तदा।
ऊसमालीव णिच्चं, अवगुणरूवोसविणासगो॥125॥
545. दीण-हीण-दुहिणो पडि, पसुपक्खीओ तह साणुक्कोसो।
ताणं सो ईसरोव्व, सत्तूण विरोहीण जमोव्व॥126॥

वह राजा अपनी प्रजा के लिए भगवान् के समान था। प्रजा का संरक्षण-संवर्द्धन करने वाला था। वह परम विश्वासी, प्राणों के समान प्रिय तथा ओजस्वी था॥120॥ उसकी नीति की शोभा वैभव से थी, वैभव की शोभा विनय से, विनय की प्रशम व क्षमा से और प्रशम व क्षमा की पराक्रम से थी॥121॥ वह निर्ग्रन्थ गुरुओं का उपासक, श्री वीतरागी जिनेंद्र प्रभु का पूजक, जिनवचनों का व्यसनी और गुरु के वचन सुनने के लिए लोभी था॥122॥ सप्त स्थानों (जिनबिंब, जिनचैत्यालय, तीर्थयात्रा, जिनमहोत्सव, जिनागम, जिनायतन, जिनपूजा) में दान देकर राजा महाआनंद से युक्त होता था। धर्मकार्य से रहित होने पर वह अपना जन्म व्यर्थ ही मानता था॥123॥ वह शत्रुओं के लिए काल के समान और अपने आश्रित रहने वाली प्रजाजनों के लिए ढाल के समान था। वह दुष्टों के लिए अनिष्टकारी एवं सज्जन व सदाचारियों के लिए इष्टकर था॥124॥ जिस प्रकार शीतल चंद्रमा के द्वारा कुमुद विकसित होता है उसी प्रकार राजा अशोक सम्यग्दृष्टियों का विकास करने वाला था। जैसे सूर्य से ओस की बिंदुएँ नष्ट हो जाती हैं वैसे ही राजा प्रजाजनों के अवगुणों का नाश करने वाला था॥125॥ दीन-हीन, दुःखीजन व पशु-पक्षियों के प्रति वह दया से युक्त था, उनके लिए वह ईश्वर के समान था जबकि शत्रुओं व धर्म विरोधियों के लिए वह यमराज के समान था॥126॥

546. समरंगणे अजेयो, अखंड-सेट्टपरक्कम-संजुत्तो।
पुण्णखेत्ते सलिलं व, चित्त-पक्खालगो सरलो य॥127॥
547. सिरोमणी रायेसुं, णिगगंथ-गुरुचरणंबुज-छप्पयो।
दियंवर-दंसणाय दु, कपिंजलोव्व तिसाउरो सो॥128॥
548. सोम्ममुत्ती य सुगठिद-देहजुत्तो तत्तहाडगवण्णो।
इट्ट-कज्ज-कत्ताणं, महाबंधू व्व सहयारी य॥129॥
549. सबलाण बलं राओ, दुब्बलाण रक्खो मज्जाइल्लो।
कला-पेम्मी तिक्खधी-मंतो सक्किदि-संवड्ढुगो॥130॥
550. विदूण सुजोग्ग-सिस्सो, सुणायगो य कलाविसारदाणं।
आयंसो सज्जणाण, जणगोव्व भादू व्व इत्थीण॥131॥
551. पुरोकरीअ आयंस-कज्ज-कत्तुणो पडिवस्से रज्जे।
पणोल्लेदुं अण्णं च, दंडीअ अवराही सुहस्स॥132॥
552. तस्स णामं सुणित्ता, दुट्टा कंपीअ तरुपत्ताइं वा।
वायणिग-दंडो तदा, अवि अवराहाणुसारेणं॥133॥

अखंड श्रेष्ठ पराक्रम से युक्त वह राजा युद्धक्षेत्र में अजेय था। पुण्य-क्षेत्र में वह जल के समान चित्त का प्रक्षालन करने वाला और सरल था॥127॥ वह राजाओं में शिरोमणि था, वह निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरण कमलों का भ्रमर था एवं श्री दिगंबर गुरु के दर्शन के लिए चातक के समान तृषातुर था॥128॥ वह सौम्यमूर्ति, सुगठित देह से युक्त था। उसकी देह का वर्ण तपे हुए स्वर्ण के समान था। वह इष्ट-कार्य करने वालों के लिए महाबंधु के समान सहयोगी था॥129॥ वह राजा बलवानों का बल व दुर्बलों का रक्षक था। वह मर्यादित, कला-प्रेमी, तीक्ष्णबुद्धि वाला एवं संस्कृति का संवर्द्धक था॥130॥ वह विद्वज्जनों का सुयोग्य शिष्य, श्रेष्ठ कलानायक, कला विशारदों के लिए आदर्श, सज्जनों के लिए पिता के समान, स्त्रियों के लिए भाई के समान था॥131॥ वह राजा आदर्श कार्य करने वालों के लिए व अच्छे कार्य हेतु दूसरों को प्रेरणा देने वालों के लिए प्रतिवर्ष पुरस्कार दिया करता था एवं सुख-शांति की स्थापना के लिए वह अपराधियों को दंडित करता था॥132॥ उस राजा का नाम सुनकर दुष्टजन काँपने लगते थे। अपराध के अनुसार तब वाचनिक दंड भी हुआ करता था॥133॥

553. तत्थ पया संतुट्टा, जत्तो अइणूणो चिय अवराहो।
सग्गोव्व सुहं लहीअ, णिवो पया सभासद-सव्वा॥134॥
554. असी मसी किसि-विज्जा, वाणिज्ज-सिप्प-णच्चादी कला या
वड्डीअ तत्थ देसे, ससि-पहावेण सिंधु-जलं व॥135॥
555. संखेवेणं देसो, समिद्धो सो दु सव्वपयारेणं।
दिणे दिणे समिद्धी य, वड्डीअ णिव-पया-सव्वाण॥136॥
556. अइपुण्णवंत-राओ, समण्णदो सव्वगुणेहि रायस्सा।
दूरुल्ले खेत्ते णो, तदा को वि णिवो असोगोव्व॥137॥
557. सहजजीवणं वियार-उच्चो वसुहाकुडुंब-भावणा या
विअड्ढो रज्जकज्जे, मच्छराइ-भाव-विरहिदो दु॥138॥
स्रग्धरा छंद
558. पुण्णेणं पाविदा वा सुगुण-सुहकला तेण कित्ती पसंसा,
सक्कारा सेट्टविज्जा हियमियवयणं सत्थसंचालणे वा।
णेउण्णं रज्जकज्जे वरसजणकुलं जेणहधम्मे सुपीदी,
णीदीरीदीइ वत्तं सहजसरलविट्ठी य उक्किट्टबुद्धी॥139॥

वहाँ की प्रजा संतुष्ट थी क्योंकि वहाँ अपराध बहुत कम थे। राजा, प्रजा, सभासद सभी जन स्वर्ग के समान सुख प्राप्त करते थे॥134॥ जैसे चंद्रमा के प्रभाव से सागर का जल वृद्धिगत होता है उसी प्रकार उस देश में असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्प व नृत्यादि कला वृद्धिगत होती थी॥135॥ संक्षेप में वह देश सभी प्रकार से समृद्ध था। राजा व प्रजा सभी की समृद्धि दिनों-दिन वृद्धिगत हो रही थी॥136॥ अति पुण्यवान् वह राजा, राजा के सभी गुणों से समन्वित था। उस समय दूरवर्ती क्षेत्र में कोई भी राजा अशोक के समान गुणवान् नहीं था॥137॥ राजा अशोक सहज जीवन जीते थे। उनके विचार उच्च थे और यह समस्त पृथ्वी परिवार ही है ऐसी भावना से युक्त थे। वे राजकार्य में निपुण एवं ईर्ष्याभाव से रहित थे॥138॥ राजा अशोक ने पुण्य से सुगुण, श्रेष्ठ कला, कीर्ति, प्रशंसा, संस्कार, श्रेष्ठ विद्या, हित-मित वचन, शस्त्र संचालन व राजकार्यों में निपुणता, श्रेष्ठ कुल, स्वजन, जैन धर्म में प्रीति, नीति व रीतिपूर्वक वार्ता, सहज-सरल वृत्ति एवं उत्कृष्ट बुद्धि प्राप्त की॥139॥

559. संसारीणं सुपुण्णं इग-वर-सरणं रक्खिदुं वा दुहादो,
भव्वो! संसार-हेदू हवदि ण कया सेट्ठणिवक्कंखपुण्णं।
तम्हा तुम्हं करेज्जा वरसुहकिरियं सव्वकंखाविहीणं,
भावेहिं सव्वदा हि जिणसुदगुरुणो वा पडुच्चं सुधम्मं॥140॥

दुःख से रक्षा करने के लिए संसारी जीवों के लिए पुण्य ही एक उत्तम शरण है। हे भव्य जीव! श्रेष्ठ व निःकांक्ष पुण्य कभी भी संसार का कारण नहीं होता इसलिए तुम्हें जिनदेव, जिनशास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरु एवं समीचीन धर्म का आश्रय लेकर भावों से सभी आकांक्षाओं से रहित सदैव श्रेष्ठ पुण्य कार्य करना चाहिए॥140॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में रोहिणी की विदाई, राजा वीतशोक का वैराग्य, उनके द्वारा अपने पुत्र अशोक को शिक्षा पूर्वक राज्य प्रदान करना व राजा अशोक के व्यक्तित्व का वर्णन करने वाला यह चतुर्थ नंद पूर्ण हुआ।

पंचम-णंदो

560. एयदा अंतउरम्मि, सगपाणवल्लहाइ सह णिमग्गो।
णिवो णेहेण कहीअ, एणंगोव्व तव आणणं दु॥1॥
561. क्किण्णु सो दोसजुत्तो, तुमं सुणिममला तह विणिहोसा।
वड्ढेदि हासदि चंद-कला तुमं सुवड्ढमाणा य॥2॥ (जुम्मं)
562. उवरत्तो ससंगो दु, तुमं पावकम्महि गसिदा णेव।
अदिसयपुण्णसीला य, तव समा देवांगणा णो वि॥3॥
563. करेज्ज मच्छरं रदी, तव अप्पडिम-सुंदरिमाए किं ण।
मज्झं णिममला तुमं, सुरणदीव हे रूवरासी!॥4॥
564. रदी कप्पणा मेत्तं, णो कस्स वि दिट्ठि-गोयरा कया वि।
रदिं सेवेदुं कहं, सक्केज्ज सरो कायहीणो॥5॥
565. तुमं णेव कमल-मुही, जम्हा तं पमिलायदि रत्तीए।
सय दिणरत्तीइ णवरि, विअसदि सुहा! पुव्वपुण्णेण ॥6॥

एक बार राजा अशोक अंतःपुर मे अपनी प्राणवल्लभा के साथ निमग्न थे। राजा ने प्रेमपूर्वक कहा अहो प्रिये! आपका मुखमंडल चंद्रमा के समान है; किन्तु वह चंद्रमा तो दोषयुक्त होता है तुम तो निर्दोष व सुनिर्मला हो। चंद्रमा की कला तो बढ़ती-घटती है; किन्तु तुम सदैव गुणों की वृद्धि को प्राप्त होती हो॥1-2॥ चंद्रमा तो राहु के द्वारा ग्रसा जाता है; किन्तु तुम पापकर्मों से ग्रसित नहीं होती। तुम अतिशय पुण्यवती हो, तुम्हारे समान देवांगना भी नहीं है॥3॥ तुम्हारी अप्रतिम सुंदरता से रति मात्सर्य क्यों नहीं करे? अर्थात् तुम्हारा सौंदर्य रति के लिए भी ईर्ष्या का कारण है। मेरे लिए तुम गंगा के समान निर्मल हो॥4॥ अहो रूपराशि! रति कल्पना मात्र है वह कभी भी किसी के दृष्टिगोचर नहीं हुई। काम तो शरीर से रहित है तब वह रति का सेवन कैसे करता होगा?॥5॥ हे शुभे! तुम कमलमुखी नहीं हो; क्योंकि वह कमल तो रात्रि में मुरझा जाता है; किन्तु तुम दिन-रात सदैव पूर्व पुण्य से विकसित ही रहती हो॥6॥

566. णारीणं अंगाणं, देदि उवमं जहा गयगामिणिआ।
मिगणयणी-चंदमुही, संखगीवजुदा को वि कवी॥7॥
567. कंठो कलयंठीव य, दाडिमबीअं व दंतो ताए या।
सुओव्व सु णासिगा किस-उदरी सा वल्लरीव पिया॥8॥
568. तुज्झ ता सव्वोवमा, णेव सत्थगा अणुवमा तुमं जं।
ण दिस्सदि कं वि वत्थुं, तव उवमाए हे णिरुवमा!॥9॥ (तिअं)
569. भो देवी! पुव्वभवे, किं जिणभत्तिं करीअ घोरतवं।
वा णिगंगथ-गुरूणं, दाएज्जा दु चदुविह-दाणं॥10॥
570. चउविह-संघो दु पुण्ण-जत्तं करावीअ सिद्धखेत्ताण।
वा सिद्धंत-सत्थाणि लिहावित्ता देज्ज सव्वाण॥11॥ (जुम्मं)
571. देज्जा करुणा-दाणं, किं तिरियाण दीणहीणजीवाण।
वा लक्खकोडिवारं, जवीअ णमोयारमंतं च॥12॥
572. सीलवदं णिद्दोसं, पालीअ सया सुदिग्घयालंतं।
पव्वेसुं उववासं, किं तुमं करीअ विसुद्धीइ॥13॥

जो कोई भी कवि नारी के अंगों की उपमा देता है कि वह मृगनयनी, गजगामिनी, चंद्रमुखी, शंख के समान ग्रीवा वाली वा कोयल के समान कंठ वाली है अथवा उसके दाँत अनार दानों के समान हैं, नासिका तोते की नासिका के समान है अथवा वह कृश-उदरी है, लता के समान व प्रिय है; किन्तु तुम्हारे लिए ये सभी उपमा सार्थक नहीं हैं क्योंकि तुम अनुपम हो। हे निरूपमे! तुम्हारी उपमा के लिए कोई भी वस्तु संसार में दिखाई नहीं देती॥7-9॥ अहो देवी! पूर्व भव में तुमने जिनभक्ति की या घोर तप किया अथवा निर्ग्रथ गुरुओं के लिए चार प्रकार का दान दिया। चतुर्विध संघ को सिद्ध क्षेत्रों की पुण्य यात्रा करायी अथवा सिद्धांतशास्त्रों को लिखवाकर सभी के लिए दिया॥10-11॥ तुमने तिर्यच दीन-हीन जीवों के लिए करुणादान दिया या लाखों-करोड़ों बार णमोकार मंत्र का जाप किया॥12॥ तुमने सदा शीलव्रत का निर्दोष पालन किया या विशुद्धिपूर्वक दीर्घकाल तक पर्वों में उपवास किया॥13॥

573. तुमं अच्चंतधीरा, पुण्णं संगहिदुं वीरा रम्मा।
गुणगंभीर-पसंता, परपीडं अक्खमा सोदुं॥14॥
574. कुव्वेसि तच्चचिंतण-समयम्मि चिय सुदुवणम्मि केलिं।
मादू व्व तुमं पयाइ, वच्छल्लछायादाणादो॥15॥
575. रंभा व्व रदी राणी, लच्छिरूवा मंतीव धीमंता।
शीलवंता सुमित्तं, खमा-धम्म-धारगा मही व्व॥16॥
576. रायसहं सुणित्ता, कहिदं विडिआए णो सच्चमिमं।
तिव्वरायेण कहिदं, तइ हि मे अत्थित्तं देवो!॥17॥
577. धण-सजण-सुदेहादी, सुपुण्णफलेणं हु दुल्लहा णेव।
होदि पुण्णवंताणं, सय धम्मे पुण्णे पविट्ठी॥18॥
578. तुहेव मे सोहग्गो, होही तुमए सोहग्ग-उदयो दु।
तुमं विणा मम सोहा, णीरेण विणा तरंगिणीव॥19॥
579. पउमं विणा सरोव्व य, णयणेहिं विणा आणणं व तहा।
जोदीइ विणा णयणं, ससंगेणं विणा रत्तीव॥20॥
580. तुह विणा णिय-जीवणं, मण्णेमि पाणेण विणा देहोव्व।
पणोल्लयो आयंसो, जिणधम्म-सुपालगो देवो!॥21॥ (तिअं)

अहो प्रिये! तुम अत्यन्त धीर हो, पुण्य संग्रह करने के लिए वीरांगना हो, रम्या हो, गुणों से गंभीर, प्रशांत एवं परपीड़ा सहने में असमर्थ हो॥14॥ तुम तत्त्व-चिंतन के समय श्रुत रूपी उपवन में क्रीड़ा करती हो। अहो महारानी! वात्सल्य की छाया प्रदान करने से तुम प्रजा के लिए माता के समान हो॥15॥ अहो रानी! तुम रंभा के समान रति, लक्ष्मी रूप, मंत्री के समान बुद्धिमती, शीलवती, श्रेष्ठ मित्र तथा भूमि के समान क्षमा धर्म की धारक हो॥16॥ राजा के शब्दों को सुनकर शर्माते हुए रानी ने कहा—हे देव! आपसे ही मेरा अस्तित्व है। आपने जो कहा है वह सत्य नहीं, यह सब आपने तीव्र राग से ही कहा है॥17॥ धन, स्वजन, श्रेष्ठ देह आदि अतिशय पुण्य के फल से दुर्लभ नहीं हैं। पुण्यवानों की धर्म व पुण्य में सदैव प्रवृत्ति होती है॥18॥ तुम ही मेरा सौभाग्य हो, तुमसे ही मेरे सौभाग्य का उदय हुआ है। जैसे जल के बिना नदी की शोभा नहीं होती उसी प्रकार तुम्हारे बिना मेरी शोभा नहीं है। जैसे कमल के बिना जलाशय,

581. सणेहादिरेगेणं, परोप्परम्मि वत्तं कुव्वीअ ते।
सुही संतुट्ठा पुण्ण-फल-भोत्ता दु आणंदेणं॥22॥
582. पुण्णुदयेण संपत्त-गुणा पसंसता हरिसिदा ते हु।
थिरा सुहसंती तत्थ, दंपत्ति-एगकंठो जत्थ॥23॥
583. परोप्परे पस्सित्ता, पेम्मेणं लहीअ बहुसंतोसं।
चंद्रबिंब-मवल्लोयिय, चायगो जह पाउणेदि तह॥24॥
584. सगपाणवल्लहाए, पत्तेय - मंगोवंगं पस्सीअ।
साइज्जीअ जिग्घीअ, फासीअ असोगो मदणोव्व॥25॥
585. महुमच्छिगा पुप्फेसु, फुल्लंधया जह सरसीरुहेसुं।
ठाएज्ज अइगिद्धीइ, तह सो ताइ अंके चित्ते॥26॥
586. चित्तपयंगोव्व सा वि, आसत्ता असोग-पुप्फरायम्मि।
चंदाहा चंदादो, जह तह णेव पिधं रोहिणी॥27॥

नयनों के बिना मुख, ज्योति के बिना नेत्र, चंद्रमा के बिना रात्रि और प्राण के बिना शरीर होता है उसी प्रकार मैं अपना जीवन मानती हूँ। हे देव! आप मेरे आदर्श व प्रेरक हैं, आप जिन धर्म का पालन करने वाले हैं॥19-21॥ इस प्रकार स्नेह के अतिरेक से वे सुखी व संतुष्ट, पुण्य के फल को भोगने वाले आनंद से परस्पर में वार्तालाप करने लगे॥22॥ पुण्योदय से गुणों को प्राप्त करने वाले वे दम्पति एक-दूसरे की प्रशंसा करते हुए हर्षित हो रहे थे। उचित ही है जहाँ दंपति का एक कंठ होता है अर्थात् एकीभाव या एकत्वानुभव होता है, वहाँ सुख व शांति स्थिर होती है॥23॥ प्रेम से एक दूसरे को देखकर उन्होंने उसी प्रकार बहुत संतोष प्राप्त किया जिस प्रकार चंद्रबिंब को देखकर चातक संतोष को प्राप्त होता है॥24॥ राजा अशोक कामदेव की भाँति अपनी प्राणवल्लभा के प्रत्येक अंग को देख रहा था, सूँघ रहा था, स्पर्श कर रहा था एवं रस ले रहा था॥25॥ जिस प्रकार मधुमक्खी पुष्पों पर एवं भ्रमर कमलों पर अति आसक्ति से ठहरता है उसी प्रकार वह अशोक उस रोहिणी के अंक व चित्त में ठहरा हुआ था॥26॥ तितली के समान रोहिणी भी अशोक रूपी पुष्पराज पर आसक्त थी। जैसे चंद्रमा की आभा अर्थात् चांदनी, चंद्रमा से कभी अलग नहीं होती उसी प्रकार रोहिणी भी अशोक से अलग नहीं थी॥27॥

587. दंपत्ति-सुहं विहवो, भुंजिदो तेहिं पुव्वपुण्णेणं।
गच्छमाण-यालं णो, जाणिज्जेदि पडंत-णदीव॥28॥
588. सिग्घगामि-विमाणं व, कालो गच्छदि तिव्वपुण्णुदयम्मि।
सो एव पावुदयेण, हंदि पिवीलिगाए गदीव॥29॥
589. याले याले करीअ, तच्चवत्तं महाराओ राणी।
परोप्परम्मि पिच्छणं, सज्झायं ता अवि करेज्जा॥30॥
590. पुच्छिदं सुराणीए, सगपदिं णमिदूणं विणयेणं च।
अघबंधणं विच्छिदुं, कहं चिय सावगो समत्थो?॥31॥
591. परमेट्टि-अच्चणाए, गुरुसेवा-जिणवंदणाहि कहिदं।
संजमतवुववासेहि, णायज्जिदधण - सज्झायेहि॥32॥
592. सम्मत्त-णिप्फत्तीइ, किं कारणं णर-तिरियेसु सामी!।
जिणदंसणं तह जादि-सिमरणं सिरि-गुरुवएसो॥33॥
593. इमेहि तिय-कारणेहि, होदि सम्मत्तुप्पत्ती भव्वाण।
भो देवी! वेउव्विय-सरीरीण हेदू किं कहसु॥34॥
594. बारसम-सगंतं च, जिणमहिमादंसणं धम्मसवणं।
देविट्ठिदंसणं तह, जादिसिमरणं विआणेज्जा॥35॥ (तिअं)

वे पूर्व पुण्य से दांपत्य सुख, वैभव को भोग रहे थे। जैसे पर्वत से गिरती हुई नदी शीघ्र वेग से नीचे आ जाती है उसी प्रकार पुण्य में व्यतीत हुआ काल शीघ्रता से चला जाता है। वह पुण्य काल कब बीत जाता है, यह किसी को ज्ञात नहीं होता॥28॥ तीव्र पुण्य के उदय से व्यतीत काल शीघ्रगामी विमान के समान शीघ्र व्यतीत हो जाता है। पाप के उदय में वह काल ही चींटी की गति के समान व्यतीत होता है॥29॥ समय-समय पर महाराज व महारानी तत्त्ववार्ता भी किया करते थे। वे आपस में पृच्छना स्वाध्याय भी करते थे॥30॥ एक बार रानी रोहिणी ने अपने पति को प्रणाम कर विनयपूर्वक पूछा-हे स्वामी! पाप बंधन के छेदन के लिए श्रावक किस प्रकार समर्थ होता है?॥31॥ राजा ने उत्तर दिया-परमेष्ठियों की अर्चना, गुरु सेवा, जिनवंदना, संयम, तप, उपवास, न्यायपूर्वक धनार्जन और स्वाध्याय के द्वारा श्रावक पाप बंध के छेदने में समर्थ है॥32॥

595. पुणो सोडसंतं खलु, देविद्धिदंसणेणं विणा तिण्णि।
गेवेज्जेसुं च जादि-सिमरणं तहा धम्मसवणं॥36॥
596. तस्स उवरि णियमेणं, सव्वा देवा चिय सम्माइट्ठी।
सम्मत्तेण सह तत्थ, जीवो जादो णिच्छयेणं ॥37॥
597. होज्ज तिदिय-णिरयंतं, जादि-सिमरणं वेदणाणुभवो या
धम्मसवणं अथं तह, धम्मसवणेणं विणा दोण्णि॥38॥
598. उक्कस्सेण मुणिवरो, के परीसहा जयेदि यालेगे।
उप्पालह मज्झं जं, परीसहजइ-सुदं कंखेमि॥39॥
599. छुहादी बावीसा दु, हिय-वल्लहा! परीसहा तियाले।
किण्णु एगयालम्मि दु, परीसहा एगूणवीसा॥40॥
600. जम्हा सीदुण्हेसुं, एगो चरिया-णिसज्जा-सयणेसु।
कस्सअविमुणिरायस्स, णेवतत्तोअहियाकयावि॥41॥(जुम्मं)

पुनः रानी ने पूछा हे स्वामी! मनुष्य और तिर्यचों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति का क्या कारण है? राजा उत्तर देते हुए कहते हैं—जिनदर्शन, जाति स्मरण और गुरु का उपदेश इन तीन कारणों से मनुष्य व तिर्यच जीवों के सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है। हे देवी! बताओ, वैक्रियक शरीर युक्त जीवों के सम्यक्त्व की उत्पत्ति का क्या कारण है? रानी ने उत्तर दिया—हे स्वामी! देवों में बारहवें स्वर्ग तक सम्यक्त्व उत्पत्ति का कारण जिनमहिमा दर्शन, धर्मश्रवण, देवऋद्धि दर्शन और जाति स्मरण जानना चाहिए॥33-35॥ पुनः तेरह से सोलहवें स्वर्ग तक सम्यक्त्व उत्पत्ति का कारण देवऋद्धि दर्शन बिना अन्य तीन हैं अर्थात् जिनमहिमा दर्शन, धर्म श्रवण और जाति स्मरण। ग्रैवेयकों में सम्यक्त्व उत्पत्ति का कारण जातिस्मरण और धर्मोपदेश है॥36॥ उसके ऊपर सभी देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। वहाँ अनुदिश व अनुत्तर विमानों में जीव निश्चय से सम्यक्त्व के साथ ही उत्पन्न होता है॥37॥ हे राजन्! तृतीय नरक तक नारकियों के सम्यक्त्व उत्पत्ति का कारण जाति स्मरण, वेदनानुभव और धर्म श्रवण जानना चाहिए। नीचे सर्व नरकों में धर्म श्रवण के बिना दो अर्थात् जातिस्मरण और वेदनानुभव जानना चाहिए॥38॥ अब रानी पूछती है, मुनिराज एक समय में कितने परीषहों को जीतते हैं? हे स्वामी! मेरे लिए इसका उत्तर कहिए क्योंकि मैं चाहती हूँ कि मेरा पुत्र परीषहों को जीतने वाला हो॥39॥

601. केत्तिय-भववड्डगाणि, झाणाणि केण कारणेण ताइं।
अट्टरुद्धज्जाणाणि, भववड्डगाणि भो वल्लहा!।42॥
602. बे भववड्डगझाणं, अट्टज्जाणं तह रुद्धज्जाणं।
सहाव-पदणादो भव-वड्डगाणि हिअयेसरो भो।43॥ (जुम्भं)
603. णादव्वं सत्थेहिं, इट्टविजोगो अणिट्टसंजोगो।
चउविह - अट्टज्जाणं, पीडाचिंतणं णिदाणं च।44॥
604. अट्टज्जाण - यालम्मि, कहं सक्कदि सगसहावे ठादुं।
सच्छं पडिबिंबं णो, जह अच्चंत-उब्बिबलम्मि।45॥
605. हिंसा - मिसाणंदी य, चोरिआणंदि - परिग्गहाणंदी।
चउविह-रुद्धज्जाणं, असुहगदि-कारणं णियमेण।46॥
606. रुद्धज्जाण-याले ण, संभवो णाणट्टिदी अप्परुईं।
तहेव सुद्धवओगो, महव्वदं च खरविसाणं व।47॥

अहो हृदय वल्लभा! तीनों काल में क्षुधा आदि बाईस परीषह होते हैं किन्तु एक समय में अधिक से अधिक उन्नीस परीषह होते हैं क्योंकि शीत वा ऊष्ण में से एक और चर्या, निषद्या व शयन में से एक ही परीषह होता है। किन्हीं भी मुनिराज के उन्नीस से अधिक परीषह एक समय में कभी नहीं होते।।40-41॥ उत्तर देते हुए राजा ने कहा—हे प्रिय देवी! बताओ, कितने ध्यान संसार की वृद्धि करने वाले होते हैं? वे किस कारण से संसारवर्द्धक होते हैं? रानी ने उत्तर में कहा—हे हृदयेश्वर! भववर्द्धक ध्यान दो होते हैं—आर्तध्यान और रौद्रध्यान। स्वभाव से पतन करने के कारण ये भववर्द्धक होते हैं।।42-43॥ शास्त्रों से आर्तध्यान चार प्रकार का जानना चाहिए—इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिंतन और निदान।।44॥ जिस प्रकार अत्यंत मलिन जल में स्वच्छ प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई दे सकता उसी प्रकार आर्तध्यान के समय जीव अपने स्वभाव में स्थित रहने में कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।।45॥ नियम से अशुभ गति के कारण रौद्रध्यान के चार भेद हैं—हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी और परिग्रहानंदी।।46॥ रौद्रध्यान के काल में ज्ञान में स्थिति, आत्मरुचि, शुद्धोपयोग और महाव्रत उसी प्रकार असंभव हैं जैसे गधे के सींग।।47॥

607. तिक्कसायुदयादो, संति-असक्का रुद्धभावत्तादु।
उक्कलंतणीरम्मि, णियबिंबं पस्सिदुं णो समत्थो॥48॥
608. सव्वसंसारी अट्टरुद्धज्जाणं, कुणंति अणादीदु।
ताण फलादो लहेज्ज, दुग्गइं दुह-मणंतवारं॥49॥
609. भो देवो! मे अप्पा, कहां परमप्पा होदुं समत्थो।
केहि ज्ञाणेहि कम्मक्खयो होदि पुरिसट्टबलेण॥50॥
610. हे पुण्णवंता! हिअयवासिगा! सुणेह सग-कल्लाणाय।
धम्मं सुक्कज्जाणं, अप्पहिद-कारणं णियमेण॥51॥
611. धम्मे धम्मफले वा, साहम्मीसुं रुई धम्महेदू।
सगचित्ते धम्मुप्पत्तीइ हेदू धम्मज्जाणं॥52॥
612. जिणण्णा-संगच्छणं, आणा-विचयं तहा मुणेदव्वं।
भवदुहहेदु-चिंतणं धम्मज्जाण-मपायविचयं॥53॥
613. कम्मविवाग-चिंतणं, विवाग-विचयं चिय धम्मज्जाणं।
संठाण-विचयं जाण, संठाण-चिंतणं लोयस्स॥54॥

तीव्र कषाय के उदय से रौद्र परिणाम होते हैं और रौद्र परिणाम होने से शांति उसी प्रकार अशक्य है जैसे उबलते हुए जल में व्यक्ति अपना बिंब देखने में असमर्थ होता है॥48॥ अनादिकाल से सभी संसारी जीव आर्त व रौद्र ध्यान करते आ रहे हैं उसके फलस्वरूप अनन्तबार जीव ने दुर्गति व दुःख को प्राप्त किया है॥49॥ रानी पुनः पूछती है, हे देव! मेरी आत्मा किस प्रकार परमात्मा हो सकती है? किन ध्यान के माध्यम से पुरुषार्थ के बल से कर्मों का क्षय होता है?॥50॥ हे पुण्यवती हृदयवासिनी! अपने कल्याण के लिए सुनो। धर्मध्यान व शुक्लध्यान नियम से आत्महित का कारण हैं॥51॥ धर्म में, धर्म के फल में या साधर्मियों में रुचि धर्म का कारण है। धर्मध्यान अपने चित्त में धर्म की उत्पत्ति का हेतु है॥52॥ जिनाज्ञा को स्वीकार करना आज्ञाविचय धर्मध्यान और संसार के दुःखों के कारणों का चिंतन करना अपायविचय धर्मध्यान जानना चाहिए॥53॥ कर्म के विपाक (फलों) का चिन्तन करना विपाकविचय धर्मध्यान और लोक के संस्थान-आकार आदि का चिंतन करना संस्थानविचय धर्मध्यान जानना चाहिए॥54॥

614. णिव्विअप्प - धम्मज्ञाण - मप्पमत्तादु सुहुमकसायंतं।
सविअप्प - धम्मज्ञाणं, चदुत्थादो पमत्तंतं च॥55॥
615. कसाय-णिवत्तीए हि, जीव-चित्तं विमल्लिंदू व्व धवलं।
तादो सुक्कज्झाणं, पारंभेदि उवसंतादो॥56॥
617. के वि सूरी मणंति दु, अपुव्वकरण-अट्टमट्टाणादो।
पढमं सुक्कज्झाणं, एयारसम- उवसंतंतं॥58॥
618. तुमं वा को वि अप्पा, रयणत्तयेण हि कम्मक्खयेदुं।
सक्केदि सम्मत्ताइ-गुणेहि विणा णो कया को वि॥59॥
619. घादि-कम्मं विणासिय, जीवो अरिहंतो भयवदो होदि।
सिद्धो णिवत्तीइ सव्वदव्वभावणोकम्माण॥60॥
620. अहो देवी! तुमं कह, दव्वो अत्थिकायो पदत्थो किं।
को सव्वेसु एदेसु, वरो दव्वाण गुणा के के॥61॥

चतुर्थ गुणस्थान से लेकर प्रमत्त गुणस्थान तक सविकल्प धर्मध्यान होता है एवं अप्रमत्त गुणस्थान से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक निर्विकल्प धर्मध्यान होता है॥55॥ कषायों की निवृत्ति से ही जीव का चित्त निर्मल चंद्रमा के समान निर्मल व धवल होता है इसलिए उपशांत गुणस्थान से शुक्लध्यान का प्रारंभ होता है॥56॥ उपशांत गुणस्थान में प्रथम पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यान होता है। क्षीणमोह गुणस्थान में एकत्व वितर्क अवीचार नामक द्वितीय शुक्लध्यान होता है। सयोग केवली गुणस्थान में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तृतीय गुणस्थान होता है एवं अयोग केवली गुणस्थान में व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यान होता है॥57॥ कई आचार्य मानते हैं कि अष्टम अपूर्वकरण गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक प्रथम शुक्लध्यान होता है॥58॥ तुम या अन्य कोई भी आत्मा रत्नत्रय के माध्यम से ही कर्मक्षय करने में समर्थ हो सकती है। सम्यक्त्व आदि गुणों के बिना कोई भी जीव कभी भी कर्म क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकता॥59॥ घातिया कर्मों का नाशकर जीव अरिहंत भगवान् होता है एवं सभी द्रव्यभाव व नो कर्मों की निवृत्ति से सिद्ध होता है॥60॥ अहो देवी! कहो, द्रव्य, अस्तिकाय व पदार्थ क्या हैं, इन सबमें श्रेष्ठ कौन है एवं द्रव्यों के गुण कौन-कौन से हैं?॥61॥

621. पाणणाहो! लोयम्मि, विज्जंति सडदव्वाणि तं लोओ।
जीवो पोग्गल-धम्माधम्मायासा तहा कालो॥62॥
622. दवियदि दविस्सेदि जो, दवियीअ सो दव्वो णिच्छयेणं॥
गुणपज्जयसमूहो दु, दव्वलक्खणं सदो अहवा॥63॥
623. उप्पाय-वय-धुवेहिं संजुत्तो हु जो सो सदो णेयो।
असदो संभवो णेव, भूद-भावि-संपइयालेसु॥64॥
624. जो जीवदि जीवस्सदि, जीवीअ चेयणालक्खणजुत्तो।
जीवो खलु णिद्धिट्ठो, तियाले णो खयदे कया वि॥65॥
625. बेविहो पोग्गलो चिय, संजुदो रूव-रस-गंध-फासेहि।
अणु-खंध-भेयादो य, णेयो जिणकहिदागमेणं॥66॥ (जुम्मं)
626. गदि-हेदुत्तं धम्मो, गच्छमाण-जीव-पोग्गलाणं तह।
ठिदि-हेदुत्त-मधम्मो, खंभंत-जीव-पोग्गलाणं॥67॥
627. अवगाहण-हेदुत्तं, णहो अवगास-दायगो सव्वाण।
वट्टणा-हेदुत्तं च, काल-दव्वो दु मुणेदव्वो॥68॥

रानी ने उत्तर देते हुए कहा—हे प्राणनाथ! लोक में षट्द्रव्य विद्यमान हैं; इसलिए यह लोक कहलाता है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये छः द्रव्य हैं॥62॥ जो द्रवित होता था, होता है और होगा वह निश्चय से द्रव्य जानना चाहिए। गुण व पर्यायों का समूह द्रव्य है अथवा द्रव्य का लक्षण सत् है॥63॥ जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है वह सत् जानना चाहिए। भूत, भविष्य व वर्तमान किसी भी काल में असत् संभव नहीं है॥64॥ जो जीता था, जीता है और जीवेगा वह जीव है, चेतना लक्षण से युक्त जीव कहा गया है। तीनों कालों में जीव कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से युक्त पुद्गल है, वह पुद्गल अणु और स्कंध के भेद से दो प्रकार का है ऐसा जिनेंद्र देव द्वारा प्रणीत आगम से जानना चाहिए॥65-66॥ गति करते हुए जीव व पुद्गलों के लिए गति कराने का हेतु धर्म द्रव्य है। ठहरते हुए जीव व पुद्गलों को ठहराने का हेतु अधर्म द्रव्य है॥67॥ सभी द्रव्यों को अवस्थान देने वाला अवगाहन-हेतुत्व लक्षण युक्त आकाश द्रव्य है एवं वर्तना हेतुत्व लक्षण युक्त काल द्रव्य जानना चाहिए॥68॥

628. कालविजुत्ता सेसा, पंचत्थिकाया सस्सदा णेया।
जीवविरहिदा सव्वा, अजीव-दव्वा जिणुद्धिटा॥69॥
629. जीवाजीवासवो य, बंधो संवरो णिज्जरा मोक्खो।
इमाणि सत्त-तच्चाणि, पुण्णपावजुद-णवपयत्था॥70॥
630. सव्वदव्वतच्चेसुं, पदत्थेसुं अत्थिकायेसुं वा।
जीवो एव उत्तमो, सव्वपयारेणं सव्वत्थ॥71॥
631. जाण छसामण्णगुणा, दव्वस्स अत्थित्तं च वत्थुत्तं।
दव्वत्त - पदेसत्तं, पमेयत्तं अगुरुलहुत्तं॥72॥
632. चेयणाचेयणो तह, मुत्तिआमुत्तिओ दु विसेसगुणा।
सामण्णा सजादीइ, विजादीए हंदि विसेसा॥73॥
633. भो सामी! मइ सुणिदा, अदिसय-चंचला जीव-परिणामा।
तेहिं परिणामेहिं, जीवाणं गुणट्टाणाइं॥74॥
634. कम्मि गुणट्टाणम्मि दु, केरिसा परिणामा चिय जीवस्स।
मे हिदत्थं पहू! कह, तं सुणेदुं उच्छाही हं॥75॥

काल को छोड़कर शेष पाँच अस्तिकाय जानने चाहिए। ये सभी शाश्वत हैं। जीव को छोड़कर सभी द्रव्य अजीव हैं। ऐसा जिनेंद्रदेव द्वारा कहा गया है॥69॥ जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। पुण्य व पाप से युक्त होने पर ये नव पदार्थ हो जाते हैं॥70॥ सभी द्रव्यों, तत्त्वों, पदार्थों या अस्तिकायों में सभी प्रकार से सर्वत्र जीव ही उत्तम है॥71॥ द्रव्य के सामान्य गुण छः जानने चाहिए—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व और अगुरुलघुत्व॥72॥ चेतन, अचेतन, मूर्तिक और अमूर्तिक ये द्रव्य के विशेष गुण हैं। अपनी जाति की अपेक्षा ये सामान्य गुण एवं विजाति की अपेक्षा विशेष गुण हैं॥73॥ रानी पूछती है—हे स्वामी! मैंने सुना है कि परिणाम अत्यंत चंचल होते हैं और उन्हीं परिणामों से जीवों के गुणस्थान होते हैं॥74॥ किस गुणस्थान में जीव के कैसे परिणाम होते हैं? हे प्रभु! मेरे हित के लिए कहिए। उसे सुनने के लिए मैं उत्साही हूँ॥75॥

635. ओदइयो उवसमियो, खओवसमियो तह खयिगो भावो।
पारिणामियो पणहा, जीवाणं भो पियादेवी!॥76॥
636. णवरि पारिणामियो दु, णेव कम्मबंध-णिमित्तं कया वि।
असाहारण-भावा हु, होज्ज जीवस्स इमे सव्वा॥77॥
637. चउविहभावेहि जहाजोग्गं गुणट्टाणाणि जीवाणं।
ताणं भेया णेया, हिदत्थ-मागमाणुसारेण॥78॥
638. कम्माणं उदयादो, जे भावा ते ओदइया णेया।
सुरगदि - आइ - भेयादु एगवीस - भावा णाणीहि॥79॥
639. कम्माण - मुवसमादो, जे भावा ते ओदइ णेया।
ओवसमिय - सम्मत्तं, चारित्तं बेविहा इत्थं॥80॥
640. कम्माणं दु खयादो, जे भावा ते खइया णवविहा दु।
खइय-दंसणं णाणं, सम्मत्त-चरियं पणलद्धी॥81॥
641. घाइय-कम्मे णट्टे, जे खइय-भावा णिप्पज्जंति ते।
मुत्ति-वहुं वरेदुं दु, णियामग-हेदू णादव्वा॥82॥

राजा कहते हैं—हे प्रियदेवी! जीवों के पाँच प्रकार के भाव जानने चाहिए— औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव॥76॥ ये सभी जीव के असाधारण भाव कहे जाते हैं। विशेषता यह है कि पारिणामिक भाव कभी भी कर्म बंध का निमित्त नहीं होते॥77॥ अन्य चार प्रकार के भावों से ही जीवों के यथायोग्य गुणस्थान होते हैं। आत्महितार्थ आगम के अनुसार उनके भेद जानने चाहिए॥78॥ जीव के कर्म के उदय से जो भाव होते हैं वे औदयिक भाव जानने चाहिए। ज्ञानीजनों के द्वारा देवगति आदि के भेद से वे इक्कीस जानने चाहिए॥79॥ जो भाव कर्म के उपशम से होते हैं वे औपशमिक भाव जानने चाहिए। औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र—इस प्रकार वे दो प्रकार के होते हैं॥80॥ जो भाव, कर्मों के क्षय से होते हैं वे क्षायिक भाव कहलाते हैं। वे नौ प्रकार के होते हैं—क्षायिक दर्शन, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र क्षायिक लब्धि (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य)॥81॥ घातिया कर्मों के नाश होने पर जो भाव उत्पन्न होते हैं वे क्षायिक भाव जानने चाहिए। मुक्ति वधु को वरण करने के लिए वह नियामक हेतु हैं॥82॥

642. उदयाभावख्यादो सव्वघाड - सदवस्था - उवसमादु।
देसपयडीणुदयादु, भाव-खओवसमिया जे ते॥83॥
643. मदि-सुदोहि-मणपज्जय-चउणाणं चमदि-आइ-ति-कुणाणं।
चक्खु-अचक्खू ओही, दंसणं सम्मत्तं चरियं॥84॥
644. संजमासंजमो तह, दाण-लाह-भोगुवभोग-वीरिया।
अट्टारस-विहा खओवसमिया भावा णादव्वा॥85॥ (जुम्मं)
645. कम्माणं खओवसम-खयोदयोवसमाणं तह जो सो।
होज्ज अवेक्खा-रहिदो, णेयो पारिणामिय-भावो॥86॥
646. पारिणामियो तिविहो, जीवत्तं भव्वत्त-मभव्वत्तं।
अणादीदु जीवेगे, बेभावा हि संविदिदव्वा॥87॥
647. मोह-जोग-णिमित्तेण, जीवस्स गुणट्टाणं भो राणी!।
पढम-चदु-ठाणाइं दु, दंसणमोहेण वक्कमंति॥88॥
648. मिच्छत्तस्सुदयादो, मिच्छत्तगुणट्टाणं णियमादो।
मिच्छत्तुदयेण विणा, तं असंभवो मिच्छ-ठाणं॥89॥

सर्वघाती प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय, उन्हीं के सदवस्था रूप उपशम और देशघाती प्रकृतियों के उदय से जो भाव होते हैं वे क्षायोपशमिक भाव जानने चाहिए॥83॥ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगावधि, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र, संयमासंयम, क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग व वीर्य। इस प्रकार अट्टारह प्रकार के क्षायोपशमिक भाव जानने चाहिए॥84-85॥ जो भाव कर्मों के क्षय, क्षयोपशम, उदय व उपशम की अपेक्षा से रहित होते हैं वे पारिणामिक भाव कहलाते हैं॥86॥ पारिणामिक भाव तीन प्रकार के होते हैं—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। अनादिकाल से जीव में दो ही भाव जानने चाहिए जीवत्व और भव्यत्व व अभव्यत्व में से एक॥87॥ हे रानी! मोह और योग के निमित्त से जीव के गुणस्थान होते हैं। प्रथम चार गुणस्थान दर्शन मोहनीय से उत्पन्न होते हैं॥88॥ मिथ्यात्व के उदय से नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। मिथ्यात्व के उदय के बिना यह मिथ्यात्व गुणस्थान असंभव है॥89॥

649. सम्मत्तादु पडंतो, अणंताणुबंधि-कसायेगस्स वि।
उदयादो सासादण-गुणट्टाणं अप्पकालियं॥90॥
650. सम्ममिच्छपइडीए, उदयादु मिस्स-गुणट्टाणं तत्थ।
ण मिच्चू आउबंधो, णो मरणंतिय-समुग्घादो॥91॥
651. दंसणमोहणीयस्स, अणंताणुबंधीण उवसमादो।
पण-सत्त-पइडीण वा, उवसम-सम्मत्तं णियमेण॥92॥
652. ताण सत्तपइडीणं, खयादो दु लद्धखइयसम्मत्तं।
पावदे मोक्खं तम्मि, भवम्मि वा तिदिये चदुत्थे॥93॥
653. अपच्चक्खाणुदयादु, होदि अविरद-सम्माइट्टि-ठाणं।
चदुत्थ-गुणट्टाणम्मि, णेव चिय किंचिवि चारित्तं ॥94॥
654. पच्चक्खाणुदयादो, अपच्चक्खाणाणुदयादो जीवो।
थोववदी जत्थ देस-संजम-गुणट्टाणं खलु तं॥95॥
655. देसविरदगुणट्टाण-वत्ती तसजीवघादविरत्तादु।
विरदाविरदो भणिदो, एयदेसमोक्खमग्गी तह॥96॥

सम्यक्त्व से गिरते हुए भी अनंतानुबंधी कषाय में किसी एक के उदय से सासादन गुणस्थान होता है वह अल्पकालिक (अधिकाधिक 6 आवली का) होता है॥90॥ सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिश्र गुणस्थान होता है। वहाँ आयु का बंध, मृत्यु और मारणांतिक समुद्घात भी नहीं होता॥91॥ (अनादि मिथ्यादृष्टि के) एक दर्शनमोहनीय (मिथ्यात्व) व चार अनंतानुबंधी अर्थात् पाँच प्रकृतियों के उपशम से या (सादि मिथ्यादृष्टि के) तीन दर्शनमोहनीय व चार अनंतानुबंधी कषाय अर्थात् सात प्रकृतियों के उपशम से नियम से उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है॥92॥ उन्हीं सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उसी भव से, तीसरे भव से या चौथे भव से नियम से मोक्ष फल प्राप्त करता है॥93॥ अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान होता है; इस चौथे गुणस्थान में कदापि भी चारित्र नहीं होता॥94॥ प्रत्याख्यान के उदय और अप्रत्याख्यान के अनुदय से जीव देशव्रती होता है। वह देश संयम गुणस्थान जानना चाहिए॥95॥ देशविरत गुणस्थानवर्ती जीव त्रस जीवों के घात से विरक्त होने से (और स्थावर जीवों के घात से अविरत होने) से विरताविरत कहलाता है। वह एक देश मोक्षमार्गी कहा जाता है॥96॥

656. पच्चक्खाणणुदयादु, संजलणकसाय-तिव्वुदयादु जो।
महव्वदी चिय पमत्त-विरद-गुणट्टाणवत्ती सो॥97॥
657. णियप्पझाणि-मुणिस्स दु, संजलणकसाय-मंदुदयादो हु।
अपमत्त-विरद-ठाणं, अंतोमुहुत्तो ठिदी तस्स॥98॥
658. अपमत्तविरदो मुणी, णिव्विअप्प-धम्मज्झाण-जुत्तो या
खणे खणे णिज्जरदे, असंखेज्ज-पावपइडीओ॥99॥
659. चरित्त-मोहणीयस्स, पइडीण कुणदि उवसमं खयं वा।
सेणीइ पढमठाणं अट्टम-मपुव्वविसुद्धिजुदं॥100॥
660. होंति अपुव्व-भावा हु, सया अपुव्वापुव्व-विसुद्धीए।
सु-सम-विसम-समयवत्ति-मुणीण संभवा भावा ते॥101॥
661. भिण्ण-समयवत्तीणं, णाणाविहा खलु होंति परिणामा।
एग-समयवत्तीणं, सदस-विसदस-परिणामा॥102॥ (जुम्मं)
662. एग-समयवत्ती खलु, जह संठणादीहिं णियट्टंते।
तह परिणामेहिं ते, णो णियट्टंते अणिविट्ठी॥103॥

प्रत्याख्यान के अनुदय से और संज्वलन कषाय के तीव्र उदय से जो महाव्रती होता है वह प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती कहलाता है॥97॥ संज्वलन कषाय के मंद उदय से निजात्म ध्यानी मुनिराज के अप्रमत्तविरत गुणस्थान होता है। उस गुणस्थान की स्थिति अंतर्मुहूर्त जाननी चाहिए॥98॥ अप्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती मुनिराज निर्विकल्प धर्मध्यान से युक्त होते हैं। क्षण-क्षण में असंख्यात पाप प्रकृतियों की निर्जरा होती है॥99॥ जो चारित्र मोहनीय की प्रकृतियों का उपशम या क्षय करता है वह श्रेणी के प्रथम स्थान अपूर्व विशुद्धि से युक्त, अष्टम गुणस्थान अपूर्वकरण को प्राप्त करता है॥100॥ सदा अपूर्व-अपूर्व विशुद्धि से जीव के अपूर्व परिणाम होते हैं। सम समयवर्ती वा विषम समयवर्ती मुनिराजों के वे भाव संभव हैं। यहाँ भिन्न समयवर्ती मुनिराजों के निश्चय से नाना प्रकार के परिणाम होते हैं। एक समयवर्ती मुनिराजों के सदृश वा विसदृश परिणाम होते हैं॥101-102॥ एक समयवर्ती जीव जिस प्रकार संस्थान आदि की अपेक्षा निवृत्ति (भेद) को प्राप्त होते हैं उस प्रकार वे जीव परिणामों की अपेक्षा भेद को प्राप्त नहीं होते अतः यह अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहलाता है॥103॥

663. सदृस-परिणामा सय, होंति एग-समयवत्ति-जोगीणं।
भिण्ण-समयवत्तीणं, णियमेणं भिण्ण-परिणामा॥104॥
664. जत्थ लोहो कसाओ, अइसुहुमो य अण्ण-कसाओ णेव।
सुहुमसंपराओ सो, उहयसेणीसु होज्ज णियमेणं॥105॥
665. जत्थ दु मोहणीयस्स, असेसपइडी उवसमिदा णियमा।
तं हि उवसंतकसाय-णाम-गदराय-गुणट्टाणं॥106॥
666. सुहुमसंपरायम्मि, खयिय मोहणीयस्स सव्वपइडी।
जं होदि गुणट्टाणं, खीणमोहं णादव्वं तं॥107॥
667. अत्थ हु बे-आवरणं, खयिदूणं णासेदि अंतरायं।
पुणो सजोगकेवली, होदि अणंतचदुक्कजुत्तो॥108॥
668. चउद्ध - ठाण - यालो, पणलहुअक्खरुच्चारण - यालोव्व।
जोगवज्जिद - केवली, अजोगकेवली चिय भणदे॥109॥
669. भो देवी! पीदीए, तए सुणिदा गुणट्टाण-वत्ता हु।
णियमादु पुण्णवंता, तुमं लहिस्ससि सिवं सिग्घं॥110॥
670. पीदीए सद्धाए, सुणेदि जिणवयणं अप्पमादेण।
आसण्णभवी जो सो, पावदि मोक्खं थोग-भवेसु॥111॥

एक समयवर्ती योगियों के परिणाम सदा सदृश होते हैं एवं भिन्न समयवर्ती ऋषिराजों के परिणाम नियम से भिन्न ही होते हैं॥104॥ जहाँ लोभ कषाय अतिसूक्ष्म रह जाती है और अन्य कषाय नहीं होती वह सूक्ष्मसांपराय नामक गुणस्थान जानना चाहिए। यह गुणस्थान नियम से क्षपक व उपशम दोनों श्रेणियों में होता है॥105॥ जहाँ मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियाँ उपशमित हो जाती हैं वह नियम से उपशांत कषाय नामक वीतराग गुणस्थान कहलाता है॥106॥ सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में मोहनीय कर्म की सर्व प्रकृतियों का क्षय करके जो गुणस्थान होता है वह क्षीणमोह गुणस्थान जानना चाहिए॥107॥ यहाँ दो आवरण (ज्ञानावरण, दर्शनावरण) का क्षय करके जीव अंतराय कर्म का क्षय करता है। पुनः वह अनंत चतुष्टय से युक्त सयोग केवली होता है॥108॥ चौदहवें गुणस्थान का काल पाँच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतना जानना चाहिए। योग से रहित केवली अयोग केवली कहलाते हैं॥109॥ अहो देवी! तुमने प्रीतिपूर्वक गुणस्थान की वार्ता सुनी है। नियम से तुम पुण्यवती हो और शीघ्र मोक्ष प्राप्त करोगी॥110॥ जो श्रद्धा से प्रीतिपूर्वक जिनेंद्र वचनों को प्रमाद रहित होकर सुनता है वह आसन्नभव्य जीव स्तोक भवों में मोक्ष प्राप्त करता है॥111॥

671. इत्थं समये समये, धम्म-कम्म-तच्च-रायणीदीणां।
सुवत्ता ताण मज्झे, हिदत्थं च पुण्णवंताणं॥112॥
672. एयदा सव्वरीए, अंत-पहरे पस्सीअ सुसिविणाणि।
हरिसंता पहादम्मि, गच्छेज्ज जिणालयं थुदीइ॥113॥



673. जिणपूयणं कडुअ सा, पफुल्लिदा णिगंथ-उवदेसेण।
अणंतरं दु पुच्छीअ, फलाणि सग-पस्सिद-सिविणाण॥114॥
674. हे पुत्ती! लहिस्सेसि, उत्तम - सेट्ट - पुण्णवंतं पुत्तं।
मुणिवर-ओहिणाणिणा, इत्थ-मुप्पालिदाणि फलाणि॥115॥
675. तव पदी अवि अइपुण्णवंतो चरमसरीरी धम्मिट्ठो।
कुणेह पुण्ण-कज्जाणि, पुण्णं विणा भवसोक्खं णो॥116॥

इस प्रकार उन पुण्यात्माओं के मध्य समय-समय पर धर्म, कर्म, तत्त्व व राजनीति की, हित के लिए समीचीन वार्ता हुआ करती थी॥112॥ एक बार रात्रि के अंतिम पहर में रानी ने शुभ स्वप्नों को देखा। प्रातः काल हर्षित होती हुई महारानी जिन स्तुति के लिए जिनमंदिर गई॥113॥ उसने वहाँ जिनपूजा की एवं निर्ग्रन्थ गुरु के उपदेश सुनकर बहुत प्रफुल्लित हुई। अनंतर उसने अपने द्वारा देखे गए स्वप्नों का फल पूछा॥114॥ तब उन अवधिज्ञानी मुनिराज ने इस प्रकार स्वप्नों के फल कहे-हे पुत्री! तुम उत्तम, श्रेष्ठ, पुण्यवान् पुत्र को प्राप्त करोगी॥115॥ तुम्हारा पति भी अतिपुण्यवान्, चरम शरीरी व धर्मिष्ठ है। तुम सदैव पुण्य कार्य करो। पुण्य के बिना सांसारिक सुख भी प्राप्त नहीं होता॥116॥

676. भो पुण्यवंत-राणी!, खयेज्ज तुमं सव्व-असुहकम्माणि।
करेज्ज सुहकम्माइं, तिजोगाण सुहपवित्तीए॥117॥
677. होज्ज अइ-आणंदिदा, जिणपूयाए गुरुवंदणेणं चा
सुहं अणुभवीअ पुत्त-लद्धीव मुणिवयणं सुणिच्च्यु॥118॥
678. असोगो-पुण्यवंतो, सगपुत्त-वत्तं सुणिय आणंदो।
णण्णहावादी मुणी, मुणिवयणं अमोहं णियमा॥119॥
679. सा हु गब्भयालादो, लीणा पडिक्खणम्मि पडिदिवसम्मि।
जिणणामसिमरंता य, सुचिंतणेण सह सुकज्जेसु॥120॥
680. उज्झिदं विसयसोक्खं, तविदं जोगीव सुसक्काराणं।
रोहिणीइ उवसमित्तु, कसायादि-वियारी भावा॥121॥
681. सादि-णक्खत्तस्स जह, णीर-बिंदू हु मुत्ता सिप्पीए।
तह रोहिणीइ गब्भे, वररयणं व वड्डीअ सुदो॥122॥
682. पडिदिणे जिणपूयणं, करीअ धरीअ जिणवयणं चित्ते।
णिगंथाणं थुदिं च, मंत-जवं तच्चचिंतणं च॥123॥



हे पुण्यवंता रानी! तुम्हें सभी अशुभ कर्मों का क्षय करना चाहिए। तीनों योगों की शुभ प्रवृत्ति से शुभ पुण्य कर्म करने चाहिए॥117॥ जिनपूजा व गुरु वंदना से रोहिणी बहुत आनंदित हुई। मुनि

683. आहाराइ - चउविहं, दाणं दाएज्जा णिग्गंथाणं।
णवहाभत्तीए अवि, तदा अण्णतिविहसंघाणं॥124॥
684. सगपरिवारजणेहिं, साहम्मीहिं सह तित्थजत्तं च।
पडिदिवसे तियालम्मि, करीअ सामाइयं राणी॥125॥
685. पसंता सय पसण्णा, कहाओ सुणीअ पुण्ण - पुरिसाणं।
उच्छाहेणं गोरव-गाहाओ परक्कमिजणाण॥126॥
686. परोवयार - सुभावो, अप्पस्स दु पत्तेयं पदेसम्मि।
रोहिणी भासीअ चिय, सुगंधजुदा वसंदरिदू व्व॥127॥
687. सव्वसोक्खकारणं च, पइडी अणेगरम्मवण्णजुत्ता॥
सा वि अणेगसुहभाव - जुदा गुणसुगंधवड्डुगा य॥128॥

के द्वारा पुत्र प्राप्ति रूप वचन सुनकर उसे ऐसे सुख का अनुभव हुआ जैसे उसे पुत्र की प्राप्ति हो ही गई हो॥118॥ पुण्यवान् राजा अशोक अपने पुत्र की वार्ता सुनकर आनंदित हुआ क्योंकि मुनि अन्यथावादी नहीं होते। मुनि के वचन नियम से अमोघ होते हैं॥119॥ जबसे रानी ने गर्भ धारण किया तभी से वह प्रतिदिन प्रतिक्षण जिनेंद्रप्रभु के नाम का स्मरण करती हुई, शुभ चिंतन के साथ शुभ-प्रशस्त कार्यों में लीन रहने लगी॥120॥ उस समय महारानी रोहिणी ने पुत्र को सुसंस्कार प्रदान करने हेतु विषय सुखों का त्याग कर दिया एवं कषाय आदि विकारी भावों का उपशम करके इस प्रकार तप किया मानो कोई योगी ही है॥121॥ जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरी हुई जल की बूंद मोती बन जाती है उसी प्रकार रोहिणी के गर्भ में वह पुत्र श्रेष्ठ रत्न की भाँति वृद्धि को प्राप्त हो रहा था॥122॥ वह महारानी रोहिणी प्रतिदिन जिनेंद्र भगवान् का पूजन करती, जिनेंद्रप्रभु के वचनों को चित्त में धारण करती, निर्ग्रन्थ गुरुओं की स्तुति, मंत्रों का जाप करती एवं तत्त्वचिंतन किया करती थी॥123॥ निर्ग्रन्थ मुनिराजों को नवधाभक्ति पूर्वक आहारदान आदि एवं अन्य तीन प्रकार के (आर्यिका, श्रावक व श्राविका) संघों के लिए भी दान दिया करती थी॥124॥ उसने अपने परिवारीजन व साधर्मियों के साथ तीर्थयात्रा भी की। महारानी रोहिणी प्रतिदिन त्रिकाल में सामायिक करती थी॥125॥ वह प्रशांत व प्रसन्न रोहिणी उत्साहपूर्वक पुण्य पुरुषों की कथा व पराक्रमी जनों की गौरव गाथा सुनती थी॥126॥ रोहिणी के प्रत्येक आत्मप्रदेश में परोपकार का श्रेष्ठ भाव विद्यमान था। उस समय रोहिणी ऐसी लग रही थी मानो सुगंध से युक्त बसंत ऋतु ही हो॥127॥ जैसे बसंत ऋतु में प्रकृति अनेक मनोहर वर्णों से युक्त एवं सभी सुखों का कारण प्रतिभासित होती है उसी प्रकार वह रोहिणी भी अनेक शुभ भावों से युक्त एवं गुण रूपी सुगंध को बढ़ाने वाली थी॥128॥

688. धम्मज्झाणेण ताइ, णवमासा गदा सिग्घं सुहेणं।
गगणपडंत-तारा व्व, तिच्चगामी-गरुलपक्खीव॥129॥

689. रवि - उदयोव्व पाईइ, णवमास - पच्छा सुदो उप्पण्णो।
संपुण्ण - कुरुजंगले, सुह - महुच्छवो उच्छाहेण॥130॥

मंदाक्रांता छंद

690. णंदो णेहो हणिहणि मिहो वड्ढदे उच्छवेणं,
तोसो वत्तं सुहगुणसिरी सव्वदा धम्मकज्जं।
तम्हा रज्जे कुणदु णयरे उच्छवं वेरहारिं,
जस्सि खेत्ते हवदि ण कया तं च सुण्णं व खेत्तं॥131॥

691. जम्मादीणं कुणदि हि सय जीविमो उच्छवं सो,
जाणंतो किण्णु णहि सुहदा पावविड्ढीइ हेदू।
तित्थेसाणं सुहहियकरं गब्भजम्मादिगाणं,
उच्छाहेणं सुणियडभवी पुण्णविड्ढीइ णिच्चं॥132॥

उसके नव मास धर्मध्यानपूर्वक सुख से अति शीघ्र ऐसे व्यतीत हो गए मानो आकाश से कोई तारा टूटकर गिरा हो या गरुड़ पक्षी ने तीव्र गति से दूरी तय कर ली हो॥129॥ नौ माह पश्चात् रोहिणी के पुत्र की उत्पत्ति हुई मानो पूर्व दिशा में सूर्य का ही उदय हुआ हो। संपूर्ण कुरुजांगल देश में उत्साह पूर्वक शुभ महोत्सव हुआ॥130॥ उत्सव के माध्यम से लोगों में परस्पर आनंद व स्नेह की वृद्धि होती है। उनमें प्रतिदिन संतोष, आरोग्य, सुख, गुण, लक्ष्मी व धर्मकार्य की सदा संवृद्धि होती है; इसलिए प्रत्येक राज्य व नगर में बैर को नष्ट करने वाले उत्सव करने चाहिए। जिस क्षेत्र में उत्सवादि नहीं होते वह क्षेत्र शून्य के समान है अर्थात् उसे सूना ही समझना चाहिए॥131॥ यह जीव सदा ही अपने जन्म, विवाह आदि का उत्सव करता है। वह ये लौकिक उत्सव, यह जानता हुआ भी करता है कि वे उसके लिए सुखप्रद नहीं हैं अपितु पापवृद्धि का ही हेतु हैं अतः निकट भव्यों को अपने पुण्य की वृद्धि के लिए तीर्थकरों के सुखकर व हितकर गर्भ, जन्म आदि कल्याणकों का उत्सव उत्साहपूर्वक करना चाहिए॥132॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक-रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में अशोक-रोहिणी की तत्त्व-वार्ता एवं पुत्रजन्म का
वर्णन करने वाला पंचम नंद पूर्ण हुआ।

छट्ट-णंदो

692. राणीइ घोसाविदं, सत्तदिणाणं सव्वाणं अभयं।
मुक्किदा हंदि बंदी, काराए खमाभावेणं॥1॥
693. पसुपक्खीहि पाविदं, सातंतं आणंदजुदा होही।
सत्तदिणंतं करिदं, सुपत्तदाणं असोगेणं॥2॥
694. दाइदो पुरक्कारो, सदासिदाणं करुणाचित्तेणं।
विसेसेण दाणादिं, कुणंति सुजणाणंद-समये॥3॥
695. तदा णिमित्तणाणिणा, पदायिदं विगदसोग-सुह-णामं।
गहलग्गं पस्सिदूण, चंदं णक्खत्त-जोगादिं॥4॥
696. पुत्तमुहं अवलोयिय, विसिट्ठ-सुही राणी महाराओ।
पुण्णवंतो सुपुत्तो, कस्स दु सोक्ख-कारणं णेव॥5॥
697. जदा पक्खि-पसूणं च, संताणो सोक्खकारणं णिच्चं।
अइ-पुण्णवंत-पुत्तं, पावित्ता को ण सुहं लहदि॥6॥

रानी ने सात दिनों के लिए सभी प्राणियों के लिए अभय की घोषणा करायी एवं क्षमा-भाव पूर्वक कारागृह से बंदियों को मुक्त कर दिया गया॥1॥ पशुपक्षियों ने भी स्वतंत्रता प्राप्त की एवं आनंद से युक्त हुए। राजा अशोक ने सात दिन तक सुपात्रों को दान दिया॥2॥ दया युक्त चित्त से अपने आश्रितों को पुरस्कार दिया। सही भी है सज्जन लोग आनंद के समय विशेष रूप से दान आदि करते हैं॥3॥ तब निमित्तज्ञानी ने ग्रह, लग्न, चंद्र, नक्षत्र व योग आदि को देखकर पुत्र का शुभ नाम विगतशोक रखा॥4॥ पुत्र के मुख को देखकर महारानी व महाराज विशिष्ट रूप से सुखी हुए। उचित ही है पुण्यवान् सुपुत्र किसके सुख का कारण नहीं होता अर्थात् सभी के सुख का कारण होता है॥5॥ जब पशु-पक्षियों की संतान भी नित्य उनके सुख का कारण होती है तब अति पुण्यवान् पुत्र को प्राप्त करके कौन सुख प्राप्त नहीं करता? अर्थात् सभी प्रसन्न होते हैं॥6॥

698. पिदर-अञ्जावयेहिं, सुसक्कारो पदायिदो पुत्तस्स।
सुविहीए सुसमयम्मि, सुसिक्खा तह विगदसोगस्स॥7॥



699. बालो सुपुण्णवंतो, अप्पाउम्मि सुसक्कारं विज्जं।
सब्भदं सयायारं, सुकलाउ सिक्खं च पावेदि॥8॥

700. जो लहदे गुरुमुहादु, सिस्सो संजमं तहा सण्णाणं।
तस्स सिस्सस्स सरिसो, णो को वि इह भुवणत्तयम्मि॥9॥

701. सिस्सा सुपुण्णवंता, लहिय णियजीवणं गुरू वि धण्णं।
सेट्टुगुरू णिच्छयेण, तिलोयादो उत्तमधणं व॥10॥

माता-पिता व अध्यापकों ने विगतशोक को श्रेष्ठ व सही समय पर श्रेष्ठ विधि से समीचीन शिक्षा व सुसंस्कार प्रदान किए॥7॥ वह बालक पुण्यवान् कहलाता है जो अल्प-आयु में विद्या, सुसंस्कार, शिष्टाचार, सदाचार, सुकलाओं व शिक्षा को प्राप्त करता है॥8॥ जो शिष्य गुरुमुख से सम्यग्ज्ञान व संयम प्राप्त करता है, उस शिष्य के समान तीनों लोकों में कोई भी नहीं है॥9॥ सुपुण्यवान् शिष्यों को प्राप्त कर गुरु भी अपने जीवन को धन्य मानता है एवं शिष्य के लिए श्रेष्ठ गुरु तीनों लोकों से भी श्रेष्ठ उत्तम धन के समान हैं॥10॥

702. उत्तमगुरुसिस्साणं, विणिद्धिटा सुगुणा य सत्थेसुं।
णिष्फलजीवणं तस्स, सुहगुणरहिदो जो को वि खलु॥11॥
703. सो जण-णिअरो धण्णो, गामो णयरं णिच्छयेण अहवा।
जम्मि विज्जंते सेट्ठ-गुरू य आयंसियो सिस्सो॥12॥
704. विणयेणं सुगुरुचरण-अवलोयणेण गुणा सिस्सम्मि तह।
जह मिअंग-विड्डीए, वड्ढेज्ज रयणायर-णीरं॥13॥
705. जलासयेण पउमं च, सोहदि सरोवरं सरसिरुहेहिं।
उहयेणं गामो सो, सक्कारहीणो विणा तेहि॥14॥
706. सगपुत्तस्स असोगो, रोहिणी तह उत्तमगुरू व तदा।
पढम-गुरू पिदरं चिय, मंगलजीवणाय पुत्तस्स॥15॥
707. पुत्तकिरण-दायगोव्व, रोहिणीए सह णिरब्भायासे।
असोगो रयणिंदोव्व, सेट्ठे णिक्कंडगे रज्जे॥16॥
708. सो णिवो सग-पयाए, सीयलत्त-सुह-संति-पदायगो या।
वियार-भाव-विहीणो, णिच्चं सुवियार-संजुत्तो॥17॥

उत्तम गुरु व शिष्यों के श्रेष्ठ गुण शास्त्रों में कहे गए हैं, जो कोई भी शुभ गुणों से रहित है उसका जीवन निष्फल है॥11॥ वह जन समूह, ग्राम, नगर निश्चय से धन्य है जहाँ श्रेष्ठ गुरु और आदर्श शिष्य विद्यमान होते हैं॥12॥ विनयपूर्वक श्रेष्ठ गुरु के चरणों के अवलोकन से शिष्य में गुण उसी प्रकार वृद्धिगत होते हैं जिस प्रकार चंद्रमा की वृद्धि से समुद्र का जल वृद्धिगत होता है॥13॥ जैसे जलाशय से कमल और कमलों से सरोवर सुशोभित होता है एवं दोनों से गाँव सुशोभित होता है। उसी प्रकार श्रेष्ठ गुरु से आदर्श शिष्य व आदर्श शिष्य से श्रेष्ठ गुरु सुशोभित होते हैं एवं दोनों से वह क्षेत्र सुशोभित होता है; उनके बिना वह क्षेत्र संस्कारविहीन ही होगा॥14॥ उस समय अपने पुत्र के लिए अशोक व रोहिणी उत्तम गुरु के समान थे। उचित ही है पुत्र के मंगलमय जीवन के लिए माता-पिता ही प्रथम गुरु होते हैं॥15॥ श्रेष्ठ निष्कंटक राज्य रूप निरभ्राकाश में महाराज अशोक चंद्र के समान थे, जो रोहिणी के साथ पुत्र रूप किरण देने वाले थे॥16॥ वे राजा अशोक अपनी प्रजा के लिए शीतलता, सुख व शांति प्रदान करने वाले थे। वह विकार भाव से रहित और नित्य सुविचार से युक्त थे॥17॥

709. जह कुणदि पवणो अमल-जलं पडिसाहरिदूण मलं तस्स।
राणी सुहवियारेहि, मणं तह सपाणवल्लहस्स॥18॥
710. उसहेण सह भरदोव्व, णियजणग-असोगेण विगदसोगो।
तिरयणेणं सोहिदो, जोगी केवली केवलेण॥19॥
711. असोगेण सपुत्तस्स, दायिदो संजमो सुसक्कारो।
दिप्पीअ असिधारा व, पुत्तम्मि पिदुस्स सक्कारं॥20॥



जिस प्रकार पावन जल, मल को दूर करके उसे स्वच्छ कर देता है उसी प्रकार महारानी शुभ विचारों के माध्यम से अपने प्राणवल्लभ के मन को स्वच्छ कर दिया करती थी॥18॥ रत्नत्रय से सुशोभित योगी, केवलज्ञान से केवली जिन व वृषभनाथ से भरत के समान; अपने पिता अशोक से कुमार विगतशोक सुशोभित था॥19॥ अशोक ने अपने पुत्र को संयम व सुसंस्कार प्रदान किए। जैसे तलवार में धार चमकती है उसी प्रकार पुत्र में पिता के संस्कार दिखाई देते थे॥20॥

712. सुदे मूलसक्कारं, विज्जीअ दु आयंसिय-मादूए।
जदो गब्भादो ताइ, भाविदा सुहभावणा तस्स॥21॥
713. अणेगवण्णजुदादो, वसंतरिदू जह मणोहर-रम्मा।
धम्मवण्णजुत्तादो, तह सा सुह-हेदू सव्वाण॥22॥
714. महुक्खी छप्पया दु, आगच्छंते जह पुप्फसमीवे।
तह सव्वा सुगुणा चिय, आसयिदुं रोहिणि-समीवे॥23॥
715. णाणादु सुददेवीव, विहवादो य समवसरणलच्छीव।
पडिभासीअ सुराणी, चक्केसरीव य सत्तीए॥24॥
716. हत्थिणायपुरणयरी, सोहीअ दु साहिमाणि-हत्थिणीव।
ताइ पुण्णेण सव्वा, करीअ सुपुरिसट्ठं णारी॥25॥
717. को णेव विआणेदि दु, जहा राओ तहा पया सुणीदिं।
तम्हा पया वि धम्मी, पसण्णा संतुट्ठा णिवोव्व॥26॥
718. चंदविमाणं देक्खिज्जदे एणंगोव्व सच्छ-णीरम्मि।
तहा परोवयारी य, सयायारी राओव्व पया॥27॥

पुत्र में मूल संस्कार आदर्श माता के ही विद्यमान थे क्योंकि गर्भकाल से ही उसने पुत्र के लिए शुभ भावना भायी थी॥21॥ जिस प्रकार अनेक वर्णों से युक्त होने से बसंत-ऋतु मनोहर व रमणीय प्रतीत होती है उसी प्रकार धर्म रूप वर्ण से युक्त होने से वह महारानी रोहिणी सभी के लिए सुख का कारण थी॥22॥ जैसे मधु के आकांक्षी भ्रमर पुष्प के समीप चले आते हैं उसी प्रकार सभी श्रेष्ठ गुण रोहिणी के समीप उसका आश्रय लेने के लिए आ गये थे॥23॥ महारानी ज्ञान से सरस्वती, वैभव से समवसरण की लक्ष्मी और शक्ति से चक्रेश्वरी देवी के समान थीं॥24॥ हस्तिनागपुर नगरी स्वाभिमानि हथिनी के समान शोभायमान थी। महारानी रोहिणी के पुण्य से वहाँ की सभी नारियाँ श्रेष्ठ पुरुषार्थ करती थीं॥25॥ कौन इस नीति को नहीं जानता “ यथा राजा तथा प्रजा” इसलिए राजा अशोक के समान प्रजा भी धर्मी, प्रसन्न व संतुष्ट थी॥26॥ जैसे चंद्र विमान स्वच्छ नीर में चंद्र समान ही दिखाई देता है उसी प्रकार प्रजा भी राजा के समान परोपकारी व सदाचारी थी॥27॥

719. वसुइङ्गीव जदीणं, असोगस्स वसुपुत्ता गुणवंता।
हियकारिणी चउसुदा, सुधम्मीणं चउभावणा व्व॥28॥
720. णामा सुदाण कमसो, विगदो गदो जिदो विणट्ट-सोगो।
धणपालो वसुपालो, गुणपालो लोयपालो तह॥29॥
721. वसुंधरा सुरकंता, लच्छीमदी सुप्पहा पुत्तीओ।
चउविहणिहीव सव्वा, आविहवीअ रायंगणम्मि॥30॥
722. पत्तेयं जीवो सय, पभुंजेदि णिय-सुपुण्ण-पाव-फलं।
असोगो रोहिणी इह, भवम्मि भुंजीअ पुण्ण-फलं॥31॥
723. सग्गे आखंडलोव्व, सोहीअ रायपरिवार-सहिदो दु।
पुव्वपुण्णोदयेणं, णिव-असोगो रोहिणीइ सह॥32॥
724. सा पया अवि भुंजीअ, संतिं लोगिगविहवं आणंदं।
सुहं च कप्पवासीव, पुण्णवंता विसिट्ट-सुहाणि॥33॥
725. एयदा मज्झंदिणे, सुरम्म-रिदूइ चिट्ठीअ णंदेण।
पासाद-छायणम्मि य, असोग-रोहिणि-पुण्णवंता॥34॥

यतियों की आठ ऋद्धियों के समान अशोक के आठ गुणवान् पुत्र थे एवं सुधर्मियों की चार भावनाओं के समान उसकी हितकारिणी चार पुत्रियाँ थीं॥28॥उनके पुत्रों के नाम क्रमशः इस प्रकार थे—विगतशोक, गतशोक, जितशोक, विनष्टशोक, धनपाल, वसुपाल, गुणपाल तथा लोकपाल॥29॥ उनकी वसुंधरा, सुरकांता, लक्ष्मीमती व सुप्रभा नामक चार पुत्रियाँ थीं जो राजा के आंगन में चार प्रकार की निधि के समान उत्पन्न हुई थीं॥30॥ प्रत्येक जीव सदा ही अपने पुण्य व पाप फल को भोगता है। इस भव में महाराज अशोक व महारानी रोहिणी अपने पुण्य फल को भोग रहे थे॥31॥ पूर्व-पुण्य के उदय से महाराजा अशोक महारानी रोहिणी के साथ व राजपरिवार के साथ इस प्रकार सुशोभित थे जैसे स्वर्ग में देवराज सौधर्म इंद्र॥32॥ वह पुण्यवान् प्रजा भी शांति, लौकिक वैभव, आनंद, विशिष्ट सुखों को भोग रही थी। वह प्रजा इस प्रकार सुख प्राप्त कर रही थी जैसे कल्पवासी देव॥33॥ एक बार मध्याह्न काल में मनोहर वातावरण होने से राजा अशोक व रोहिणी आनंदपूर्वक महल की छत पर बैठे हुए थे॥34॥

726. तदा मधुर-वत्ताए, मञ्जे आवडीअ वसंततिलगा।
अंकम्मि अंकधाई, लहु-सुद-लोयपाल-माहरिय॥35॥
727. णंदवत्तं कुव्वीअ, पसण्णचित्तेण पमोदभावेण।
हियमिय-पियवयणेहिं, सज्जण-चित्त-हारगं तत्थ॥36॥
728. पासाद-सम्मुहे कइवया इत्थी पस्सीअ रायपहे।
अच्चंत-सोग-जुत्ता, अस्सुवंता आरडंता य॥37॥
729. विवइण्णा-केसी ता, विलवंता साउलया विवण्णा या।
सग-वच्छत्थलं तहा उदरं सिरं अवि तांडता दु॥38॥
730. उहय-करा थंगंता, णियवत्थाइं कयाणुकड्डंता।
दया-उप्पायगं हिय-विदारणं कंदणं कुणीअ॥39॥ (जुम्मं)
731. विम्हइअं दस्सं तं, पस्सिय उल्लोलं सुणिय पुच्छीअ।
णच्चविज्जाइ-णादू, सिण्णडग-छत्त-भाणीणं च॥40॥
732. रास-दुराविणीणं च, पण्णाडयाणं णच्चं कुव्वंति।
इमाणि पण्णाडयाणि, मुंचिदूण णाडयं किमिदं॥41॥ (जुम्मं)

तभी उनकी मधुर वार्ता के मध्य उनके छोटे पुत्र लोकपाल को गोद में लेकर वसंततिलका नामक धाय माँ आयी॥35॥ वहाँ वे प्रसन्नचित्त होकर प्रमोद भाव सहित हित-मित-प्रिय वचनों से सज्जन के चित्त का हरण करने वाली आनंदवार्ता करने लगे॥36॥ उसी समय उन्होंने राजमहल के सामने राजपथ पर कुछ स्त्रियाँ देखीं जो अत्यंत शोक से युक्त थीं, जिनके आँसू बह रहे थे और जो चिल्ला रही थीं॥37॥ उनके केश बिखरे हुए थे। वे जोर से रो रही थीं, आकुलता से युक्त थीं। उनके चेहरे निस्तेज, कांतिहीन थे। वे कभी अपने वक्षस्थल, शिर व उदर को पीटतीं, कभी अपने दोनों हाथों को ऊपर करतीं, कभी अपने वस्त्रों को खींचतीं। वे स्त्रियाँ दया को उत्पन्न करने वाला और हृदय को विदारित करने वाला क्रंदन कर रही थीं॥38-39॥ उस विस्मयकारी दृश्य को देखकर और शोकाकुलित स्त्रियों के रुदन शब्दों को सुनकर रोहिणी ने पूछा हे माता! नृत्य विद्या के जानने वाले सिग्नटक, छत्र, भानी, रास और दुराविनी इन पाँच नाटकों का नृत्य करते हैं। इन पाँचों नाटकों को छोड़कर यह कौन सा नाटक है?॥40-41॥

733. तस्स चक्क-भरदेणं, सिक्खाविदं पंचविहणाडयं चा
जस्स णामेणं अस्स, देसस्स भारदं सुणामं॥42॥
734. सब्भदा-सक्कदीणं, रक्खाए सुसक्कार-वड्डणाय।
अवियारि-वित्तीए, विगासाए दु चित्तरंजणाय॥43॥ (जुम्मं)
735. सत्त-सरा अस्सि णो, सिंगारादी णवरसा चिय णेव।
णेव णियमिदा भासा, णेव तालं ण रुच्चदि मज्झा॥44॥
736. विमहयकारग-वयणं, आयण्णिदूणं भासिदं ताए।
भो पुत्ती! दुहिजणेहि, इदं महादुक्खं सोगो य॥45॥
737. किं सोगो किच्छं वा, णेव इमं विआणेमि भो धत्ती।
भो सुंदरी! आलवसु, किं तुमं उम्मायो होज्जा॥46॥
738. णाणस्स अजिण्णं वा, तव चिय वियड्ढिमाए विहवो वा।
सुंदरिमाए गव्वो, समिद्धीए अहंकारो दु॥47॥
739. पुण्णफलेणं अहवा, अहिमाणी पाविदूणं विहूदिं।
कामदेवोव्व सुंदर-पदिं लहित्ता य वायाला॥48॥
740. लोकोत्तर-सोहग्गं, जो णेव जाणेसि वेदणं सोगं।
पीडं कट्टं दुक्खं, विलावणं विरसणं रुदणं॥49॥ (चउक्कं)

उन प्रथम चक्रवर्ती महाराज भरत; जिनके नाम से इस देश का नाम भारत पड़ा उन्होंने सभ्यता व संस्कृति की रक्षा के लिए, सुसंस्कारों के वर्धन के लिए अविकारी मनोवृत्ति के विकास और मनोरंजन के लिए पाँच प्रकार के नाटकों की शिक्षा दी॥42-43॥ ये क्या नाटक है, इसमें न तो सात (सा, रे, गा, म, प, ध, नि-षडज, ऋषभ, गांधार, गंधर्व, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद) स्वर हैं, न ही शृंगार आदि नव रस हैं, न ही इसमें भाषा की नियमितता है, न ही कोई ताल है और न ही मुझे यह रुचिकर प्रतीत होता है॥44॥ रोहिणी के आश्चर्यकारी वचन सुनकर उसने कहा हे पुत्री! इन दुःखी जनों के द्वारा यह महादुःख व शोक किया जा रहा है॥45॥ यह सुनकर रोहिणी ने पुनः कहा—हे धाय माता! ये शोक अथवा दुःख क्या कहलाता है? मैं इसे नहीं जानती। तब धाय माँ कहती है—हे सुन्दरी! कहो, क्या तुम्हें उन्माद हो गया है या ज्ञान का अजीर्ण हो गया है या यह तेरे पांडित्य का वैभव है या तुझे सौंदर्य का गर्व है या तुझे समृद्धि का अहंकार है

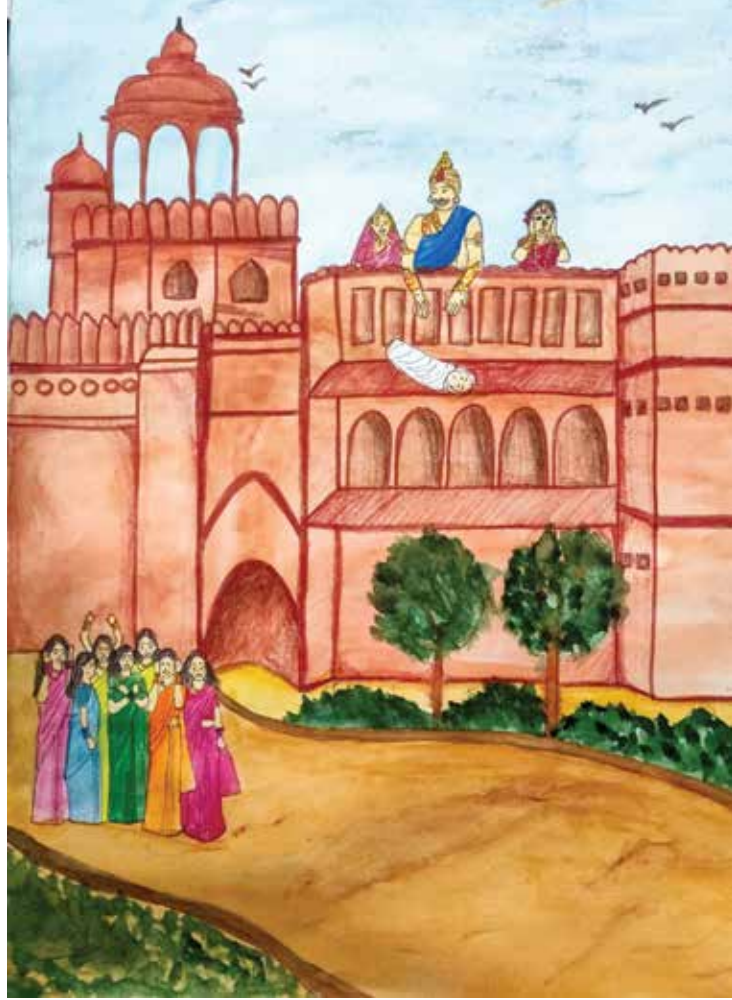
741. कट्टं सोग-दुहं जं, सब्ब-लोयो विजाणेदि भासेसि।
तं णाडयं च भासा-सुर-रस-ताल-रहिदं हु तुमं॥50॥
742. जहत्थे एरिसो को, जो णो जाणेदि दुहं संसारे।
सहजा सरलचित्ता य, भासेमि अज्जमुप्पण्णा व्व॥51॥
743. सुणिय कोहजुदवयणं, रोहिणीइ मंद-मंद-हसंताइ।
भो धत्ती! णो कुविदा, खमसु मे पुच्छिदं अणुइदं॥52॥
744. किण्णु गुरुमुहादु मए, बहु-कला-विज्जा सिक्खिदा दु सुहा।
जह संगीद-णच्च-सर-विण्णाण-अक्खरणाण-कला॥53॥
745. गणिद-सिद्धंत-णिमित्त-जोदिस-वेज्जग-णाय-सुगुण-कला य।
मंत-तंत-वत्थुणाण-मज्झप्पादी पसत्थकला॥54॥ (जुम्मं)
746. जाणेमि इमा सब्वा, एरिसा कला विज्जा पण्णविदा।
गुणरूव-अहिणयं णो, केण वि गुरुणा किण्णु कया वि॥55॥
747. मए ण सुणिदो पढिदो, सिक्खिदो णेव अहिणयो इदं वा।
तं पुच्छेमि दरिसेह, अणुगगहिदूणं भो मादू॥56॥

अथवा पुण्य के फलस्वरूप विभूति को प्राप्त कर घमंडी हो गयी है या कामदेव के समान सुंदर पति को प्राप्त कर तुझमें वाचालता आ गई है या यह तेरा लोकोत्तर सौभाग्य है जो तू वेदना, शोक, पीड़ा, कष्ट, दुःख, रुदन, विलाप व क्रंदन को नहीं जानती॥46-49॥ सर्व लोक, कष्ट-शोक व दुःख को जानता है और तुम्हें यह भाषा, सुर, रस व ताल से रहित नाटक प्रतिभासित हो रहा है॥50॥ यथार्थ में ऐसा कौन है जो संसार में दुःख को नहीं जानता। तू बहुत सहज व सरल चित्त वाली है, ऐसा प्रतिभासित होता है जैसे आज ही उत्पन्न हुई हो॥51॥ धाय माँ के क्रोधयुत वचन सुनकर महारानी रोहिणी ने मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहा-हे धाय माँ! आप क्रोधित न हों। यदि मैंने अनुचित पूछा हो तो मुझे क्षमा करें॥52॥ किन्तु मैंने गुरु-मुख से बहुत-सी शुभ कला व विद्याएँ सीखीं जैसे संगीतकला, नृत्यकला, स्वरविज्ञान, अक्षरज्ञान कला, गणित, सिद्धांत, निमित्तज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, न्यायशास्त्र, शकुनकला, मंत्र-तंत्र, वास्तु ज्ञान व अध्यात्म आदि कला॥53-54॥ इन सबको तो मैं जानती हूँ किन्तु जैसा सामने दिख रहा है उस रूप के गुण रूप अभिनय का उपदेश कभी गुरु के द्वारा नहीं दिया गया॥55॥ इस प्रकार का अभिनय मैंने न तो सुना, न पढ़ा और ना ही सीखा इसलिए ही मैं पूछ रही हूँ। हे माँ! कृपया कर मुझे बतलाइये॥56॥

748. अगितत्तभूमीए, वरिसा व्व ताए महुर-वयणेहिं।
धत्ती संता सुमहुर-वयणं कस्स संति-हेदू ण॥57॥
749. सीलवंत-इत्थीए, मज्जादा भूसणं च कुलविज्जा।
हियमियपियवयणं तह, वच्छलेण धम्मभावजुदं॥58॥
750. कोमलंगि-महुरभासि-अच्चंत-सरल-हिअधि-रोहिणीए।
वयणं सुणित्तु कहिदं, वसंतधत्तीइ हे पुत्ती!॥59॥
751. इमा णेव को वि कला, ण विज्जा ण णाडयं ण संगीदं।
णेव अहिणयो णेव दु, मणरंजण-हेदू किड्डाइ॥60॥ (जुम्मं)
752. देहे महावाहीइ इट्ठे विजोगे मिच्चु-आदीदो।
चित्ते विसेस-अट्टज्जाण-जण्ण-दुहं होदि जदा॥61॥
753. रुदणं कंदणं तदा, सहजो होदि विलवणं आरडणं।
पावोदयम्मि हवेदि, दुहं सोग-कट्टपीडादी॥62॥ (जुम्मं)
754. कहदि सुणित्तु रोहिणी, णाकंदणं जाणेमि हे भद्दा!
णेव रुदणं दुहाइं, अवहाविदूणं पबंधेज्ज॥63॥

जैसे अग्नि से संतप्त भूमि पर वर्षा होने से वह शीतल हो जाती है उसी प्रकार उस रोहिणी के मधुर वचनों को सुनकर धाय माँ शांत हो गयी। उचित ही है वचन किसकी शांति के हेतु नहीं होते अर्थात् सभी के लिए शांतिकारक होते हैं॥57॥ वात्सल्य और धर्मभाव से युक्त हित-मित-प्रिय वचन ही शीलवती स्त्री का आभूषण, मर्यादा व कुलविद्या होते हैं॥58॥ पुनः कोमलांगी, मधुर-भाषिणी, अत्यंत सरलहृदयी रोहिणी के वचन सुनकर वसंततिलका ने कहा हे पुत्री! यह शोक कोई भी कला नहीं है, यह न कोई नाटक, न संगीत है और न कोई अभिनय है, न ही क्रीड़ा वा मनोरंजन का हेतु॥59-60॥ देह में महा व्याधि होने पर, इष्ट वियोग होने पर वा मृत्यु आदि से जब चित्त में विशेष आर्तध्यान-जन्य दुःख होता है तब सहज ही रुदन, क्रंदन, विलाप व चिल्लाना होता है। पाप के उदय में ही दुःख, शोक, कष्ट व पीड़ा आदि होते हैं॥61-62॥ धाय माँ के वचन सुनकर रोहिणी पुनः कहती है हे भद्रे! मैं आक्रंदन नहीं जानती, न मैं रुदन जानती हूँ और न दुःख जानती हूँ, वह क्या है? कृपया कर विस्तार से कहिए॥63॥

755. रोहिणी-धत्तीए य, सव्व-वत्तालावं सुणिय णिवेण।
कहंत-असोगेण दुह-अत्थं बोहावमि रोसेण॥64॥
756. जाणावमि तुज्झं हं, किं सोगो आकंदणं रुदणं चा
लोयपालं आहरिय, धत्ती करादो दु सहसत्ति॥65॥
757. पासाद-छायणादो, पडिक्खलाविदो हु अविवेगेणं।
कोहो णासदि बुद्धिं, विवेगं पदिट्ठं वत्तं च॥66॥ (तिअं)



रोहिणी और धाय माँ के संपूर्ण वार्तालाप को सुनकर; दुःख का अर्थ मैं तुझे समझाता हूँ, बताता हूँ कि शोक, आक्रंदन व रुदन क्या है, इस प्रकार क्रोध से कहते हुए राजा अशोक ने अचानक धाय माँ के हाथ से लोकपाल को ले लिया एवं अविवेक से राजप्रासाद की छत से नीचे गिरा दिया। सही ही है कि क्रोध बुद्धि, विवेक, प्रतिष्ठा और आरोग्य को नष्ट कर देता है॥64-66॥

758. देहरूवकाणणं दु, डङ्गदि तिव्ववेगेण कोहग्गी।
संतिं चिअ अदयाए, सम्मत्तादी गुणा वि तहा॥67॥
759. सोसदे संतिणीरं, णिद्धदि संतोसकट्टं कोहो।
णस्सेदि खमाभावं, खंडदि पदिट्टं सम्माणं॥68॥
760. अवच्छलेण विवादं, कुणंतो कोहो अविवेगेण तह।
उप्पज्जेदि पावगो, जह सुक्ककट्ट-घसणेणं च॥69॥
761. माण-खंडिदे धीरे, णट्टे तह अविवेगे उप्पण्णे।
असहिण्हु-भावम्मि सदि, उप्पज्जदि कोहो चित्तम्मि॥70॥
762. कोहरुक्खस्सुवेक्खामूलं मणोतावपुप्फाडं तइ।
तिव्व-किच्छकट्टफलं, खंधो तहा संकिलेसस्स॥71॥
763. अक्कोदय-समये जह, रत्तिमवण्णी हवेदि आयासो।
तह कोहुदये णरस्स, आणणं णित्तिसं रत्तं॥72॥
764. तिव्वकोहे वरिसंति, णयणाइ-सव्वंगादो कुभावा।
दुहिचित्ते णयणादो, तक्कालम्मि अस्सुपादं व॥73॥

क्रोध रूप अग्नि तीव्र वेग से शरीर रूप वन को जला देती है। निर्दयतापूर्वक शांति एवं सम्यक्त्व आदि गुण भी नष्ट कर देती है॥67॥ क्रोध शांति रूपी नीर को अवशोषित कर लेता है, संतोष रूपी लकड़ी को जला देता है, क्षमा भाव नष्ट कर देता है, प्रतिष्ठा व सम्मान को खंडित कर देता है॥68॥ जैसे सूखी लकड़ी के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है वैसे ही अविवेकपूर्वक वात्सल्य भाव से रहित विवाद करते हुए क्रोध उत्पन्न होता है॥69॥ मान के खंडित होने पर, धैर्य के नष्ट होने पर, अविवेक के उत्पन्न होने पर एवं असहिष्णु भाव के होने पर चित्त में क्रोध उत्पन्न होता है॥70॥ क्रोध रूपी वृक्ष की जड़ उपेक्षा है, उस पर मनः संताप के पुष्प, तीव्र दुःख व कष्ट के फल एवं संक्लेशता का तना है॥71॥ जिस प्रकार सूर्योदय के समय आकाश लाल रंग का होता है उसी प्रकार क्रोध के उदय होने पर मनुष्य का चेहरा करुणा विहीन लाल रंग का होता है॥72॥ तीव्र क्रोध से नेत्रों आदि सर्वांग से कुभावों की वर्षा वैसे ही होती है जैसे चित्त के दुःखी होने पर तत्काल में अश्रुपात होता है॥73॥

765. जह पाविट्ट-मित्ताणि, लंपड-पाडच्चरो जूअपेम्मी।
णिहयो मंदबुद्धी, अलसो चिय कूरपरिणामी॥74॥
766. भिज्झा कव्वा माणं, धम्मधंसग-किरिया कुवयणाइं।
अण्णाणं च कुचेट्टा, जिणाणालोवो य कोहस्सा॥75॥ (जुम्मं)
767. असोगेण पक्खिवणे, पस्सिदु - मुच्छाहेणुक्कंठाए।
रोहिणी महाराणी, धावीअ पासाद-अधाए॥76॥
768. दुह-हेदू रोहिणीइ, सोगस्स अहवा किं उप्पज्जेज्जा।
एवंविह चिंताउरा, देवा तत्थ कोलाहलिया॥77॥
769. आवत्तीअ णिम्मिदं, पणवणिण-सीहासण-विमल-दिब्बं।
लोयपालं ठवित्ता, तम्मि चिय अहिसेगं करीअ॥78॥
770. सिंधुविमलणीरेणं, पूरिदेहि पउम-आविअ-कलसेहि।
रयणजडिद-आहूसण-वत्थेहि सुसज्जिदो बालो॥79॥ (तिअं)



जैसे पापी व्यक्ति के मित्र लालची, चोर, द्यूतप्रेमी, निर्दयी, मंदबुद्धि, आलसी व क्रूर परिणामी होते हैं उसी प्रकार लोभ, माया, मान, धर्मध्वंसक क्रिया, कुवचन, अज्ञान, कुचेष्टा और जिनाज्ञा लोप क्रोध के मित्र हैं॥74-75॥ राजा अशोक के द्वारा पुत्र लोकपाल के फेंके जाने

771. देवेहि माणणीयं, पस्सिय लहुडिंभं पसण्णचित्तं।
पफुल्लिदा दु रोहिणी, पुच्छदि किं दुहमिदं देवो!॥80॥
772. पुण्णवंतस्स किंचिवि, ण अलब्धं ण असंभवो तिलोए।
ताइ अदिसयं पुण्णं, जाणित्ता कहदि भो देवी!॥81॥
773. सुहलेस्सा सुविकिरिया, सुहदेहो जह तह णेरइयादो।
खवगादो मिच्छत्तं, दुहं अइसय-पुण्णवंतादु॥82॥
774. इमाणि सव्व-दस्साणि, पस्सित्तु मंति-राय-पुरोहादी।
परिजणा पुरजणा वा, अदिसय-विम्हय-संजुत्ता दु॥83॥
775. पुव्वभवे रोहिणीइ, किद-अदिसय-पुण्णं पडिसंविक्खीअ।
सुपुण्णवंतस्स कं वि, वत्थुं दुल्लहं ण तिलोए॥84॥ (जुम्मं)
776. अहो भव्वुल्लो तुमं, अणुव्वदं सीलव्वदं पालेज्ज।
वदहीणो मण्णेज्जा, णेरइयोव्व पसूव अहवा॥85॥
777. णवरि य तिव्वकसायी, अवदि-असुहलेस्सजुदा णेरइया।
असुहा चिय परिणामा, विक्किरिया वि असुहा णियमा॥86॥ (जुम्मं)

पर महारानी रोहिणी उत्साह व उत्कंठा से महल की अधोदिशा में देखने के लिए दौड़ी॥76॥ तभी रोहिणी को दुःख अथवा शोक का कारण क्यों उपस्थित हुआ? इस प्रकार चिंतातुर नगर के देवता कोलाहल करते हुए उस स्थान पर आए; तथा उन्होंने पंचवर्णी निर्मल दिव्य सिंहासन रच दिया। पुनः लोकपाल को उस सिंहासन पर बैठाकर सागर के निर्मल जल से कमल पुष्पों से आवृत मुख वाले कलशों से उसका अभिषेक किया तथा उस बालक को रत्नजडित आभूषण व वस्त्रों से सुसज्जित किया॥77-79॥ रोहिणी देवों के द्वारा सम्मानीय अपने छोटे पुत्र को प्रसन्नचित देख बहुत आनंदित हुई। पुनः पूछती है—हे देव! क्या ये ही दुःख है॥80॥ तब उस रोहिणी के अतिशय पुण्य को जानकर राजा अशोक कहते हैं—हे देवी! पुण्यवान् के लिए तीनों लोकों में न तो कुछ अलब्ध है और न ही कुछ असंभव॥81॥ जिस प्रकार नारकी से शुभ लेश्या, शुभ विक्रिया और शुभ देह बहुत दूर होते हैं, क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले क्षपक मुनिराज से मिथ्यात्व बहुत दूर होता है उसी प्रकार अतिशय पुण्यवान् जीव से दुःख बहुत दूर होता है॥82॥

776. अहो भव्वुल्लो तुमं, अणुव्वदं सीलव्वदं पालेज्ज।
वदहीणो मण्णेज्जा, णेरइयोव्व पसूव अहवा॥85॥
777. णवरि य तिव्वकसायी, अवदि-असुहलेस्सजुदा णेरइया।
असुहा चिय परिणामा, विक्किरिया वि असुहा णियमा॥86॥ (जुम्मं)
778. देवा सुरासुरिंदा, भोयमहिया भुंजंति पुण्णफलं।
पुव्वे तेहिं करिदं, सुचरिय-पालणं सत्तीए॥87॥
779. दव्व-वय-धारणादो, भावहीणा लहिदुं सुरं सक्का।
वदहीण-अइकसायी, केवलं असुहगदिं णियमा॥88॥
780. सव्वा णयरजणा तं, दिस्सं अवयज्झिय अइसंतुट्ठा।
मुत्तकंठेण ताए, पसंसीअ महापुण्णफलं॥89॥

अनुष्टुप छंद

781. पुण्णकज्जं फलं पुण्णं, पुण्णवंतं सुसाहणं।
विणा पुण्णं ण पावंति, तम्हा पुण्णं करेज्ज हि॥90॥

इन सभी दृश्यों को देखकर राजा, मंत्री, पुरोहित, परिजन और पुरजन इत्यादि अतिशय विस्मय से युक्त हुए एवं पूर्वभव में रोहिणी द्वारा किए गए अतिशय पुण्य को विचारने लगे। उचित ही है पुण्यवान् के लिए तीनलोक में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है॥83-84॥ अहो भव्यजीव! तुम्हें अणुव्रत और शीलव्रत का पालन करना चाहिए। व्रत से हीन व्यक्ति नारकी अथवा पशु के समान मानना चाहिए। विशेषता यह है कि नारकी (तीव्र कषायी) अव्रती व अशुभ लेश्या से युक्त होते हैं। उनके परिणाम तीव्र अशुभ और नियम से अशुभ विक्रिया होती है॥85-86॥ देव, सुरेंद्र, असुरेंद्र, भोगभूमिया सभी पुण्य फल को भोगते हैं। पूर्वभव में उनके द्वारा शक्तिपूर्वक चारित्र का पालन किया गया॥87॥ द्रव्य व्रत धारण करने से भावहीन व्रती भी देवगति प्राप्त कर सकते हैं। व्रत से हीन तीव्र कषायी नियम से केवल अशुभगति को प्राप्त करते हैं॥88॥ सभी नगरजन भी उस दृश्य को देखकर अति संतुष्ट हुए एवं उस महारानी रोहिणी के महापुण्य फल की मुक्तकंठ से प्रशंसा की॥89॥ उचित ही है पुण्यकार्य, पुण्य फल, पुण्यवान् जीव एवं समीचीन साधन को जीव बिना पुण्य के प्राप्त नहीं करता। अतः सदैव ही पुण्य करना चाहिए॥90॥

दोहा छंद

782. जवो महामंतस्स तह, सज्झाओ सत्थाण।
अणसणं च सुहकारणं, वंदणं सुत्तिथाण॥91॥
783. दाणं वरपत्ताण णो, जिणपूयं ण करेदि।
भत्तिं पंचगुरूण णो, भवुवहीइ बुड्ढेदि॥92॥

महामंत्र का जाप, शास्त्रों का स्वाध्याय, उपवास और तीर्थों की वंदना ये चार पुण्य के कारण हैं॥91॥ जो जीव उत्तम पात्रों को दान नहीं देता, श्री जिनेंद्रप्रभु की पूजा नहीं करता और पंच गुरुओं (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु) की भक्ति नहीं करता, वह संसारसागर में डूब जाता है॥92॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक-रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में रोहिणी व लोकपाल के पुण्य के माहात्म्य का
वर्णन करने वाला षष्ठ नंद पूर्ण हुआ।

सन्तम-णंदो

784. वणपालो आवडीअ, सीहासणारूढ-असोग-णियडे।
एयदा रायसहाइ, आणंदेण बद्धंजलीइ॥1॥
785. भूवदिं पणमिदूणं, पुण पुण णिवेदीअ महुरसद्देहि।
धण्ण-णिवो धण्ण-पया, धण्णा य सव्वणयरवासी॥2॥
786. सदेसस्स रायहाणि-हत्थिणायपुरस्स पुव्वदिसाए।
बहुसुरम्म-उववणो दु, चंपासोग-सत्तपणीहि॥3॥
787. रसालरुक्खेहि जुत्त-णंदणवण-णियडे आगरिसगो या।
तत्थ एला दाडिमी, खज्जूर-पूगाइ-रुक्खा दु॥4॥ (जुम्मं)
788. हं अइविम्हियचित्तो, तत्थ गच्छिय सहतीदाणंदो।
लद्धणिहि-दरिद्दोव्व य, भयवोव्व पुढविपालगो भो॥5॥
789. छुहाउरो जह जहेच्छ-भोयणं तिसाउरो महुर-णीरं।
णेत्तहीणं च णेत्तं, समोलुगो वत्तं लहित्तु॥6॥
790. पावदि जं आणंदं, तहेव पाउणमि अहो धण्णो हं।
णो समत्थो भो प्हू! वण्णेदुं हु तं आणंदं॥7॥ (जुम्मं)

एक बार राजसभा में सिंहासन पर आरूढ़ राजा अशोक के निकट आनंदपूर्वक हाथ जोड़कर वनपाल आया॥1॥ राजा को नमस्कार कर उसने मधुर शब्दों से पुनः पुनः निवेदन किया— हे राजन्! आप धन्य हैं, आपकी यह प्रजा धन्य है, सभी नगरवासी धन्य हैं॥2॥ अपने देश की राजधानी हस्तिनागपुर नगरी की पूर्व दिशा में चंपक, अशोक, सप्तपर्णी व आम्र वृक्षों से युक्त नन्दनवन के निकट बहुत मनोहर व आकर्षक उपवन है। वहाँ ऐला, दाड़िम, पूंगीफल, द्राक्षा आदि के सघन वृक्ष हैं॥3-4॥ वहाँ जाकर मेरा चित्त अति विस्मय से युक्त हो गया। मेरे लिए भगवान् के समान हे पृथ्वीपालक! जैसे किसी दरिद्र ने निधि प्राप्त कर ली हो उस प्रकार का शब्दातीत आनंद मुझे प्राप्त हुआ॥5॥ एक क्षुधातुर भोजन को, तृषातुर मधुर नीर को, नेत्रहीन नेत्रों को एवं रोगी आरोग्य को प्राप्त कर जिस आनंद की अनुभूति करता है उसी आनंद की अनुभूति मैं कर रहा हूँ, अहो! मैं धन्य हूँ। हे प्रभु! उस आनंद का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ॥6-7॥

791. तव पुण्णोदयादो हि, ओहिणाणसंजुदा उज्जाणम्मि।
चारण-इड्ढिधारी य, जुगलमुणिवरा गगणगामी॥8॥



792. सुहणामधारगा चिय, रूवकुंभो सुवण्णकुंभो मुणी।
ठिदा सुधम्मज्झाणे, दियंबरा पुढवीदेवा य॥9॥

793. आयण्णिय वत्तमिदं, आणंदो णिस्सीमो दु रायस्स।
उट्टिय सगासणादो, णमंसीअ तं सुदिसं गडुअ॥10॥

794. रायेणं अल्लविदं, मण-वयण-काय-जोगत्तयं कडुअ।
अइणिम्मलं भयवदा, भवसायर-सोसगा जयंतु॥11॥

आपके पुण्य के उदय से ही उद्यान में अवधिज्ञान से युक्त, चारणऋद्धिधारी, गगनगामी युगल मुनिराज पधारे हैं॥8॥ उनके शुभ नाम रूपकुंभ व स्वर्णकुंभ हैं। वे पृथ्वी के देवता दिगंबर मुनिराज वहाँ शुभ धर्मध्यान में स्थित हैं॥9॥ इस वार्ता को सुनकर राजा को निःसीम आनंद हुआ। उसने अपने सिंहासन से खड़े होकर उसी दिशा में आगे जाकर मुनिराज को परोक्ष में नमस्कार किया॥10॥ राजा ने मन, वचन व काय तीनों योगों को अति निर्मल करके कहा—हे भगवन्! हे भव सागर के शोषक आपकी जय हो॥11॥

795. जयंतु पुण्णकारगा, अहणासगा भवतारगा जयंतु।
भव्वपउमदिवायरा, रोय - सोग - हारगा जयंतु॥12॥
796. पुण्णचंदोव्व जदिणो, कुमुडणीण व भत्तिजुत्तपुरिसाण।
णंमसामि विसुद्धीइ, अणुरायेण तिव्वभत्तीइ॥13॥
797. मुणिदंसणेण खयदे, पावं वंदणेण चित्त-विसुज्झं।
णिज्जराइ सिव-हेदू, कमेण कित्तणं थुदी ताण॥14॥
798. मोत्तिअ-रयण-हारं दु, पुरक्कारे दायिदं कंधराइ।
णिवेण वणपालगस्स, महामंती तदा देविदो॥15॥
799. अहो महामंतिवरो! करावह घोसणं पुण्णरज्जम्मि।
सुवे पहादयालम्मि, रायकुडुंबेण सह पया वि॥16॥
800. सिरिमुणिवरदंसणाय, पावक्खयिदुं पुण्ण-मज्जेदुं चा।
संजमाणुमोदणाय, रीएज्ज सोहग्ग - वड्डीइ॥17॥ (जुम्मं)
801. लद्धलोयणंधोव्व य, लद्धमिट्ट-सुभोयणल्लुहाउरोव्व।
धम्मी णंदिदा सुणिय, मुणिवंदणाइ समायारं॥18॥

हे पुण्यकारक! पापों को नाश करने वाले, संसार से तारने वाले मुनिवर! आपकी जय हो। हे भव्य रूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान व रोग-शोक को दूर करने वाले यतिवर! आपकी जय हो॥12॥ भक्ति से युक्त पुरुष रूपी कुमुदनियों के लिए जो यति पूर्ण चंद्र के समान हैं उन्हें तीव्र भक्ति के अनुराग से मैं विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥13॥ मुनिराज के दर्शन से, वंदन से पापों का क्षय होता है, चित्त विशुद्ध होता है। उन मुनियों का कीर्तन, स्तुति क्रम से निर्जरा व मोक्ष का कारण है॥14॥ राजा ने प्रसन्नतापूर्वक अपने गले का मोती व रत्नों का हार वनपालक को दिया तथा महामंत्री को आज्ञा दी॥15॥ अहो महामंत्रीवर! संपूर्ण राज्य में घोषणा कराओ कि कल प्रातःकाल राजपरिवार के साथ प्रजाजन भी अपने पापक्षय के लिए, पुण्य के अर्जन के लिए, संयम की अनुमोदना और सौभाग्य की वृद्धि के लिए श्री मुनिवर के दर्शन के लिए चलें॥16-17॥ मुनि वंदना का समाचार सुनकर धर्मीजन उस प्रकार आनंदित हुए जैसे अंधे व्यक्ति को नेत्र ही प्राप्त हो गए हों अथवा भूख से पीड़ित व्यक्ति को श्रेष्ठ मिष्ट भोजन ही प्राप्त हो गया हो॥18॥

802. जुगलमुणिवंदणाए, रायपरिवारेण सह सव्वपया।
गच्छीअ जत्थुत्तुंग - चउजिणालया सिहरजुत्ता॥19॥



803. सुरयणजडिद - कलहोय - कलसजुदा पंचवण्णिधयाहि ते।
मंगल्ला सहिदा वसु-मंगलदव्व - पाडिहारेहि॥20॥

804. महाभूदि - जिणालये, अइभूदि - विहूदि - अंबरतिलगेसु।
तेसुं विराइद-रयण-णिम्मिद-वीयराय-बिंबाणि॥21॥

राजपरिवार के साथ समस्त प्रजा युगल मुनिराज की वंदना के लिए गयी; जहाँ पर उत्तुंग शिखर युक्त चार जिनालय स्थित थे॥19॥ वे जिनालय रत्न जडित स्वर्ण कलश एवं पंच-वर्णी ध्वजा से युक्त थे। वे मंगलमय जिनमंदिर अष्ट मंगल द्रव्य व प्रातिहार्यों से युक्त थे॥20॥ उन अतिभूति, महाभूति, विभूति और अंबरतिलक नामक जिनमंदिरों में रत्नों से निर्मित वीतराग जिनबिम्ब विराजमान थे॥21॥

805. तत्थ समट्टं हरिदुं, देहतावं मंदसुगंधपवणं।
फुरीअ सहस्सा धया, पोक्कंता व गगणे भव्वा॥22॥
806. भासीअ दु पंचवण्णि - वत्थजुद - णच्चंत - देवंगणा वा
धयाघंटियाण कणो, णिउर-सरोव्व सुरंगणाणं॥23॥
807. सुद्धप्पज्झाण - लीण-मुणी विराइदा वंदिदा णिवेण।
पुण पुण पणमिदूणं च, कुव्विदा दु सुहजोगि-भत्ती॥24॥
808. रयणत्तय - संजुत्तं, तियजोगाणं च धारगं जोगिं।
थुवमि इग - बे - ते - आइ - मासाणं उववास-जुत्तं॥25॥
809. लीणं अप्पज्झाणे, गिम्हे गिरिसिहरे ठिदं ज्ञाणिं च।
सीदे सरिदा - तडम्मि, रुक्खमूले वरिसायाले॥26॥
810. अप्पगुणं पावेदुं, कम्मिधण-दाहगं च णमंसामि।
बारसंग - धारगं दु, रदं धम्मसुक्कज्झाणम्मि॥27॥ (जुम्मं)
811. जम - णियमाण धारगं, पणमामि सुक्क - लेस्सा - संजुत्तं।
णाणिं इड्ढि-धारगं, तप्परं कम्मं णासेदुं॥28॥

वहाँ शरीर के ताप को दूर करने में समर्थ मंद सुगंधित पवन चल रही थी एवं आकाश में लहराती हुई हजारों ध्वजायें ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो जिनदर्शन के लिए भव्य जीवों को बुला ही रही हों॥22॥ अथवा वे ध्वजाएँ ऐसी प्रतिभासित हो रही थीं मानों पंचवर्णी वस्त्र सहित देवांगनाएँ ही नृत्य कर रही हों। ध्वजा की छोटी-छोटी घंटियों की ध्वनि ऐसी लग रही थी मानो देवांगनाओं के पायलों की ध्वनि ही हो॥23॥ राजा अशोक ने शुद्धात्मध्यान में लीन मुनिराजों की वंदना की एवं पुनः पुनः प्रणाम करके शुभ योगी भक्ति की॥24॥ अहो! रत्नत्रय से संयुक्त, तीन योगों के धारक, एक-दो-तीन आदि महिनों के उपवास करने वाले योगीराज को मैं नमस्कार करता हूँ॥25॥ आत्मध्यान में लीन, ग्रीष्मकाल में गिरि शिखर पर, शीतऋतु में नदी के तट पर व वर्षाकाल में वृक्ष के मूल में स्थित ध्यानी को, कर्म रूपी ईंधन को जलाने वाले, द्वादशांग के ज्ञाता, धर्म व शुक्लध्यान में रत मुनिराज को आत्मगुणों की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ॥26-27॥ यम-नियमों के धारक, शुक्ल लेश्या से संयुक्त, ज्ञानी, ऋद्धिधारक व कर्मनाश हेतु तत्पर मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ॥28॥

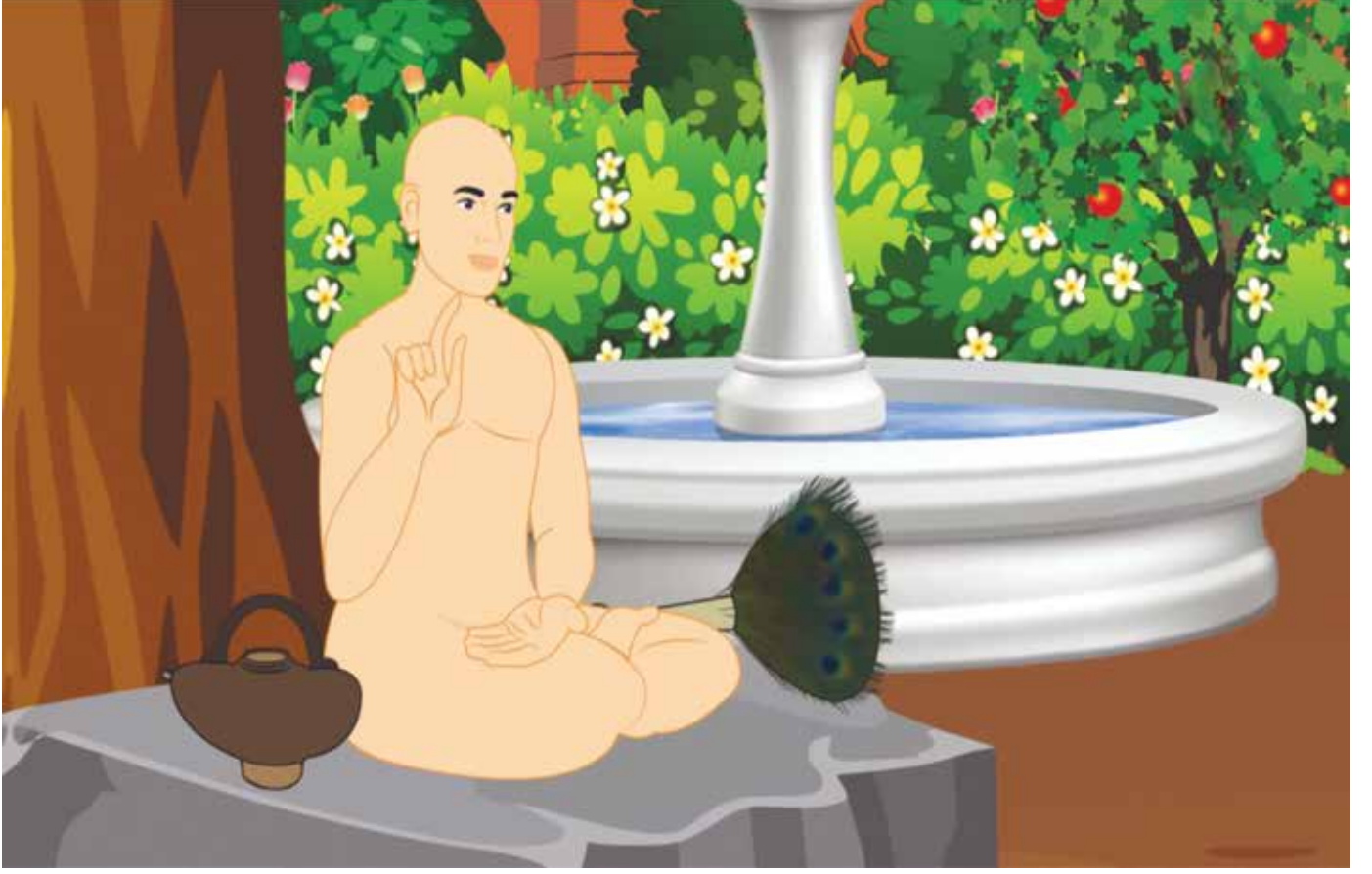
812. मुणिरायं णमंसामि, विहीणं विसय - कसाय - पावादो।
णाणज्झाणतवेसुं, लीणं सय मोहक्खयेदुं॥29॥
813. तव सुहणाम - चिंतणं, कित्तणं सिमरणं मेत्तं वि सया।
धोवदे पावमलं च, भव्वप्पं णिम्मलं करिदुं॥30॥
814. पूयच्चणे पससे, णिंदा - ताडण - घोर - उवसग्गेसु।
समत्तभावधारणं, धीरं जोगिं परियंदामि॥31॥
815. पविट्ठि-मग्गो गोणो, णिवट्ठिमग्गो खलु पहाणो जस्स।
पुण्ण - पाव - सव्वाणं, कुणदि कम्म - णिरोहं धीए॥32॥
816. पुढवीए देवं सिव-मग्ग-सिक्खगं णमामि सेट्ठ-गुरुं।
मूगुवदेसगं सया, अयारण - बंधुं भव्वाणं॥33॥ (जुम्मं)
817. तव अप्पविसुद्धीए, वइरं विजहंते सव्व-जंतू वि।
मिहो वच्छलं कुणंति, वंदे तुमं सगप्पुवलद्धीए॥34॥
818. अक्कोव्व तेजपुंजं, चंदोव्व परमसीयलं जोगिं चा।
सायरोव्व गंभीरं, पणमामि णहोव्व णिल्लेवं ॥35॥

विषय-कषाय-पाप से विहीन एवं मोह-क्षय के लिए सदैव ज्ञान, ध्यान व तप में लीन मुनिराज को नमस्कार करता हूँ॥29॥ हे मुनिवर! आपके नाम मात्र का स्मरण, चिंतन व कीर्तन सदा भव्यात्मा को निर्मल करने हेतु पाप मल को प्रक्षालित करता है॥30॥ जो पूजा, अर्चना, प्रशंसा में वा निंदा, ताड़न व घोर उपसर्गों में समत्वभाव धारण करते हैं उन धीर-योगीश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ॥31॥ जिनके लिए प्रवृत्ति मार्ग गौण है और निवृत्ति-मार्ग प्रधान है, जो पुण्य-पाप सभी कर्मों का बुद्धिपूर्वक निरोध करते हैं, जो धरती के देवता हैं, मोक्षमार्ग के शिक्षक, श्रेष्ठ गुरु, मूक उपदेष्टा हैं, भव्यों के नियम से अकारण बंधु हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ॥32-33॥ हे प्रभु! आपकी आत्मविशुद्धि से सभी पशु-पक्षी भी बैर त्याग देते हैं, आपस में वात्सल्य भाव रखते हैं। स्वात्मोपलब्धि के लिए मैं आपकी वंदना करता हूँ॥34॥ सूर्य के समान तेजपुंज, चंद्रमा के समान परम शीतल, सागर के समान गंभीर और आकाश के समान निर्लेप योगी को मैं नमस्कार करता हूँ॥35॥

819. णाणज्झाणतवाणं, अग्गिणा वियडि-वियार-दाहगं चा
तहा पावकम्माणं, थुवेमि अप्पसुद्धभावेहि॥36॥
820. तयपयाससंजुत्तं, जीमूदोव्व परम - उवयारिं।
अहिणंदमि भत्तीए, कच्छवोव्व अप्प-रक्खगं चा॥37॥
821. पुढवीव खमासीलं, ओजंसिं तवंसिं महाजोगिं।
सुदंसणोव्व अयलं च, धीरं वीरं परियंदामि॥38॥
822. चंदकंतमणिजलं व, सुहायर-किरणं व चंदणं व तां।
सुद्ध-मोत्तिअ-माला व, जस्स चित्तसीयलं वंदे॥39॥
823. अण्णाण-तम-णासगं, भविचित्तंबुज-विआसगं सय तां।
पावकद्दमसोसगं, मत्तंडोव्व जदिं वंदामि॥40॥ (जुम्मं)
824. तिसिद-चायग-पक्खीव, रायो पया चिट्ठीअ मुणि-हुत्ते।
कट्टु पुण्णं सज्जाणं, उवएसेज्ज धम्मविट्ठीइ॥41॥

ज्ञान, ध्यान व तप की अग्नि से विकृति, विकार और सभी पाप कर्मों को दहन करने वाले मुनिवर की आत्मा के शुद्ध भाव से स्तुति करता हूँ॥36॥ तीन प्रकाश (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र) से युक्त, मेघ के समान सदा ही परम उपकारी, कछुए के समान आत्मा की रक्षा करने वाले मुनिराज का मैं भक्तिपूर्वक अभिनंदन करता हूँ॥37॥ पृथ्वी के समान क्षमाशील, ओजस्वी, तपस्वी, सुदर्शन मेरु के समान अचल, धीर, वीर महायोगी को नमस्कार करता हूँ॥38॥ चंद्रकांत मणि के जल, चंद्रमा की किरण, चंदन व शुद्ध मोतियों की माला के समान जिनका चित्त शीतल है उन मुनिराज की मैं वंदना करता हूँ। जिस प्रकार सूर्य अंधकार को नष्ट करता है उसी प्रकार मुनिराज अज्ञान रूपी अंधकार को नाश करने वाले हैं, जिस प्रकार सूर्य कमलों को खिलाने वाला होता है उसी प्रकार मुनिराज भव्यों के चित्त रूपी कमल के विकासक हैं, जिस प्रकार सूर्य पंक को अवशोषित कर देता है उसी प्रकार मुनिराज पाप पंक के अवशोषक हैं, ऐसे सूर्य के समान यतिराज की मैं वंदना करता हूँ॥39-40॥ अनंतर राजा व समस्त प्रजा मुनि के सम्मुख प्यासे चातक पक्षी के समान बैठ गयी। पुनः मुनिराज ने अपना ध्यान पूर्ण करके धर्म वृद्धि के लिए उपदेश दिया॥41॥

825. जेद्रे मेहधाराइ, अक्कतविद - तुदु - उव्वरा - महीवा।
पिविय णाणामियं तं, सव्वा भव्वा दु संतुट्टा॥42॥



826. धम्मवएसं सुणित्तु, भव्वा मुणिमुहादु आणंदिदा या।
आइच्चुदयादो चिय, विहसंत-पउमपुप्फाइं व॥43॥

827. सादिणक्खत्ते पडिद-जलबिंदु-धारग-सिप्पीव तदा हु।
भव्वपुरिसेहि णिम्मल-चित्ते धारिदो उवएसो॥44॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार ज्येष्ठ के महीने में सूर्य से तपी हुई भूमि मेघधारा से संतुष्ट और उर्वरा हो जाती है उसी प्रकार उस ज्ञानामृत का पान कर सभी भव्यजन संतुष्ट हुए॥42॥ मुनिराज के मुख से धर्मोपदेश सुनकर भव्यजन उसी प्रकार आनंदित हो उठे जिस प्रकार सूर्य के उदय से कमल के पुष्प खिल उठते हैं। जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में गिरी जल की बूंद को सीप धारण करती है उसी प्रकार भव्यजीवों ने अपने निर्मल चित्त में मुनिराज का उपदेश धारण किया॥43-44॥

828. अभव्वचित्ते कया वि, जिणुवएसो णो समट्ठो हिदाया।
मिदिगा-खंडिद-पत्ते, सादि-जल-बिंदू णो मुत्ता॥45॥
829. सप्पमुहे विसरूवो, सादिणक्खत्ते जहवि जलबिंदू।
णवरिमुणिस्सवाणीदु, संकिलेस-दुहुप्पायगोण॥46॥(जुम्मं)
830. अहो णिवो पुण्णप्पा, णिराउल-सस्सदस्स विहि-हीणस्सा।
अप्पुप्पण्ण-सोक्खस्स, संपत्तीए अप्पहिदं च॥47॥
831. सुद्ध-सिद्ध-णिक्कम्मावत्थं आवज्जिदुं मुखहेदू।
सव्वदुहं अण्णाणं, विहावं खयिदुं खलु धम्मो॥48॥
832. उत्तम-खमाइ-दसहा, अहिंसादी दु पंचविहो धम्मो।
परम-धम्मो जीवस्स, सुद्धसहावो मुणेदव्वो॥49॥
833. सम्मत्तं सण्णाणं, सुचरियं ववहारेण सिव-हेदू।
तत्तियमइओ अप्पा, मुणेदव्वो णिच्छयेणं च॥50॥
834. सम्मत्ताइ-गुणा णो, अण्णदव्वेसुं विहाय अप्पं दु।
पच्चक्खमोक्खमग्गो, रयणत्तयमइअ-अप्पा तं॥51॥
835. ववहाररयणत्तयं, णिगरणं च णिच्छयमोक्खमग्गस्सा।
कारणं विणा कज्जं, देक्खिज्जदि ण कत्थ वि कया वि॥52॥

अभव्यजीव के चित्त में जिनोपदेश उसका हित करने में वैसे ही समर्थ नहीं होता जैसे मिट्टी के टूटे बर्तन में स्वाति नक्षत्र में गिरी जल की बूंद मोती नहीं बनती यद्यपि वही स्वाति नक्षत्र में गिरी जल की बूंद सर्प के मुख में विष रूप हो जाती है किन्तु विशेषता यह है कि मुनिराज की वाणी, संक्लेश व दुःख को उत्पन्न करने वाली कभी नहीं होती॥45-46॥ मुनिराज ने कहा—अहो पुण्यात्मा राजन्! निराकुल, शाश्वत, कर्म से विहीन और आत्मोत्पन्न सुख प्राप्त करने में ही आत्मा का हित है॥47॥ शुद्ध-सिद्ध-नैष्कर्म अवस्था को प्राप्त करने एवं सर्व दुःख, अज्ञान व विभाव का क्षय करने का मुख्य हेतु धर्म है॥48॥ उत्तम क्षमा आदि दस प्रकार का धर्म है, अहिंसा आदि पाँच प्रकार का धर्म है एवं जीव का शुद्ध स्वभाव परम धर्म जानना चाहिए॥49॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र व्यवहार से मोक्ष का हेतु हैं एवं तीनों से सहित आत्मा निश्चय से मोक्ष का हेतु जानना चाहिए॥50॥ आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में सम्यक्त्व आदि गुण नहीं पाए जाते इसलिए रत्नत्रय युक्त आत्मा प्रत्यक्ष मोक्षमार्ग है॥51॥ व्यवहार रत्नत्रय निश्चय मोक्ष मार्ग का हेतु है और कारण के बिना कार्य कभी भी कहीं नहीं देखा जाता॥52॥

836. हिंसाइ-पावाण णव-कोडीए जावज्जीवं चागो।
महव्वदं तेहिं सह, पालेज्जा गुत्तिं समिदिं च॥53॥
837. तेरसविहचारित्तं, समणधम्मो णिव्वाण-णिगरणं दु।
विसेसेण अट्टवीस-मूलगुणा होंति समणाणं॥54॥
838. वदसमिदिंदियरोहो, छ-आवसिया तह सत्तसेसगुणा।
एदे खलु मूलगुणा, अट्टवीसा सया सव्वत्थ॥55॥
839. उत्तरगुण-चउतीसा, मूलगुणा पवड्ढेदुं पालेज्ज।
बावीस-परिसहजओ, बेदहतवो दु विसेसेणं॥56॥
840. चउसीदि-लक्खा गुणा, उत्तरोत्तरा वित्थरेण मुणिस्स।
अजोगकेवली गुणट्टाणम्मि ताणं पुण्णत्तं॥57॥
841. सीलस्स होज्ज णियमा, अट्टारस-सहस्साणि दु भेयाणि।
पारंभदि पंचमादु, सीलो अजोगे पुण्णत्तं॥58॥
842. णिगगंथ-दिक्खं विणा ण, सक्को मोक्खमग्गो भो राओ!।
सम्मत्ताइ-गुणेहिं, विणा य उम्मग्गया सव्वा॥59॥
843. णग्गो हि मोक्खमग्गो, णवरि णग्गो दु उहयपयारेणं।
मेत्तं बहिणग्गत्तं, णो समत्थं मोक्खं देदुं॥60॥

हिंसा आदि पापों का नव कोटि से आजीवन त्याग महाव्रत कहलाता है। उन महाव्रतों के साथ गुप्ति और समिति का भी पालन महाव्रतियों द्वारा किया जाता है॥53॥ तेरह प्रकार का चारित्र श्रमणधर्म है। वह श्रमणधर्म निर्वाण का कारण है। श्रमणों के विशेष रूप से अट्टाईस मूलगुण होते हैं॥54॥ पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेंद्रिय निरोध, छः आवश्यक तथा सात शेष गुण—ये सर्वदा सर्वत्र अट्टाईस मूलगुण कहे गए हैं॥55॥ बाईस परिषहजय एवं बारह तप इस प्रकार विशेष रूप से मुनियों के चौतीस उत्तर गुण होते हैं। मूल- गुणों की वृद्धि के लिए इनका पालन करना चाहिए॥56॥ विस्तार से मुनिराज के उत्तरोत्तर चौरासी लाख गुण होते हैं। उन गुणों की पूर्णता अयोगकेवली गुणस्थान में होती है॥57॥ शील के नियम से अट्टारह हजार भेद होते हैं। शील का प्रारंभ पंचम गुणस्थान से होता है एवं पूर्णता अयोग केवली गुणस्थान में होती है॥58॥ हे राजन्! निर्ग्रंथ दीक्षा के बिना मोक्षमार्ग शक्य नहीं है। सम्यक्त्व आदि गुणों के बिना सभी मार्ग-उन्मार्ग हैं॥59॥ नग्नता ही मोक्षमार्ग है। विशेषता यह है कि जीव दो प्रकार से नग्न होता है। मात्र बाह्य नग्नता मोक्ष देने में समर्थ नहीं है॥60॥

844. जहवि णव-गेविज्जेसु, उप्पत्ति-कारणं बहिणिगिणिणं वि।
सराग-संजमेणं च, विणा अंत-णिगिणिण-मसक्कं॥61॥
845. करपत्ताहारी पग-विहारी दियंबर-केसलुंचयो।
ठिदेगभुत्ती हु मुणी, रहिदो णहाण-दंत-धुवणादु॥62॥
846. दव्वरूवेण गहदे, मूलुत्तरगुणा एव जो समणो।
णवरि भावहीणो सो, दव्वलिंगी बहिणिगंगंथो॥63॥
847. बज्झ-दसविह-संगादु, रहिदो अंतर-चउद्दस-संगादु।
विसयकसायविहीणो, अहारंभ-हीणो सत्तीइ॥64॥
848. णाण ज्ञाण-तवलीणो, ववहार-णिच्छय-मग्ग-पोसगो या।
भावलिंगी दु साहू, सुद्धप्प-विसुद्ध-साहगो य॥65॥ (जुम्मं)
849. दव्वभावलिंगि-मुणी, विसया जहवि पच्चक्खणाणीणं।
सावयेहि दव्व-भावलिंगी सव्वा वंदणीया॥66॥
850. अप्पकल्लाण-हेदू, परंपराइ सावयधम्मं सुणह।
गहेज्ज सावयधम्मं, मुणिधम्मं पालिदुमसक्को॥67॥

यद्यपि भावशून्य मात्र बाह्य नग्नता नव ग्रैवेयकों में उत्पत्ति का कारण हो सकती है। सराग संयम (व्यवहार रत्नत्रय) के बिना अंतरंग निर्ग्रन्थता संभव नहीं है॥61॥ मुनिराज करपात्र में आहार लेते हैं, पैदल विहार करते हैं, यथाजात दिगंबर अवस्था में रहते हैं, केशलोंच करते हैं, एक स्थान पर खड़े होकर दिन में एक ही बार आहार लेते हैं और स्नान व दंतधावन से रहित होते हैं॥62॥ जो श्रमण द्रव्य रूप से ही मूल व उत्तर गुणों को धारण करते हैं किन्तु भाव से हीन हैं वे द्रव्यलिंगी बाह्य निर्ग्रन्थ हैं॥63॥ शक्ति के अनुसार बाह्य दस प्रकार के परिग्रह और अंतरंग चौदह प्रकार के परिग्रह से जो रहित हैं, विषय-कषाय से हीन एवं पाप व आरंभ से रहित हैं, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन हैं, व्यवहार व निश्चय मार्ग के पोषक हैं, शुद्धात्म विशुद्ध साधक हैं वे भावलिंगी साधु हैं॥64-65॥ यद्यपि द्रव्यलिंगी साधु और भावलिंगी साधु प्रत्यक्षज्ञानियों का विषय है। श्रावकों के द्वारा द्रव्यलिंगी व भावलिंगी सभी साधु वंदनीय हैं॥66॥ यदि श्रमणधर्म पालन करने में अशक्य हो तो श्रावकधर्म का पालन करना चाहिए; वह परंपरा से आत्मकल्याण का हेतु है। अब श्रावकधर्म सुनो॥67॥

851. थूल-पाव-चागादो, अहिंसाइ-पंच-अणुव्वदं होज्ज।
तेण सह तिगुणव्वदं, चउसिक्खावदमप्पहिदाय॥68॥
852. सावय - सावियाहिं च, एयारस-दंसण -पहुदी - पडिमा।
सत्तीइ पालिदव्वा, भव-सिव-सुहकारगा कमसो॥69॥
853. तसहिंसादु विरत्तो, थावरहिंसादो अविरत्तादो।
अणुव्वदी जाणिज्जदि, थूलपावविरत्तादो सय॥70॥
854. दिव्वदं देसवदं च, अणट्टदंडविरदी तिगुणव्वदं।
अणुव्वदाणं गुणेसु, समट्टकारणं विड्डीए॥71॥
855. सामाइयं पोसहो, अदिहिसंविभागो सल्लेहणा या
वेज्जावच्चं भोगुवभोगपरिमाणं केहिं वा॥72॥
856. चउसिक्खावदाइं दु, देति सिक्खं पालिदुं मुणिधम्मं।
पसिक्खणं चिय ताइं, हवेदुं णिग्गंथ-समणो दु॥73॥ (जुम्मं)
857. दंसण - वय - सामाइय - पोसहा सचित्त-णिसिभुत्तिचागो।
दिअमेहुणचागो वा, बंभचेरमारंभ-चागो॥74॥
858. परिग्गहचागो तहा, अणुमदि-चागो उद्धिच्चागो या
एयारस-पडिमाजुद-खुल्लगो खलु संविदिदव्वो॥75॥ (जुम्मं)

स्थूल पापों का त्याग करने से अहिंसा आदि पाँच अणुव्रत होते हैं। आत्महित के लिए उन अणुव्रतों के साथ तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रत भी होते हैं॥68॥ श्रावक-श्राविकाओं को शक्ति के अनुसार दर्शनप्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करना चाहिए। वह क्रमशः संसार सुख व मोक्ष सुख का कारण हैं॥69॥ जो त्रस-हिंसा से विरक्त है किन्तु स्थावरहिंसा से विरक्त नहीं है वह स्थूल पाप से विरक्त होने से अणुव्रती जाना जाता है॥70॥ दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदंडविरति व्रत ये तीन गुणव्रत जानने चाहिए। ये अणुव्रतों के गुणों में वृद्धि के लिए समर्थ कारण हैं॥71॥ सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत हैं। किन्हीं के द्वारा वैय्यावृत्य वा भोगोपभोग-परिमाण भी स्वीकार किए गए हैं। ये चार शिक्षाव्रत निर्ग्रथ श्रमण होने के लिए मुनिधर्म को पालन करने की शिक्षा वा प्रशिक्षण देते हैं॥72-73॥ दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्तत्याग प्रतिमा, रात्रिभुक्ति त्याग वा दिवा मैथुनत्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्यप्रतिमा, आरंभत्याग प्रतिमा, परिग्रहत्याग प्रतिमा, अनुमतित्याग व उद्धिष्टत्याग प्रतिमा—इस प्रकार ग्यारह प्रतिमाएँ होती हैं। ग्यारह प्रतिमाओं से युक्त क्षुल्लक जानना चाहिए॥74-75॥

860. उक्कट्टो खुड्डादो, उत्तरीय-पड-रहिदो करपत्ती।
एलगो दु अणुव्वदी, महव्वदी णेवुवयारेण॥77॥
861. अरिहादी परमेट्टी, ताणं चेइय-चेइयालयाइं।
तव-सिव-भूमी णियमा, पुज्जणीया सहिट्ठीहिं॥78॥
862. अज्जावग्गा णेया, महव्वदी सत्थेण उवयारेण।
खुड्डया खुड्डिया तह, देसव्वदी पडिमाधारी॥79॥
863. सावय-सहिट्ठी जो, गहदि सया सेट्ट-जिणधम्मपक्खं।
पक्खिगो सावयो सो, णेयो अत्तकहिद-समयेहि॥80॥
864. णिट्ठो जिणधम्मे सत्तीइ पालदि सावय-सयायारं।
थूलाघविसणहीणो, णेट्ठिगो मूलगुणजुत्तो दु॥81॥
865. सगसत्तिं अणुगूहिय, पालदि जो दंसणाइपडिमाओ।
उत्तम - मज्झिम - जहण्ण - साहग - सावया देसवदी॥82॥
866. दंसणादो छट्ठमं पडिमाधारगंतं जहण्णा तह।
सत्तमादो दसंतं, मज्झिम-सावया णादव्वा॥83॥

क्षुल्लक के पास संयमोपकरण, शौचोपकरण, एक कौपीन और एक उत्तरीय वस्त्र होता है। वह देशव्रती, भद्र और सरल होता है॥76॥ ऐलक, क्षुल्लक से उत्कृष्ट होते हैं, अणुव्रती, उत्तरीय वस्त्र से रहित और करपात्र में भोजन करने वाले होते हैं। वे उपचार से भी महाव्रती नहीं होते॥77॥ अरिहंत आदि पाँच परमेष्ठी, उनके चैत्य व चैत्यालय, उनकी तपभूमि व मोक्षभूमि नियम से सम्यग्दृष्टियों के द्वारा पूज्यनीय है॥78॥ जिनागम के अनुसार आर्यिकाएँ उपचार से महाव्रती जाननी चाहिए तथा क्षुल्लक-क्षुल्लिका व प्रतिमाधारी श्रावक-श्राविका देशव्रती जानने चाहिए॥79॥ जो सम्यग्दृष्टि श्रावक श्रेष्ठ जिनधर्म के पक्ष को ग्रहण करता है, श्री जिनेंद्रदेव द्वारा कथित शास्त्रों से उसे पाक्षिक श्रावक जानना चाहिए॥80॥ जो जिनधर्म में निष्ठावान् है, शक्ति के अनुसार श्रावक के समीचीन आचार का पालन करता है, स्थूल पाँच पाप व व्यसनों से हीन है व मूलगुणों से युक्त है वह नैष्ठिक श्रावक जानना चाहिए॥81॥ जो अपनी शक्ति को न छिपाते हुए दर्शन प्रतिमा आदि प्रतिमाओं का पालन करता है वह उत्तम, मध्यम व जघन्य देशव्रती साधक श्रावक जानने चाहिए॥82॥ दर्शन प्रतिमा से लेकर छठवीं प्रतिमा का धारक जघन्य श्रावक कहलाता है, सप्तम प्रतिमा से दशवीं प्रतिमा वाले तक मध्यम श्रावक जानना चाहिए॥83॥

867. खुड्डया खुड्डिया वा, परम - सावय - साहगा एलगा दु।
सम्मत्त-रहिदा अण्ण-कुलिंगी मोक्खमग्गी णेव॥84॥
868. सगंथा सुगुरू णो, मण्णंते कया वि सम्माइट्ठी।
छउमत्था ण परमट्ट-देवो कुवयणं णो जिणगी॥85॥
869. एयंतवाददूसिद - णिरवेक्ख - हिंसवयण - पोसगो जो।
अणुजोग - विद्धंसगो, णियमेण मिच्छाइट्ठी सो॥86॥
870. कुदेव-कुधम्म-कुसत्थ-कुलिंगि-जणा मणेदि परमेट्ठीव।
जो सो णिच्छयेणं दु, सिरोमणी मिच्छाइट्ठीसु॥87॥
871. पालेज्ज सगसत्तीइ, धम्मं लहिदुं मोक्खं भो राओ!।
धम्मेणं विणा को वि, णेव सस्सदसुहं समत्थो॥88॥

चौपाई छंद

872. सुपुण्णपावफलं पस्सित्ता, बहुसोक्खं दुक्खं भुजित्ता।
इह लोए अह पाव-विरत्ती, सुहदायग-पुण्णे अणुरत्ती॥89॥
873. जाणेज्जा सुजणाण विवेगो, भुजदि कम्मफलं जं एगो।
को वि विवागम्मि णो सहाओ, रयणत्तयं हि मोक्ख-उवाओ॥90॥ (जुम्मं)

क्षुल्लक, क्षुल्लिका व ऐलक ये उत्कृष्ट श्रावक व साधक जानने चाहिए। सम्यग्दर्शन से रहित अन्य कुलिंगी कभी भी मोक्षमार्गी नहीं होते॥84॥ सम्यग्दृष्टि जीव सग्रंथों (धन, वस्त्र, स्त्री, अस्त्र-शस्त्र आदि से सहित) को कभी भी सुगुरु नहीं मानते। छद्मस्थ जीवों को परमार्थ देव नहीं मानते एवं कुवचनों को जिनवाणी नहीं मानते॥85॥ जो एकांतवाद से दूषित, निरपेक्ष, हिंसक वचनों का पोषक व अनुयोगों का विध्वंसक है वह नियम से मिथ्यादृष्टि है॥86॥ जो व्यक्ति कुदेव, कुधर्म, कुशास्त्र व कुलिंगीजनों को निश्चय से परमेष्ठी के समान मानता है वह मिथ्यादृष्टियों में शिरोमणि है॥87॥ हे राजन्! मोक्ष प्राप्ति के लिए अपनी शक्ति के अनुसार धर्म का पालन करना चाहिए। धर्म के बिना कोई भी शाश्वत सुख प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता॥88॥ इस लोक में पुण्य व पाप के फल को देखकर उनके फलस्वरूप बहुत सुख व दुःख को भोगकर पापों से विरक्ति एवं सुखदायक पुण्य में अनुरक्ति ही सज्जनों का विवेक जानना चाहिए क्योंकि जीव अकेला ही कर्मों के फल को भोगता है। विपाक के समय कोई भी जीव का सहायक नहीं होता। अतः अहो भव्य जीव! रत्नत्रय ही मोक्ष का उपाय है॥89-90॥

हरिणी छंद

874. सयल-सुजणा णिच्चं कंखंति पुण्णफलं वरं,
णवरि सुहदं कज्जं पुण्णं विणा दु लहंति णो।
सुतरिदुमिदं संसारं सुक्किदं तरिणी व तं,
असुह-किरिया दुक्खं देज्जा विमुंचसु हंदि तं॥91॥
875. चउगइजुदे लोए णाणी सया अवयज्जदे,
असुहकिरिया दुक्खं तिव्वं जणाण पदायदे।
सुरणरपसू इट्ठं वत्थुं लहंति सुजोगदो,
भणदि सुगणी पावक्खीणं कुरु सुकिदं तहा॥92॥

सभी लोग नित्य ही उत्कृष्ट पुण्य फल की आकांक्षा करते हैं। जबकि विशेषता यह है कि वह पुण्य का फल सुखद पुण्य कार्य के बिना प्राप्त नहीं करते। इस संसार को पार करने के लिए वह श्रेष्ठ पुण्य कार्य नौका के समान है। अशुभ क्रिया निश्चय से दुःख ही देती है अतः उसे छोड़ देना चाहिए॥91॥ चार गतियों से युक्त इस लोक में ज्ञानी सदैव देखता है कि अशुभ क्रिया लोगों को तीव्र दुःख देती है देव, मनुष्य वा तिर्यच सभी सुयोग (दैवयोग) से अथवा मन, वचन, काय रूप समीचीन योग से इष्ट वस्तु को प्राप्त करते हैं अतः श्रेष्ठ गणधर कहते हैं कि हे भव्य जीव! पाप का क्षय करो और सदैव पुण्य करो॥92॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य की वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में राजा अशोक द्वारा मुनि वंदना व मुनि के उपदेश का
वर्णन करने वाला सप्तम नंद पूर्ण हुआ॥

अट्टम-णंदो

876. असोग-अणुद्धयेणं, आयण्णदो मुणिराय-उवएसो।
बद्धकरंजलि-जुदेण, तदा पुच्छिदं गुरुं णमित्तु॥1॥
877. केण कारणेण णेव, संविददे रोहिणी दुहं सोगं।
तहा पुण्णवंतो हं, णरपुंगवो णिव-संतुट्ठो॥2॥
878. केण कारणेण लोयवालो सुरपूजिदो कंकेलीइ।
अम्हेहि काणि काणि सु-पुण्णकज्जाणि करिदाणि चिय॥3॥ (तिअं)
879. पच्चक्खणाणबलेण, दयाजुदेण पडिवक्किदं मुणिणा।
परोवयार-सहावो, पइडीए हि महापुरिसाण॥4॥
880. दायित्तु महापुरिसा, साहुणो अल्हादिदा पसण्णा या
फलाण पुप्फ-पत्ताण, दायग-रुक्खोव्व अहवा सरिदा व॥5॥
881. जो को वि दूसदे जिण-धम्मं वीदरायं च णिग्गंथं।
जिणवयणं सो मिच्छाइट्ठी असुहाउ-बंधगो दु॥6॥
882. जिणणिंदगो य पावी, कुलणासगो जिणधम्मणिंदगो दु।
साहु-णिंदगो दुट्ठो, जिणवयण-णिंदगो मूढो य॥7॥

भद्र परिणामी, विनयशील उस राजा अशोक ने मुनिराज का उपदेश सुना पुनः हाथ जोड़कर गुरुराज को प्रणाम कर पूछा—हे भगवन्! रोहिणी किस कारण से दुःख व शोक को नहीं जानती तथा किस कारण से मैं नरपुंगव, पुण्यवान्, श्रेष्ठ व संतुष्ट राजा हुआ हूँ? किस कारण लोकपाल अशोक के वृक्ष पर देवों द्वारा पूजित हुआ। हमारे द्वारा कौन-कौन से पुण्यकार्य किए गये?॥1-3॥ तब प्रत्यक्ष ज्ञान के बल से दया से युक्त मुनिराज बताने लगे। सही ही तो है प्रकृति (स्वभाव) से ही महापुरुषों का परोपकारी स्वभाव होता है॥4॥ महापुरुष- साधुपुरुष देकर ही आह्लादित और प्रसन्न होते हैं। जैसे वृक्ष फल, पुष्प व पत्तों को देते हैं एवं नदी सभी को जल प्रदान करती है वैसे ही महापुरुष सभी का उपकार करते हैं॥5॥ मुनिराज कहते हैं हे राजन्! जो कोई भी जिनधर्म, वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनवचनों की निंदा करता है वह मिथ्यादृष्टि जीव अशुभ आयु का बंध करता है॥6॥ जिनेंद्रप्रभु की निंदा करने वाला पापी, जिनधर्म की निंदा करने वाला कुल का नाशक, साधु की निंदा करने वाला दुष्ट और जिनवचनों की निंदा करने वाला मूर्ख होता है॥7॥

883. ते सव्वा पाविट्टा, तिक्कमिच्छत्तभावजुत्तादो या
तिक्ककसायत्तादो, जाणेज्ज भावी णेरइया॥8॥
884. जायणया खलु णिंदा, अप्पघादो महापावो तत्तो।
अइपाविट्टो जिणसुद-णिग्गंथ-सुधम्म-णिंदगो य॥9॥
885. कण्णा-विक्कई भादु-भगिणी-पिदरादी पडि छलजुदो जो।
तस्स दुक्खं दुग्गदिं, णेव को वि वारिदुं सक्को॥10॥
886. सो ण पाउणदि पुण्णं, तस्स फलादो भव-सिव-सुहं णेव।
जस्स पुरिसस्स चित्ते, छलं वंचणा सयायाले॥11॥
887. जिणिंद-पूयाए सिरि-णिग्गंथ-गुरु-चरण-सेवाए तह।
जिणधम्माराहणाइ, तित्थवंदणाए जवेणं॥12॥
888. अणुव्वद-महव्वदेहि, रोहिणी-आइ-सुहव्वदेहिं पाणी।
सीलुववासेहिं तह, पाउणंते अचिंतपुण्णं॥13॥ (जुम्मं)
889. अइपुण्णवंत्तादु, रोहिणी दुहं सोगं जाणदि णो।
राणीए कुव्विदाणि, पुण्णकज्जाणि थिरचित्तेण॥14॥
890. अस्स जंबुस्स भरदे, हत्थिणायपुरो रम्मो मणुण्णो।
तत्थ राय-वसुवालो, णायप्पियो पयावच्छलो॥15॥

वे सभी पापिष्ठ जीव तीव्र मिथ्यात्व भाव से युक्त होने से और तीव्र कषायी होने से भावी नारकी जानने चाहिए॥8॥ याचना करना निंद्य है, आत्मघात महापाप है। उससे भी अधिक अति पापिष्ठ व निंद्य जिनश्रुत, निर्ग्रन्थ मुनि व धर्मियों की निंदा करने वाला होता है॥9॥ जो कन्या का विक्रय करता है, भाई, बहन, माता व पिता आदि के प्रति छल से युक्त है उसके दुःख व दुर्गति का निवारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है॥10॥ जिस पुरुष के चित्त में सर्वथा छल-वंचना रहती है उसके फलस्वरूप जीव संसार सुख व मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं करता और पुण्य भी प्राप्त नहीं करता॥11॥ जिनेंद्रपूजा, श्री निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरण की सेवा, जिनधर्म की आराधना, तीर्थवंदना, जप, अणुव्रत, महाव्रत, रोहिणी आदि शुभ व्रत, शील व उपवासों से जीव अचिंत्य पुण्य प्राप्त करते हैं॥12-13॥ अति पुण्यवती होने से रोहिणी दुःख व शोक को नहीं जानती। रानी ने पूर्वभव में स्थिर चित्त होकर कई पुण्य कार्य किये॥14॥ इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में रम्य व मनोज्ञ हस्तिनागपुर नगरी थी। वहाँ न्यायप्रिय व प्रजावत्सल राजा वसुपाल राज्य किया करते थे॥15॥

891. तस्स धम्मणुचारिणी, वसुमदि-महाराणी सीलवंता।
गुणपुंजा कारुणिया, महरभासिया कंतिजुदा॥16॥
892. धणमित्त-णयरसेट्टी, राणीए भादू तम्मि णयरम्मि।
असीमविहव-जुत्तस्स, तस्स पिय-भज्जा धणमित्ता॥17॥
893. ताण पाविट्ट-पुत्ती, पूदीगंधा अच्चंतकुरूवा।
महादुग्गंधजुत्ता, पंडु-दुण्णिअ-मिद-साणोव्व दु॥18॥
894. भल्लूव ताइ केसा, वा करिणी-पुंछ-केसा व विरला।
कण्णं किण्हसिप्पीव, ओट्टो किण्हजंबूफलं व॥19॥
895. ताइ णासिगा सददं, सवंत-दुग्गंधिद-सिलिम्ह-जुत्ता।
मुहं लाला-संजुदं, णयणं किण्हमकोयफलं व॥20॥
896. कवोलो अवसण्णो य, विट्ठाव पीदवक्कदंतावली।
सिण्ण-कीडजुद-दुग्गंधिदा ताइ पूदीगंधाइ॥21॥
897. विजज्जर-अंबफलं व, ताइ उरोरुहो उदरं तुंबीव।
डज्झिद-कट्टं व सुक्क-हत्थं अंसो विंताओव्व॥22॥

उनकी धर्म का अनुसरण करने वाली महारानी वसुमति थी। वह शीलवती, गुणपुंजा, करुणायुक्त, मधुरभाषिणी और कांति से युक्त थी॥16॥ उसी नगर में रानी का भाई धनमित्र रहा करता था वह उस नगर का श्रेष्ठी था। उस असीम वैभव से युक्त धनमित्र की धनमित्रा नामक प्रिय भार्या थी॥17॥ उनकी पूतीगंधा नामक पापिष्ठ पुत्री थी जो अत्यंत कुरूपा व दुर्गंध युक्त थी। कुष्ठरोग से पीड़ित मृत कुत्ते के शरीर की तरह से उसके शरीर में से दुर्गंध आती थी॥18॥ उस पूतीगंधा के केश भालू के केश के समान थे एवं हथिनी की पूँछ के केशों के समान विरल थे। उसके कान काले सीप की तरह व ओंठ काले जामुन के समान थे॥19॥ उसकी नाक से निरंतर दुर्गंधित श्लेष्मा बहता रहता था, मुख से लार बहती रहती थी, आँखें काले मकोय फल के समान थीं॥20॥ उसके गाल वृद्धा स्त्री के समान पिचके हुए थे। उस पूतीगंधा के पीले दाँतों की पंक्ति वक्र थी। उसके दाँत सड़े हुए, कीड़े लगे हुए दुर्गंधित थे॥21॥ उसके उरोज सड़े हुए आम्र फल के समान व पेट कट्टू के समान था। उसके सूखे हाथ जली लकड़ी के समान व कंधे बैंगन के समान थे॥22॥

898. ताड पदं अवदलिदं, रत्तरंजिदं वणजुदं मच्चिअं।
मच्छिगा ठिदा हु जत्थ, करो तह चिक्कणसंजुत्तो॥23॥

899. कलमल-पहावेणं दु, को वि णो णिवसीअ तस्स समीवे।
मादु-पिदू वि णेव तं, समत्था दुग्गंधं सोढुं॥24॥



900. जहवि पुण्णोदयादो, धणमित्तो णिरोगी विहववंतो।
तस्स रूवमदि-भज्जा, चित्तहारी धम्मजुत्ता॥25॥

901. वरं पुव्वपावादो, एरिसा दुग्गंधिद-सुदा जादा।
धम्मणिंदाफलेणं वयसीले दोसपहावेण॥26॥

उसके पैर कटे हुए, रक्त से सने हुए, घावयुक्त व मलयुक्त थे जिस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं एवं हथेली चिकड़ी हुई थी॥23॥ उसकी देह दुर्गन्ध के प्रभाव से कोई भी उसके समीप निवास नहीं कर सकता था; यहाँ तक कि माता-पिता भी उस दुर्गन्ध को सहन करने में समर्थ नहीं थे॥24॥ यद्यपि पुण्य के उदय से धनमित्र निरोगी व वैभव से युक्त था और उसकी भार्या रूपवती, चित्तहारिणी व समीचीन धर्म से युक्त थी॥25॥ किन्तु पूर्व पाप से ऐसी दुर्गन्धित पुत्री का जन्म हुआ। धर्म की निंदा वा व्रत-शील में दोष के प्रभाव अथवा दानादि पुण्य कार्यों में विघ्न करके अंतराय से अथवा हिंसा आदि के प्रभाव से उस सेठ ने ऐसी अमनोज्ञ-पुत्री को प्राप्त किया॥26-27॥

902. विग्धं कडुअ दाणाइ-पुण्णकज्जेसुं अंतरायेणं।
हिंसाइ-पहावेणं, लहीअ अमणुण्ण-पुत्तिं वा॥27॥ (जुम्मं)
903. णिसिभोयणफलेण वा, धम्मसहाए असंति-करणेणं।
जिणवयण-अवमाणेण, वा धम्मीणं पावीअ तं॥28॥
904. धम्मसिक्खाणिमित्तं, भवतणभोयविरत्तिकारणं सा।
तहवि सगपुत्तीए, विवाहस्स चिंताउरो सो॥29॥
905. तम्मि णयरम्मि सेट्ठी, वसुमित्तो लोयप्पियो सुधम्मी॥
सेट्ठो य सयायारी, गुणगाहगो करुणाजुत्तो॥30॥
906. तस्स भज्जा वसुमदी, सुगुणपुंजा अणुव्वदा भदंता।
सुधम्मवच्छला परम-विदुसी विकोविया विकिट्ठा॥31॥
907. णवरि पुव्वपावादो, ताइ पुत्तो सुंदरो सिरिसेणो।
कलाजुद-रूववंतो, कुसंगति-कारणेणं तहवि॥32॥
908. वसण-संजुदं होच्चा, मह-लंपडो हिंसाइ-पाव-जुदो।
दुच्चारो दुत्तुंडो, पाडच्चरो जूअकेलीइ॥33॥ (जुम्मं)
909. जइ पराइदो हु तदा, पम्हुसीअ विजिदो तो खलु करीअ।
मज्जपाणं च वेस्सा-गमण-मिच्चाइ-दुक्कम्माणि॥34॥

अथवा रात्रि-भोजन के फलस्वरूप वा धर्म सभा में अशांति करने से अथवा जिनवचन या धर्मियों के अपमान से ऐसी पुत्री को प्राप्त किया॥28॥ यद्यपि वह पुत्री धर्म व शिक्षा का निमित्त तथा संसार, शरीर, भोगों की विरक्ति का कारण थी तथापि वह सेठ अपनी पुत्री के विवाह के लिए चिंतातुर था॥29॥ उसी नगर में वसुमित्र नामक श्रेष्ठी रहा करता था वह लोकप्रिय, सुधर्मी, श्रेष्ठ, सदाचारी, गुणग्राहक और करुणावान् था॥30॥ उसकी वसुमति नामक स्त्री थी जो श्रेष्ठ गुणों की पुंज, अणुव्रती, सुखकारक, सुधर्म वत्सला, परम विदुषी, कुशला व उत्कृष्ट थी॥31॥ उसके श्रीषेण नामक सुंदर पुत्र था। वह यद्यपि कलाओं से युक्त व रूपवान् था तथापि कुसंगति के कारण व्यसन युक्त होकर हिंसादि पापों से युक्त हो गया। वह महालंपट, दुराचारी, दुर्मुख तथा द्यूतक्रीड़ा में आसक्त हो गया॥32-33॥ यदि द्यूतक्रीड़ा में पराजित हो जाता तो चोरी करता था और यदि जीत जाता तो मद्यपान और वेश्यागमन इत्यादि दुष्कर्म किया करता था॥34॥

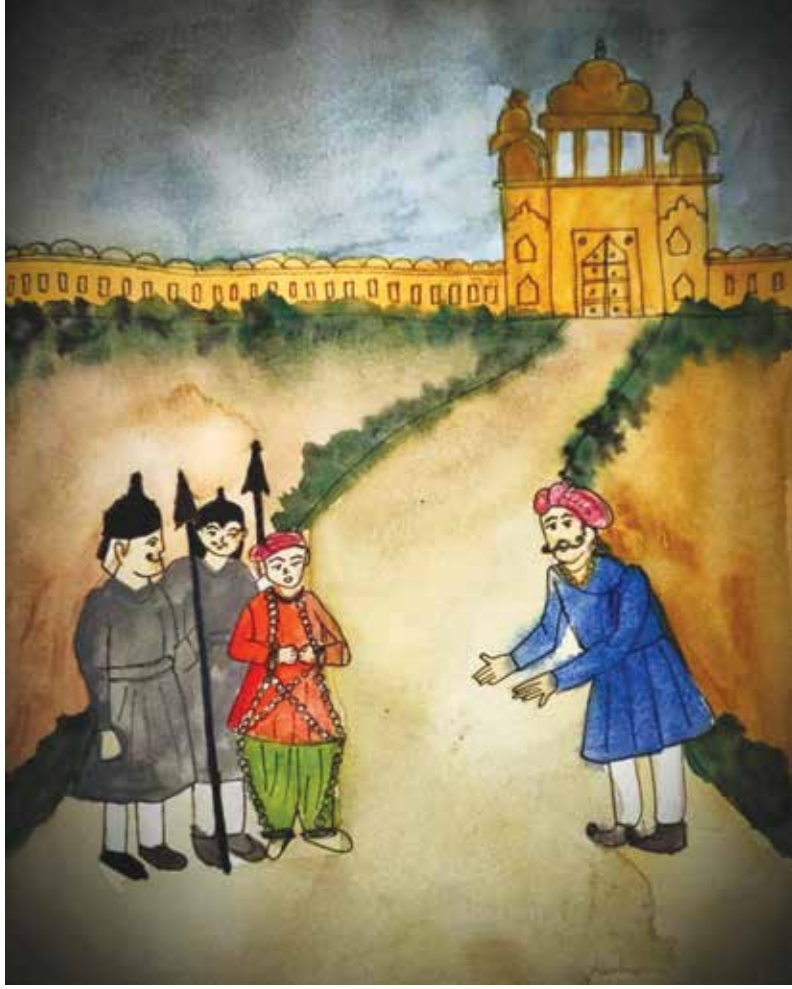
910. इत्थं एयदिवसम्मि, होज्ज पिदरसंपत्ती णिस्सेसा।
पावोदयादो विहव - संपत्ति - धणादी असेसा॥35॥
911. पिदराण अइ-पेम्मेण, होज्ज अणुसासण-अभावेणं सो।
सच्छंद-पवत्ति-जुदो, महावसणजुदो पाविट्ठो॥36॥
912. सग-सीसे णिरंकुसो, करिणो धारेदि मलं धूलिं वा।
णिरंकुस - सुदो सिस्सो, वड्ढदि दुग्गइ - दुक्ख - मग्गे॥37॥
913. सुगदीए सुहस्स तं, सुसक्काराय य सम्मजीवणाय।
अणुसासणं करेज्जा, सिस्स-सुद-अण्णपियजणेसु वा॥38॥
914. बंधणजुदो पदंगो, समत्थो दु उट्ठीदुं आयासे।
बंधणरहिद-पदंगो, पडदि कम्मि वि कूवे गड्ढे॥39॥
915. बंधणजुद-पासाणो, उवउंजिज्जदि भवणाइ-सिरणम्मि।
बंधणहीणो य सयं, उल्लुट्ठदि दूहवदि अण्णा॥40॥
916. अणुसासणबलेणं हि, सक्कारिदपासाणो पहुमुत्ती।
अणुसासण-विहीणो दु, चुण्णं होज्ज पददलणादो॥41॥

इस प्रकार एक दिन उसके पिता की संपत्ति निःशेष हो गई। सही भी है पाप के उदय से वैभव-धन-संपत्ति आदि नष्ट हो जाती है॥35॥ माता-पिता के अति प्रेम से एवं अनुशासन के अभाव से वह स्वच्छंद प्रवृत्ति से युक्त, महाव्यसन से संयुक्त एवं पापिष्ठ हो गया था॥36॥ जिस प्रकार निरंकुश हाथी अपने सिर पर मल वा धूलि डालता है उसी प्रकार निरंकुश पुत्र वा शिष्य दुर्गति व दुःख के मार्ग में बढ़ता है॥37॥ अतः सुगति, सुख, सुसंस्कार और सम्यक् जीवन के लिए शिष्य, पुत्र व अन्य प्रियजनों पर अनुशासन करना चाहिए॥38॥ देखो, बंधन सहित पतंग आकाश में उन्नत होने में समर्थ होती है जबकि बंधन रहित पतंग किसी कूप या गड्ढे में जा गिरती है॥39॥ बंधन युक्त पाषाण ही भवन आदि के निर्माण में उपयोग में लाया जाता है जबकि बंधन हीन पाषाण स्वयं नष्ट होता है एवं दूसरों को भी दुःख देता है॥40॥ अनुशासन के बल से संस्कारित पाषाण भगवान् की मूर्ति बन जाता है जबकि अनुशासन विहीन पाषाण पैरों के नीचे रौंदे जाने से चूरा हो जाता है॥41॥

917. सु-गज्ज-पज्ज-रयणा य, होज्ज अणुसासणबद्धसद्देहिं।
अणुसासण-हीणा ते, दुहदा सरोव्व तह अभद्दा॥42॥
918. वड्ढंति बद्धकेसा, सुंदरिमा णारीइ सहस्सगुणा।
पयल्ल-केसवंता य, तदा वंतरिणीव भासेदि॥43॥
919. तं पत्तेयं पिदरं, सुसक्कारं खलु सगसंताणाण।
धम्ममज्जादाए य, सिक्खावेज्जा अणुसासणं सया ॥44॥
920. अणुसासणेणं विणा, को वि ण लहिदुं सक्को परमपदं।
पावेदि सेट्ठपिदरं, सुसंताणं पुव्वपुण्णेण॥45॥
921. सिरिसेणो पुण्णे सदि, अवि णिमज्जीअ चिय पावकूवम्मि।
सम्मपुरिसट्ठहीणो, लहदि दुहं दुग्गदिं दोत्थं॥46॥
922. सिरिसेणो पराइदो, जूअकेलीइ एयदा वच्चीअ।
तिण्णस्स य अंधयार - संजुत्त - मज्झ - सव्वरीए॥47॥
923. कुविद-दंडपासिग-जमदंडेण सो पाडच्चरो धरिदो।
बंधणबद्धो करिदो, अणंतरं अयस-संकलेण॥48॥

अनुशासन बद्ध शब्दों से ही श्रेष्ठ गद्य व पद्य रचना होती है जबकि अनुशासन विहीन वे शब्द बाण के समान कष्टकारी एवं अभद्र हो जाते हैं॥42॥ बद्धकेश नारी का सौंदर्य हजार गुणा बढ़ा देते हैं जबकि बिखरे-फैले हुए केश से युक्त नारी उस समय व्यंतरिणी के समान प्रतिभासित होती है॥43॥ इसलिए प्रत्येक माता-पिता को सदा अपनी संतानों को धर्म व मर्यादा के लिए सुसंस्कार व अनुशासन सिखाना चाहिए॥44॥ अनुशासन के बिना कोई भी परम पद प्राप्त करने में समर्थ नहीं है। श्रेष्ठ माता-पिता पूर्व पुण्य से ही सुसंतान को प्राप्त करते हैं॥45॥ पुण्य होने पर भी श्रीषेण पापकूप में डूब गया था। यथार्थ में सम्यक् पुरुषार्थ से हीन व्यक्ति दुःख, दुर्गति व दरिद्रता को प्राप्त करता है॥46॥ एक दिन वह श्रीषेण जूए में हार गया। पुनः अंधकार युक्त मध्यरात्रि में चोरी के लिए गया॥47॥ उसी समय यमदंड कोतवाल ने क्रोधित होकर उस चोर को पकड़ लिया अनंतर लोहे की बेड़ियों से उसे बांध लिया॥48॥

924. रायसुदरबारं पडि, पच्छंदंतो चिय मुखमग्गाम्मि।
धणमित्तेण पस्सिदो, बंधणबद्धो सिरिसेणो दु॥49॥



925. णियडे पच्चिदूण धणमित्तेणं कहिदं भो सिरिसेणो!।
संगच्छसि मे पुत्तिं, जदि कराविस्सामि मुत्तो य॥50॥

926. रायदंडादो मुत्तकंखाए अंगीकरिदं तेणं।
सेट्टे णिवेदणे चिय, तदा णिवेण करिदो मुक्को॥51॥

जब वह कोतवाल चोर को राजमहल की ओर नगर के मुख्य मार्ग से ले जा रहा था तब उस बंधन में बंधे हुए श्रीषेण को धनमित्र ने देख लिया॥49॥ तब उसके निकट जाकर सेठ धनमित्र ने कहा कि हे श्रीषेण! यदि तुम मेरी पुत्री को स्वीकार करो तो मैं तुम्हें बंधन से मुक्त करा दूँगा॥50॥ राजदंड से मुक्त होने की इच्छा से उसने सेठ की बात को स्वीकार कर लिया। तब सेठ के निवेदन पर राजा ने उसे मुक्त कर दिया था॥51॥

927. परिणयणं कराविदं, पिदुणा सिरिसेण-पूदिगंधाणं।
सगपाण-रक्खाए दु, मणुओ किं किं ण कुव्वेदि?॥52॥
928. ण पहुच्चीअ विवाहे, दुग्गंधं सोढु-मसमत्थत्तादु।
तदा को वि णयर-जणा, पुरजणा उदाहु संबंधी॥53॥
929. ठाविदुमेगरत्ती वि, ताए सह सिरिसेणो असक्को दु।
दुग्गंधं सोढुं णो, समत्थो तम्हा पलायीअ॥54॥
930. सगपइदुब्भावादो, दुम्मणा दुक्खिदा पूदिगंधा या।
पुणो पुणो य कुच्छीअ, सगपुव्वपावकम्माइं दु॥55॥
931. जीवो पुण्णोदयम्मि, गुंजिदूण बंधदि पावकम्माणि।
तदा णेव विआणेदि, इमाणं कम्म-फलाणि काणि॥56॥
932. पूदिगंधाइ दुहेण, जविदं णियजीवणं खिसिदूणं।
पच्चापडीअ य पिदर-गेहं दु अण्णासयो णत्थि॥57॥
933. णारीए ति-आसयो, कोमारे पिदु-गेहो विवाहस्स।
पच्छा पदिगेहो पदि-हीणाइ पुत्तेगासयो य॥58॥

कहे अनुसार पिता धनमित्र ने पूतीगंधा का विवाह श्रीषेण के साथ करा दिया। सही ही है अपने प्राणों की रक्षा के लिए मनुष्य क्या-क्या नहीं करता? अर्थात् सब उपाय करता है॥52॥ पूतीगंधा के देह की दुर्गंध को सहन करने में असमर्थ होने से तब कोई भी नगरवासी, पुरजन अथवा अन्य संबंधीजन उसके विवाह में नहीं पहुँचे॥53॥ श्रीषेण एक रात्रि भी उसके साथ ठहरने में असमर्थ था। वह उसकी दुर्गंध सहने में समर्थ नहीं था अतः वहाँ से भाग गया॥54॥ अपने पति के वियोग से पूतीगंधा उदास व बहुत दुःखी हुई। वह पुनः पुनः अपने पूर्व पाप कर्मों की निन्दा करने लगी॥55॥ अहो! जीव पुण्य के उदय में हँसकर पाप कर्मों का बंध करता है वह नहीं जानता कि इन कर्मों का फल क्या होगा?॥56॥ पूतीगंधा का अन्य कोई आश्रय नहीं था अतः वह लौटकर पिता के घर ही आ गई। वह अपने जीवन की निन्दा करते हुए दुःखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगी॥57॥ नारी के तीन आश्रय होते हैं, कौमार्य अवस्था में अर्थात् विवाह से पूर्व पिता का घर, विवाह के पश्चात् पति का घर और पति से रहित होने पर पुत्र ही एक आश्रय होता है॥58॥

934. जणग-सुपुत्त-पदीदो, धम्मो णिच्चं विहीण-णारीए।
आसयभूदो य देव-गुरूण पदो जिणवयणं वा॥59॥
935. जम्हा पूदीगंधा, पदि-पुत्त-विहीणा तक्काले तां
पिदुगेहं सरणं चिय, जिणधम्मो सया सव्वाण॥60॥
936. धम्मं विणा ण कस्स वि, को वि रक्खगो सहायगासया या
तं पत्तेयं णरेण, संचिणिदव्वो सया धम्मो॥61॥
937. महापुण्णोदये वा, तिव्वपावकम्मोदये जीवाण।
जिणसुदमुणी धम्मं च, एव सरणं सव्वत्थ सया॥62॥
938. णाणी अण्णाणी वा, दुही सुही य जो को वि उविक्खेदि।
धम्मं धम्मायदणं, लहदि सो अइदुक्खं णियमा॥63॥
939. भो भव्वो! तव बुद्धी, सेट्ठा हिदाहिदणिण्णये सक्का।
जदि तो उस्सिक्केज्जा, णिंद-महापाव-दुक्कम्मं॥64॥
940. एयदा तम्मि णयरे, सुव्वदा अज्जिगा दु आहम्मीअ।
धणमित्त-धणमित्ताहि, दायिदं आहारदाणं दु॥65॥

पिता, पुत्र व पति से विहीन नारी के लिए जिनेंद्रदेव, निर्ग्रन्थ गुरु के चरण, जिनवाणी एवं धर्म ही आश्रयभूत है॥59॥ पूतीगंधा उस समय पति व पुत्र से विहीन थी इसलिए पितृघर ही उसके लिए एकमात्र शरण था। अहो! जिनधर्म तो सदा सभी के लिए शरण है॥60॥ धर्म के बिना कोई भी किसी का रक्षक, सहायक और आश्रय नहीं है इसलिए प्रत्येक मनुष्य को धर्म का संचय करना चाहिए॥61॥ महापुण्य के उदय में अथवा तीव्र पाप कर्म के उदय में जीवों के लिए सदा व सर्वत्र जिनेंद्रप्रभु, जिनागम, निर्ग्रन्थ मुनि और धर्म ही शरण है॥62॥ जो ज्ञानी या अज्ञानी जीव, दुःखी या सुखी जीव, धर्म वा धर्मायतन की उपेक्षा करता है वह नियम से दुःख प्राप्त करता है॥63॥ हे भव्य जीव! यदि तुम्हारी बुद्धि श्रेष्ठ है, हित व अहित का निर्णय करने में समर्थ है तो निंद्य, महापाप एवं दुष्कर्मों को त्याग देना चाहिए॥64॥ एक बार उस नगर में सुव्रता नामक आर्यिका आयीं। धनमित्र व धनमित्रा ने उन्हें आहार दान दिया॥65॥

941. पूदीगंधाए अवि, दायिदं दाणं णवहा-भत्तीइ।
सुह-उवसमभावेणं, पच्छा ताइ फासिय चरणं॥66॥



942. पुण पुण वंदिदूणं च, णियकम्मं खिसंता वज्जरीअ।
णिय-कहं दुहपुण्णं दु, तं आयण्णिदूणं तदा हु॥67॥ (जुम्मं)
943. अज्जिगाइ पज्जरिदं, भो सुदा! परिलीह धम्मज्झाणे।
कम्मवएसं दिच्चा, आसासीअ मिदुवयणेहिं॥68॥
944. कयाइ पावुदयादो, अणिट्टगारी पिदू पदी पुत्तो।
णारीइ वरं ण भत्ति-पहुदीहि पुण्णं णिक्कंखं॥69॥

पूतीगंधा ने भी शुभ उपशम भावों से नवधा भक्तिपूर्वक आर्यिका माता जी को आहार दिया। आहार के पश्चात् उनके चरण स्पर्श करके पुनः पुनः वंदन करके अपने कर्मों की निंदा करते हुए उसने अपनी दुःखपूर्ण कथा आर्यिका माता जी को सुनायी॥66-67॥ उसे सुनकर आर्यिका माता जी ने उसे कर्म निर्जरा का उपदेश देकर मृदु वचनों से सांत्वना दी एवं कहा—हे पुत्री! सदा धर्मध्यान में लीन रहना॥68॥ कदाचित् पाप कर्मोदय से पिता, पति व पुत्र किसी नारी के लिए अनिष्टकारी हो सकते हैं किन्तु प्रभु भक्ति आदि से अर्जित निःकांक्ष पुण्य कभी भी अनिष्टकारी नहीं होता॥69॥

945. पुत्ती तुमं गहेज्जा, जिणधम्मसरणं स - पावक्खयिदुं।
परमेट्ठिं सिमरेज्जा, णिच्चं सगप्पकल्लाणाय॥70॥
946. जिणभत्तिं गुरुपूयं, आइ-पुण्णकम्माइं सत्तीए।
करेज्ज वेज्जावच्चं, सुभावेहिं अज्जिगाणं च॥71॥
947. णेव करेज्ज सिविणे वि, जिणं धम्मं भारदिं णिगंथं।
खिंसेज्ज णेव सुणेज्ज, ताणं चिय णिंदं पि तहेव॥72॥
948. णीयगोदं असादं, बंधदि अंतरायं असुहकम्मं।
कस्स वि णिंदगो तं दु, णिंदं णेव सुणेज्ज करेज्ज॥73॥ (जुम्मं)
949. णेया सुपुण्णहेदू, सगदोसणिंदा परगुणपसंसा।
परणिंदप्पपसंसा दुहायरो दुग्गइ-हेदू य॥74॥
950. तक्काले गयपुरीइ, कित्तिधर - णिवस्स सासणं णियडे।
अहिंसापेम्मी गुणी, णिगंथ-गुरुवासगो सो हु॥75॥
951. उवयारे वासंगो, सच्चवायी चिय जिणधम्मणिट्ठो।
पुण्णवंतो य णायप्पियो जसवंतो विक्कंतो॥76॥

पुत्री! तुम्हें पाप कर्मों के क्षय के लिए जिनधर्म की शरण लेनी चाहिए; अपने आत्मकल्याण के लिए नित्य ही पंच परमेष्ठी का स्मरण करना चाहिए॥70॥ जिनभक्ति, गुरु पूजा आदि पुण्यकर्म शक्ति के अनुसार करना एवं आर्यिकाओं की शुभ-भावों से वैय्यावृत्ति करना॥71॥ स्वप्न में भी कभी जिनेंद्रप्रभु, जिनधर्म, जिनवाणी व निर्ग्रन्थ गुरुओं की निंदा नहीं करनी चाहिए और उसी प्रकार उनकी निंदा सुननी भी नहीं चाहिए; क्योंकि किसी की भी निंदा करने वाला नीचगोत्र, असातावेदनीय, अंतराय और अशुभ कर्मों का बंध करता है इसलिए कभी भी न तो निंदा करनी चाहिए और न सुननी चाहिए॥72-73॥ दूसरों के गुणों की प्रशंसा व स्वदोष निंदा पुण्य का कारण जानना चाहिए। परनिंदा व आत्मप्रशंसा दुःख की खान हैं एवं दुर्गति का हेतु है॥74॥ उसी समय हस्तिनागपुर के निकटवर्ती नगर में राजा कीर्तिधर का शासन था। वह अहिंसा प्रेमी, गुणी व निर्ग्रन्थगुरु का उपासक था॥75॥ उसकी उपकार करने में अति आसक्ति थी। वह सत्यवादी, जिनधर्मनिष्ठ, पुण्यवान्, न्यायप्रिय, यशवान् और विक्रमी था॥76॥

952. तस्स धम्म-पणोल्लया, हिअय-वल्लहा कित्तिमदी पणिदा।
धम्म-भोय-रायणीदि-संगीदेसुं सहकारी य॥77॥
953. इंदुणा सह जुण्हा व, सोहिदा सोहम्मेण सह सईव।
तं लहिदूणं राओ, मण्णीअ सयं पुण्णवंतो॥78॥
954. णारी सुपुण्णवंता, सुधम्माणुरत्ता जम्मि गेहम्मि।
पण्णा य सीलवंता, ठाएज्ज सुहं संती तत्थ॥79॥
955. जत्थ सुसक्कारजुदा, पुण्णवंत-कुलवंता धम्मरदा।
मज्जादा-रक्खिगा य, णारी सय तत्थ सुब्भिक्खं॥80॥
956. जत्थ दुहजुत्तणारी, पया चिय सीअदि खणे खणे तत्थ।
पइडि-पकोवो कलहो, दुब्भिक्खं असंती दुक्खं॥81॥
957. सव्वजणेसुं सेट्टा, सव्वदा दु सुसक्कारिदा णारी।
णारीइ विणा गेहे, सुहसंतीण कप्पणा णेव॥82॥
958. कुमुइणीए जुण्हा व, चित्तविगासगा दुक्खहारगा या
णारी चिय मंगल्ला, लोगिग-सव्व-मंगलेसुं हु॥83॥

उसकी कीर्तिमती नामक हृदयवल्लभा थी जो धर्म की प्रेरणा देने वाली व सुंदर थी। वह धर्म, भोग, राजनीति वा संगीत में भी सहयोगी थी॥77॥ जैसे चंद्रमा के साथ उसकी चांदनी एवं सौधर्मइंद्र के साथ शचि सुशोभित होती है उसी प्रकार रानी को प्राप्त कर महाराज स्वयं को पुण्यवान् मानते थे॥78॥ जिस घर में धर्मानुरक्ता, पुण्यवती, बुद्धिमती व शीलवती नारी निवास करती है वहाँ सुख व शांति भी निवास करती है॥79॥ जहाँ सुसंस्कारों से युक्त पुण्यवती, कुलवती, धर्म में रत रहने वाली एवं मर्यादा की रक्षा करने वाली नारियाँ होती हैं वहाँ सदा सुभिक्ष रहता है॥80॥ जहाँ दुःख व शोक युक्त नारी रहती है एवं प्रजा क्षण-क्षण में दुःख प्राप्त करती है वहाँ प्राकृतिक प्रकोप, कलह, दुर्भिक्ष, अशांति और दुःख होता है॥81॥ सुसंस्कारित नारी सर्वदा सभी जनों में श्रेष्ठ है। नारी के बिना घर में सुख व शांति की कल्पना भी नहीं की जा सकती॥82॥ जिस प्रकार चंद्रमा की चांदनी कुमुदनी को विकसित करने वाली होती है उसी प्रकार नारी चित्त को विकसित करने वाली व दुःखहारक होती है। नारी सभी लौकिक मंगलों में मंगल होती है॥83॥

959. जत्थ अइवत्तिज्जदे, मज्जादं णेव सो वरो देसो।
तं दु रक्खिदव्वा सग-देस-मज्जादा सज्जणेहि॥84॥
960. एयदा सीहासणे, कित्तिवंतो राओ हु कित्तिधरो।
रोहिणीइ सहिंदू व्व राजिदो सगराणीए सह॥85॥
961. तदा सहाइ पविट्टो, वणवालो सेट्ट-फुल्ल-फलेहि सह।
अप्पिदाणि ताणि राय-हुत्ते अइ-आणंदजुदेण॥86॥
962. बद्धकरंजलीए दु, पणमंतो णिवेदीअ भो राओ!।
तुज्झ पुण्णोदयेणं, णयर-णियड-रम्म-उववणम्मि॥87॥
963. आइच्च-मिअंगोव्व हु, बे-मुणिराया चिय सुउज्जुयारा।
ओजंसी तेजंसी, णिरवइक्खा णिरामगंधा॥88॥ (जुम्मं)
964. सुणिय समायारं तं, उप्पुलइअ-रायेणं उट्ठिदं चा
गडुअ सगासणादो दु, सत्तपदं णमिदं भत्तीइ॥89॥
965. तदा उग्घोसिदं चिय, मुणिवंदणाय गच्छेज्जा कल्लिं।
सुद्धभावभत्तीए, सव्व-पया राय-कुडुंबं च॥90॥
966. पुण जुगलमुणि-पदेसुं, पडुच्चीअ सव्वा णम्मभावेण।
अमियासव - पिहिदासव - इड्ढिधारि - णिरभिस्संगाण॥91॥

जहाँ कोई अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता वह श्रेष्ठ देश माना जाता है इसलिए सज्जनों को अपने देश की मर्यादा की सदैव रक्षा करनी चाहिए॥84॥ एक बार कीर्ति को प्राप्त महाराज कीर्तिधर सिंहासन पर अपनी महारानी कीर्तिमती के साथ उस प्रकार विराजमान थे जैसे रोहिणी के साथ चंद्रमा ही हो॥85॥ तभी श्रेष्ठ फल-फूलों के साथ राजसभा में वनपाल ने प्रवेश किया एवं अति आनंद के साथ राजा के सम्मुख उन फल-फूलों को अर्पित किया॥86॥ हाथों को जोड़कर प्रणाम करते हुए वनपाल ने निवेदन किया—हे राजन्! आपके पुण्य के उदय से नगर के निकट मनोहर बगीचे में सूर्य-चंद्रमा के समान अतिशय सरल चारित्र वाले दो मुनिराज पधारे हैं। वे ओजस्वी, तेजस्वी, निःस्पृह और निर्दोष चरित्र वाले हैं॥87-88॥ मुनि आगमन के इस समाचार को सुनकर राजा के रोमांच हो आया। उसने अपने आसन से उठकर उसी दिशा में सात पद जाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया॥89॥ तभी राजा ने नगर में घोषणा करा दी कि कल सभी प्रजाजन व राजपरिवार शुद्धभाव भक्तिपूर्वक मुनिवंदना के लिए चलेंगे॥90॥ पुनः अगले दिन सभी विनम्र भाव से अमितास्रव व पिहितास्रव नामक ऋद्धिधारी निःस्पृह युगल मुनियों के चरणों में पहुँचे॥91॥

967. मुणी पदक्खिणिदूणं, विणयभावेणं थुदिं कुणंतेण।
सकुडुंब-णिवेण तत्थ, पस्सिदं सुदिस्सं हरिसेण॥92॥
968. धण्णा सिरिमुणिराया, णिरवज्ज-तव-संजम-जुदा धण्णा।
धण्णा विकंप-जोगी, असीम-णाणवंता धण्णा॥93॥ (जुम्मं)
969. तत्थ मुणि-पहावेणं, परमसंती सघणविविणपदेसे।
सीहो गो-वच्छलेण, पिवीअ जलमेगट्टाणम्मि॥94॥
970. सीह-सिसू पिवीअ तह, गो-दुद्धं वच्छो तहा सीहाइ।
अण्णवण्णजंतू अवि, परोप्परे अइणेहजुत्ता॥95॥
971. तदा पूदीगंधा वि, परिवारेणं सह दु आहम्मीअ।
मुणिवराण भत्तीए, वंदणाइ पुण्णविड्डीए॥96॥



वहाँ राजपरिवार सहित राजा ने मुनिराजों की प्रदक्षिणा करके विनय भाव से स्तुति करते हुए कहा श्री मुनिराज धन्य हैं, निरवद्य तप और संयम से युक्त गुरुवर धन्य हैं, अकंप योगी धन्य हैं एवं निःसीम ज्ञानवान् यतिवर धन्य हैं। पुनः वे सभी वहाँ हर्षभाव से दृश्य को देखने लगे॥92-93॥ वहाँ मुनि के प्रभाव से घोर वन्य प्रदेश में भी परम शांति थी। सिंह व गाय एक ही स्थान पर एक साथ जल पी रहे थे॥94॥ सिंह का बच्चा गाय का दूध पी रहा था तथा गाय का बछड़ा सिंहनी का दूध पी रहा था। अन्य वन्य जन्तु भी परस्पर में अतिस्नेह से युक्त थे॥95॥ तभी पूतीगंधा भी अपने परिवार के साथ मुनिवरों की भक्ति वंदना से पुण्य वृद्धि के लिए वहाँ आई॥96॥

972. चायगोव्व ठिद-भवीहि, मुणिणा चिय पदत्तधम्मवएसो।
सुणिदो अइपीदीए, भव-विणासट्टं कल्लाणाय॥97॥
973. अमियासव-मुणी तदा, अमियं व अइपुण्णासव-कारगो या।
भव्वाण सव्वहिदाय, अब्भुद-धम्मामियवरिसा दु॥98॥

शिखरिणी छंद

974. सुमुत्ता सिप्पीए पडिदजलबिंदू सुविमला,
दधीरूवं खीरं हवदि दधिजोगेण णियमा।
पवादेणं वा सीयल-सुहद-सुद्धो परिसरो।
सुपुप्फेहि णिच्चं अइसुरभिदो फासिद-पडो॥99॥
975. सुसंसारी अप्पा उसरसबलेणं भयवदो,
पसूणं कूराणं गद-रइ-ठिदी संतिसुहदा।
महीए संतीए सुह-णिगरणं मेह-वरिसा,
विसुद्धीए पावक्खयिदुमह णिग्गंथ-वयणं॥100॥ (जुम्मं)

तब मुनिराज ने चातक पक्षी के समान तृषित भव्य प्राणियों को धर्म का उपदेश दिया। उन सभी ने संसार के नाश व आत्मकल्याण के लिए अति प्रीतिपूर्वक धर्म उपदेश सुना॥97॥ अमृत के समान अमितास्रव मुनिराज भव्यों के लिए अति पुण्यास्रव के कारक थे। वहाँ सभी के हित के लिए अद्भुत धर्मामृत की वर्षा हुई॥98॥ जिस प्रकार सीप में पड़ी निर्मल जल की बूंद मोती हो जाती है, दही के संयोग से दूध भी दही रूप हो जाता है, झरने के माध्यम से संपूर्ण वातावरण शीतल, सुखद व शुद्ध हो जाता है, पुष्पों से संस्पर्शित वस्त्र भी अत्यंत सुगंधित हो जाता है, जैसे संसारी आत्मा धर्म रूपी रसायन के बल से परमात्मा हो जाती है, रति भाव से रहित निर्विकल्प ध्यानी मुनिराज की उपस्थिति से क्रूर पशु भी सुखी व शांत हो जाते हैं अथवा जैसे मेघवर्षा भूमि की शांति व सुख का कारण होती है उसी प्रकार श्री निर्ग्रन्थ मुनिराज के वचन पाप क्षय व आत्मविशुद्धि के लिए होते हैं॥99-100॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुन्दी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक-रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में पूतीगंधा (रोहिणी का पूर्व भव) द्वारा
आहारदान एवं धर्मोपदेश श्रवण का वर्णन करने वाला अष्टम नंद पूर्ण हुआ।

षट्म-णंदो

976. भो भव्वो! तव अप्पा, अणादीदो भमसि बद्धकम्मेहि।
तं करेज्ज पुरिसट्ठं, कम्मक्खयिदुं च सिद्धीए॥1॥
977. कम्मो तिविहो णेयो, भेयादु दव्व-भाव-णोकम्माण।
दव्वकम्म - मट्ठविहं, बावण्णूण - बेसयाणि वा॥2॥
978. होज्ज असंखेज्ज - लोय - पमाण - मुत्तरोत्तरकम्मपइडी।
तेसु सव्वपइडीसुं, अइपबल-मोहणिज्जं जाण॥3॥
979. दव्वकम्माण बंधो, चदुविहो मुणेदव्वो आगमेण।
पइडि-पदेस-ट्ठिदि-अणुभागाणं हंदि भेयादो॥4॥
980. पदेसो अणंतविहो, कम्मवग्गणाणुसारेण बंधो।
होज्जणंत-पदेसाण, समयेगे सो अणंतविहो॥5॥
981. सव्वाणं ठिदिबंधो, उत्तम-मज्झम-जहण्ण-भेयादो।
मोहस्स वरो सत्तर - कोडा - कोडी - सायरं तह॥6॥
982. जहण्णंतोमुहुत्तो, मज्झमि चिय सव्व-मज्झिम-बंधो।
जाण सव्व-ठिदि-बंधो, कम्मट्टाणाइ-गंथेहिं॥7॥

हे भव्य जीव! कर्मों से बद्ध तुम्हारी आत्मा अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रही है; इसलिए कर्म-क्षय व आत्म-सिद्धि के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए॥1॥ द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म के भेद से तीन प्रकार के कर्म जानने चाहिए। द्रव्यकर्म आठ प्रकार के हैं अथवा उत्तर भेद बावन कम दो सौ अर्थात् एक सौ अड़तालीस (कर्म प्रकृतियाँ) हैं॥2॥ उत्तरोत्तर कर्म प्रकृति असंख्यात लोक प्रमाण हैं। उन सभी प्रकृतियों में अतिप्रबल मोहनीय कर्म जानना चाहिए॥3॥ जिनागम से प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध के भेद से द्रव्यकर्मों का बंध चार प्रकार का जानना चाहिए॥4॥ कर्म वर्गणाओं के अनुसार प्रदेशबंध अनंत प्रकार का जानना चाहिए। एक समय में अनंत प्रदेशों का बंध होता है, वह बंध भी अनंत प्रकार का है॥5॥ सभी प्रकृतियों का उत्तम, मध्यम व जघन्य के भेद से स्थितिबंध होता है। मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होता है॥6॥ इसका जघन्य बंध अंतर्मुहूर्त है एवं इनके मध्य सभी मध्यम स्थितिबंध हैं। सर्व स्थितिबंध कर्मस्थानादि ग्रंथों से जानने चाहिए॥7॥

983. दुविहाणुभाग-बंधो, सुह-असुह-पइडीणं च भेयादो।
सुहपइडीणं बंधो, गुड-खंड-सक्करा-अमियं व॥8॥
984. पेया दु असुहपइडी, णिंब-कंजीर-विस-हलाहलोव्व या
उत्तरोत्तर-असुहो दु, अणुभागो सव्वकम्माणं॥9॥
985. णियदि-आइ-कारणेण, जिण-सुद-णिग्गंथाण णिमित्तेणं।
पाउणदे जिणधम्मं, पुव्वपुण्णोदयेण अहवा॥10॥
986. णिय-बद्ध-कम्म-फलं दु, बंधगो सय पावेदि णियमादो।
को विजीवो ण भुंजदि, कया विअण्ण-किद-कम्म-फलं॥11॥
987. समत्थो दु णेव को वि, अण्ण-किद-कम्मं अण्णहा करिदुं।
सगपुरिसट्टबलेणं, संवरं णिज्जराइं करदि॥12॥
988. चित्तविसुद्धीए वा, संकिलेसेणं कम्मट्ठिदीए।
करिदुं जीवो सक्को, अवक्कस्सणं उक्कस्सणं च॥13॥
989. संभवो पुरिसट्टेण, कम्मवसमो खओवसमो खओ या
लहिदुं मोक्खपहं णो, सक्कदि विणा सम्मजदणेण॥14॥

शुभ व अशुभ प्रकृतियों के भेद से अनुभाग बंध दो प्रकार का होता है। शुभ प्रकृतियों का बंध गुड़, खांड, शर्करा व अमृत के समान होता है॥8॥ अशुभ प्रकृति नीम, कांजीर, विष, हलाहल के समान होती है, इन अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग उत्तरोत्तर अशुभ रूप होता है॥9॥ नियति आदि कारण से, जिनेंद्रदेव, श्रुत व निर्ग्रन्थों के निमित्त से अथवा पूर्व-पुण्य के उदय से जीव जिनधर्म प्राप्त करता है॥10॥ अपने बांधे हुए कर्मों का फल बंधक नियम से प्राप्त करता है। कोई भी जीव अन्य द्वारा किए गए कर्मों का फल कभी नहीं भोगता॥11॥ कोई भी जीव अन्य के द्वारा किए गए कर्म को अन्यथा करने में समर्थ नहीं होता। जीव अपने ही पुरुषार्थ के बल से संवर, निर्जरा आदि करता है॥12॥ जीव चित्त की विशुद्धि या संक्लेशता से कर्म की स्थिति का अपकर्षण व उत्कर्षण करने में समर्थ होता है॥13॥ पुरुषार्थ से कर्म का उपशम, क्षयोपशम व क्षय संभव है। जीव सम्यक् पुरुषार्थ के बिना मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता॥14॥

990. बंधिदं जेणं पुव्व-भवे पुण्णकम्मं पुण्णकज्जेहि।
सो भुंजेदि इह भवे, ताणं चिय उत्तमफलाइं॥15॥
991. उक्कट्टपुण्णफलेण, जीवो पाउणेदि मोक्खमग्गं दु।
जहण्णपुण्णफलेणं, णिदाणविहीणभव - सोक्खं च॥16॥
992. जेहि हिंसाइ - पावं, पुव्व - भवे दुब्भावेहिं करिदं।
कोहाइ-कसायेहिं, बंधिदाणि य असुहकम्माणि॥17॥
993. माणसिग - देहज - तिव्व - भीसण - सद्दादीदाणि दुक्खाणि।
सगिट्टविओग - मणिट्ट - संजोगं पाउणंते ते॥18॥ (जुम्मं)
994. अण्णाणेणं भुंजदि, मज्ज-मंस-महु-पणुदंबरफलाणि।
तिव्वकसायेणं जदि, बंधेदि णिरयाउं हु तदा॥19॥
995. दुट्टो विवेगहीणो, भुंजदि जूआइ-सत्तवसणाइं।
अइमलिणचित्तेणं च, बंधेदि णिरयाउं तदा हु॥20॥
996. दुट्ट-पाविट्टा असुह-लेस्स-जुदो बंधेदि णट्टबुद्धी।
अविणयेण जिण-सुद-मुणि-धम्म-धम्मीणं णिरयाउं॥21॥

जिसने पूर्वभव में पुण्यकार्यों के द्वारा पुण्यकर्म को बांधा है वह ही इस भव में उनके उत्तम फलों को भोग पाता है॥15॥ उत्कृष्ट पुण्य के फलस्वरूप ही जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करता है और जघन्य पुण्य के फल से निदान विहीन संसार-सुख को प्राप्त करता है॥16॥ जिन्होंने पूर्वभव में दुर्भावों से हिंसा आदि पाप किया है वा क्रोधादि कषायों से अशुभ कर्मों का बंध किया है वे इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग प्राप्त करते हैं, मानसिक व देहजनित तीव्र भयंकर शब्दातीत दुःखों को प्राप्त करते हैं॥17-18॥ यदि जीव तीव्र कषाय व अज्ञान से मद्य, माँस, मधु (शहद) व पाँच उदंबर फलों का सेवन करता है तो वह नरकायु का बंध करता है॥19॥ यदि कोई दुष्ट या विवेकहीन जीव अति मलिन चित्त से जूआ आदि सप्त व्यसनों का सेवन करता है तो वह नरकायु का बंध करता है॥20॥ दुष्ट, पापिष्ठ, नष्टबुद्धि (मूर्ख) वा अशुभ लेश्या से युक्त जीव जिनेन्द्रदेव, जिनागम, निर्ग्रन्थ मुनि, जिनधर्म व धर्मियों की अविनय से नरक आयु का बंध करता है॥21॥

997. अज्जेज्ज सेट्टपुण्णं, जिणपूया-सुपत्तदाण-पहुदीहि।
अहिंसाइ-सुव्वदेहि, जोग-दंडिदे अक्खजयेण॥22॥
998. पावो दु महातमोव्व, देदि दोत्थं दुरावत्थं दुक्खं।
सुहं संतिमारोगं, हरदि उहयलाहं जीवाण॥23॥
999. पुण्णं पयास-रूवो, पुण्णप्पजीवणे कुणदि पयासं।
भरदे सोक्ख-सुगंधं, पसरदि संति-सीयलत्तं च॥24॥
1000. पस्सह णेरइया ते, भुंजंति सगज्जिद-पावफलाइं।
अहमिंदा सुरवरा य, दिवे चिरंतं पुण्णफलाणि॥25॥
1001. अहवा माणुसलोए, दुचक्की मदणो हली तित्थयरा।
पावदि अरिहावत्थं, णरो उक्किट्टपुण्णुदयादु॥26॥
1002. धम्माइ-णिमित्तेणं, णिक्कंख-पुण्ण-मुक्किट्ट-मज्जेज्ज।
हिंसाइ-दुरिद-मुज्झसु, अहो भव्ववर-पुंडरीगा!॥27॥
1003. अणादीदो य जीवा, बुड्ढंति संसार-सायर-घोरे।
रयणत्तय-तरिणीए, किं णो भवसायरं तरेसि॥28॥

जिनपूजा, सुपात्रदान आदि से योगत्रय के दंडित करने पर इंद्रिय विजय तथा अहिंसादि सुव्रतों से जीव श्रेष्ठ पुण्य का अर्जन करता है॥22॥ पाप महा अंधकार के समान है। वह जीव को दुर्गति, दुरावस्था व दुःख प्रदान करता है। वह पाप जीवों के सुख-शांति, आरोग्य और उभय लाभ का हरण कर लेता है॥23॥ पुण्य प्रकाशरूप है। पुण्य पुण्यात्मा के जीवन में प्रकाश करता है, सुख की सुगंध भरता है एवं शांति की शीतलता का प्रसार करता है॥24॥ देखो! वे नारकी अपने द्वारा अर्जित पाप के फलों को भोगते हैं एवं देवगण व अहमिंद्र स्वर्ग में दीर्घकाल तक पुण्य फलों को भोगते हैं॥25॥ अथवा उत्कृष्ट पुण्य के उदय से जीव मनुष्य लोक में चक्रवर्ती, अर्द्धचक्रवर्ती, कामदेव, बलभद्र व तीर्थकर होता है वा अरिहंत अवस्था को प्राप्त करता है॥26॥ धर्मादि के निमित्त से निःकांक्ष उत्कृष्ट पुण्य का अर्जन करना चाहिए। अहो भव्यवर पुंडरीक! हिंसादि पापों का त्याग करो॥27॥ अनादिकाल से ये जीव घोर संसार सागर में डूब रहा है। हे भव्यजीव! रत्नत्रय की नौका से तुम संसार सागर को पार क्यों नहीं करते?॥28॥

1004. सगसत्तीए गहिदं, सम्मत्त-मणुव्वदं महव्वदं चा
मुणिस्स हु हिअयफासिद-देसण-मायण्णिणय भव्वेहि॥29॥
1005. तदा सुहधम्मसहाइ, पज्जुवट्टाएज्ज बाला पूदीगंधा।
बद्धकरंजलीए वि, णिवेदिदं परियंदिदूणं॥30॥
1006. भो सामी भयवंतो, उसमुत्ती देसपच्चक्खणाणी।
तुमं सव्वजीवाणं, अयारण-परमबंधू पहू॥31॥ (जुम्मं)
1007. वदह अणुग्गहिदूणं, किं किं पावं किदं मए पुव्वे।
मिच्छण्णाण-वसेणं, कसायावेसेणं अहवा॥32॥
1008. जीविमो कुणदि पुण-पुण मिच्छत्तण्णाणासंजमेहिं चा।
दव्वखेत्तयालभाव-भव-परिवट्टणं भो पुत्ती!॥33॥
1009. विहाव-सहावेणं दु, गहिदो णिगोदवासो अणादीदु।
पत्तेयं जीवेणं, अणंतयालस्स अइ-दुहदो॥34॥
1010. पुण अमियासव-मुणिणा, भासिदं तव पुव्वभवं अक्खामि।
सुणेसु थिरचित्तेणं, भो णंदणी! णियकिदकम्मं॥35॥

मुनिराज के हृदयस्पर्शी उपदेश को सुनकर भव्यों ने अपनी शक्ति के अनुसार सम्यक्त्व, अणुव्रत व महाव्रतों को ग्रहण किया॥29॥ तब उस शुभ धर्म सभा में पूतीगंधा भी उपस्थित थी। उसने मुनिराज को प्रणाम कर हाथ जोड़कर निवेदन किया—हे स्वामी! हे भगवन्! आप धर्म की श्रेष्ठ मूर्ति हैं, प्रत्यक्षज्ञानी हैं। प्रभु आप सभी जीवों के अकारण परम बंधु हो॥30-31॥ हे मुनिवर! बताइये, मैंने मिथ्यात्व व अज्ञान के वश होकर या कषाय के आवेश से पूर्वभव में कौन-कौन से पाप किए?॥32॥ तब मुनिराज ने कहा हे पुत्री! यह जीव मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम से बार-बार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव परिवर्तन करता है॥33॥ प्रत्येक जीव ने अनादिकाल से विभाव स्वभाव से अनंतकाल के लिए अति दुःखद निगोदवास पाया॥34॥ पुनः अमितास्रव मुनिराज ने कहा—मैं संक्षेप से तुम्हारे पूर्वभव को कहता हूँ। हे पुत्री! अपने द्वारा किए गए कर्मों को तू अपना चित्त स्थिर करके सुन॥35॥

1011. अस्मि जंबूदीवे, भरदखेत्तज्जखंडे सोरट्टो।
पच्छिमदक्खिणभागे, सुपवित्तो महापुरिसेहिं॥36॥
1012. उज्जयंतसेलादो, लहिदा मुत्ती कोडिमुणिवरेहिं।
गिरिणयर-समीवादो, णिच्छय-रयणत्तयबलेणं॥37॥
1013. भूवाल-सासगेणं, सुसासिदो हंदि तदा देसो सो।
सम्माइट्टि-धम्मिणा, सेट्टधीमंत-विक्कंतेण॥38॥
1014. रम्मा सुरूववंता, कलयंठीव महुरभासिग-सुहदा।
महारानी सरूवा, सुधम्मवच्छला सड्डालू॥39॥
1015. कुव्वीअ धम्मकज्जं, छावसियं पालंता सव्व-पया।
सग-सासगोव्व णिम्मल-चित्तेहिं तहा विवेगेण॥40॥
1016. जिणदंसणं च वंदण-मच्चणं कुव्वीअ जिणहिसेगं च।
सुभत्ति-उच्छाहेणं, वेज्जावच्चं णिगंथाण॥41॥
1017. परोवयारणुरत्ता, धम्मकहाइ रुइवंता हिदत्थं।
तित्थजत्ताहिलासी, पव्वेसु सीलुववासजुदा॥42॥

इसी जंबूद्वीप में भरत क्षेत्र के आर्यखंड में पश्चिम-दक्षिण भाग में महापुरुषों के द्वारा पवित्र एक सौराष्ट्र नामक देश है॥36॥ वहाँ सौराष्ट्र देश में गिरि नगर के समीप ऊर्जयंत अथवा गिरनार पर्वत है, जहाँ से रत्नत्रय के बल से करोड़ों मुनिराजों ने मोक्ष प्राप्त किया॥37॥ तब उस देश में राजा भूपाल का शासन था। वह सम्यग्दृष्टि, धार्मिक, श्रेष्ठ, बुद्धिमान व पराक्रमी था॥38॥ उसकी स्वरूपा नामक महारानी थी जो मनोहरा, रूपवती, सभी को सुख प्रदान करने वाली, कोकिला के समान मधुर-भाषिणी, धर्म वत्सला व श्रद्धालु थी॥39॥ वहाँ सभी प्रजाजन अपने शासक के समान निर्मल चित्त से विवेकपूर्वक छः आवश्यकों का पालन करते हुए धर्म कार्य किया करते थे॥40॥ वे सभी भक्तिपूर्वक उत्साह से जिनदर्शन, जिनवंदना व जिनाभिषेक करते थे एवं निर्ग्रन्थ मुनिराजों की वैयावृत्ति किया करते थे॥41॥ वे सभी परोपकार में अनुरक्त, धर्मकथा में रुचिवान्, हित के लिए तीर्थयात्रा के अभिलाषी एवं पर्वों में शील व उपवास से युक्त थे॥42॥

1018. णयर - सेट्टि - गंगदत्त - वरसावयस्स सुरूवगव्विट्ठा।
मिच्छाइट्ठी भज्जा, सिंधूमदी अधम्मी तत्थ॥43॥
1019. रायाणाए एगे, दिवसे महुच्छवो णयरबज्झम्मि।
सव्व-पयाजणा तत्थ, अइच्छीअ महुच्छाहेणं॥44॥
1020. रायेणं सह सेट्टी, तदा पमदकाणणं गंगदत्तो।
पच्चड्डीअ णंदेण, महुच्छवस्स वणकिड्डाए॥45॥
1021. सहसत्ति ओअक्खिदो, आगच्छंत-मासुववासी तेण।
णिग्गंथो सज्झाणी, अभेयरयणत्तयधारगो॥46॥
1022. समाहिगुत्त-मुणिवरो, सुद्धवजोगी देव-जहाजादो।
पारणाइ पासादं, पडि समत्तमुत्ती सुजोगी॥47॥ (जुम्मं)
1023. गंगदत्त-सुसेट्टिणा, देविदा सिंधुमदी णियभज्जा दु।
भो सुंदरी! गच्छेसु, मुणिवरस्स दादु-माहारं॥48॥
1024. दायगस्स सत्तगुणं, धरिय दाएज्ज णवहाभत्तीए।
मुत्तिकारण-माहार-दाणं परंपराइ णियमा॥49॥
1025. कोहग्गि-डज्झंताइ, अंतरे पलोट्टिदं पदि-आणाइ।
णट्टबुद्धीए मुणिं, बाहा जाणिय णियकिड्डाइ॥50॥

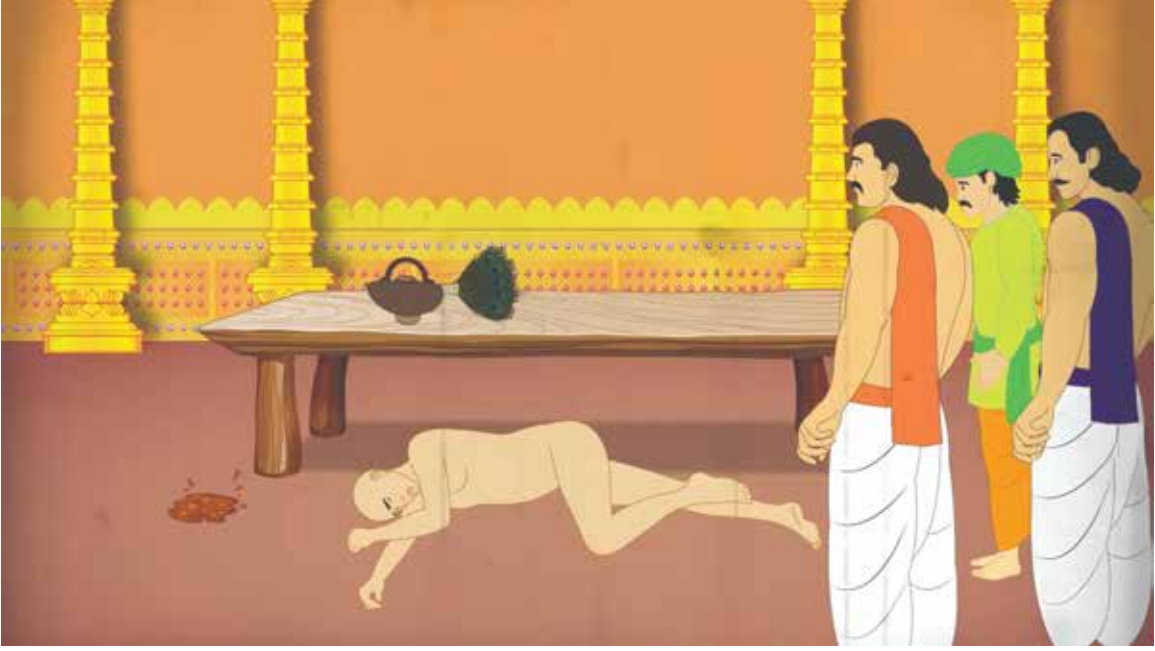
वहाँ गंगदत्त नाम का नगर श्रेष्ठी रहा करता था। उस उत्तम श्रावक के अपने रूप पर अभिमान करने वाली मिथ्यादृष्टि व अधार्मिक सिंधुमती नामक भार्या थी॥43॥ एक दिन राजा की आज्ञा से नगर के बाहर महोत्सव हुआ। वहाँ सभी प्रजाजन महा उत्साह के साथ जा रहे थे॥44॥ तब राजा के साथ श्रेष्ठी गंगदत्त भी आनंद के साथ वनक्रीड़ा व महोत्सव के लिए प्रमद वन को जा रहा था॥45॥ तभी उसने अचानक मासोपवासी, सद्ध्यानी, अभेदरत्नत्रयधारी, शुद्धोपयोगी, समत्व मूर्ति, श्रेष्ठ योगी यथाजात निर्ग्रन्थदेव श्री समाधिगुप्त मुनिराज को पारणा के लिए अपने महल की ओर आते हुए देखा॥46-47॥ तब गंगदत्त श्रेष्ठी ने अपनी पत्नी सिंधुमती को आज्ञा दी हे सुंदरी! तुम मुनिवर को आहार देने के लिए वापस जाओ॥48॥ देखो! दाता के सात गुणों को धारण कर नवधाभक्तिपूर्वक मुनिराज को आहार देना। आहारदान नियम से, परंपरा से मोक्ष का कारण है॥49॥ वह पति की आज्ञा से लौट तो आई किंतु वह मूर्खा मुनिराज को अपनी क्रीड़ा में बाधा जानकर अंतरंग में क्रोध की अग्नि से जलने लगी॥50॥

1026. खिसिदं णियचित्तम्मि, मुणी मुणिधम्मं जेइणदंसणं चा
अजाणंताए रूव-गव्विदाए अज्जिद-कम्मं॥51॥
1027. ताए चिंतिदं तदा, णग्ग-मुणिस्स दु आगमणत्तादो।
णो सक्का गच्छेदुं, महुच्छवे विविण-केलीए॥52॥
1028. अच्चंतरूववंता, णेव को वि इत्थी मम इव णयरो।
जदि हं गच्छेज्ज तत्थ, पसंसीअ सव्वणारीओ॥53॥
1029. पहुदिं वियारंताइ, पडिग्गहं कुव्विदं कुभावेहिं।
तत्थट्ठिदं महिसस्स, पिट्ठोसहिं देज्जा मुणिस्स॥54॥
1030. आहारम्मि अइकडुग-तुंबि-मच्चंत-कुडिल-परिणामेहि।
अहादो अभिअंताइ, मुणि-माहच्च-अजाणंताइ॥55॥ (जुम्मं)



अपने रूप में गर्वित उस सिंधुमती ने अर्जित पापकर्म को न जानते हुए अपने चित्त में मुनि, मुनिधर्म और जैनदर्शन की निंदा की॥51॥ तब वह सोचने लगती है कि इन नंगे मुनि के आने के कारण मैं वनक्रीड़ा व महोत्सव में नहीं जा सकी॥52॥ मैं अत्यंत रूपवती हूँ, मेरे समान इस नगर में और कोई स्त्री सुंदर नहीं है। यदि मैं वहाँ जाती तो सभी नारियाँ मेरी प्रशंसा करतीं॥53॥ इत्यादि प्रकार से विचार करते हुए उस सिंधुमती ने कुभावों से मुनिराज का पड़गाहन किया। वहाँ भैंस की पीठ पर लगाने के लिए रखी औषधि अति कड़वी तूमड़ी को पापों से भयभीत न होती हुई एवं मुनि के माहात्म्य को न जानती हुई सिंधुमती ने मुनिराज को दिया॥54-55॥

1031. मुणिवरेण सुह-समत्त-भावेहि-मोग्गहिदो दु आहारो।
भयंकर-पहावेणं, तस्स य मुणिवरो मुच्छिदो दु॥56॥



1032. अंतोमुहुत्त-पच्छा, सचेदं होच्चु जमसल्लेहणा या।
अहिपच्चुइदा तदा हु, समत्त-भावजुद-विसुद्धीइ॥57॥

1033. पुण पत्थिवं सरीरं, छंडिदं परमेट्टि-सिमरंतेणं।
सिद्धोव्व अप्पसत्तिं चितंतेणं मोक्खं लहिदुं॥58॥

1034. पावकम्मं खयित्ता, कप्पसग्गम्मि सो देवो जादो।
मुणिस्स मिदं सरीरं, विरायिदूणं सुविमाणम्मि॥59॥

मुनिवर ने शुभ समत्व भावों से आहार ग्रहण किया। उस कड़वे आहार के भयंकर प्रभाव से मुनिराज को मूर्च्छा आ गयी॥56॥ अंतर्मुहूर्त पश्चात् सचेतावस्था को प्राप्त कर समत्वभाव युक्त विशुद्धि से मुनिराज ने यमसल्लेखना ग्रहण की॥57॥ पुनः मोक्ष प्राप्ति हेतु पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए और सिद्धों के समान आत्मशक्ति का चिंतन करते हुए अपने पार्थिव शरीर का परित्याग किया॥58॥ पाप कर्मों का क्षय करके वे कल्पस्वर्ग में देव हुए। इधर अत्यंत दुःखी होकर नगरवासी मुनिराज के मृत शरीर को विमान में विराजमान कर नगर के बाहर ले जा रहे थे। तभी सामने से आते हुए राजा व श्रेष्ठी ने विमान को देखकर मुनिवर के विषय में पूछा॥59-60॥

1035. णंता जणा पस्सित्तु, णयर-बहिरं चिय अच्चंत-दुहिदा।
पुच्छिदंमुणि-विसयम्मि, आगच्छंत-राय-सेट्ठीहि॥60॥(जुम्मं)
1036. अहो सज्जणो! इमो दु, किं मुणिवरो कहं होज्ज समाही।
विआउल-चित्तेणं दु, आकंदंतेण रुदंतेण॥61॥
1037. एयणयरवासिणा य, आइक्खिदं णयरसेट्ठि-इत्थीइ।
दायिद-विसत्ताहार-परिणाम-भयंकरो इमो दु॥62॥
1038. वरिसंत-ओसबिंदू, पइडीए करुण-कंदणं व तथा।
पडंत - रुक्खपत्ताणि, पइडीइ सोल्लद-भूसणं व॥63॥
1039. अत्थमाण-रत्तक्को, रोसेण णियाणणं लुक्कंतोव्वा।
तं दस्सं पस्सेदुं, पीडं सोढु - मसक्कत्तादु॥64॥
1040. वरपुरिसाण सहावो, सीदंति परपीडाइ णो सगस्सा।
तावेण णवणीदं व, जह मुणिवरो उवसग्गजयी॥65॥
1041. पवण-छलेण पइडी वि, णिस्ससमाणा व अच्चंत-दुहेणा।
वण्णजंतू वि थड्ढा, भीसण-झुणिणा सुण्णत्तं व॥66॥

अहो सज्जन! ये कौन से मुनिराज हैं, इनकी समाधि किस प्रकार हुई? तब क्रंदन करते हुए रोते हुए व्याकुल चित्त से एक नगरवासी ने कहा, नगरश्रेष्ठी की स्त्री ने मुनिराज को विषाक्त आहार दिया; यह उसी का भयंकर परिणाम है॥61-62॥ मुनिराज के समाधिमरण को देखकर उस समय गिरती हुई ओस की बूँद ऐसी लग रही थी मानो प्रकृति का करुण क्रंदन ही हो, गिरते हुए वृक्ष के पत्ते ऐसे लग रहे थे मानो प्रकृति के द्वारा गिराये गए आभूषण ही हैं॥63॥ अस्त होते हुए सूर्य का चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। तब ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह उन मुनि की समाधि के दृश्य को देखने में व उस पीड़ा को सहने में असमर्थ होने से अपना चेहरा ही छिपा रहा हो॥64॥ उचित है महापुरुषों का स्वभाव ही होता है कि वे दूसरों की पीड़ा से उसी प्रकार दुःखी होते हैं जिस प्रकार ताप से नवनीत पिघल जाता है। वे अपनी पीड़ा से वैसे ही दुःखी नहीं होते जैसे उपसर्गजयी मुनिराज॥65॥ उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पवन के छल से मानो अत्यंत दुःखपूर्वक प्रकृति भी श्वाँस छोड़ रही हो। जिस प्रकार भयानक आवाज से सभी ओर शून्यता वा स्तब्धता सी छा जाती है उसी प्रकार उस समय सभी वन्य जंतु भी स्तब्ध रह गए थे॥66॥

1042. सुणिय सव्व-वित्तंतं, पस्सित्ता मुणिस्स अयाल-मरणं।
तज्जिदा अइकुविद-णिव-गंगदत्तेहि दंडिदा सा॥67॥
1043. अणंतरं णिवसहाइ, कराविदूण मुंडणं मुहसामं।
पण-बिल्लं बंधित्ता, गीवाए य गह्भ-याणे॥68॥
1044. आसावित्ता ढोल्लं, वज्जाविदूण सा णीसारयिदा।
देसादो तक्काले, किद-जहण्ण-पावस्स ताए॥69॥ (तिअं)
1045. मुणिवर - वह - पावेणं, जुत्ता उदंबर - पंडु - रोयेणं।
सत्तदिवसेसु जेणं, देहो दुग्गंधिदो सामो॥70॥



इस प्रकार मुनि के अकालमरण को देखकर एवं सर्व वृत्तान्त को सुनकर राजा व गंगदत्त श्रेष्ठी सिंधुमती पर उसके द्वारा किए गए जघन्य पाप के लिए बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने सिंधुमती की भर्त्सना की एवं दंड दिया। अनंतर राजसभा में उसका सिर मुड़वाकर और मुँह काला करवाकर पाँच बेल पत्थर उसके गले में बांध दिए। पुनः उसे गधे पर बैठाकर उसके आगे ढोल बजवाकर उसे देश से तत्काल बाहर निकाल दिया॥67-69॥ मुनि की हत्या के पाप से सात दिनों में ही वह उदंबर कुष्ठ रोग से युक्त हो गयी जिससे उसकी देह दुर्गन्धित हो गयी और काली पड़ गयी॥70॥

1046. अच्चंत - कट्टदायग - सहस्स - वणादु पीवं णिस्सरीअ।
असहणीय - पीडाए, अइ - संकिलिट्ट - परिणामेहि॥71॥
1047. अट्ट-भावेहि पाविय, मरण-मुप्पज्जीअ छट्ट-णिरयम्मि।
तादो अग्गम्मि णेव, संभवो इत्थी-उप्पत्ती॥72॥ (जुम्मं)
1048. बावीस-सायरंतं, णेरइयेण भुंजिदं घोरदुहं।
पुण-पुण दव्वखेत्ताइ-जणिद-दुहाणि मरिसिदं तेण॥73॥
1049. अग्गिम्मि दहणं तहा, तिल - तिल - कुव्वणं अत्थसत्थेहिं।
करवालोव्व हु सेमर - देह - छिंदणं तरु - पत्तेहि॥74॥
1050. किमीकुलेहिं पूरिद - रत्तपीवाइ - जुद - वेतरणीए।
सद्दादीद-दुह-लहण-माइ-किच्छं बला सहंता॥75॥
1051. विलावंतो रुदंतो, कदलीघादमरण - असक्कत्तादु।
अइ-असुह-परिणामेहि, अइ-असुह-वेउव्वियेहिं च॥76॥
1052. महाकट्टेण भुंजिय, पुण्णाउं च णिस्सरित्ता तादो।
कूर-दुट्ट-तिरियेसुं, उप्पज्जीअ पाव-फलेणं॥77॥ (चदुत्थं)
1053. पच्छा सत्तम-णिरये, पुण पाउणिदं बहु-दुक्खं तेणं।
इत्थं बहुवारं सो, होही य तिरिक्ख-णेरइया॥78॥

उसके शरीर में अत्यंत कष्टदायक हजारों घावों से पीव बहने लगी। असहनीय पीड़ा से अति संक्लेश युक्त परिणाम एवं आर्त परिणामों से मरण करके वह छठवें नरक में उत्पन्न हुई॥71-72॥ वहाँ उस नारकी ने बाईस सागर तक घोर दुःखों को भोगा। पुनः पुनः द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव जनित दुःखों को उसने सहन किया॥73॥ अग्नि में दहन करना, अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा तिल-तिल करना, तलवार के समान सेमर के वृक्ष के पत्तों से देह का छेदना, कीटों के संकुल से भरी हुई रक्त-पीव आदि से युक्त वैतरणी नदी में शब्दातीत दुःखों को प्राप्त करना इत्यादि दुःखों को जबरदस्ती सहते हुए, विलाप करते हुए, रोते हुए, अति अशुभ परिणामों एवं अति अशुभ विक्रिया के साथ वहाँ कदलीघात मरण नहीं होने से महाकष्टपूर्वक अपनी पूर्ण आयु को भोगा। पुनः वहाँ से निकलकर वह जीव पाप के फलस्वरूप क्रूर-दुष्ट तिर्यज्ज्वों में उत्पन्न हुआ॥74-77॥ उसके पश्चात् वह जीव सातवें नरक में उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने बहु दुःखों को प्राप्त किया। इस प्रकार वह सिंधुमती का जीव कई बार नारकी व तिर्यच हुआ॥78॥

1054. अपसत्थ-तिरिय-गदीइ, बेवारं साणिल्लिया पुणो सा।
सूकरी पुण जंबुगा, णंतरं मूसिगा जलूगा॥79॥
1055. पच्छा करिणी वडवा, गोहेरो पाव-फलं भोयंतो।
सेस-पावफलेणं दु, दुग्गंधिदा अच्चंतदुही॥80॥
1056. बंधु-आदीहि णिंदिद-तिरक्करिदा सव्वजणसमूहेहि।
धणमित्तस्स हु पुत्ती, पूदीगंधा पावभोयी॥81॥ (जुम्मं)
1057. तए सिंधुमदि-भवम्मि, णो पालिदा पदि-अण्णा चित्तेण।
रूवमदेण पस्सिदो, णियपदी अइ-तुच्छो तादो॥82॥
1058. णेव पदिसुहं अस्सि, भवम्मि णिय-पदि-विजोगस्स पीडा।
कम्मं किद-छाया तं, कज्जं करिदुं जागरूओ॥83॥ (जुम्मं)
1059. मुणि-णिंदगो वा हणगो, जिणसासण-घादगो णिच्छयेणं।
तस्स धण-पय-पदिट्ठा-देह-कुडुंबादी खयंति दु॥84॥
1060. मुणिवयणं सुणिदूणं, भव-देह-भोयादो विरत्ताए।
णियपुव्वभव-पावेण, कंविदाए खलु पुच्छिदं च॥85॥
1061. पुण-पुण परियंदित्ता, पावमुत्तीए चिय उवाओ किं।
हे सामी! हे णाहो!, अणुग्गहिदूण आअक्खेज्ज॥86॥ (जुम्मं)

पुनः वह सिंधुमती अप्रशस्त तिर्यच गति में दो बार कुत्ती हुई, फिर शूकरी हुई, फिर सियारिनी हुई, फिर चुहिया हुई, फिर जौक हुई॥79॥ पश्चात् हथिनी हुई, गधी हुई। फिर गोहेरा (गुहा अथवा विषखपरिया) हुई। पुनः पाप के फल को भोगते हुए शेष पाप के फल से अत्यंत दुःखी, दुर्गन्धित शरीर वाली, बंधुओं आदि के द्वारा निन्दित, सभी जनसमूह के द्वारा तिरस्कृत, पाप को भोगने वाली तुम धनमित्र की पुत्री पूतीगंधा हुई हो॥80-81॥ तुमने उस सिंधुमती के भव में मन से पति की आज्ञा का पालन नहीं किया एवं रूप-सौंदर्य के अहंकार में अपने पति को अति तुच्छ देखा जिससे इस भव में तुम्हें पति का सुख नहीं है, अपने पति के वियोग की पीड़ा है। कर्म करनी की परछाई है अतः कार्य करने में सदैव जागरूक रहो॥82-83॥ मुनि निंदा व हनन करने वाला निश्चय से जिनशासन का घातक होता है। उसका धन, पद, प्रतिष्ठा, देह, परिवार आदि सब नाश को प्राप्त हो जाते हैं॥84॥

1062. अहो पुत्ती! इह भवे तुमं, समत्था सगपावं खयिदुं।
पाव - मोअणाइ तुमं, पावेज्जा जिणधम्म - सरणं॥87॥
1063. महव्वद - समिदि - गुत्ती, पालंता लोचाइ - सत्त - गुणं चा
पंचिंदियं विजित्ता, सडावसियं दु पकुव्वंता॥88॥
1064. रयणत्तय-संजुत्ता, वज्जुसहणाराय-धारगा जे हु।
कुव्वंति बारस-तवं, तह आदावणाइ-जोगं च॥89॥
1065. सुद्धप्पे संलीणा, बावीस-परीसहं च जयिदूणं।
लहंति सिवसुहं ते, सुक्कज्झाण-बलेण णियमा॥90॥ (तिअं)
1066. थीलिंगं छिंदेदुं, सम्मत्तजुद - महव्वदं पालेज्जा।
असुहसंवरो य पउर-णिज्जरा समत्तभावेणं॥91॥
1067. सम्मसङ्गाए जो वि, पालदि बहुवदमेगं भव्वो वा।
पावेदुं सारज्जं, समत्थो णिव्वाणसोक्खं च॥92॥
1068. पुण सा कहदि विणयेण, समत्थो सव्वं जाणिदुं सामी।
पुव्वसंचिदकम्मादु, मुत्तीए किं कुव्वेमु कह॥93॥

मुनि के वचनों को सुनकर जो संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो गई थी, अपने पूर्वभव के पाप को सुनकर जो काँप रही थी, ऐसी पूतीगंधा ने पुनः पुनः नमस्कार करते हुए मुनिराज से पूछा! हे स्वामी! हे नाथ! पापों से मुक्त होने का क्या उपाय है, कृपया कर कहिए॥85-86॥ पुनः मुनिराज ने कहा—हे पुत्री! तुम इस भव में अपने पापों का क्षय करने में समर्थ हो। पाप से छुटकारा पाने के लिए तुम्हें जिनेंद्र देव द्वारा प्रणीत धर्म की शरण प्राप्त करनी चाहिए॥87॥ जो रत्नत्रय से युक्त, वज्रवृषभनाराच संहनन के धारी, महाव्रत, समिति, गुप्ति व केशलुंचन आदि सात गुणों का पालन करते हुए, पंचेन्द्रियों को जीतकर षडावश्यकों को करते हुए बारह तपों व आतापन आदि योग को करते हैं, शुद्धात्मा में लीन हैं, बाईस परीषहों को जीतकर वे शुक्लध्यान के बल से नियम से मोक्ष प्राप्त करते हैं॥88-90॥ स्त्रीलिंग के छेदन के लिए सम्यक्त्व युक्त महाव्रतों का पालन करना चाहिए। समत्वभाव से अशुभ का संवर और उसकी प्रचुर निर्जरा होती है॥91॥ जो भी भव्य जीव सम्यक् श्रद्धापूर्वक एक या बहुत व्रतों का पालन करता है वह स्वर्ग का साम्राज्य पुनः निर्वाण सुख प्राप्त करने में समर्थ होता है॥92॥ वह पूतीगंधा पुनः विनयपूर्वक कहती है—हे स्वामी! आप सब जानने में समर्थ हैं। पूर्व संचित पाप कर्मों से मुक्ति के लिए मैं क्या करूँ, कहिए मुनिवर॥93॥

1069. धीरेण सुणसु पुत्ती!, पावक्खयहेदू णिअमो पूया।
संजम-वद-भत्ती वा, जदि पावक्खयं दु इच्छेसि॥94॥
1070. दोत्थ - दुरावत्थाणं, देवरायाइ - सुपसत्थ - पदं तो।
रोहिणिवदं पालेज्ज, णिट्ठाइ विहीइ सत्तीए॥95॥ (जुम्मं)
1071. करुणा-मिस्सिद-वयणं, आयण्णिदूण उप्पालिदं ताइ।
हे मुणिवरो! का विही, रोहिणीवदस्स कहं करमु ॥96॥
1072. विहिं रोहिणीवदस्स, सावहाणं होच्च सुणेसु पुत्ती!।
दयाणिहाण-मुणिणा दु, आइक्खिदं अप्पहिदत्थं॥97॥
1073. पणिंदिय-विसय-मुज्झिय, कसायं वि ओग्गहेज्ज उववासं।
सुभावेहि पडिमासे, चंदे रोहिणीणक्खत्ते॥98॥ (तिअं)
1074. सत्तवासमासंतं, उक्किट्ठेण पणवासमासंतं।
मज्झमेणं तियवास-तिमासंतं जहण्णेणं च॥99॥
1075. करेज्जा विसुद्धीए, सत्तीइ सोडसपहरोववासं।
सिरि-जिणिंद-देवस्स, जवं भत्तिं करेज्ज पूयं॥100॥

मुनिराज ने कहा—हे पुत्री! धैर्यपूर्वक सुनो, नियम, पूजा, संयम, व्रत और भक्ति पापों के क्षय का हेतु है। यदि तुम पापों के क्षय, दुर्गति व दुरावस्था के क्षय की इच्छा करती हो, देवराज आदि प्रशस्त पदों को प्राप्त करना चाहती हो तो निष्ठा से विधिपूर्वक शक्ति के अनुसार रोहिणी व्रत का पालन करो॥94-95॥ मुनिराज के करुणा मिश्रित वचनों को सुनकर उसने कहा—हे मुनिवर! रोहिणी व्रत की क्या विधि है, मैं किस प्रकार इस रोहिणी व्रत को करूँ? तब आत्महित के लिए दयानिधान मुनिराज ने कहा—हे पुत्री! रोहिणी व्रत की विधि को सावधान होकर सुनो। प्रत्येक महीने जब चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र पर हो तब चार प्रकार के आहार एवं कषाय का भी त्याग कर उपवास ग्रहण करना चाहिए॥96-98॥ यह व्रत उत्कृष्ट से सात वर्ष सात महीने, मध्यम रूप से पाँच वर्ष पाँच महीने एवं जघन्य से तीन वर्ष तीन माह तक करना चाहिए॥99॥ उस दिन शक्ति अनुसार विशुद्धिपूर्वक सोलह प्रहर का उपवास करना चाहिए एवं श्री वासुपूज्य भगवान् की भक्ति, पूजा और जाप करनी चाहिए॥100॥

1076. वदे पुण्णे हरिसेण, उच्छाहेण उज्जावणं करेज्ज।
णियसत्तीए अहवा, सत्तीइ हीणे वद-दुगुणं॥101॥
1077. किदण्हु-भाव-जुदाए, कहिदं पहू! अणुवगूहिय सत्तिं।
सुवदं गहेमि जम्हा, मुणिवयणं कल्लाण-हेदू॥102॥
1078. पावणासगं सुहदं, संतिदायगं कल्लाणकारगं।
पालिदं रोहिणिवदं, ताए सगपावक्खयेदुं॥103॥
1079. सगसत्तीए उत्तम - सुविहीए विसुद्धीइ पालिदं हु।
सत्तमासुत्तर - सत्त - वासपज्जंतं मुणिकिवाइ॥104॥
1080. रोहिणिवद-पालणादु, उप्पज्जमाण-परमविसुद्धीए।
पसत्थ-भावेहि-माउ-अंतम्मि णियदेहं मुंचिय॥105॥
1081. सोलसमच्चुदसग्गे, अप्पडिम-सुंदरिमा-सुरंगणा हु।
बहुविहव - इड्ढिधारग - दिव्वदेहवंतसुरिंदस्स॥106॥(जुम्मं)
1082. तत्थ पभुंजंता चिअ सुह - भोयाणि बहुयाल - पज्जंतं।
चयित्तु तादो राणी, रोहिणी सुवद-पहावेणं॥107॥

व्रत के पूर्ण होने पर हर्ष से शक्ति के अनुसार उत्साहपूर्वक उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापन की शक्ति न हो तो व्रत दुगुना करना चाहिए॥101॥ तब कृतज्ञभाव से युक्त हो पूतीगंधा ने कहा—हे प्रभु! अपनी शक्ति को न छिपाकर मैं व्रत ग्रहण करती हूँ। उचित ही है मुनि के वचन कल्याण के हेतु होते हैं॥102॥ अपने पापों के क्षय के लिए उस पूतीगंधा ने पाप को नाश करने वाले, सुख प्रदायक, शांति दायक व कल्याणकारक रोहिणी व्रत का पालन किया॥103॥ उसने मुनिराज की कृपा से अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम सम्यक् विधि से सात वर्ष सात माह पर्यंत विशुद्धिपूर्वक व्रत का पालन किया॥104॥ रोहिणी व्रत के पालन करने से उत्पन्न होने वाली परम विशुद्धि से आयु के अंत में प्रशस्त भावों से अपने शरीर का त्यागकर वह पूतीगंधा सोलहवें अच्युत स्वर्ग में बहुत वैभव, ऋद्धि के धारक, दिव्य देह से युक्त, सुरेंद्र की असाधारण सौंदर्य से युक्त देवांगना हुई॥105-106॥ यहाँ स्वर्ग में बहुत काल पर्यंत शुभ भोगों को भोगती हुई वहाँ से च्युत होकर श्रेष्ठ व्रत के प्रभाव से रोहिणी हुई॥107॥

1083. भुंजंत-इत्थीइ अघेहि किच्छं,
णाणाकुजोणीसु भमाडिदं वा।
पुण्णोगकम्मस्सुदयादु होज्जा,
सा रोहिणी राणि-सुपुण्णवंता॥108॥

1084. जोगेहि कुव्वेदि सुहे पवट्टिं,
जो सो णिवट्टिं असुहस्स णिच्चं।
सोक्खं लहंतो हवदे समत्थो,
किच्छं खयेदुं णियमेण भव्वो॥109॥

इस प्रकार पाप कर्मों के द्वारा दुःखों को भोगती हुई उस सिंधुमती ने नाना कुयोनियों में भ्रमण किया। पुनः एक पुण्य कर्म के उदय से वह अतिपुण्यवान् रोहिणी रानी हुई॥108॥ जो भव्य जीव तीनों योगों से शुभ में प्रवृत्ति करता है, अशुभ की निवृत्ति करता है वह नियम से सुख को प्राप्त करते हुए दुःख को नष्ट करने में समर्थ होता है॥109॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में पूतीगंधा (रोहिणी के पूर्वभव व रोहिणी व्रत की विधि) का वर्णन करने वाला नवम नंद पूर्ण हुआ।

दसम-णंदो

1085. पुण अमियासव-मुणिवर-चरणेसुं भाववंदणं किच्चा।
सपुव्वभवो पुच्छदो, असोगेणं उच्छाहेणं॥1॥
1086. भो णिवो! जीवो इमो, मिच्छत्तेणं भमदि अणादीदो।
अण्णाण-कसायेहिं, अजाणंतो जहत्थरूवं॥2॥
1087. भवदुक्ख-मोयणाए, विरत्तीइ भव-सरीर-भोयादो।
पुण्णपावदंसावग-पुव्वभवा सुणह थिरमणेण॥3॥
1088. जंबुदीवस्स भरदे, सगडदेसम्मि य सीहपुरणयरं।
सीहसेणो भूवदी, धीरो उवयारी किवालू॥4॥
1089. विक्कंतो सीहोव्व य, हंसोव्व णायप्पियो सुप्पसिद्धो।
धम्मकज्जेसु लीणो, सुजणगोव्व तह णियपयाए॥5॥ (जुम्मं)
1090. तस्स पाणवल्लहा दु, कणयपहा सुरम्मा णिवाणुयरा।
कत्तव्वणिट्ठा धम्म-कज्जेसु सहगारी णिच्चं॥6॥
1091. ताणं अइ - दुग्गंधिद - देह - जुदो पूदीगंधो पुत्तो।
णिय-पाव-फल-भोयी य, दुब्भगो दुक्कंदिरो दुक्कुहो दु॥7॥

पुनः श्री अमितास्रव मुनिराज के चरणों में भावपूर्वक वंदन करके अशोक ने उत्साहपूर्वक अपने पूर्वभव पूछे॥1॥ तब मुनिराज ने कहना प्रारंभ किया—हे राजन्! यह जीव अनादिकाल से मिथ्यात्व, अज्ञान व कषायों के कारण यथार्थ स्वरूप को न जानते हुए संसार में परिभ्रमण कर रहा है॥2॥ संसार के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए एवं संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति के लिए पुण्य व पाप को दर्शाने वाले अपने पूर्वभवों को मन की स्थिरतापूर्वक सुनो॥3॥ इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में शकट देश है। उसमें सिंहपुर नाम का नगर है। वहाँ का राजा सिंहसेन था। वह राजा धीर, उपकारी व कृपालु था। वह सिंह के समान विक्रमी, हंस के समान न्यायप्रिय, सुप्रसिद्ध, धर्म कार्यों में लीन रहने वाला और अपनी प्रजा के लिए श्रेष्ठ पिता के समान था॥4-5॥ उसकी कनकप्रभा नामक प्राणवल्लभा थी। वह मनोहरा, राजा की अनुचरी, कर्तव्यनिष्ठ एवं राजा के धर्म कार्यों में नित्य सहयोगी थी॥6॥ उनके अति दुर्गन्धित देह से युक्त पूतीगंध नामक पुत्र था, जो अपने पाप के फल को भोगने वाला, दुर्भग, अत्यंत आक्रंदन करने वाला एवं असहिष्णु था॥7॥

1092. सीहपुर-समीवम्मि दु, रम्मं महुज्जामं आगच्छिदं।
णियधम्मसाहणाय दु, समये समये सणिगंथेहि॥8॥
1093. एयदा विमलमदणो, णिगंथो य सुमेरुव्व अकंवो।
तवस्सी वीर-धीरो, आदावणाइ-जोग-जुत्तो॥9॥
1094. णिम्मलरयणत्तयेण, जुदो विसिट्ठवेरग्ग-पूरिदो या।
उक्कट्ठधम्मज्झाण-संजुदो सुद्धप्पे लीणो॥10॥
1095. णिव्विअप्प-झाणी तह, वीयराय-सम्मत्त-संजुत्तो या।
आगच्छीअ उववणं, पुण कसायं उवसमिदूणं॥11॥
1096. आरोहीअ उवसमं, पुणो ओरसीअ कालक्खयादो।
अच्चंत-विसुद्धीए,आरोहीअखवग-सेणिंच॥12॥(चउक्कं)



उस सिंहपुर नगर के समीप एक मनोहर महा उद्यान था। जहाँ अपनी धर्मसाधना के लिए समय-समय पर निर्ग्रन्थ मुनिराज आते थे॥8॥ एक बार उस उपवन में विमलमदन नामक निर्ग्रन्थ मुनिराज पधारे। वे सुमेरु पर्वत के समान अकंप, तपस्वी, धीर-वीर, आतापन आदि योगों को धारण करने वाले, विशिष्ट वैराग्य से परिपूरित, उत्कृष्ट धर्मध्यान से संयुक्त, शुद्धात्मा में लीन, निर्विकल्प ध्यानी तथा वीतराग सम्यक्त्व से युक्त थे। वे वहीं कषायों का उपशम करके उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुए; पुनः कालक्षय के कारण वे उपशम श्रेणी से नीचे आ गए। फिर अत्यंत विशुद्धि से कर्मों का क्षय करते हुए वे क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए॥9-12॥

1097. कम्मक्खयंतो विदिय - सुक्कज्झाणबलेणं घादित्ता।
तियघादिकम्माणि चिय, अणंतचदुट्टयजुदो होज्ज॥13॥
1098. सव्वणहु-सव्वदंसी, लोयालोयपयासगो भयवो दु।
जम्माइ-दोस-रहिदो, परमोरालिय-देहवंतो॥14॥
1099. केवलणाणुच्छवम्मि, पस्सिय तस्स आगच्छंत-देवा।
पासाद-छायणे ठिद-पूदीगंधो मुच्छिदो तह॥15॥
1100. सव्वाउला वाउला, तदा मुच्छिदे हु पूदीगंधम्मि।
उवयारो कुव्विदो दु, रायभिसगेणं तक्काले॥16॥
1101. विमलमदण-केवलिस्स, णियडे गच्छीअ सीहसेणो पुण।
पणमिय पदक्खिणित्ता, विणयेण धम्मसवणं कट्टु॥17॥
1102. पुच्छीअ भो भयवदो, किं कारणं मम सुदस्स मुच्छाइ।
विणिम्मलगुणधारगो, लोयालोयपयासगो तह॥18॥ (जुम्मं)
1103. वोच्छे पुव्वभवं हं, तव सुदस्स सुणेह होच्च सचेदं।
गणहरेण वज्जरिदं इत्थं दु करुणाबुद्धीए॥19॥
1104. जंबुदीवस्स भरदे, कलिंग-समीवत्थ-अयल-विंझम्मि।
उत्तरभागे असोग-घोरकाणणम्मि बे-हत्थी॥20॥ (जुम्मं)

पुनः द्वितीय शुक्लध्यान के बल से शेष तीन घातिया कर्मों को नष्ट कर अनंत चतुष्टय से युक्त हुए॥13॥ वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, लोकालोक को प्रकाशित करने वाले, जन्म आदि दोषों से रहित तथा परमौदारिक देह से युक्त जिनेंद्र भगवान् हुए॥14॥ उनके केवलज्ञान महोत्सव में आते हुए देवों को देखकर अपने महल की छत पर बैठा पूतिगंध मूर्च्छित हो गया॥15॥ पूतीगंध के मूर्च्छित होने पर सभी आकुल-व्याकुल हो गए तब राजवैद्य के माध्यम से तत्काल उसका उपचार किया गया॥16॥ पुनः राजा सिंहसेन विमलमदन केवली के निकट गए, उनको प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणा कर धर्म का श्रवण करके विनयपूर्वक पूछा हे लोकालोक प्रकाशक! निर्मल गुणों के धारक भगवन्! मेरे पुत्र पूतीगंध को मूर्च्छा आने का क्या कारण है?॥17-18॥ तुम्हारे पुत्र के पूर्वभवों को मैं कहता हूँ, राजन्! तुम सचेत होकर सुनो! इस प्रकार करुणाबुद्धि से गणधर देव ने कहा कि जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में कलिंग देश के समीप विंध्य पर्वत पर उत्तर भाग में अशोक नामक गहन वन में दो हाथी थे॥19-20॥

1105. कमसो य शंभगारी, सेदगारी णामेणं पसिद्धा।
एयदा जलं पिविदुं, गच्छीअ खलु एगं सरिदं॥21॥
1106. पुव्ववेरेण भिडित्तु, जलकारणेण परोप्परे लहित्तु।
अइदुक्खपुण्णमिच्चुं, मज्जारो मूसगो होही॥22॥
1107. तत्थ वि वेरभावेण, भिडिदूणं मरिदूणं च पुणो ते।
भुअंगो णउलो पुणो, परभवम्मि सेणो णायो य॥23॥ (जुम्मं)
1108. पुणो उहयो कवोदो, मिहो वेरेणं भिडित्ता मरीअ।
जंबुदीवस्स भरदे, अज्जखंडे अज्जपूरिदे॥24॥
1109. कणगपुर-रम्म-णयरे, सोमपहो पया-वच्छलो राओ।
महुरभासिआ राणी, सोमसिरी मणोहरा तस्स॥25॥ (जुम्मं)
1110. ताए रायसहाए, रायगुणेसु अणुरत्तो पुरोहो।
बहुसत्थपारंगदो, सोमभूदि-विवित्तो धम्मी॥26॥
1111. सोमिला तस्स पिया य, पदि-गुणाणुरत्ता सीलवंता या।
ताण बेपुत्ता विदू, सोमसम्मा सोमदत्तो य॥27॥
1112. ते शंभसेदगारी, धरिदूणं बहुपज्जायं कमसो।
मरित्तु पुण्णवइरेण, होज्जा पुरोह-पुत्ता इमे॥28॥

वहाँ से बैरपूर्वक मरण कर दोनों कबूतर हुए। पुनः परस्पर में बैर से लड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए। जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यजनों से पूरित आर्यखंड में कनकपुर नामक रमणीय नगर था। जहाँ प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव से युक्त राजा सोमप्रभ था। उस राजा सोमप्रभ की मधुरभाषिणी चित्त का हरण करने वाली रानी सोमश्री थी॥24-25॥ उस राजसभा में राजा के गुणों में अनुरक्त, बहुत शास्त्रों में पारंगत, विवेकवान् व धर्मिष्ठ पुरोहित सोमभूति था॥26॥ उस सोमभूति की सोमिला नामक प्रिय भार्या थी जो पति के गुणों में अनुरक्त व शीलवती थी। उनके सोमशर्मा और सोमदत्त नामक दो विद्वान् पुत्र थे॥27॥ वे स्तंभकारी व श्वेतकारी नामक हाथी क्रमशः बहुत-सी पर्यायों को धारणकर पूर्व बैर से मृत्यु को प्राप्त कर ये ही पुरोहित के पुत्र (सोमदत्त व सोमशर्मा) हुए॥28॥

1113. सगपिदर-सक्कारेण, सुसंगदीए सोमदत्तो पियो।
मणोहरो धम्मिदुओ, सब्बसुविज्जाकलाकुसलो॥29॥
1114. सोमसम्मा य रुद्धञ्जाणसंजुदो कलहपियो दुदुओ।
धम्ममग्गधंसगो य करुणाइसुगुण-विवज्जिदो य॥30॥
1115. सोमसम्मणो भज्जा, सुकंता मूढसहावी पावी या
उज्झिय धम्मञ्जाणं, तप्परा पइवसं करेदुं॥31॥
1116. धम्मविवरीदा ताइ, संदिद्धायरणं मलिणचित्तादु।
सोमसम्मा-सहावो, उच्छंखलो तह सच्छंदो॥32॥
1117. सोमदत्तस्स कंता, लच्छीमदी तहा चंचलचित्ता।
धम्मसक्कारहीणा, पवट्टी दु संकिदा ताए॥33॥
1118. णवरि भद्रपरिणामी, सोमदत्तो णो जाणिदुं सक्को।
ताए मणोभावा दु, मज्जादारक्खगो धम्मी॥34॥
1119. एयदिवसम्मि दु सोमभूदि - पुरोहे देहावसाणम्मि।
रायेण पदायिदं, पुरोह-पदं तस्स पुत्तस्स॥35॥

उनका प्रिय व मनोहर सोमदत्त नामक पुत्र अपने माता-पिता के संस्कारों से धर्मिष्ठ एवं सभी सम्यक् विद्याओं व कलाओं में कुशल था॥29॥ जबकि उनका सोमशर्मा नामक पुत्र रौद्रध्यान से संयुक्त, कलहप्रिय, दुष्ट, धर्ममार्ग का विध्वंस करने वाला एवं करुणा आदि श्रेष्ठ गुणों से रहित था॥30॥ सोमशर्मा की सुकांता नामक भार्या थी जो मूढ़ स्वभाव की व पापी थी। वह धर्मध्यान को छोड़कर अपने पति को वश में करने हेतु तत्पर रहती थी॥31॥ वह सुकांता धर्म से विपरीत व मलिन चित्त होने से संदिग्ध आचरण वाली थी। सोमशर्मा का स्वभाव उच्छृंखल व स्वच्छंद था॥32॥ सोमदत्त की पत्नी लक्ष्मीमति थी। वह चंचल चित्त वाली व धर्म संस्कार से विहीन थी। उसकी प्रवृत्ति शंकित थी॥33॥ जबकि विशेषता यह है कि सोमदत्त भद्रपरिणामी, मर्यादा का रक्षक व धर्मिष्ठ था। वह अपनी पत्नी के मनोभावों को जानने में समर्थ नहीं था॥34॥ एक दिन सोमभूति पुरोहित का देहावसान होने पर राजा ने पुरोहित का पद उसके पुत्र सोमदत्त को दे दिया; जो अपने कर्तव्यों में निष्ठावान्, न्याय-नीति में कुशल, राज्य के हित की आकांक्षा करने वाला एवं बहुगुणों से युक्त था॥35-36॥

1120. सकत्तव्वेसु णिट्ठावंतस्स कुसलस्स णायणीदीइ।
रज्जहिदाकंखिस्स - बहुगुणवंतं - सोमदत्तस्स॥36॥ (जुम्मं)
1121. णिवादु सोमभूदीव, लहिदो बहुमाणो आयरो तेण।
धम्म-रज्ज-कज्जेसुं, तं पुच्छिय णिण्णयं करीअ॥37॥
1122. सोमसम्मणो मूढा, थी पडिदिणे कहीअ सोमदत्तं।
भो भादू! तव इत्थी, दुच्चिण्णजुदा लच्छीमदी॥38॥
1123. दुम्मदी दुम्मणियेण, दुरब्भास-दुरज्झवसियेहि जुदा।
मम पदिणा सह रमदे, तुमम्मि अणुवट्ठिदम्मि सया॥39॥
1124. सुहासयसंजुद-सोमदत्तेण णेव विस्ससिदं कया वि।
किण्हु एयदिवसम्मि दु, पेच्छीअ ताण दुरायारं॥40॥
1125. इत्थीइ दुरायारं, जाणित्तु परितप्पंतो णिंदीअ।
सगभगं च माणसिग-पीडा सहादीदा तस्स॥41॥
1126. भारिअं तस्स चित्तं, कुवियारेहिं अट्टज्झाणेणं।
पज्जुण्णवरिसाए दु, सुक्क-कप्पास-पडलयं इव॥42॥
1127. अणंतरं सगचित्तं, विसुद्धं करिदं जिण्णिवयणाणि।
संतीइ चिंततेण, हिदंकरा अप्पविसुद्धी हि॥43॥

उस सोमदत्त ने राजा से अपने पिता सोमभूति के समान बहुमान व आदर प्राप्त किया। राजा धर्म व राज्य के कार्यों में उससे पूछकर निर्णय करता था॥37॥ सोमशर्मा की स्त्री जो मूढ़ प्रकृति की थी वह प्रतिदिन सोमदत्त से कहा करती थी—हे भाई! तुम्हारी स्त्री लक्ष्मीमती दुराचार से युक्त है॥38॥ तुम्हारी अनुपस्थिति होने पर वह दुष्ट मनोभाव, खराब आदतों व दुष्ट चिंतन से युक्त दुर्बुद्धा मेरे पति के साथ रमण करती है॥39॥ शुभाशय वाले सोमदत्त ने उस पर कभी भी विश्वास नहीं किया किन्तु एक दिन उसने स्वयं उनके दुराचार को देखा॥40॥ तब अपनी स्त्री के दुराचार को जानकर दुःखी होता हुआ वह अपने भाग्य की निंदा करने लगा। उस समय उसकी मानसिक पीड़ा शब्दातीत थी॥41॥ उसका चित्त आर्तध्यान और बुरे विचारों से उसी प्रकार बोझिल हो गया था जिस प्रकार मेघवर्षा से शुष्क कपास की गठरी बोझिल हो जाती है॥42॥ अनंतर शांतिपूर्वक जिनेंद्र वचनों का चिंतन करते हुए उसने अपने मन को विशुद्ध किया। सत्य है आत्मविशुद्धि ही हितकारी है॥43॥

1128. णिरुंभिदुं सव्वासव-मजोगकेवली जह समत्थो तह।
सगित्थिघादकुवियार-जणिदं रुद्ध्जाणं सो हु॥44॥
1129. तिक्काले तियलोए, अचिंतं जिणिंदवयणमाहप्पं।
जिणसासणं समत्थं, कुव्विदुं सिद्धो भव्वप्पं॥45॥
1130. इत्थिसहावेणं चिय, अइसय-चंचला पिप्पल-पत्तं वा
धम्मालंबणं विणा, कहं थिरं दु चित्तं ताए॥46॥
1131. मणो मक्कडो मच्छो, माणिणी य महुयरो मरू मदणो।
मेघो मज्जावीओ, मा मगारा दह-चंचला दु॥47॥
1132. जहवि धम्मजुत्ता थी, कल्लाण-णिमित्तं अवि पुरिसाणं।
सुहसक्कारविहीणा, सवर-पडण-णिमित्तं णिच्चं॥48॥
1133. तित्थयरस्स मादू वि, जगजणणी होदि अइपुण्णवंता।
जणदे णियपुण्णेणं, तित्थयरोव्व हु महापुरिसं॥49॥
1134. सची सक्कंगणा खलु, अच्चंतपुण्णवंता तिलोएसु।
जम्हा अग्गिम-भवम्मि, लहदि णिव्वाण-पयं णियमा॥50॥

अपनी दुराचारिणी स्त्री के वध रूप कुविचारों से उत्पन्न रौद्रध्यान को वह उसी प्रकार रोकने में समर्थ हुआ जिस प्रकार अयोगकेवली सर्वास्रव का निरोध कर देते हैं॥44॥ तीनों कालों और तीनों लोकों में जिनेंद्रप्रभु के वचनों का माहात्म्य अचिंत्य है। भव्यात्मा को सिद्धात्मा करने के लिए जिनशासन ही समर्थ है॥45॥ स्त्री स्वभाव से ही पीपल के पत्ते के समान अतिशय चंचल होती है। धर्म के आलंबन के बिना उसका चित्त स्थिर कैसे हो सकता है? अर्थात् धर्मावलंबन से ही चित्त की स्थिरता संभव है॥46॥ मन, वानर, मछली, मानिनी (नारी), मधुकर (भौरा), मरुत (वायु), मदन, मेघ, मद्यपायी और माँ (लक्ष्मी) ये दस मकार चंचल माने जाते हैं॥47॥ यद्यपि धर्म युक्त स्त्री, पुरुषों के लिए कल्याण का निमित्त भी है तथापि शुभ संस्कारों से रहित स्त्री नित्य स्व-पर के पतन का निमित्त ही है॥48॥ तीर्थकर प्रभु की माँ अतिपुण्यवती जगत्जननी होती हैं; क्योंकि वे अपने पुण्य से तीर्थकर के समान पुत्र को जन्म देती हैं॥49॥ शक्र अर्थात् सौधर्म इंद्र की इंद्राणी शची तीनों लोकों में अत्यंत पुण्यवती होती है; क्योंकि वह अगले भव में नियम से निर्वाण पद प्राप्त करती है॥50॥

1135. सव्वित्थी दोसजुदा, इदं वयणं णो सव्वदा सच्चं।
अज्जयाले वि वसुहा, सुसोहिदा सीलवंताहिं॥51॥
1136. देहो दु रोयजुत्तो, मोह-वड्ढुगो मोहो संसारो।
भोयाणि पाव-हेदू, डंसंति भुयंगोव्व णियमा॥52॥
1137. विसयेहि डक्कंताण, संजमो महामंतोव्व दंडोव्व।
पच्चक्खाणं जाणह, जिणभत्ती य वीणाङ्गुणीव॥53॥
1138. जिणधम्मरसायणेण, विणा अण्णा ओसही णेव का वि।
मम चित्तभेदि-पीडं, णिवारेदुं समत्था हंदि॥54॥
1139. अणादीदु मोहंतो, कुव्वदि रायदोसं परत्थेसुं।
णियरूवं विम्वहरित्तु, भमदे संसार-विविणे तं॥55॥
1140. मंथणीइ मंथंतो, णवणीदं जणदे हु दधिं मंथो।
णवरि मइ भवभमणेण, पाउणिदाइं अइदुक्खाइं॥56॥
1141. मे अप्पणो सहावो, पुधो पुग्गलाइ-अण्णदव्वादो।
णवरि णादुं असक्को, अण्णाणमिच्छत्तेहिं वा॥57॥

“सभी स्त्रियाँ दोष युक्त हैं” यह वचन सर्वदा सत्य नहीं है; क्योंकि आज इस समय भी यह पृथ्वी शीलवती नारियों से सुशोभित है॥51॥ यह शरीर रोग से युक्त है, मोह की वृद्धि करने वाला है और यह मोह ही संसार है। भोग पाप का कारण हैं जो नियम से जीव को सर्प के समान डसते हैं॥52॥ जिन्हें विषय रूपी सर्पों ने डसा है उनके लिए संयम को महामंत्र के समान, प्रत्याख्यान को डंडे के समान एवं जिनभक्ति को बीन की ध्वनि के समान जानना चाहिए॥53॥ जिनधर्म रूपी रसायन के बिना अन्य कोई भी औषधि मेरी मर्मान्तक पीड़ा का निवारण करने में समर्थ नहीं है॥54॥ अनादिकाल से मोहित होते हुए यह जीव पर वस्तुओं में राग-द्वेष करता है इसलिए अपने स्वरूप को भूलकर संसार रूप अरण्य में भ्रमण करता है॥55॥ मथानी हांडिया में दही को मथते हुए मक्खन उत्पन्न करती है किन्तु विशेषता यह है कि मथानी के समान इस भव में घूमते हुए मैंने अत्यंत दुःख ही प्राप्त किया है॥56॥ मेरी आत्मा का स्वभाव पुद्गल आदि अन्य द्रव्यों से पृथक् है; किन्तु अज्ञान वा मिथ्यात्व के कारण मैं उसे जानने में असमर्थ रहा॥57॥

1142. जदि कुणमि असुहभावं, सग-इत्थी-णिमित्तेण णियमा तो।
बुद्धेज्ज भवसायरे, खयिस्सदि मज्झ भव-अमुल्लो॥58॥
1143. सगभव-उट्टाणस्स दु, सगभावं करेज्ज सुहं विसुद्धं।
विहाय असुहणिमित्तं, सुहं सया अंगीकरित्ता॥59॥
1144. हिंसाइं विजहित्ता, अहिंसाइ-महव्वदं ओग्गहेज्ज।
सगकल्लाणत्थं खलु, समिदि-गुत्ती बारसतवं पि॥60॥
1145. संसारस्स भवभमण-कारणं अणेगमिच्छामयविसा।
पत्तेयं हिदत्थिणो, जिणसासणं हि परमसरणं॥61॥
1146. जिणवयण-बोहो तहा, जिणसासणस्स हिअयर-छाया णो।
वीयराय-जिणदेवं, विणा सिरिणिग्गंथगुरुणा य॥62॥
1147. दुहदा य णासवंता, चित्तरंजगा-पंचिंदिय-विसया।
वाहिमंदिरो देहो, किं रज्जेदि जीवो इमेसु॥63॥
1148. सुहं सारो ण किंचिवि, दुक्खपूरिद-संसार-सायरम्मि।
वेरग्ग-सारभूदं, तिक्कालम्मि य तियलोयम्मि॥64॥

यदि अपनी स्त्री के निमित्त से मैं अपने अशुभ भाव करता हूँ तो नियम से संसार सागर में डूब जाऊँगा और मेरा यह अमूल्य भव नष्ट हो जाएगा॥58॥ अपने मनुष्य भव के उत्थान के लिए मुझे अशुभ निमित्तों को छोड़कर व शुभ निमित्तों को स्वीकार कर अपने भाव सदा शुभ व विशुद्ध करने चाहिए॥59॥ अपने कल्याण के लिए हिंसादि पापों का त्याग कर, अहिंसा आदि पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति और बारह तप ग्रहण करने चाहिए॥60॥ संसार के अनेक मिथ्यामत व धर्म इस जीव के संसार परिभ्रमण में ही कारणभूत हैं। प्रत्येक हितार्थी के लिए मात्र जिनशासन ही परम शरण है॥61॥ वीतरागी जिनेंद्रदेव और निर्ग्रन्थ गुरु के बिना जिन वचनों का बोध नहीं हो सकता और जिनशासन की छत्रछाया प्राप्त नहीं हो सकती॥62॥ इंद्रियविषय दुःखद, नाशवान् और मन को अनुरंजित करने वाले होते हैं एवं ये शरीर व्याधियों का मंदिर है। तब जीव इनमें रंजायमान क्यों होता है?॥63॥ इस दुःख से भरे संसार रूपी सागर में न तो किंचित् सुख है और ना सार। तीनों काल व तीनों लोक में वैराग्य ही सारभूत है॥64॥

1149. भव्वुल्लो चिंतेज्जा, वेरग्गं वीयरायत्त-जणगं।
रयणत्तयं ण जणदे, चित्तम्मि दु विणा वेरग्गं॥65॥
1150. कुलकलंकिदा य धम्म-मज्जादा-भंजग-दुरायारिणी।
जहवि सा इत्थी तहवि, मण्णेमि कल्लाण-णिमित्तं॥66॥
1151. अहो! णिअडभव्वो हं, असुहेण सुहं करिदुं सक्को को।
जम्हा वेरग्ग-कारणं, विआणेदुं संसार-सरूवं॥67॥ (जुम्मं)
1152. कुणंतो सवरघादं, इमेण वित्ततेण मूढो जह वि।
पडेज्ज दोत्थेसुं सग-विवेगं णस्सिय कोहेणं॥68॥
1153. तहवि इदं वित्तंतो, हवेज्जा मज्झ कल्लाण-णिमित्तं।
विणाणिमित्तेणकोवि, णेवसमत्थोसवर-हिदाय॥69॥ (जुम्मं)
1154. इत्थं चिंतंतो सो, दु संसार - सरूवं विआणित्ता।
भव-सरीर-भोयादो, विरज्जिदूणं चिय गच्छीअ॥70॥
1155. परमवेरग्गिअ - धम्मचित्त - सिरि - धम्मसेणमुणि - समीवे।
तत्थ हु मुणिउवएसं, वेरग्गुप्पायगं चित्ते॥71॥
1156. जहत्थ-बोह-कारगं, समत्थं सव्वपावक्खयेदुं चा।
सुणिदूण तेण गहिदा, सव्वकल्लाणकारगा॥72॥
1157. अणादि-भव-संददिं दु, णासिदुं सव्वकम्म-विमोअणाइ।
समत्था जहाजादा, दियंवर-णिग्गंथ-दिक्खा य॥73॥ (चउक्कं)

वैराग्य के बिना चित्त में रत्नत्रय की उत्पत्ति नहीं होती, वैराग्य वीतरागता का जनक है अतः भव्यों को वैराग्य का चिंतन करना चाहिए॥65॥ यद्यपि वह स्त्री कुल को कलंकित करने वाली, धर्म व मर्यादा को भंग करने वाली दुराचारिणी है तथापि मैं उसे अपने कल्याण में निमित्त मानता हूँ क्योंकि वह संसार के स्वरूप को जानने व मेरे वैराग्य का कारण है। अहो! मैं निकट भव्य हूँ अन्यथा अशुभ निमित्त से शुभ करने में कौन समर्थ होता है॥66-67॥ यद्यपि इस वृत्तांत से मूर्ख व्यक्ति क्रोध से अपने वैराग्य को नष्ट कर स्वपर घात करता हुआ दुर्गतियों में जा पड़ सकता है तथापि यह वृत्तांत मेरे लिए कल्याण का निमित्त होगा। उचित ही है—बिना निमित्त के कोई भी स्वपर हित करने में समर्थ नहीं होता॥68-69॥

1158. जदा णिवेण जाणितो, सोमदत्त-दिक्खाइ समायारो।
पुरोह-पदे रिक्ते दु, सुप्पदिट्ठितो सोमसम्मा॥74॥
1159. सगसामिस्स किवाए, गुणहीणो लहदे जदि उच्चपदं।
सकत्तव्वं पालिदुं, कहं समत्थो होज्ज लोयम्मि॥75॥
1160. जह रयणाण भूसणं, पक्खीणं मिगसीहाइपसूणं।
णो सुहविट्ठि-कारगं, ते णस्संति तं कोउगेण॥76॥
1161. सोमसम्मा अवि पदं, लहिय करीअ सया विग्घुप्पणं।
सुहसुपुण्णकज्जेसुं, दुज्जणो पुण्णकज्ज-विमुहो॥77॥ (जुम्मं)
1162. माणवसेण सच्छंद-पवट्ठिं कुव्वंतो धम्मविमुहो।
धम्मविवरीद-कज्जं, करिदुं तप्परो अविवित्तो॥78॥

इस प्रकार चिंतन करता हुआ संसार के स्वरूप को जानकर संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर वह परम वैरागी, धर्मचित्त सोमदत्त श्री धर्मसेन मुनि के समीप में गया। वहाँ चित्त में वैराग्य को उत्पन्न करने वाला, यथार्थ बोध को कराने वाला, सर्व पापों का क्षय करने में समर्थ श्री मुनिराज का उपदेश सुना। पुनः संसार की अनादिकालीन संतति को नष्ट करने व सर्व कर्मों से छुटकारा दिलाने में समर्थ, कल्याणकारी दैगंबरी निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण की। उचित ही है अनादिकालीन संसार की परंपरा के नाश के लिए, सर्व कर्मों से छुड़ाने के लिए एक यथाजात दिगंबर निर्ग्रन्थ दीक्षा ही समर्थ है॥70-73॥ जब राजा सोमप्रभ को सोमदत्त की दीक्षा का समाचार ज्ञात हुआ तब पुरोहित पद के रिक्त होने पर उन्होंने सोमदत्त के भाई सोमशर्मा को ही उसके पद पर प्रतिष्ठित कर दिया॥74॥ उचित ही है यदि अपने स्वामी की कृपा से गुणहीन नर भी उच्च पद को प्राप्त कर ले तो वह अपने कर्तव्य का पालन करने में किस प्रकार समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता॥75॥ जैसे रत्नों के आभूषण पक्षियों या हरिण, सिंहादि पशुओं के सुख वृद्धि का कारण नहीं होते बल्कि वे कुतूहलवश उन्हें नष्ट कर देते हैं। वैसे ही सोमशर्मा भी पद को प्राप्त करके सदैव शुभ, प्रशस्त व पुण्यकार्यों में विघ्न उत्पन्न करता रहता था। सही ही कहा है कि दुर्जन पुण्य कार्य से विमुख होते हैं॥76-77॥ अहंकार के वशीभूत वह सोमशर्मा स्वच्छंद प्रवृत्ति करता हुआ धर्म विमुख रहता था। वह अविवेकी धर्म विपरीत कार्य करने में तत्पर रहता था॥78॥

1163. एयदा सोमपहेण, पट्टविदो णियविस्सासपत्तो दु।
रायदूदो सगडस्स, भूवदि-वसुपाल-समीवम्मि॥79॥
1164. तिलोयमंडल-करिणं, देज्ज मज्झं सुह-संधि-रीदीए।
अण्णहा दु संगामो, कहिदं णिवाणाणुसारेण॥80॥
1165. जहवि लहु-भूवदी हं, सातंतं अहियारो अम्हाणं।
णेव णमिस्संति वयं, तव अहंकारजुदं रायं॥81॥
1166. णो एगवराडिगा वि, देज्ज तव रायस्स ण कादरो हं।
जदि वंछदि संगामं, तो करेज्ज भासिदं वसुणा॥82॥
1167. सुणिय इमाणि वयणाणि, सोमप्पहो चिंतिदो अइ-कुविदो।
मम लहुत्थ-राओ अवि, णो पडिवज्जेदि मम अण्णं॥83॥
1168. भासेदि मिच्चुयालो, सुणियडो तस्स वसुवालस्स तं हं।
पस्सेस्सामि णिवं किं, उल्लंघण-फलं आणाए॥84॥ (जुम्मं)
1169. तदा हु मंतिमंडलो, सचिवो महामच्चो तह पुरोहो।
सेणापदि-इच्चादी, आहविदो चिय अक्कमणस्स॥85॥
1170. सगडदेसम्मि भूवदि-वसुवालस्स अविणय-सट्टाणं चा।
सव्वा तप्परा अत्थ-सत्थेहि जुदा उच्छाहेण॥86॥ (जुम्मं)

एक बार राजा सोमप्रभ ने शकट नामक देश के राजा वसुपाल के पास अपना विश्वस्त राजदूत भेजा॥79॥ राजदूत से राजा सोमप्रभ ने जैसा कहा था उसने वैसा ही प्रस्तुत किया हे राजन्! शुभ संधि रीति से आप मुझे त्रिलोकमंडल हाथी दे दें अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाइये॥80॥ यह सुनकर वसुपाल राजा ने कहा—यद्यपि मैं छोटा राजा हूँ किंतु स्वतंत्रता हमारा अधिकार है। हम तुम्हारे अहंकारी राजा को कभी प्रणाम नहीं करेंगे॥81॥ मैं कायर नहीं हूँ, तुम्हारे राजा के लिए मैं एक कौड़ी भी नहीं दूँगा। यदि वे युद्ध चाहते हैं तो करें॥82॥ राजा वसुपाल के इन वचनों को सुनकर राजा सोमप्रभ बहुत क्रोधित और चिंतित हुए कि मेरे से लघु स्थान पर स्थित (मेरा कनिष्ठ) राजा भी मेरी आज्ञा का पालन नहीं करता अतः प्रतीत होता है कि उस राजा वसुपाल का मृत्युकाल निकट है। आज्ञा के उल्लंघन का फल क्या होता है यह मैं उस राजा को दिखाऊँगा॥83-84॥ तभी राजा सोमप्रभ ने मंत्रीमंडल, सचिव, महामात्य,

1171. सज्जिदा थोगयाले, संपुण्णवाहिणी हु संगामस्स।
कणगपुर-णयर-बज्झं, ठाएज्जा य अप्पयालस्स॥४७॥
1172. सोमदत्त-मुणिं सुहज्झाणिं ठिदं च पडिमाजोगेणं।
णिहदं णिहदंभं, णिस्संगं भेदविण्णाणिं॥४८॥
1173. अवयच्छिदूणं तत्थ, डज्झंतिंगालं व अइ-कुविदेण।
मूढ - सोमसम्मणा दु, णिवेदिदं बद्धकरंजलीइ॥४९॥
1174. अहो पृथ्वीपालगो! संभवो हु महाअणट्टो अहुणा।
असुहं भासेमि तहा, साहुणा अवसगुणत्तादो॥९०॥ (तिअं)
1175. जदि कंखसि सुह-संतिं, सपजाए खेमकुसलत्तं तुमं।
रणम्मि जयलच्छि तो, करेज्ज संतिकम्मं सिग्घं॥९१॥
1176. सब्वाणिट्ठं खयिदुं, अत्थ ठिदणग्गसाहुं घादित्ता।
तस्स रत्तं दिसासुं, पक्किरेज्ज सवर-संतीए॥९२॥

पुरोहित तथा सेनापति आदि को बुलाया। राजा वसुपाल द्वारा की गई अविनय व उसकी दुष्टता के लिए शकट देश पर आक्रमण करने हेतु वे सभी अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर उत्साहपूर्वक तत्पर थे॥४५-४६॥ अल्प समय में ही संपूर्ण सेना युद्ध के लिए तैयार हो गई। कनकपुरनगर के बाहर अल्पकाल के लिए पूरी सेना ठहरी॥४७॥ वहाँ समीप में शुभध्यान में संलग्न, निर्द्वन्द, मान से रहित, परिग्रह से वर्जित, भेदविज्ञानी सोमदत्त नाम के महामुनिराज प्रतिमायोग से स्थित थे। उनको देखकर मूर्ख सोमशर्मा जलते हुए कोयले के समान बहुत क्रोधित हुआ और दोनों हाथों को जोड़कर राजा से निवेदन करने लगा—अहो पृथ्वीपालक! इन साधु के द्वारा अपशकुन होने से महा अनर्थ संभव है, मुझे कुछ अशुभ प्रतिभासित होता है॥४८-९०॥ यदि आप सुख-शांति चाहते हैं, अपनी प्रजा का क्षेम-कुशलत्व चाहते हैं, युद्ध में जयलक्ष्मी चाहते हैं तो आपको शीघ्र ही शांतिकर्म करना चाहिए॥९१॥ हे राजन्! सभी प्रकार के अनिष्ट के नाश के लिए एवं स्व-पर शांति के लिए यहाँ पर स्थित इन नग्न साधु को मारकर उनका रुधिर सभी दिशाओं में फेंकना चाहिए॥९२॥

1177. कूरवयणं सुणिच्चा, णिवेण पक्खोडिदं उहय-कण्णं।
भासिदं दु कुविदेणं, तुमं दुट्ठ-अधम-पाविट्ठो॥१३॥



1178. णिग्गंथा मुणिराया, लोयम्मि मंगलकारगा णिच्चं।
जत्थ णिग्गंथसाहू, सुब्भिक्ख-मंगल-जया तत्थ॥१४॥

1179. तदा महामच्चो तह, सेट्ठ-णिमित्तणाणी विस्सदेवो।
वेदपाढगो बंभणो, उप्पालेदि पुढविपदी भो!॥१५॥

1180. सोमसम्मो हु मिच्छं, कहेदि अण्णाणेणं वेरेणं।
णिग्गंथा मंगल्ला, सव्वहिदकारगा बंधू व्व॥१६॥ (जुम्मं)

1181. णिग्गंथमुणिदंसणं, सव्वकज्जसिद्धिकारगं णिच्चं।
सुहसगुण-दंसावगं, पावक्खयकारगं णेयं॥१७॥

पुरोहित सोमशर्मा के ऐसे क्रूर वचन सुनकर राजा ने अपने दोनों कान ढक लिए पुनः क्रोधित होते हुए राजा ने कहा तुम दुष्ट, अधम और पापी हो॥१३॥ निर्ग्रन्थ मुनिराज लोक में नित्य ही मंगलकारक होते हैं। जहाँ निर्ग्रन्थ साधु होते हैं वहाँ सुभिक्ष, मंगल और विजय होती ही है॥१४॥ तब श्रेष्ठ निमित्तज्ञानी, वेदपाठी ब्राह्मण विश्वदेव महामात्य कहता है, हे पृथ्वीपति! यह सोमशर्मा अज्ञान और बैर के वशीभूत होकर मिथ्या कहता है। निर्ग्रन्थ साधु मंगलकारी एवं बंधु के समान सभी का हित करने वाले होते हैं॥१५-१६॥ निर्ग्रन्थ मुनिराज के दर्शन नित्य ही सभी कार्यों की सिद्धि करने वाले, शुभ शकुन दर्शाने वाले एवं पाप क्षय करने में समर्थ होते हैं॥१७॥

1182. तस्स वरपहावेण, लहते संति हिंसगजंतू वि
वडरं विम्हरिदूणं, मिहो वसंति वच्छलेणं दु॥98॥
1183. सुक्क-तडागं वि होदि, णीरपूरिदं मुणिवर-पहावेण।
पुष्फफलहीण-रुक्खं, पुष्फफलपत्ताइ-जुत्तं॥99॥
1184. णिगगंथ-माहप्पं दु, देविंदो वि णो कहिदुं समत्थो।
धीमंताणुसारेण, साहू दंडभायगा णेव॥100॥
1185. पुण्णहिंसाचागी य, सेट्ट-सच्चमहव्वद-धारगा जे।
पालंति अचोरियं तिलोयपुज्जबंभचेरजुदा॥101॥
1186. उहयपरिग्गहहीणा, सुद्धप्पलीणा ण कस्स जीवस्स।
होज्जसुह-संति-मंगल-पसत्थ-सिव-कारगातेचिय॥102॥ (जुम्मं)
1187. जस्स देसे पउमिणी, इत्थी रायहंसो य णिगगंथा।
तत्थ सया सुब्भिक्खं, णीदिण्हूहिं कहिदमित्थं॥103॥
1188. णिगगंथ-लोयवालो, लोगुत्तमो वर-सरणो सव्वाण।
सव्वमंगलेसुं सय, महामंगलो पुढविदेवो॥104॥

उनके दर्शन के उत्कृष्ट प्रभाव से हिंसक जंतु भी शांति प्राप्त करते हैं। वे भी बैर भाव को भूलकर परस्पर वात्सल्यपूर्वक रहते हैं॥98॥ निर्ग्रन्थ मुनिवरों के प्रभाव से सूखे तालाबों में भी पानी भर आता है, पुष्प व फलहीन वृक्ष भी पुष्प-फल व पत्ते आदि से युक्त हो जाते हैं॥99॥ निर्ग्रन्थ गुरु के माहात्म्य को देवेन्द्र भी कहने में समर्थ नहीं हैं। बुद्धिमानों के अनुसार साधु कभी भी दंड के भाजक नहीं होते॥100॥ जो पूर्ण हिंसा के त्यागी हैं, श्रेष्ठ सत्य महाव्रत के धारक हैं, अचौर्य व्रत का पालन करते हैं, जो तीनों लोकों में पूज्य ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त हैं, उभय (अंतरंग व बहिरंग) परिग्रह से हीन हैं, शुद्धात्म ध्यान में लीन हैं वे किस जीव के लिए सुख, शांति, मंगल, प्रशस्त व मोक्ष का कारक नहीं होते अर्थात् अवश्य होते हैं॥101-102॥ जिस देश में पद्मिनी स्त्री, राजहंस पक्षी और निर्ग्रन्थ गुरु होते हैं वहाँ सदैव सुभिक्ष होता है। इस प्रकार नीतिज्ञों के द्वारा कहा गया है॥103॥ निर्ग्रन्थ गुरु लोक के पालक होने से लोकपाल कहे जाते हैं। वे लोक में उत्तम और सभी के लिए श्रेष्ठ शरण हैं। वे पृथ्वी के देवता सदा सभी मंगलों में महामंगल हैं॥104॥

1189. धम्मसत्थेसु लिहिदं, णिग्गंथो सव्वदुक्खहारगो या
णिग्गंथ-दंसणेणं, दुब्भिक्खं दोत्थ-मघं खयदि॥105॥
1190. जत्थ णिग्गंथसाहू, विजयलच्छी सया सागदं करदि।
पदे पदे आणंदो, मंगलधम्मरूवादु तत्थ॥106॥
1191. दियंबरो अणगारो, वादरसणो रिसीकेसो जोगी।
जदी दमी समणो दिव्वास-जिदिंदिय- महव्वदी य॥107॥
1192. ताणं णामुच्चारण-मेत्तेण णिज्जरंति अघकम्माणि।
तिव्ववेग-पवणेणं, रुक्खादु पडंतपत्ताणि व॥108॥
1193. जह पचंड-आइच्चो सोसदि तडागजलं तहेव।
पावकम्मं णस्संति, मुणि-दंसण-वंदण-भत्तीहि॥109॥
1194. पवेसे णिग्गमणे तु, अस्सो गयो णिवो जलजुदकलसो।
उसहो सुसज्जिद-कण्णा, णिग्गंथ-मुणी हु मंगल्ला॥110॥
1195. मुणिदंसणफलमिदं हु, णिव-वसुवालो आगच्छिस्सेदि सुवे।
तिलोयमंडलगयेण, सह पहादे तव चरणेसुं॥111॥
1196. णिच्छयेणं विणयेण, सयमेव होज्जा हु तव आयत्तो।
भो राओ! णिग्गंथा, अयारण-बंधू सव्वाणं॥112॥ (जुम्मं)

निर्ग्रन्थ गुरु सभी दुःखों का हरण करने वाले हैं, निर्ग्रन्थ गुरुओं के दर्शन से दुर्भिक्ष, दुर्गति व पाप नष्ट होते हैं; ऐसा धर्मशास्त्रों में लिखा गया है॥105॥ जहाँ निर्ग्रन्थ साधु होते हैं वहाँ सदैव विजय लक्ष्मी स्वागत करती है। मंगल व धर्म का रूप होने से वहाँ पद-पद पर आनंद होता है॥106॥ दिगंबर, अनगार, वातरसना, ऋषिकेश, योगी, यति, दमी, श्रमण, दिग्वासा, जितेन्द्रिय और महाव्रती ये एकार्थवाची हैं॥107॥ उनके नामोच्चारण मात्र से पाप कर्म उसी प्रकार निर्जीर्ण होते हैं जिस प्रकार पवन के तीव्र वेग से वृक्ष से पत्ते निर्जीर्ण हो जाते हैं॥108॥ जैसे प्रचंड सूर्य सरोवर के जल को अवशोषित करता है उसी प्रकार मुनिराज के दर्शन, वंदन व भक्ति से पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं॥109॥ प्रवेश या निर्गमन के समय अश्व, हाथी, राजा, जल से भरा कलश, बैल, सुसज्जित कन्या एवं निर्ग्रन्थ मुनि मंगलकारी होते हैं॥110॥ वह विश्वदेव कहता है कि मुनिराज के दर्शन का फल यह है कि कल सुबह त्रिलोकमंडल हाथी के साथ राजा वसुपाल आपके चरणों में स्वयं आएगा। वह निश्चय से विनयपूर्वक स्वयं ही आपके आधीन होगा। हे राजन्! निर्ग्रन्थ साधु सभी के अकारण बंधु होते हैं॥111-112॥

1197. विस्सदेवस्स हु तदा, वयणं सुणिच्चा णिवो संतुट्ठो।
तस्स दु अणुसारेणं, णगरेसरो णिव - वसुवालो॥113॥
1198. तिलोयमंडलगयेण, बहु - उवहारेहि सह आगच्छीअ।
सोमप्पहेण कुणिदं, जहाजोगं चिय सम्माणं॥114॥ (जुम्मं)
1199. विजय - महुच्छवं तदा, कुव्वीअ उल्लासेण पमोदेण।
परोक्खे मुणिं णमित्तु, णिवो लीणो रज्जकज्जेसु॥115॥
1200. असिणा दु घादिदोहा, महामुणिरायो सोमसम्मणिआ।
पाविट्ट - णिद्वयेणं, पुव्ववडरसक्कारवसेण॥116॥
1201. सगचित्ते संतुट्ठो, हिंसाणंदि - रुद्वज्जाणेणं दु।
णिरयगामी कहं चिय, सक्केज्ज सुपुण्णं करेदुं॥117॥
1202. जाणिय सोमसम्मणो, कुक्किच्चं रायेण दंडिदो सो।
थुथूकारतेणं पण - दंडेण दुट्ठो - णिंदहमो॥118॥
1203. णीसारयीअ चिय सग - देसादु तं मुणि - धम्मघादगं चा।
सत्तदिवसे उदंबर-कुट्टरोयपीडिदो अहेण॥119॥ (जुम्मं)

तब विश्वदेव के वचन सुनकर राजा संतुष्ट हुआ। उसके कथनानुसार अगले ही दिन नगर का ईश्वर राजा वसुपाल त्रिलोकमंडल हाथी व बहुत उपहारों के साथ राजा के पास आया। राजा सोमप्रभ ने उसका यथायोग्य आदर सम्मान किया॥113-114॥ राजा ने परोक्ष में ही मुनिराज को नमस्कार कर उल्लास व प्रमोद के साथ विजय महोत्सव मनाया व पुनः राज्य कार्यों में लीन हो गया॥115॥ एक बार पूर्व बैर के संस्कारवशात् पापिष्ठ, निर्दयी सोमशर्मा ने हाय! उन सोमदत्त महामुनिराज का तलवार से घात कर दिया॥116॥ मुनिराज का घात कर हिंसांन्दी रौद्रध्यान के द्वारा वह अपने चित्त में संतुष्ट हुआ। सही है नरकगामी जीव पुण्य कार्य करने में समर्थ कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता॥117॥ सोमशर्मा का यह कुकृत्य जानकर राजा ने उस दुष्ट, निंघ व अधम को अपमानित कर पंचदंड से दंडित किया और उन मुनि व धर्म का घात करने वाले सोमशर्मा को देश से निकाल दिया। अपने ही पाप कर्म के द्वारा सात दिन में ही वह उदंबर कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया॥118-119॥

1204. गलिदकुट्टवाहीए, अच्चंत - जिण्णदेहुप्पण्णाइं।
बहुदुग्गंधवणाइं, भरिदाइं किमिसंकुलेहिं॥120॥
- 1205 अइदुग्गंधादु पहिग-जणा परिअट्टीअ सगमग्गं दु।
पावफलेणं जीवो, किं दुक्खं च णेव पप्पोदि॥121॥
- 1206 सहस्स-विच्छिएहिं च, डक्कोव्व असहणीय-कट्ट-जुत्तो।
तस्स करुण-कंदणं दु, वण्णजंतू वि पच्चड्डीअ॥122॥
- 1207 जह कम्मं तह फलं दु, उज्जेज्ज पावं वियारिय इत्थं।
पावीणं संगदी वि, पाव-कारणं तमामुयेज्ज॥123॥
- 1208 तादु णिग्गद-वग्गणा, होंति णियमेण अइ-पावरूवा हि।
भासदि एरिसो तदा, पावं वि ण सिहदि पाविट्ठं॥124॥
- 1209 अवस्समेव भुंजेदि, सगकिद-सुहासुहकम्माणि जीवो।
अण्णो णो सहगारी, जो कुणदि सो भुंजदि णियमा॥125॥

गलित कुष्ठ रोग से उसकी अत्यंत जीर्ण देह में बहुत दुर्गन्धित घाव हो गए। वे सभी घाव भी कृमियों के समूह से भर गए॥120॥ अति दुर्गन्धित शरीर होने से पथिक जन उसके आते ही अपना मार्ग बदल लेते थे। उचित ही है पाप के फल से जीव किस दुःख को प्राप्त नहीं करता अर्थात् सभी दुःखों को प्राप्त करता है॥121॥ उसके शरीर में उस समय ऐसी असहनीय पीड़ा होती थी मानो हजारों बिच्छुओं ने उसे एक साथ डस लिया हो। उसका करुण क्रंदन सुनकर वन्य जंतु भी वहाँ से चले जाते थे॥122॥ जैसा कर्म वैसा फल अर्थात् जीव जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है इस प्रकार विचार कर पाप को छोड़ देना चाहिए। पापियों की संगति भी पाप का कारण होती है अतः उसे भी छोड़ देना चाहिए॥123॥ उनसे निकलने वाली वर्गणाएँ भी नियम से अति पाप रूप ही होती हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे पाप भी पापिष्ठ को नहीं चाहता॥124॥ जीव अपने द्वारा किए गए शुभ व अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगता है। कोई भी सहयोगी नहीं है। जो करता है वह नियम से भोगता है॥125॥

हरिगीतिका छंद

1210. अइतिव्वदाए कसायाणं, मूढ-बुद्धीए णरो,
बहुहिंसभावं सो कुणंतो, महापावं बंधदे।
णिवसेज्ज भुंजेदुं दु णिरये, सायरंतं हंदि जं,
अच्चंत-दुह-कट्टं सहंतो, केण वि अणुप्पालिदं॥126॥
1211. अह बंधिदुं देवाउमादिं, सेट्टभावेहि सुहं,
अंतोमुहुत्तस्स य समत्थो, बंधयाले सव्वदा।
हिंसाइ-पावमयेहि जीवो, कूरपरिणामेहि हा!
बंधेदि णिरयाउं वि असुहं, भासिदं समणेहि वा॥127॥

कषायों की अति तीव्रता से नर मूढ़ बुद्धि बहुत हिंसा के परिणाम करता हुआ महापाप का बंध करता है; जिन्हें भोगने के लिए किसी के द्वारा नहीं कहे जाने वाले अत्यंत दुःख व कष्ट को सहन करते हुए सागरों पर्यंत नरक में वास करता है॥126॥ जीव आयु बंध के समय में अंतर्मुहूर्त के भी श्रेष्ठ भावों से शुभ देव आदि आयु का बंध करने में समर्थ होता है। हाय! वही जीव उस समय हिंसा आदि पापमय क्रूर परिणामों से अशुभ नरकायु का बंध करता है ऐसा श्रमणों के द्वारा कहा गया है॥127॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में सोमशर्मा के भव (अशोक का पूर्वभव) का वर्णन करने वाला दसवाँ नंद पूर्ण हुआ।

एथारसम-णंदो

1212. अइदुहेण पीडाजुद-मरणं लहिदूण उप्पज्जीअ सो।
घोरंधयार - संजुद - महातम - सत्तम - णिरयम्मि दु॥1॥
1213. तत्थ भूमि-फासेणं कोडि-सप्पेहिं चिय डक्क-कट्टं वा।
पाविदं दुहं तेणं, भुंजदि पावी घोरदुहाणि॥2॥
1214. अइदुग्गंधजुत्ता हु, णिरय-मट्टिआ तस्स दुग्गंधेण।
मज्झलोयम्मि खलु चउ-कोसंतं जीवा मरेज्जा॥3॥
1215. अच्चंत-मलिण-भावो, उक्किट्टकिणहलेस्सजुदो असुहो।
णिरयम्मि पत्तदुहं व, ण अण्णगदीसु दुहं सक्कं॥4॥
1216. अण्ण-णेरइया तस्स, अहिसंधी पारदोव्व सरीरं चा।
खंडीअ हणीअ किण्णु, णेव अयालमिच्चू णिरये॥5॥
1217. छुहावेयणाइ जुदो, तिलोयम्मि विज्जंतण्ण-भोत्तू व्वा।
ण लहीअ कणिगं किण्णु, भक्खीअ मट्टिं दुग्गंधं॥6॥

वह सोमशर्मा अतिदुःख से पीड़ा युक्त मरण को प्राप्तकर घोर अंधकार से संयुक्त महातम नामक सप्तम नरक में उत्पन्न हुआ॥1॥ वहाँ भूमि का स्पर्श होते ही उसे ऐसा कष्ट हुआ जैसे करोड़ों सर्पों ने एक साथ ही उसे डस लिया हो। उचित ही है पापी, घोर दुःखों को भोगता है॥2॥ उस नरक की मिट्टी इतनी दुर्गन्धित थी कि उसकी दुर्गंध से मध्यलोक के चार कोस तक के जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाएँ॥3॥ उस नरक में वह नारकी अत्यंत मलिनभाव वाला, उत्कृष्ट कृष्णलेश्या से युक्त व अशुभ था। नरक में जिस प्रकार का दुःख जीव प्राप्त करता है वह अन्य गतियों में शक्य नहीं है॥4॥ अन्य नारकी उसके पारे के समान (वैक्रियक) शरीर का बार-बार घात करते थे, बार-बार खंडित करते थे किन्तु नरक में अकाल मृत्यु नहीं होती॥5॥ उसे तीव्र क्षुधा की वेदना होती थी मानो तीनों लोकों में विद्यमान संपूर्ण अन्न को ही खाले किन्तु वहाँ एक भी कण अन्न का प्राप्त नहीं करता, वह दुर्गन्धित मिट्टी का ही भक्षण करता था॥6॥

1218. खमो असंखुवहिजलं, पिविदुं भासीअ तिसापीडाइ।
किण्णु बिंदु-मेत्तं अवि, णेव पावीअ दु णेरइयो॥7॥
1219. परोप्परे णेरइया, पुव्वभवा पुण-पुण पयरिदूणं चा
विकिरियाए दु णिम्मिद-सत्थेहि कट्टंति छिंदंति॥8॥
1220. कढंते पेल्लंते य, भिंदंति ओयत्तिदूण ताडंति।
अइकट्टेण णिक्कसिय, टलवलंता णिरिणासंते॥9॥
1221. सेमरतरुछायाए, घादंति तस्स पडंत-पत्ताइं।
करवालोव्व पुणो ते, उकुद्धंते वेतरणीए॥10॥ (तिअं)



तृषा की पीड़ा से उसे ऐसा प्रतिभासित होता था मानो वह असंख्यात सागरों का जल ही पी ले किन्तु वहाँ नारकी जल की एक बूंद मात्र भी प्राप्त नहीं कर पाता था॥7॥ अहो! नरक में नारकी जीव पुनः-पुनः पूर्वभवों का स्मरण कर परस्पर में विक्रिया से निर्मित शस्त्रों के द्वारा एक दूसरे को काटते हैं, छेदते हैं, कढ़ाई में उबालते हैं, पेलते हैं, झगड़ते हैं, उल्टा लटका कर ताड़ित करते हैं। पुनः वहाँ से कष्ट से निकलकर तड़फड़ाते हुए, घबराते हुए सेमर वृक्ष की छाया में भाग जाते हैं किन्तु वहाँ उसके गिरते हुए पत्ते तलवार के समान उसका घात करने लगते हैं पुनः वे वहाँ से भागकर वैतरणी नदी में कूद जाते हैं॥8-10॥

1222. किमिकुलसंकुलेहिं च, पल-रुहिरादीहि परिपूरिदाए।
कथ्य अवि सुहं संतिं, खणस्स वि लहंति णेरइया॥11॥
1223. कोडि-कोडि-जीहाहिं, समत्थो कहिदुं सुदकेवली णो।
णिरयघोरदुक्खाइं अंतोमुहुत्तस्स कट्ठं वि॥12॥
1224. भुंजित्ता अइकिच्छं, पुणो तेतीस - सायर - पज्जंतं।
तत्तो णिस्सरिदूणं, अंत-सयंभूरमणुवहीइ॥13॥
1225. तिमिंगलजादिमच्छो, जस्स आयामो जोयण-सहस्सं।
विक्कंभो तस्सद्धो, बाहल्लं तस्स अवि अद्धं॥14॥ (जुम्मं)
1226. घोरदुहं भुंजित्ता, हिंसंतो संकिलेसभावेहिं।
अट्टज्जाणेणं सो, मज्जिदूणं दु उप्पज्जीअ॥15॥
1227. छट्टमतमणिरयम्मि दु बावीस-सायर-पज्जंतं तत्थ।
अकथ्यदुहं भुंजीअ, किण्णु णो उहट्टीअ पावं॥16॥ (जुम्मं)
1228. मुणिघादमहापावं, कहं अइ-सिग्घं णासेज्ज जीवो।
बहुभवेसु भुंजंतो, किच्छं परिभमदि दुग्गदीसु॥17॥
1229. मुणिणिंदाए फलेण, रोयि-दुभगो वियलंगो दरिद्धो।
मुणिवध-भयअर-फलं ण, भवे भवे भुंजिदुं सक्को॥18॥

वह नदी भी कृमिकुलों के समूहों से भरी एवं पीव, रक्त आदि से परिपूरित होती है। हाय! उन नारकियों को क्षणमात्र की भी सुख-शांति कहीं नहीं मिलती॥11॥ नरक के अंतर्मुहूर्त के घोर दुःखों व कष्ट को श्रुतकेवली भी कोटि-कोटि जिह्वाओं से भी कहने में समर्थ नहीं हैं॥12॥ पुनः तैंतीस सागर पर्यंत अतिकष्ट को भोगकर वह जीव वहाँ से निकलकर अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में तिमिंगल जाति का मत्स्य हुआ जिसके शरीर की लंबाई हजार योजन, चौड़ाई उसका आधा अर्थात् 500 योजन और ऊँचाई उसका आधा अर्थात् 250 योजन थी॥13-14॥ वहाँ वह जीव हिंसा करते हुए घोर दुःखों को भोगकर संक्लेशपूर्वक आर्तध्यान से मृत्यु को प्राप्त कर छठवें तमः प्रभा नामक नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ बाईस सागर पर्यंत उसने अकथनीय दुःखों को भोगा किन्तु उसके पाप अभी भी नष्ट नहीं हुए॥15-16॥ मुनिघात महापाप है; अतः जीव उस महापाप को अति शीघ्र किस प्रकार नष्ट कर सकता है? नहीं कर सकता। बहुत भवों में कष्टों को भोगते हुए वह जीव दुर्गतियों में परिभ्रमण करता है॥17॥ मुनि निंदा के फल से जीव रोगी, दुर्भग, विकलांग व दरिद्र होता है। जीव मुनिवध से उत्पन्न पाप के भयंकर फल को भव-भव में भी भोगने में समर्थ नहीं होता॥18॥

1230. णिरयादो णिस्सरित्तु, सेसाहेण सीहो दुट्ट - कूरो।
बहुजीवा घादित्ता, भरीअ सग-उदरं रुद्धेण॥19॥
1231. जहवि सीह-पज्जाये, कल्लाणभावो सक्को वीरोव्वा।
वणे मुणिदंसणेणं, तस्स धम्मामिय-पाणेणं॥20॥
1232. किण्णु पावदे जीवो, पावोदये जिणमुणिदंसणं णो।
जिणमुणिदंसणं धम्म-सवणं सुभावा पुण्णफलं॥21॥
1233. णियबुद्धावत्थाए, मिगयं णेव धरिदुं समत्थो सो।
छुहाउरो संकिलेस-भावेहि मरिय पणम-णिरये॥22॥
1234. जादो णेरइयो चिय, सत्तरस - सायर - पज्जंतं दुहं।
घोरं भुंजीअ पुणो, णिस्सरिदूण तत्तो सप्पो॥23॥
1235. अइ - विसवो दु णियपुव्व - सक्कारवसेणं हणीअ जीवा।
तत्थ अइ - कोह - मिस्सिद - घोर - संकिलेस - भावेहिं॥24॥
1236. बंधीअ चदुत्थ - णिरय - आउं मज्जित्तु णेरइयो तत्था।
दह-सायर-पज्जंतं, वयणादीद-अइ-दारुणं च॥25॥
1237. किच्छाइं भुंजंतो, मरणं किच्चा संकिलेसदाए।
हिंसगो कुविद-बग्घो, अह वण्ण-साण-समूहेणं॥26॥
1238. मरणं लहिय अच्चंत-कोह-भावेण जादो णेरइयो।
तिदिय मेहा-णिरयम्मि, तत्थ घोर-किच्छं भुंजित्तु॥27॥
1239. णिस्सरिदूणं तत्तो, दुरासय - गिद्धो कूरपरिणामी।
मूसग - कुक्कुडसावग - सयलि - ससगसावग-पहुदीण॥28॥
1240. अइगिद्धपरिणामेहि, सरिदाइ सुक्कट्टाणे - जीवाणा।
भक्खीअ कलेवरं च, पडिद-अत्थि-कीकसं मंसं॥29॥ (अट्टगं)

पुनः नरक से निकलकर वह जीव शेष पाप से दुष्ट व क्रूर सिंह हुआ। वह रौद्रध्यानपूर्वक बहुत जीवों का घात करके अपना पेट भरता था॥19॥ यद्यपि सिंह पर्याय में भी कल्याण का भाव शक्य है। जैसे वन में, सिंह पर्याय में भगवान् महावीर स्वामी के जीव में मुनिराज के दर्शन से व उनके धर्माभूत के पान से कल्याण का भाव उत्पन्न हुआ था॥20॥ किन्तु पाप के उदय

1241. सहसा जलविट्टीए, अदिसय-सलिल-परिपूरिदा सरिदा।
जलपवाहेण मिच्चुं, लहिय संकिलेसभावेहिं॥30॥
1242. विदिय-णिरयम्मि पच्छा, तिण्णिणसायर-पज्जंतं भुंजीअ।
अइदुहरूवाघफलं सक्करापहा-भूमीए दु॥31॥ (जुम्मं)
1243. तिदिय-णिरयंतं हंदि, संभवो तिथ्ययर-पइडि-बंधगो।
चदुत्थादो णिस्सरिय, समत्थो केवली होदुं च॥32॥
1244. पंचमादो णिग्गदो, णिग्गंथ-मुणिवरो होदुं सक्को।
छट्टणिरयादो तहा, सावयो हवेदुं समत्थो॥33॥

में जीव को जिनदर्शन व मुनिदर्शन प्राप्त नहीं होते। जिनदर्शन, मुनिदर्शन, धर्मश्रवण व प्रशस्त भाव ये चार पुण्य के फल हैं॥21॥ वह सिंह अपनी वृद्धावस्था में शिकार पकड़ने में समर्थ नहीं रहा। वह क्षुधातुर सिंह संक्लेश भावों से मृत्यु को प्राप्त कर पंचम नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ उस जीव ने सतरह सागर पर्यंत घोर दुःखों को भोगा पुनः वहाँ से निकलकर अति विषैला सर्प हुआ। अपने पूर्व संस्कारों के वशीभूत वहाँ वह जीव बहुत जीवों का घात करता था। तब अति क्रोध मिश्रित घोर संक्लेश भावों से उस जीव ने चतुर्थ नरक की आयु का बंध किया। मृत्यु को प्राप्तकर वह नारकी हुआ। वहाँ दस सागर पर्यंत वचनातीत अति दारुण दुःखों को भोगते हुए संक्लेशतापूर्वक मरण कर हिंसक व क्रोधित बाघ हुआ। वहाँ जंगली कुत्तों के समूह के द्वारा अत्यंत क्रोध के भाव से मरण को प्राप्त हुआ एवं तृतीय मेघा नामक नरक में नारकी हुआ। वहाँ घोर कष्टों को भोगकर वहाँ से निकलकर दुराशय वाला क्रूरपरिणामी गृद्ध हुआ। वह अति आसक्त परिणामों से नदी के शुष्क स्थान पर स्थित मूषक, मुर्गे के बच्चे, मछली, खरगोश के शिशु आदि जीवों के कलेवर, पड़े हुए अस्थि, माँस, हाड़ का भक्षण करता था॥22-29॥ अचानक जल वृष्टि से वह नदी अतिशय जल से परिपूरित हो गई। तब जल प्रवाह से संक्लेश भावों से मृत्यु को प्राप्तकर वह शर्कराप्रभा नामक द्वितीय नरक में उत्पन्न हुआ। पश्चात् तीन सागर पर्यंत अति दुःख रूप पाप के फल को भोगा॥30-31॥ देखो! तृतीय नरक तक तीर्थकर प्रकृति का बंधक संभव है। चतुर्थ नरक से निकलकर जीव केवली होने में समर्थ होता है॥32॥ पंचम नरक से निकलकर जीव निर्ग्रन्थ मुनि तो हो सकता है किन्तु केवली नहीं। षष्ठम नरक से निकलकर जीव श्रावक तो हो सकता है किन्तु मुनि नहीं॥33॥

1245. सत्तमणिरयादो चिय, णिस्सरिदूणं हवेज्जा जीवो या
कूर-परिणामि-तिरियो, पुणो उप्पज्जेदि णिरये हि॥34॥
1246. विदियणिरयाउं तदा, पुण्णं कट्टु होही बगो पक्खी।
अज्जिदं घोरपावं, मच्छाइ-भक्खेण कवडेण॥35॥
1247. दारु-आघाडगेणं, चंचूए फोडिदं तस्स णयणं।
तदा अंधत्तादो य, पडीअ कद्दमे एयदा हु॥36॥
1248. कंटियेण वणिदो सो, भक्खिदो पिपीलिगाइ-कीडेहिं।
संकिलेस-भावेहिं, मज्जित्ता पुणो णेरइयो॥37॥
1249. पढम-रयणप्पहाए, उप्पण्णो अट्टरुद्दज्जाणेण।
सायरेगपज्जंतं, भुंजीअ पणविह-दुक्खाइं॥38॥
1250. तत्तो णिस्सरिदूणं, अहवा तुज्झ पूदीगंध-पुत्तो।
जेण भुंजिदं बहुविह-किच्छ-घोरं-णिरय-तिरियाण॥39॥
1251. असुरकुमार-देवाणं, विमाणाइं चिय अवयज्जिदूणं।
जादि-सिमरणं तदा हु, णियदुहदणिरयावत्थाए॥40॥

सप्तम नरक से निकलकर जीव क्रूर परिणामी तिर्यच ही होता है व पुनः नरक में ही उत्पन्न होता है॥34॥ उधर वह पूतीगंध का जीव दूसरे नरक की आयु को पूर्ण कर बगुला पक्षी हुआ। वहाँ वह छलपूर्वक मछली आदि का भक्षण करता था अतः उसने घोर पाप अर्जित किया॥35॥ एक बार कठफोड़ा ने अपनी चोंच से उसकी आँखें फोड़ दीं। अंधा होने से किसी समय वह कीचड़ में गिर गया॥36॥ वहाँ काँटे से उसके घाव हो गए। चींटी आदि कीटों ने उसका भक्षण किया। संक्लेश भावों से मृत्यु को प्राप्त कर वह पुनः नारकी हुआ॥37॥ आर्त्त-रौद्रध्यान के कारण वह रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने एक सागर पर्यंत पाँच प्रकार के (भूमि, मौसम, मारकाट, भूख व प्यास जनित) दुःखों को भोगा॥38॥ वहाँ से निकलकर यह तुम्हारा पूतीगंध नामक पुत्र हुआ है। जिसने नरक व तिर्यचों के बहुत प्रकार के घोर दुःखों को भोगा है॥39॥ असुरकुमार देवों के विमानों को देखकर उसे अपनी दुःखद नरकावस्था का जाति स्मरण हो गया॥40॥

1252. पयरिदुं णो समत्थो, तव पुत्तो णिरयघोरदुक्खाइं।
तं सिमरण-मेत्तेणं, मुच्छिदो तदा बीहिदूणं॥41॥
1253. सव्ववित्तंतमित्थं, आयण्णिय अस्सुपूरिद-णयणेहि।
केवलिं णमिय पुण-पुण, कुणदि थुदि-मवरुद्धकंठेण॥42॥
1254. अफुडवयणेहिं तहा, सगणिंदं कुव्वंतो पुण पुण सो।
अदिसयविणयेणं खलु, पुच्छदि पावक्खयोवायं॥43॥(जुम्मं)
1255. भासिदं गणेसेणं, मलं णेव परिसुज्जेदि मलेणं।
जलेणं परिसुज्जेदि, पंकं दु रत्तकलंकं वा॥44॥
1256. जह तह पावकम्माणि, णेव खयंते दु पावकज्जेहिं।
पुण्णकज्जेहि खयंति, पुव्वसंचिद-पावकम्माणि॥45॥(जुम्मं)
1257. अहिंसा सच्चं च अत्थेयं बंभचेरं अपरिग्गहो।
पणमहव्वदं अस्सि, लोए सुपसिद्धं हिदत्थं॥46॥
1258. धम्माचिंत-पहावो सम्मत्तं मूलं तस्स धम्मस्स।
तस्स दु अविणाभावी, मोह-विणासगं सण्णाणं॥47॥

तुम्हारा यह पुत्र नरक के घोर दुःखों को स्मरण करने में भी समर्थ नहीं है अतः स्मरण मात्र से ही भयभीत होकर मूर्च्छित हो गया॥41॥ इस प्रकार सर्व वृत्तांत को सुनकर पूतीगंध के आँखों से आँसू बहने लगे। वह केवली भगवान् को पुनः-पुनः नमस्कार कर अवरुद्ध कंठ से अस्पष्ट वचनों से उनकी स्तुति करता है। वह पूतीगंध अपनी निंदा करते हुए केवलि जिन से अतिशय विनयपूर्वक अपने पाप के क्षय का उपाय पूछता है॥42-43॥ तब गणधर देव कहने लगे अहो भव्य जीव! जिस प्रकार मल कभी मल को साफ नहीं करता; मल, कीचड़ या रक्त के दाग को जल ही साफ करने में समर्थ है। उसी प्रकार पापकर्म भी पाप कार्यों से नष्ट नहीं होते। पूर्व संचित पापकर्म पुण्य कार्यों से ही नष्ट होते हैं॥44-45॥ भव्यों के हित के लिए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत लोक में प्रसिद्ध हैं॥46॥ धर्म का प्रभाव अचिंत्य है। उस धर्म का मूल सम्यक्त्व है। उसके अविनाभावी सम्यग्ज्ञान होता है जो मोह को नाश करने वाला है॥47॥

1259. सच्चरियेण विणा णो, णिव्वाणमग्गो य बेरयणेहिं।
रयणत्तय-धारगो दु, मोक्खमग्गी संविदिदव्वो॥48॥
1260. णिच्छय-ववहारादो, बेविहं रयणत्तयं सिव-हेदू।
णिच्छय-मोक्खमग्गी हु, मुणी अपमत्ताइठाणेसु॥49॥
1261. ववहारेणं णेयो, पमत्तसमणो णिव्वाणमग्गी हु।
गुणट्ठाणादीदा य, मोक्खफलसहिदा णियमेणं॥50॥
1262. बेरयण - धारगा चिय, असंजमसम्माइट्ठी णियमेण।
णेव णिव्वाणमग्गी, कस्सिं वि यालम्मि ठाणे वि॥51॥
1263. अविरदसम्माइट्ठी, होस्संति मोक्खमग्गी णियमेणं।
देसवदी सुपसंता, एयदेसमोक्खमग्गी खलु॥52॥
1264. समणव्वद-पालणस्स, सत्तीए हीणे पालेसु तुमं।
उवासग-धम्मं सया, परंपराए मोक्ख-हेदू॥53॥
1265. सद्धाए पालेज्जा, वण्णिणदं अत्तकहिदजिणागमम्मि।
पाव-णासगं सुवदं, कम्मक्खयेदुं समत्थं च॥54॥

सम्यक् चारित्र के बिना मात्र दो रत्न अर्थात् सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान से मोक्षमार्ग नहीं बनता। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय के धारक ही मोक्षमार्गी जानने चाहिए॥48॥ मोक्ष के कारणभूत वह रत्नत्रय निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का होता है। अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में स्थित मुनिराज निश्चय मोक्षमार्गी जानने चाहिए॥49॥ प्रमत्तविरत गुणस्थान में स्थित श्रमण व्यवहार से मोक्षमार्गी जानने चाहिए एवं गुणस्थान से अतीत जीव नियम से मोक्षफल से सहित जानने चाहिए॥50॥ दो रत्नों अर्थात् सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के धारक जीव नियम से असंयत सम्यग्दृष्टि होते हैं; वे किसी भी काल या स्थान में मोक्षमार्गी नहीं होते॥51॥ अविरत सम्यग्दृष्टि नियम से मोक्षमार्गी होंगे। प्रशांत देशव्रती निश्चय से एकदेश मोक्षमार्गी होते हैं॥52॥ श्रमण व्रत के पालन की शक्ति से हीन होने पर तुम्हें परंपरा से मोक्ष के हेतु उपासक वा श्रावक धर्म का पालन करना चाहिए॥53॥ तुम्हें जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कथित जिनागम में वर्णित पापों का नाश करने वाले सुव्रतों का भी श्रद्धापूर्वक पालन करना चाहिए। ये व्रत कर्मों का क्षय करने में भी समर्थ हैं॥54॥

1266. णमोयार - णंदीसर - समवसरण - पुष्फंजलि - रोहिणी या
कम्मदहणं च जिणगुण - संपत्ती चउसट्ठि - इड्डी॥55॥
1267. रविवदं धूवदसमी अणंतचउद्दसी दहलक्खणं च।
सोडसकारणं च जिण-सहस्सणामं सुदपंचमी॥56॥
1268. अस्सिणी - मुरजवदं च, कवलचंदायणं विमाणपंती।
सीहणिक्कीरिद - लब्धि-विहाणाइ-बहुविह-वदाइं॥57॥(तिअं)
1269. दुग्गदिं विणासेदुं, मोआविदुं सय दुरावत्थाए।
पुण्णाइं पूरयिदुं सिवं दायिदुं वदं सक्कं॥58॥
1270. आयणिणदूणं च गणहरेणं हरिसिदो पूदीगंधो।
दुक्खक्खयोवायं च, तिमिरम्मि दु लब्धपयासोव्व॥59॥
1271. णिवेददि अइविणयेण, हे सामी! वदं अचिंतपहाविं।
दाएज्ज मज्झं जेण, किदपावक्खयिदुं सक्केमु॥60॥
1272. अहो पुत्तो! पालेसु, सुह-रोहिणिवदं चउविहाहारं।
अवहेडित्तु कसायं, मोणेण धम्मज्जाणेणं॥61॥

णमोकार व्रत, नंदीश्वर व्रत, समवसरण व्रत, पुष्पांजलि व्रत, रोहिणी व्रत, कर्मदहन व्रत, जिन-गुणसंपत्ति व्रत, चौंसठऋद्धिव्रत, रविव्रत, धूपदशमी व्रत, अनंतचतुर्दशी व्रत, दसलक्षण व्रत, सोलहकारण व्रत, जिनसहस्रनाम व्रत, श्रुतपंचमी व्रत, अश्विनी व्रत, मुरज व्रत, कवलचंद्रायण व्रत, विमानपंक्ति व्रत, सिंहनिष्क्रीडित व्रत, लब्धिविधान आदि बहुत प्रकार के व्रत हैं॥55-57॥ दुर्गति का विनाश करने में, दुरावस्था से छुटकारा दिलाने में, पुण्य से भरने एवं मोक्षपद देने में व्रत समर्थ हैं॥58॥ इस प्रकार गणधर परमेष्ठी द्वारा अपने दुःख के क्षय का उपाय सुनकर पूतीगंध ऐसे हर्षित हुआ जैसे अंधकार में किसी जीव को प्रकाश ही मिल गया हो॥59॥ तब पूतीगंध अति विनयपूर्वक भगवान् के चरणों में निवेदन करता है हे स्वामी! मुझे कोई अचिंत्य प्रभावी व्रत प्रदान कीजिए जिससे मैं अपने द्वारा किए गए पाप कर्मों का क्षय करने में समर्थ हो सकूँ॥60॥ तब गणधर देव कहते हैं—हे पुत्र! तुम चारों प्रकार के आहार व कषाय का त्याग कर मौन से धर्मध्यानपूर्वक रोहिणी व्रत का पालन करो॥61॥

1273. रोहिणिवदमेगं चिअ, समत्थं च सव्वपावक्खयेदुं।
दादुं णरसुरविहवं, सुंदररूवं च आरोग्गं॥62॥
1274. णिक्कंखाइ सद्धाइ, वदपालणेणं सव्वविहसोक्खं।
किं जप्पिदेण बहुहा, पावेदि हु परमणिव्वाणं॥63॥
1275. एग-रोहिणिवदेणं, पावदि भवे उक्किट्टभोयाइं।
चक्कि-मदणाइ-पदं च, लहित्ता पुण तिहुवणणाहो॥64॥
1276. भो णिगंथगणेसो, तव पादंबुज-किवाइ चित्तं मे।
अइ-पवित्तं हरिसिदं, पडिखणं वड्डंतणंदेण॥65॥
1277. कहिदं उप्पुलइदेण, आणंदस्सुपवाहिदेणं तेण।
तव किवा-दिट्ठीए दु, भव्वा लहिदुं सिवं सक्का॥66॥ (जुम्पं)
1278. महव्वदं धारेदुं, णेव समत्थो हं अहुणा णाहो।
सगकल्लाणस्स किण्णु, तिव्व - भावणा मम चित्तम्मि॥67॥
1279. सद्धाइ पालिस्सामि, रोहिणीवदं बारसवदेहि सह।
विसुद्धीइ सावगस्स, गहिदवदं केवलि-सक्खीइ॥68॥

एक रोहिणी व्रत ही सर्व पापकर्मों के क्षय करने में, सुंदर रूप, आरोग्य एवं मनुष्य व देवों का वैभव देने में समर्थ है॥62॥ निःकांक्ष भाव से श्रद्धापूर्वक व्रत पालन करने से जीव सर्व प्रकार का सुख प्राप्त करता है। अधिक कहने से क्या इस रोहिणी व्रत के पालन से जीव परम निर्वाण पद तक प्राप्त कर लेता है॥63॥ एक रोहिणी व्रत से जीव संसार में उत्कृष्ट भोगों को प्राप्त करता है; चक्रवर्ती व कामदेव आदि के पद को प्राप्तकर पुनः तीनों लोकों का नाथ अर्थात् जिनेंद्र होता है॥64॥ तब इन वचनों को सुनकर रोमांचित व आनंद अश्रु बहाता हुआ वह पूतीगंध कहता है, हे निर्ग्रन्थ गणेश! आपके चरण कमलों की कृपा से क्षण-क्षण में बढ़ते हुए आनंद से मेरा चित्त अतिपवित्र और हर्षित है। आपकी कृपादृष्टि से भव्यजीव मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होते हैं॥65-66॥ हे नाथ! मैं अभी महाव्रतों को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ किन्तु स्वकल्याण की तीव्र भावना मेरे चित्त में है॥67॥ मैं केवली प्रभु की साक्षी में ग्रहण किए गए रोहिणी व्रत का श्रावक के बारह व्रतों के साथ विशुद्धि से श्रद्धापूर्वक पालन करूँगा॥68॥

1280. दाएज्ज भो गणेसो! पालिदुं वद - णिद्दोस - मासीसं।
सावयवदं पालित्तु, हवेदु सल्लेहणा-मरणं॥69॥
1281. तव पसादेणं मए, लहिदो पावणासगो सुहुवायो।
मम इव जणा लहंते, सुहमगं तव णिमित्तेणं॥70॥
1282. सेट्ट - सुगुरु - साणिज्जे, रदा सिवमग्गे पुण्णकज्जेसुं।
सेट्ट-भूवदि-रज्जम्मि, धम्मकज्जरदा सुहि-पया व॥71॥
1283. गुरुवासणाए विणा, सण्णाणं जुण्हा व विणा चंदं।
पुप्फं विणा गंधोव्व, णीरं विणा सीयलत्तं व॥72॥
1284. रयणायरम्मि अणेग-पयार-विउल-रयणरासीव होज्ज।
सुगुरुचरणेसुं सया, गुणो सहावो वर-धम्मो य॥73॥
1285. अक्कतिव्वतावेणं, पुप्फे गंधोव्व फले महुरिमा व।
सुसिस्सेसुं फुट्टेदि, गुण-धम्मो सहावो गुरुणा॥74॥
1286. णीरे सीयलत्तं व, पावेदि पुप्फेसु मंजुलत्तं व।
सम्मत्ताइ-गुणं सिव-मगं भव्वो गुरुकिवाए॥75॥

हे गणधर प्रभु! व्रत के निर्दोष पालन हेतु मुझे आशीष प्रदान करें। हे प्रभु आशीर्वाद दें कि श्रावक के व्रतों का पालन कर मेरा सल्लेखना वा समाधिमरण होवे॥69॥ हे गुरुवर! आपके प्रसाद से मैंने पापों का नाश करने वाला श्रेष्ठ उपाय प्राप्त किया है। मेरे समान बहुत से जीव आपके निमित्त से शुभ मार्ग प्राप्त करते हैं॥70॥ जैसे श्रेष्ठ राजा के राज्य में सुखी प्रजा धर्म कार्य में रत रहती है वैसे ही श्रेष्ठ सुगुरु के सान्निध्य में भव्यजीव पुण्य कार्यो व मोक्षमार्ग में रत रहते हैं॥71॥ जैसे चंद्र के बिना उसकी ज्योत्सना, पुष्प के बिना उसकी गंध और जल के बिना शीतलता संभव नहीं है उसी प्रकार सुगुरु की उपासना के बिना सम्यग्ज्ञान संभव नहीं है॥72॥ जिस प्रकार रत्नाकर (समुद्र) में अनेक प्रकार की विपुल रत्नराशि होती है उसी प्रकार गुरु के चरणों में सदैव गुण, स्वभाव और उत्कृष्ट धर्म होता है॥73॥ जिस प्रकार सूर्य के तीव्र ताप से पुष्पों में गंध व फलों में मधुरता आती है उसी प्रकार गुरु के माध्यम से शिष्यों में गुण, धर्म व स्वभाव प्रकट होता है॥74॥ जैसे जल में शीतलता होती है, पुष्पों में कोमलता होती है उसी प्रकार गुरुकृपा से भव्य जीव सहज ही सम्यक्त्वादि गुणों को और मोक्षमार्ग को प्राप्त करते हैं॥75॥

1287. पिदरोव्व पुज्जो गुरू, देदि सुसक्कारं समायारं च।
सुव्वदं सुधम्मं भववड्ढुगो विहिबंघगो णेव॥76॥
1288. जलसिंचणेण वड्ढिद-पत्त-पुष्फ-फलाइं व रुक्खाणं।
गुरु-आसीवायेणं, वड्ढिदि तव-संजमा सीलं॥77॥
1289. गुरु-दंसणं च णेहो, चित्त-विआसगो णियड-भव्वाणं।
उप्पलाइ-पुष्फाणं विगासग-मत्तंडोव्व सया॥78॥
1290. समादुं पस्सिय तुट्ट-हरिसिद-बालोव्व सय सिस्सो गुरुं।
गुरुसेवाए पावदि, णाणं संजमं वेरग्गं॥79॥
1291. सुसेणाए रज्जं व, वाडेण दंतेहि खेत्त-जीहा वा।
गुरुणा सुरक्खिदा तव-णाण-झाण-संजमाइ-गुणा॥80॥
1292. णिम्लसद्धाए गुरु-चरणंबुजेसु परोक्खभत्तीए।
तस्स देह-सुगंधिदो जिणभत्तिवदपहावेणं दु॥81॥

गुरु पिता के समान पूज्य होते हैं। वे सदैव सुसंस्कार, सम्यक् आचार, सुव्रत और सुधर्म प्रदान करते हैं; वे कभी भववर्द्धक व कर्मबंधक नहीं होते॥76॥ जैसे जल सिंचन करने से वृक्षों के पत्ते, पुष्प व फल आदि वृद्धिगत होते हैं उसी प्रकार गुरु के आशीर्वाद से तप, संयम और शील वृद्धिगत होता है॥77॥ जैसे सूर्य, कमल आदि पुष्पों का विकास करने वाला होता है उसी प्रकार गुरु का दर्शन और स्नेह निकट भव्यों के चित्त का विकास करने वाला होता है॥78॥ जैसे अपनी माता को देखकर बालक संतुष्ट व हर्षित होता है उसी प्रकार गुरु को देखकर शिष्य संतुष्ट और हर्षित होता है। गुरुसेवा से जीव ज्ञान, संयम और वैराग्य को प्राप्त करता है॥79॥ जिस प्रकार सेना से राज्य, बाड़ से खेत और दाँतों से जिह्वा सुरक्षित होती है उसी प्रकार गुरु से तप, ज्ञान, ध्यान और संयमादि गुण सुरक्षित होते हैं॥80॥ निर्मल श्रद्धापूर्वक गुरु के चरण कमलों में परोक्षभक्ति, जिनभक्ति और रोहिणी व्रत के प्रभाव से उस पूतीगंध की देह सुगंधित हो गयी॥81॥

1293. पस्सहि धम्मपहावं, पालेसु सावय-वदं रोहिणिं चा
जदि सत्तिसंजुदो तो, महव्वदं सगकल्लाणाय॥82॥
1294. करुणाइ गुरुवयणेहि, विसुद्धमणेण पगडासीवायो।
महारूवम्मि फलदे, गुरुदंसणं पावणासगं॥83॥
1295. रोहिणिवदपालणेण, तस्स णिरोओी सुगंधिदो देहो।
मदणोव्व अइ-सुंदरो, सुगंधिवाहण-णामेण पसिद्धो॥84॥
1296. विम्हयमिदं पस्सित्तु, बहुणिवेहि पेसिदो समायारो।
सीहसेण-रायं पडि, परिणयस्स दु सगपुत्तीणं॥85॥
1297. सुजोग्ग-कण्णाए सह, विवाहो संपण्णो तस्स सुदस्स।
अदिसय-महुच्छवेणं, जिणाहिसेग-भत्ति-पूयाइ॥86॥
1298. सोक्खेण गदो यालो, विजयसुदस्स रज्जं पदायित्ता।
इगमासे अवसेसे, धरिदा सल्लेहणा णिवेण॥87॥

अहो! धर्म का प्रभाव देखो! तुम्हें भी श्रावक व्रत व रोहिणी व्रत का पालन करना चाहिए और यदि शक्ति हो तो अपने कल्याण के लिए महाव्रतों का पालन करना चाहिए॥82॥ उचित ही है करुणापूर्वक गुरु के वचन और विशुद्ध चित्त से प्रकट आशीष महान् रूप में फलित होता है। गुरु के दर्शन पापों का नाश करने वाले होते हैं॥83॥ रोहिणी व्रत के प्रभाव से उस पूतीगंध की देह निरोगी व सुगंधित हो गयी। वह कामदेव के समान अति सुंदर हो गया, तब वह सुगंधिवाहन के नाम से विख्यात हुआ॥84॥ यह विस्मय देखकर बहुत से राजाओं ने अपनी पुत्रियों के परिणय का समाचार राजा सिंहसेन के प्रति भेजा॥85॥ अनंतर सुयोग्य कन्याओं के साथ राजा सिंहसेन के पुत्र पूतीगंध (सुगंधिवाहन) का विवाह अतिशय महोत्सवपूर्वक जिनाभिषेक भक्ति व पूजा के साथ संपन्न हुआ॥86॥ सुखपूर्वक बहुत काल व्यतीत हो गया। जब उसकी आयु एक माह शेष रह गई तब अपने विजय नामक पुत्र को राज्य देकर उसने सल्लेखना धारण की॥87॥

1299. आहाराइं विहाय, कसायं कसिदूणं आराहणं च।
आराहिता लहीअ, मज्झमं चिय समाहिमरणं॥४४॥



1300. सुगंधिवाहणो पुणो, महड्डिगो देवो पाणद-सग्गे।
जादो वदपहावेण, खयित्तु पुव्वसंचिदपावं॥४९॥
1301. उववाद-सेज्जाए दु, उट्टित्तु चिंतीअ केण पुण्णेण।
तवेण वदेण लहिदा, विहूदी चिय समिद्धी मए॥९०॥
1302. ओहिणाण-णयणेणं, सावयवद-पहाविमो विजाणीअ।
सद्धाए हु सुपालिद-रोहिणिवदस्स विसेसेणं॥९१॥

अंत में सर्व आहार का परित्याग कर, कषायों को कृश कर और चार आराधनाओं की आराधना कर मध्यम समाधिमरण को प्राप्त किया॥४४॥ पुनः व्रत के प्रभाव से सुगंधिवाहन पूर्व संचित पापों का क्षय कर प्राणत स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुआ॥४९॥ वहाँ उपपाद शैय्या से खड़े होकर वह चिंतन करने लगा कि मैंने किस पुण्य, तप वा व्रत से इस समृद्धि व विभूति को प्राप्त किया है॥९०॥ तब अवधिज्ञान रूपी नेत्र से उसने जाना कि यह उसके द्वारा पाले गए श्रावक व्रत एवं विशेष रूप से श्रद्धापूर्वक पाले गए रोहिणी व्रत का प्रभाव है॥९१॥

1303. विमलमदण-केवलि-जिण-पादमूले रोहिणिवदं लहिदं।
सावयवदं च अंते, हिदकर-सल्लेहणावदं च॥92॥
1304. वियारित्ता गुरुकिवं, पुण पुण परियंदिदूणं परोक्खे।
गुरुचरणेषु पणमीअ, किदण्हु-भावेणं सहाए॥93॥
1305. सुगुरु-किवा तियलोए, सव्वसुकज्जसिद्धिकारगा होदि।
सव्वपावविणासगा, मणोवांछिदफलदायगा य॥94॥
1306. गुरु-पसादेण भव्वो, होज्ज बहुगुणपुंज-विज्जावंतो।
किं पुण्णफलं ण लहदि, लोए सेट्टरिहंत-पदं पि॥95॥
1307. णिगंथ-गुरु-णेहेण, फलदि सव्वमणोरहं सिस्साणं।
खयंति पावकम्माणि, विज्जादी वड्ढंति णियमा॥96॥
1308. अणंतरं कुव्विदा य, सम्माणो पूया पसंसा तस्स।
देवस्स हु सुहासणो, पदायिदो देवंगणाहिं॥97॥
1309. वीसपक्खणंतरे दु, पुण्णवग्गणाजुद-सुहाणपाणं।
गहीअ अमियाहारं, वीससहस्सवासणंतरे॥98॥

उसने जाना कि मैंने केवली प्रभु विमलमदन के पादमूल में रोहिणी व्रत व श्रावक व्रत ग्रहण किया था और अंत में हितकर सल्लेखना व्रत धारण किया था॥92॥ गुरु कृपा का विचारकर परोक्ष में पुनः पुनः उनकी स्तुति कर गुरु चरणों में कृतज्ञ भाव से उसने नमस्कार किया॥93॥ सच में सुगुरु की कृपा तीन लोक में सभी शुभ कार्यों की सिद्धि करने वाली होती है। गुरु कृपा सब पापों का नाश करती है और मनोवांछित फल प्रदान करती है॥94॥ गुरु के प्रसाद से भव्यजीव बहुत गुणों का पुंज व विद्यावान् होता है। गुरु कृपा से जीव कौन सा पुण्य फल प्राप्त नहीं करता। अहो! वह तो लोक में श्रेष्ठ अरिहंत पद को भी प्राप्त करता है॥95॥ निर्ग्रन्थ गुरु के स्नेह से शिष्यों के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं, पाप कर्मों का क्षय होता है एवं विद्या आदि नियम से वृद्धिगत होते हैं॥96॥ अनंतर उस देव का सम्मान, पूजा व प्रशंसा की गई एवं देवांगनाओं के द्वारा शुभासन प्रदान किया गया॥97॥ वह देव उस समय बीस पक्ष में एक बार पुण्य वर्गणाओं से युक्त शुभ श्वासोच्छ्वास और बीस हजार वर्ष में अमृताहार ग्रहण करता था॥98॥

1310. पयरिय गुरोवयारं, सपरिवारो गच्छीअ भत्तीए।
केवलि-पादमूलम्मि, करंतो जयजयगारं सो॥99॥

चौपाई छंद

1311. णमो णमो सिरिजिण-केवलिणो, णमो णमो गुरुणो जिद-अरिणो।
परियंदामि दु परमाणंदं, सेट्टगुरुं मम तिलोयचंदं॥100॥

1312. मोहाइ - सव्वकम्म - णासगं, पणमामि भव्व - मण - विआसगं।
अप्पगुणायरं च जिणदेवं, सदिंदेहिं सय पूजिद-देवं॥101॥

1313. तुज्झ दंसणं विग्घहारगं, रोग-सोग-संताव-हारगं।
दुक्खहरं संसार-सोसगं, सोक्खकरं गुणणंतपोसगं॥102॥

1314. पणमामि अहं घादि-विजेदुं, सयंपबुद्धं सिवपह-णेदुं।
णाणेणं तियलोयपगासिं, अहिसंधी जिणवरगुणरासिं॥103॥

1315. जुत्ताणंतचउक्कं सामिं, तविदचित्तसंतीए वारिं।
सासय-अप्प-विहव-संजुत्तं, अरिहंतं उहयलच्छिजुत्तं॥104॥(जुम्मं)

गुरु के उपकार को याद कर वह देव अपने परिवार सहित भक्तिपूर्वक जयजयकार करता हुआ विमलमदन केवली के पादमूल में पहुँचा॥99॥ वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—श्री केवली जिन को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। परमानंद स्वरूप तीन लोक में चंद्रमा के समान अपने श्रेष्ठ गुरु की मैं स्तुति करता हूँ॥100॥ मोह आदि सभी कर्मों के नाशक, भव्यों के मन के विकासक, आत्मगुणाकर, शत इंद्रों से पूजित देव श्री जिनेन्द्र प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ॥101॥ हे प्रभु! आपका दर्शन विघ्नों का हरण करने वाला है, रोग, शोक व संताप हारक है। आपका दर्शन दुःखहर, संसार अवशोषक, सुख को करने वाला और अनंत गुणों का पोषक है॥102॥ घातिया कर्मों के जेता, स्वयंबुद्ध, मोक्षमार्ग के नेता, ज्ञान से तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले, गुणों की राशि स्वरूप श्री जिनवर देव को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। अनंत चतुष्टय से युक्त, संसार में संतप्त चित्त वालों की शांति के लिए जल स्वरूप, शाश्वत आत्मवैभव से संयुक्त, उभय अर्थात् अंतरंग व बहिरंग लक्ष्मी से युक्त श्री अरिहंत स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ॥103-104॥

1316. णासिय जेण मोहविहिधूलं, णिल्लूरिदं भवभमणमूलं।
खाइगसम्मत्तेणं जुत्तो, खाइग-चरियजुदो जयवंतो॥105॥
1317. अप्पगगणंगणे सुपवित्तो, उदिदो केवलणाणस्सक्को।
लोयालोयपयासगा-सामिं, णमंसामि हं केवलणाणि॥106॥
1318. लहिदा केवलद्विटी जेणं, णासिय दंसण-आवरणिज्जं।
जुत्तो अंतहीणणाणेणं, वंदे तं भावेहिं णिच्चं॥107॥
1319. खीणमोहठाणे पणविग्घं, सुक्कज्झाणेणं खलु खयिदं।
लहिद-मणंतवीरियं जेणं, णमंसामि तं सुहरागेणं॥108॥
1320. तेसट्ठीपइडिं णासित्ता, णवकेवललब्धिं पावित्ता।
जेण सोहिदो गंधकुडीए, णमंसामि तं सुद्धमदीए॥109॥
1321. छत्त - चमर - भामंडल - दिव्वज्झुणी सीहासणं तह णिच्चं।
दुंदुभि-पुष्पविट्ठि-मणहारी, रुक्ख-असोगो अदिसयगारी॥110॥

जिन्होंने मोहनीय कर्म रूपी धूल नष्ट कर संसार परिभ्रमण की जड़ को उखाड़कर फेंक दिया, क्षायिक सम्यक्त्व व क्षायिक चारित्र से युक्त वे जिनेंद्रप्रभु जयवंत हों॥105॥ जिनके आत्मा रूपी गगन में पवित्र केवलज्ञान रूपी सूर्य उदय को प्राप्त हुआ है, उन लोक-अलोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञानी जिनेंद्र को मैं नमस्कार करता हूँ॥106॥ जिन्होंने दर्शनावरणीय कर्म का क्षय कर केवलदृष्टि प्राप्त की, अनंतज्ञान से युक्त हुए उन केवली प्रभु को भावों से नित्य नमस्कार करता हूँ॥107॥ क्षीणमोह गुणस्थान में जिन्होंने द्वितीय शुक्लध्यान के द्वारा पंच अंतराय कर्म का नाश कर दिया एवं अनंतवीर्य को प्राप्त किया उन प्रभु को मैं शुभ राग से नमस्कार करता हूँ॥108॥ त्रेसठ प्रकृतियों का नाशकर जिन्होंने नवकेवललब्धियों को प्राप्त किया एवं गंधकुटी में सुशोभित हुए उन्हें मैं शुद्धमति से नमस्कार करता हूँ॥109॥ छत्र, चंवर, भामंडल, दिव्यध्वनि, सिंहासन, दुंदुभि, पुष्पवृष्टि व अशोक वृक्ष ये मनहारी व अतिशयकारी आठ प्रातिहार्य हैं॥110॥

1322. अट्टपाडिहेरेहिं जुत्तं, मंगलदव्वेहिं संजुत्तं।
लहिदुं अट्टगुणं वंदे हं, अट्टमभूमीए सुहपहिगं॥111॥

दोहा

1323. करिदूणं पहु-वंदणं, सुणिदो य उवएसो।
तदा पच्चागच्छीअ दु, विप्पसीअंतो सो॥112॥

इन अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त, अष्ट मंगलद्रव्यों से संयुक्त, अष्टम भूमि (सिद्धालय) के पथिक श्री जिनेंद्र भगवान् की अष्ट गुणों की प्राप्ति के लिए मैं वंदना करता हूँ॥111॥ श्री प्रभु की वंदना कर उस देव ने उनका दिव्यध्वनि रूप उपदेश सुना। पुनः प्रसन्न होता हुआ वह अपने स्थान को लौट गया॥112॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में मुनिघात के कुफल एवं व्रतों के सुफल को दिखाते हुए पूतीगंध (अशोक का पूर्व भव) के पूर्व भवों का वर्णन करने वाला ग्यारहवाँ नंद पूर्ण हुआ।

बारसम-पंदो

1324. करीअ अणेगवारं, तच्चवित्तं देवविंद-मज्झमि।
णियरम्मदेवंगणा, संबुज्झीअ सुहभावेहिं॥1॥
1325. पणमेरु-वंदणाए, रुचग-कुंडलसेलाणं च कया वि।
णंदीसर-दीवस्स य, अकिट्टिम-चेइयालयाणं॥2॥
1326. माणुसोत्तर - सेलस्स इस्सागाराण रजदायलाणं।
गच्छीअ कुलायलाण, तरुठिदाण भत्ति-रायेणं॥3॥ (जुम्मं)
1327. तित्थयर-समवसरणे, केवलि-गंधकुडीए बहुवारं।
ताण थुदि-वंदणाए, गच्छीअ सुणिदुं उवएसं॥4॥
1328. तित्थयराणं कया वि, गब्भजम्मतवणाणकल्लाणेसु।
णिव्वाणकल्लाणम्मि, गच्छिय भत्तीए वंदीअ॥5॥
1329. पंच-परमेट्टि-गुणा हु, चिंतीअ सया भाव-विसुद्धीए।
सुसंजम-साहणं अवि, धरिदुं अइ-वाउल-चित्तेण॥6॥
1330. माणुसभवं धरित्ता, कदा गहिस्सामि महव्वदाइं चा।
पाणिपत्त-दियंबरो, कदा एगंतवासी होज्ज॥7॥ (जुम्मं)

वह देव अनेक बार देवसमूह के मध्य तत्त्ववार्ता करता था। अपनी रम्य देवांगनाओं को शुभ भावों से संबोधित किया करता था॥1॥ वह समय-समय पर भक्ति के अनुराग से पंचमेरु, रुचकगिरि, कुंडलगिरि, नंदीश्वर द्वीप, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकार पर्वत, विजयाद्ध पर्वत, कुलाचल और वृक्षों पर स्थित अकृत्रिम जिनालयों की वंदना के लिए जाया करता था॥2-3॥ वह बहुत बार तीर्थकर के समवशरण में, केवली की गंधकुटी में, उपदेश सुनने एवं प्रभु की स्तुति व वंदना के लिए जाया करता था॥4॥ उसने तीर्थकरों के गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, तप कल्याणक, ज्ञान कल्याणक और मोक्ष कल्याणक में जाकर भक्तिपूर्वक वंदना की॥5॥ वह सदैव भावों की विशुद्धिपूर्वक पंचपरमेष्ठी के गुणों का चिंतन करता था। वह अति व्याकुल चित्त से सुसंयम साधना को धारण करने के लिए चिंतन करता—अहो! मनुष्य भव को धारण कर मैं कब महाव्रतों को ग्रहण करूँगा, कब पाणिपात्र में आहार लेने वाला एकांतवासी दिगंबर साधु होऊँगा॥6-7॥

1331. महापुण्णोदयादो, भुंजीअ वीस - सायर - पज्जंतं।
सग्गे उत्तम-भोयं, गदयालं णेव विआणीअ॥८॥
1332. सग्गादो चयिदूणं, सेसपुण्णादो उप्पज्जीअ सो।
जंबुदीवस्स सासय - कम्मभूमि - पुव्वविदेहम्मि॥९॥
1333. पुक्कलावदी - देसे, पुण्णवंत - पुंडरीगणि - णयरीइ।
रायाहिरायो विमल-कित्तिस्स सुदो अक्ककित्ती॥१०॥ (जुम्मं)



1334. सुहेण सासिदो तेण, सूर - णायप्पिय - पयावच्छलेण।
हिय - मिय - सच्च - भासिणा, णीदिवंत - धम्मणिट्ठेणं॥११॥

महापुण्य के उदय से उसने बीस सागर पर्यंत स्वर्ग में उत्तम भोगों को भोगा। स्वर्ग में व्यतीत किया काल उसे ज्ञात नहीं हुआ अर्थात् समय कब बीत गया उसे पता ही नहीं चला॥८॥ स्वर्ग से च्युत होकर शेष पुण्य से वह जंबूद्वीप की शाश्वत कर्मभूमि पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश में पुण्यवान् पुंडरीकिणी नगरी में राजाधिराज विमलकीर्ति का अर्ककीर्ति नामक पुत्र हुआ॥९-१०॥ वह राजा शूर, न्यायप्रिय, प्रजावत्सल, हित-मित-सत्यभाषी, नीतिवान् व धर्मनिष्ठ था। वह सुखपूर्वक वहाँ शासन किया करता था॥११॥

1335. सुकज्जेसु सहयारी, सिरिमदी चिय पाणवल्लहा तस्स।
बुद्धि-सुंदरिमाए य, मुत्तीव पिया सीलवंता॥12॥
1336. ताणं सुकलापेम्मी, विज्जावंतो अइपुण्णवंतो या।
अक्कोव्व ओजंसी य, विअड्ढो सुदो अक्ककित्ती॥13॥
1337. अस्स अक्ककित्तिस्स दु, मेहसेण-गुणवंतो वर-मित्तं।
पाणादो वि अइपियो, जहड्ड-मेत्ती छलविहीणा॥14॥
1338. तस्स पालण-पोसणं, सेट्ट-रज्जोइद-रीदिणीदीहि।
सुदकित्ती पाढगो हु, आहविदो सचेद-रायेण॥15॥
1339. विविह-सेट्ट-सिक्खाणं, सुसक्कारेहिं सह सुप्पसिद्धो।
जम्हा सक्कारेहिं, विणा अणिट्टकारी सिक्खा॥16॥ (जुम्मं)
1340. वरसक्कारेहि विणा, सेट्टविज्जा वि सुफलदायगा णो।
अहमकायरपुरिसस्स, जह तह करागददिव्वत्थं॥17॥
1341. सुहसक्कारवंतो दु, वसणादीसु णो परिलीदि कया वि।
तस्स जीवणं पि सुही, विज्जाइ वरो सुसक्कारो॥18॥

उसकी श्रीमती नामक प्राणवल्लभा थी जो उसके श्रेष्ठ सुकार्यों में सहयोगी रहती थी। वह बुद्धि और सौंदर्य की मूर्ति के समान, प्रिय व शीलवती थी॥12॥ उनका अर्ककीर्ति नामक पुत्र सुकलाप्रेमी, विद्यावान्, अतिपुण्यवान्, सूर्य के समान ओजस्वी और निपुण था॥13॥ उस अर्ककीर्ति के मेघसेन नामक गुणवान् श्रेष्ठ मित्र था जो उसे प्राणों से भी अतिप्रिय था। उचित ही है यथार्थ मैत्री छल से रहित होती है॥14॥ उसका पालन-पोषण श्रेष्ठ राज्योचित रीति और नीति से किया गया। पुत्र की शिक्षा के लिए सावधान उस राजा ने सुसंस्कारों के साथ विविध श्रेष्ठ शिक्षाओं के लिए सुप्रसिद्ध श्रुतकीर्ति नामक उपाध्याय को बुलाया क्योंकि सुसंस्कारों के बिना शिक्षा अनिष्टकारी ही होती है॥15-16॥ उत्तम संस्कारों के बिना श्रेष्ठ विद्या इस प्रकार सुफल प्रदान करने वाली नहीं होती जिस प्रकार अधम व कायर पुरुष के हाथ में आया दिव्यास्त्र॥17॥ सुसंस्कारवान् कभी भी व्यसन आदि में लीन नहीं होते और उनका जीवन भी सुखी होता है। उचित ही है विद्या से श्रेष्ठ सुसंस्कार होते हैं॥18॥

1342. तेण सह मेहसेणो, वि अज्झयणस्स रुईए गच्छीअ।
ते होही अइ-णिउणा, बहुकलासुं सुहविज्जासुं॥19॥
1343. सायरदत्तो सेट्ठी, पसिद्धो उत्तर-मथुरा-णयरीइ।
जयमदी-भज्जाइ सह, धम्मणिट्ठ-मणोहराए य॥20॥
1344. ताण सुमंदिरो सुदो, सुविज्जाकलासक्कार-सहिदो य।
विवित्तो पिदर-भत्तो, सव्वजणपियो गुणाकंखी॥21॥
1345. तदा दक्खिण-मथुराइ, सेट्ठी णंदिमित्तो धम्मिट्ठो य।
सावयगुणसंजुत्तो, भूवदि-सुमित्तं गुणवंतो॥22॥
1346. आयंसियो गिहत्थो, रदो दाण-पूयाइ-सुहकज्जेसु।
सडावसिय-सुपालगा, कुलकित्तिवड्ढगो सरलो य॥23॥
1347. तस्स पाणपिया धम्मदत्ता वच्छलाइ-बहुगुण-जुत्ता।
जिणाराहिगा सुसत्थ-अज्झयणरदा सुभासिल्ला॥24॥
1348. सामाइयाइ-वदेहि, अहिंसाइ-अणुव्वद-जुदा कुसला।
गुणव्वद-संपालिगा, णिगंथ-चरणसुसेविगा य॥25॥

अर्ककीर्ति के साथ मेघसेन भी अध्ययन के लिए रुचिपूर्वक गया। वे दोनों ही बहुत सी कलाओं व शुभ विद्याओं में निपुण हो गए॥19॥ उधर उत्तर-मथुरा नगरी में अपनी धर्मनिष्ठ, मनोहरा जयमती नामक भार्या के साथ सागरदत्त श्रेष्ठी सुप्रसिद्ध थे॥20॥ उनके सुमंदिर नामक पुत्र था; जो सुविद्या, कला व संस्कारों से युक्त, विवेकवान्, माता-पिता का भक्त, सभी लोगों का प्रिय व गुणों का आकांक्षी था॥21॥ तभी दक्षिण- मथुरा नगरी में नंदिमित्र नामक श्रेष्ठी रहता था जो धर्मिष्ठ, श्रावक के गुणों से युक्त, राजा का मित्र और गुणवान् था॥22॥ वह नंदिमित्र आदर्श गृहस्थ, दान-पूजा आदि शुभ कार्यों में रत, षटावश्यकों का पालन करने वाला, कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाला और सरल था॥23॥ उसकी प्राणप्रिया धर्मदत्ता थी जो वत्सल आदि बहुत गुणों से युक्त, जिनेंद्रप्रभु की आराधिका, सुशास्त्रों के अध्ययन में रत व मृदुभाषी थी॥24॥ वह सामायिक आदि व्रतों एवं अहिंसा आदि अणुव्रतों से युक्त, कुशला, गुणव्रतों का पालन करने वाली और निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरणों की सेविका थी॥25॥

1349. ताणं बे पुत्ती सग-रूव-गुणरासि-संजुदा विणीदा।
अणुकंपया पसण्णा, भारजुत्ता जोव्वणियाए॥26॥
1350. भामिणी सरल-हिअया, णिम्मलचित्त-पविट्टि-जुदा विमला।
सुसीला सुमदी खमासीला बेलक्खजुद-पण्णा॥27॥ (जुम्मं)
1351. जिणधम्ममि थिरा सगपिदरस्स गुणधारगा पडिरूवा।
बालोव्व चंचला तह, मंजुला सुह-मज्जाइल्ला॥28॥
1352. विअसिदा-कुमुदणी व य, णासिगाइ अणिया रत्तिम-सुहगा।
पाडलं व्व अहरो, दंतावली य दाडिमबीअं व॥29॥
1353. विणिम्मल-पुण्णिंदू व्व, आणणं आगरिसगं कामीणं।
पुप्फेसुं भमरोव्व हु, गोरं हरिसिदं कंतिजुदं॥30॥
1354. पाणिग्रहण-सक्कारो, होही सुमंदिरेणं सह ताणं।
उच्छाहेण हरिसेण, कुलेसु आणंद-वड्डुगाण॥31॥
1355. तदा दक्खिण-भारदे, अक्ककित्ती चिय सगमित्तेण सह।
पहुच्चीअ दु आमोद-पमोद-भावेणं भमंतो॥32॥

उनकी सुशीला व सुमती नामक दो पुत्रियाँ थीं जो अपने रूप और गुणों की राशि से युक्त, विनया, दयावती, प्रसन्न, यौवन के भार से युक्त, भाग्यशाली, सरल-हृदया, क्षमाशीला, लज्जावती और बुद्धिमती थीं॥26-27॥ वे जिनधर्म में स्थिर, अपने माता-पिता के गुणों को धारण करने वाली, प्रशस्त रूप वाली, बालक के समान चंचल, कोमल, शुभ तथा मर्यादित थीं॥28॥ वे खिली हुई कुमुदिनी के समान थीं। उनकी नासिका का अग्र भाग रक्तिम व सुभग था। उनके ओंठ गुलाब के समान थे। उनकी दंतावली अनार के दानों के समान थी॥29॥ पूर्ण चंद्रमा के समान उनका आनन निर्मल था। जिस प्रकार पुष्पों पर भँवरे खिंचे चले आते हैं उसी प्रकार उनका चेहरा कामियों को आकर्षित करने वाला था। उनका चेहरा गौर वर्ण का, हर्षित और कांतियुक्त था॥30॥ उन कुलों में आनंद की वृद्धि करने वाली कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार उत्साह व हर्षपूर्वक सुमंदिर के साथ हुआ॥31॥ तभी भ्रमण करते हुए आमोद-प्रमोद भाव से अर्ककीर्ति अपने मित्र के साथ दक्षिण भारत में पहुँचे॥32॥

1356. ताणं सुरूवरासिं, पस्सित्ता संमुज्झीअ कुमारा।
परिययेण विणा मेहसेणागासियो विसेसेण॥33॥
1357. अक्ककित्ति-अणुमदीइ, गहिदा तासु मुद्ध-मेहसेणेणं।
करा उहयकण्णाणं, सम्मुहम्मि णयरवासीणं॥34॥



1358. तं दिस्सं पस्सित्ता, णयरवासी आसुरुत्ता हवेज्जा।
पिदु-णंदिमित्तेण, णिय-दुहं णिवेदिदं रुदंतेण॥35॥

उन कन्याओं की सुंदर रूपराशि को देखकर वे मुग्ध हो गए। उन कन्याओं के परिचय के बिना ही विशेष रूप से मेघसेन उनकी ओर आकर्षित हुआ॥33॥ अर्ककीर्ति की सहमति से उन कन्याओं पर मुग्ध मेघसेन ने दोनों कन्याओं का हाथ नगरवासियों के सम्मुख ग्रहण कर लिया॥34॥ उस दृश्य को देखकर नगरवासी बहुत क्रोधित हो गए; तब कन्याओं के पिता नंदिमित्र ने रोते हुए राजा विमलकीर्ति के समक्ष अपना दुःख निवेदित किया॥35॥

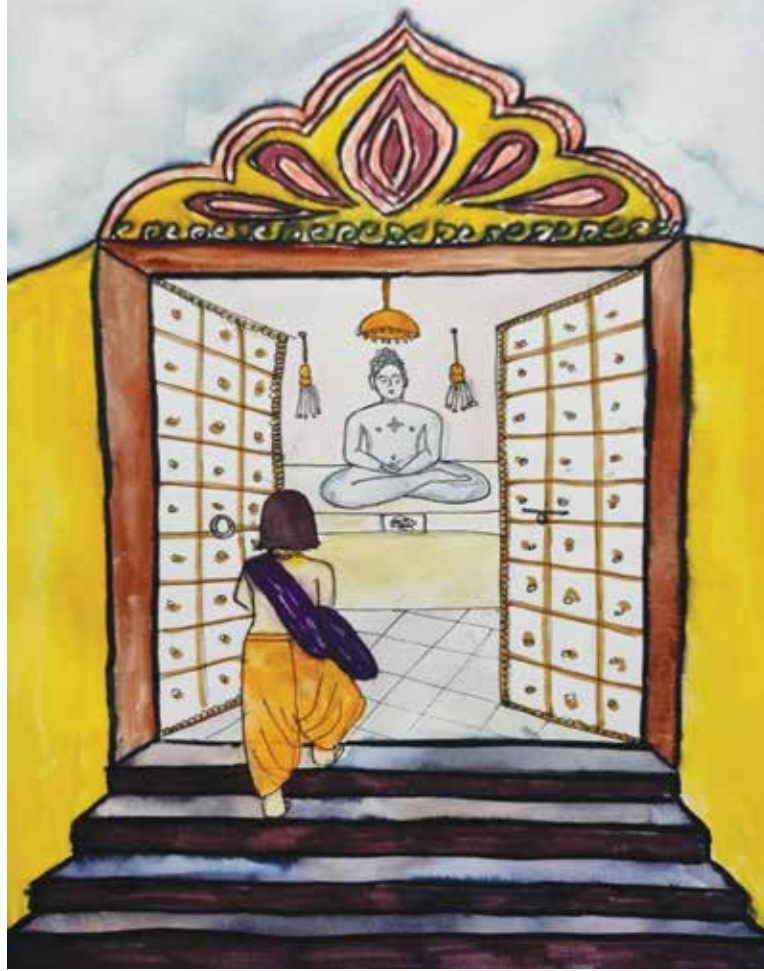
1359. ताण वत्तं सुणिच्चा, कुविद-रायेण तदा दंडिदा ते।
णिस्सारिदा देसादु, अकज्जस्स धिक्कारंतेण॥36॥
1360. तादो ठाणादो चिय, पहुच्चित्तु ते वीदसोगपुरं च।
अइ-पमिलाण-मुहेणं, वियारीअ भाविकज्जाइं॥37॥
1361. तस्स देसस्स राओ, विमलवाहणो दु विणिम्मलचित्तो।
राणी विमलसिरी तह, चित्तापहारगा सुंदरी॥38॥
1362. ताण-मट्टपुत्तीओ, जयमदी सुकंता कणगमाला या।
सुप्पहा य सुमदी सुव्वदा सुव्वदाणंदा तहा॥39॥
1363. विमलप्पहा सम्मत्त-वसुअंगोव्व सुसक्कारवंता या।
गुणवंत-पुण्णवंता, सीलवंता सुभग्गवंता॥40॥ (जुम्मं)
1364. राय-विमलवाहणेण, एयदा पुच्छिदं अइ-पीदीए।
मे जयमदि-आदीणं, को होज्ज पदी पुण्णवंतो॥41॥
1365. तदा णिमित्तणाणिणा, भासिदं जो को वि पुण्णपुरिसो दु।
पुण्णवंत-जामादू, विज्जेज्ज चंदगवेज्जं सो॥42॥

तब उनकी वार्ता को सुनकर राजा ने अर्ककीर्ति व मेघसेन को दंडित किया एवं उनके इस नहीं करने योग्य कार्य के लिए धिक्कारते हुए देश से बाहर निकाल दिया॥36॥ अति म्लान मुख से उस स्थान से निकलकर वे वीतशोकपुर पहुँचे और अपने भविष्य के कार्यों का विचार करने लगे॥37॥ उस देश का राजा निर्मलचित्त वाला विमलवाहन था। उसकी भार्या रानी विमलश्री थी जो सुंदर व उसके चित्त का हरण करने वाली थी॥38॥ उनकी सुसंस्कारों से युक्त, सम्यक्त्व के आठ अंग के समान, गुणवती, पुण्यवती, शीलवती और सौभाग्यवती आठ पुत्रियाँ थीं। उनके नाम इस प्रकार थे—जयमति, सुकान्ता, कनकमाला, सुप्रभा, सुमति, सुव्रता, सुव्रतानंदा और विमलप्रभा॥39-40॥ एक बार राजा विमलवाहन ने किसी निमित्तज्ञानी से पूछा कि मेरी जयमति आदि पुत्रियों का पुण्यवान् पति कौन होगा?॥41॥ तब निमित्तज्ञानी ने कहा जो कोई भी पुण्य पुरुष चंद्रकवेध का वेध करेगा वही तुम्हारा पुण्यवान् दामाद होगा॥42॥

1366. भिंडिमाल - कुंत - फरसु - धणु - करवालाइ - सत्थाणं।
विज्जासुं णिउणेणं, धणुव्वेदम्मि विसेसेणं॥43॥
1367. धणुद्धरेण अक्केण, विज्झिदं चंदगवेज्झं खणेगे।
सव्वा रायकुमारा, रायादी विम्हावन्तेण॥44॥ (जुम्मं)
1368. तदा जयमदी पहुदी, कण्णा पदायिदा अक्ककित्तिस्सा।
राय-विमलवाहणेण, विहीए णिगामायरेणं॥45॥
1369. लहित्तु वसुकण्णाओ, ठाएज्ज तत्थ किंचणयालंतं।
भुजंतो वरभोयं, अइ-सुहेणं च आणंदेण॥46॥
1370. गच्छीअ एयदिवसे, अमलयागत्थ-जिणालयहिरामं।
अहिसेगं जिणपूयं, णीरखीराइ-सुहदव्वेहि॥47॥
1371. उत्तमरयणेहि कट्टु, उववासेण सह ठाही तत्थेवा।
कुणंतो जवं भत्तिं, पूयं णिवज्जीअ रत्तीइ॥48॥ (जुम्मं)
1372. लववो रायकुमारो, अवहरिदो चित्तलेहाए तदा।
बहु-विज्जाधारगाइ, पुणो आगासमग्गेणं हु॥49॥

राजकुमार अर्ककीर्ति भिंडमाल, भाला, फरसा, धनुष, तलवार आदि शस्त्र विद्याओं में निपुण था एवं विशेष रूप से धनुर्विद्या में निपुण था॥43॥ सभी राजकुमार एवं राजाओं को आश्चर्यचकित करते हुए उस धनुर्धर अर्ककीर्ति ने एक ही क्षण में चंद्रकवेध को वेध दिया॥44॥ तब राजा विमलवाहन ने विधिपूर्वक अत्यन्त आदर के साथ जयमति आदि आठों कन्याओं को अर्ककीर्ति के लिए प्रदान किया॥45॥ आठों कन्याओं को प्राप्त कर उत्तम भोगों को भोगते हुए अति सुखपूर्वक व आनंद से कुछ समय तक अर्ककीर्ति वहाँ ठहरा॥46॥ एक दिन अर्ककीर्ति मनोहर अमलयागस्थ जिनमंदिर गया। नीर-क्षीरादि शुभ द्रव्यों से अभिषेक व उत्तम रत्नों से जिनेंद्र भगवान् की पूजन कर उपवास सहित वह वहाँ ठहरा। रात्रि में जाप, भक्ति व पूजा करता हुआ अर्ककीर्ति वहाँ स्थित हुआ॥47-48॥ कुछ समय पश्चात् राजकुमार वहीं सो गया तब बहुत विद्याओं को धारण करने वाली चित्रलेखा ने उस अर्ककीर्ति का हरण कर लिया॥49॥

1373. विजयद्ध-पव्वदे ठिद-सिद्धकूड-जिणालये णीएज्जा।
जागरित्ता कुमारो, पस्सित्तु जिणालयं पढमं॥50॥
1374. विप्पसीअ सुकुमारो, तस्स दु अदिसय-पुण्णपहावेणं।
मंदिरस्स सु वज्जमय-दारं उग्घडीअ सयमेव॥51॥ (जुम्मं)



1375. सिरिजिणबिंबदंसणं, सुहभावेहि अच्चंतहरिसेणं।
करीअ जिणाहिसेगं, पूयं गाअंतो भत्तीइ॥52॥

वह उस सोते हुए अर्ककीर्ति को विजयाद्ध पर्वत पर स्थित सिद्धकूटवर्ती जिनालय में ले गयी। वह सुकुमार जागकर सबसे पहले जिनालय को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसके अतिशय पुण्य प्रभाव से मंदिर के वज्रमय द्वार अपने आप ही खुल गए॥50-51॥ उसने अत्यंत हर्षपूर्वक शुभ भावों से श्री जिनबिंब दर्शन किए एवं भक्तिपूर्वक गाते हुए जिनेंद्र भगवान् का अभिषेक और पूजन की॥52॥

1376. तत्थ ठाण-सुरक्खगो, सुविज्जाहरो तदा विगडदंतो।
आहम्मिदूणं तस्स, णियडे पज्जरीअ कुमारो॥53॥
1377. केण कारणेण इमा, विज्जाहर-सुदा तुमं आहरीअ
छलेणं णिवज्जंतं, उप्पालेमि हु आयण्णेसु॥54॥ (जुम्मं)
1378. इह विजयद्ध-पव्वदे, अब्भपुरं चिय सुसोहिदं णयरं।
देवणयरीव विज्जाहर-परिपूरिदं अहिरामं॥55॥
1379. भूवदी पवणवेगो, विज्जाहरो परिक्कंतो धीरो।
तस्स पिय-अद्धंगिणी, गगणवल्लहा इंदाणीव॥56॥
1380. सा णिम्मलचित्ता पइ-अणुगामिया वच्छलभावजुत्ता।
णाणाकला-संजुदा, सुपुण्णरदा सीलवंता य॥57॥
1381. ताणं सुपुण्णवंता सुकुमारिया वीदसोगा पुत्ती।
रूववइ-भद्दा कला-णिउणा तह विण्णाण-कुसला॥58॥
1382. एयदा तेण णिवेण, पुच्छिदं णियपुत्तिवीदसोगाइ।
विवाह-संबंधम्मि य, को ताए सेट्ट-जोग्गवरो॥59॥
- 1383 जस्स पहावेण सिद्धकूड-मंदिरदारं उग्घाडेज्ज।
णिमित्तणाणिणा तदा, कहिदं हु होज्ज पदी ताए॥60॥

तब उस स्थान का रक्षक विकटदंत नाम का विद्याधर उसके पास में आकर बोला—हे कुमार! “विद्याधर की पुत्री किस कारण आपको सोते हुए छलपूर्वक यहाँ लेकर आयी है” उसका कारण मैं कहता हूँ सुनो॥53-54॥ इसी विजयाद्ध पर्वत पर देव नगरी के समान अभ्रपुर नामक नगर सुशोभित है; वह विद्याधरों से परिपूरित व सुंदर है॥55॥ उस नगर का राजा पवनवेग विद्याधर है जो पराक्रमी व धीर है। उसकी प्रिय अद्धांगिनी गगनवल्लभा इंद्राणी के समान है॥56॥ वह रानी निर्मल चित्त वाली, पति की अनुगामिनी, वात्सल्य भाव से युक्त, नाना कलाओं से युक्त, सुपुण्य में रत और शीलवती है॥57॥ उनकी सुकुमारी वीतशोका नामक पुत्री है जो पुण्यवती, रूपवती, भद्रपरिणामी, कलाओं में निपुण एवं विज्ञान कुशला है॥58॥ एक बार राजा पवनवेग ने किसी निमित्तज्ञानी से अपनी पुत्री वीतशोका के विवाह के संबंध में पूछा था कि “कौन इसका श्रेष्ठ योग्य वर होगा?॥59॥ तब निमित्तज्ञानी ने कहा कि “जिस पुरुष के प्रभाव से सिद्धकूटवर्ती जिनमंदिर के द्वार स्वयं खुल जाएँगे वह ही इसका पति होगा”॥60॥

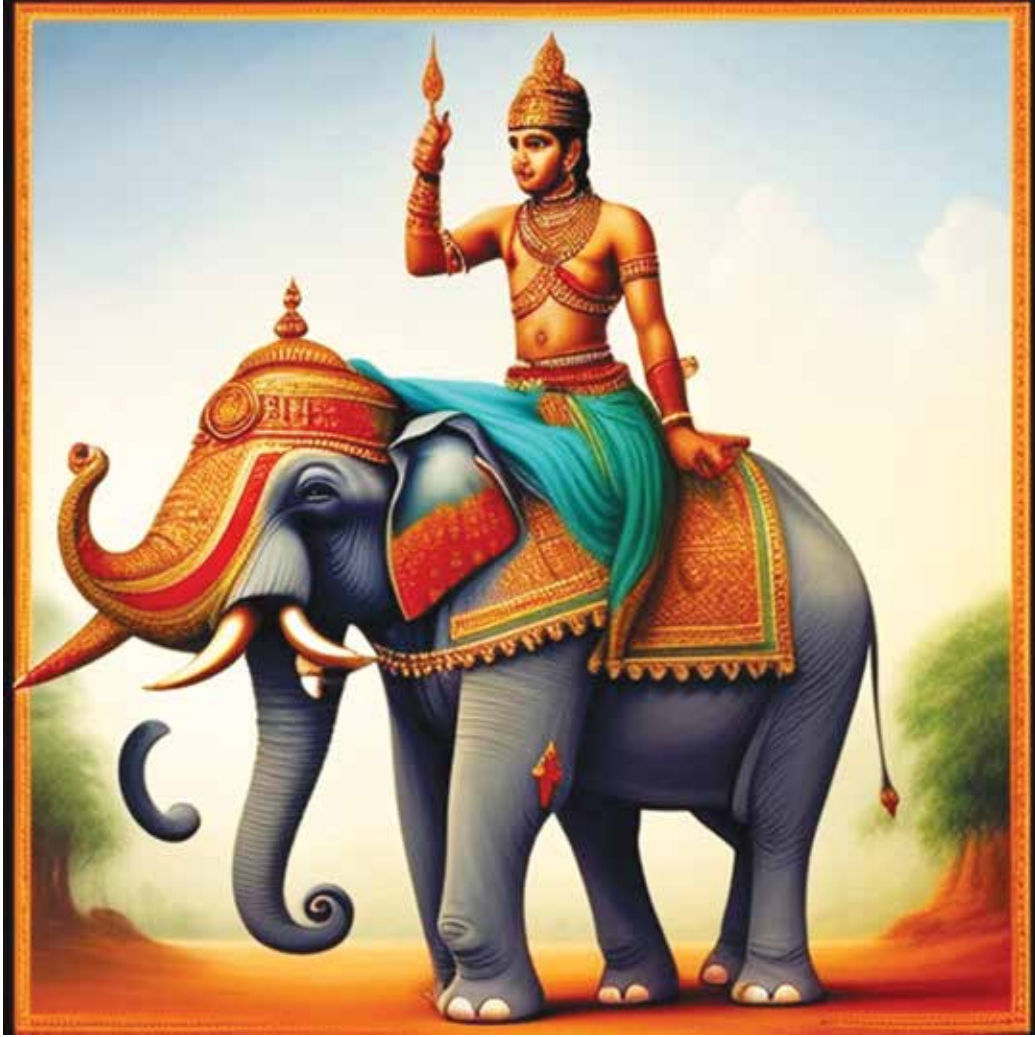
1384. असाधारणं पुण्यं, पस्सिय तव कित्तिं सुह-लक्खणाणि।
णिउत्त-विज्जाहरीइ, अवहरिदो उट्टेसु अहुणा॥61॥
1385. आगच्छेज्ज मए सह, भो पुण्यवंत-कुमारो सहसत्ति।
सेट्ट-रायपासादं, पुढविपदि-पवणवेगस्स खलु॥62॥
1386. सुहेण रायुज्जाणे, ठवित्तु तं पहुच्चीअ पासादं।
दायिदुं समायारं, सुहं णिव-पवणवेग-णियडे॥63॥
1387. सुणिय सव्ववित्तंतं, अइउच्छाहेणं पवणवेगेण।
पिय-गगणवल्लहाए, पसण्णेण सागदं करिदं॥64॥
1388. तस्स रायकुमारस्स, रज्जकुडुंब-मंतिमंडलेहि सह।
आणंदमहुच्छवो दु, होही तदा तम्मि णयरम्मि॥65॥ (जुम्मं)
1389. कोक्किय णिउणपंडिदं, उत्तममुहुत्ते अप्पिदा पुत्ती।
अक्ककित्ति-कुमारस्स, विहीए अइ-उल्लासेणं॥66॥
1390. इगतीस-कण्णण्णाण, पाणिग्गहणसुसक्कारो वि तदा।
णिव-अक्ककित्तिणाण सह, अइ-विहवेणं समिद्धीए॥67॥
1391. तम्मि अब्भपुर-णयरे महुच्छवो च मासेग-पज्जंतं।
करिदो जिणपूयदाण-पहुदीहि सह विहव-दंसगो॥68॥

आपके असाधारण पुण्य, कीर्ति व शुभ-लक्षणों को देखकर इस नियुक्त विद्याधरी ने आपका हरण किया है, अतः अब उठो॥61॥ हे पुण्यवान् कुमार! शीघ्र मेरे साथ पृथ्वीपति पवनवेग के श्रेष्ठ राजप्रासाद में चलो॥62॥ वह विद्याधर अर्ककीर्ति को सुखपूर्वक राज उद्यान में ठहराकर राजमहल में राजा पवनवेग के निकट शुभ समाचार देने के लिए पहुँचा॥63॥ उक्त सब वृत्तांत को सुनकर राजा पवनवेग व गगनवल्लभा ने अति उत्साह व प्रसन्नतापूर्वक सर्व राजकुटुंब व मंत्रिमंडल के साथ उस राजकुमार का स्वागत किया। तब उस नगरी में अति आनंद महोत्सव हुआ॥64-65॥ निपुण पंडित को बुलाकर राजा ने उत्तममुहूर्त में विधिपूर्वक अति उल्लास के साथ अपनी पुत्री राजकुमार अर्ककीर्ति के लिए अर्पित की॥66॥ तभी अन्य इकतीस कन्याओं का पाणिग्रहण शुभ संस्कार भी अति वैभव व समृद्धि से राजकुमार अर्ककीर्ति के साथ कर दिया॥67॥ उस अभ्रपुर नगर में एक मास तक जिनपूजा, दान आदि के द्वारा वैभव को दिखलाने वाला महोत्सव किया गया॥68॥

1392. पंचवासंतं अक्क-कित्ती ठाएज्जा सगपियाहि सह।
रायविहूदीए सह, सुहेण भुंजंतो भोयाणि॥69॥
1393. अणंतरं अंजणगिरि-णयरं खलु आगच्छीअ कुमारो।
कुअहलेण रंजंतो, चित्ताइं णयरवासीणं॥70॥
1394. भूवदि-पहंजणेणं, सुसासिदं तं सुणीदि-रीदीहिं।
अच्चंत-साहिमाणी, रायविज्जाजुत्तो विण्णो॥71॥
1395. तस्स हिअयवासिया दु, वच्छलजुदा णीलंजणा राणी।
सोम्ममुत्ती जिणधम्म-रदा तह सुसक्कारवंता॥72॥
1396. ताणं अट्टरिद्धीव, अट्टकण्णाओ मदणा कणगा या
विउला वेगवदि-कणगमाला विज्जुप्पहा पण्णा॥73॥
1397. जयमदी सुकंता ता, विहिण्ण-सुविज्जाकला-संजुत्ता।
पिदरस्साणाइत्ता, मच्छराइ-दुग्गुण-विहीणा॥74॥ (जुम्मं)
1398. एयदा तम्मि णयरे, अंजणगिरि-करिणा उच्छंखलेण।
उल्लूरिदा हु खंभा, इभपालेण अणियंतिदेण॥75॥
1399. भंजिद-मयससंकलं, अणेगभवणं धंसंतो करीअ।
बहुमाणुससंहारं, आधोरणं अवि घादीअ य॥76॥ (जुम्मं)

अर्ककीर्ति राजविभूति युक्त अपनी प्रियाओं के साथ सुखपूर्वक भोगों को भोगते हुए पाँच वर्ष तक वहाँ रहे॥69॥ अनंतर अपने कौतूहल से नगरवासियों के चित्त को रंजायमान करता हुआ कुमार अंजनगिरी नगर में आ गया॥70॥ वह नगर सम्यक् नीति व रीति से राजा प्रभंजन द्वारा शासित था। वह राजा अत्यंत स्वाभिमानी, राजविद्या से युक्त और विज्ञ था॥71॥ उसकी हृदयवासिनी रानी का नाम नीलांजना था जो वात्सल्य भाव से युक्त, सौम्यमूर्ति, जिनधर्म में अनुरक्त तथा सुसंस्कारवती थी॥72॥ उनकी आठ ऋद्धियों के समान आठ बुद्धिमती पुत्रियाँ थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं— मदना, कनका, विपुला, वेगवती, कनकमाला, विद्युत्प्रभा, जयमति और सुकांता। वे सभी विभिन्न सुविद्या व कलाओं से युक्त थीं। अपने माता-पिता की आज्ञाकारिणी एवं मात्सर्य आदि दुर्गुणों से रहित थीं॥73-74॥ एक दिन उस नगर में अंजनगिरी नामक हाथी उच्छंखल हो गया। तब उसने खंभों को उखाड़ दिया, लोहे की सांकलों को तोड़ दिया, अनेक भवनों को ध्वस्त करते हुए उसने बहुत नर संहार कर दिया तब महावत भी उसे नियंत्रित न कर सका। उसने महावत को भी मार दिया॥75-76॥

1400. तं अइ-विवइं सोढुं, णेव समत्था तदा णयरवासी।
अक्ककित्ती-कुमारो, हत्थि-सम्महम्मि णिब्भिच्चो॥77॥
1401. विणा अत्थसत्थेहिं, गयरायो जंतिदो तेण सिग्घं।
तं आरुहिदूणं सो, पहुच्चीअ रायपासादं॥78॥ (जुम्मं)



1402. रायपुरिसेहि सह बहुमाणो पहाविद-पभंजणेण।
तक्कालम्मि कुव्विदो, पस्सित्तु ओजंसि-कुमारं॥79॥

उस अति दुःख को सहने में नगरवासी समर्थ नहीं थे। तभी निर्भीक कुमार अर्ककीर्ति बिना अस्त्र-शस्त्रों के हाथी के सम्मुख पहुँच गया और उसने शीघ्र ही हाथी को अपने वश में कर लिया एवं उस पर आरूढ़ होकर राजमहल पहुँचा॥77-78॥ तत्काल ही उस ओजस्वी राजकुमार को देखकर उससे प्रभावित राजा प्रभंजन ने राज-पुरुषों के साथ उसका बहुमान किया॥79॥

1403. अदिसय - पुण्णवंतो य, रायपुत्तो महाकुलीण - सूरौ।
दयाख्रमाइ - संजुदो, विणयइ - णाणागुणपुंजो॥80॥
1404. मम रयणं व पुत्तीण, सुजोग्गो वरो सुहलक्खणजुत्तो।
चिंतीअ पस्सित्तु तं, देवोव्व भासिदं कुमारं ॥81॥ (जुम्मं)
1405. पाणिगहणसक्कारो, पुण्णाहे सुमुहुत्ते संपण्णो।
तेण सह वसुकण्णाण, णिमित्तणाणि-अणुसारेणं॥82॥
1406. जयदु रायपहंजणो, जयदु सया अक्ककित्ती कुमारो।
गुंजीअ मही गगणं, पयाए जयजयकारेहिं॥83॥
1407. इह देसे महापुरिस-रीदिं पस्सेज्ज परोवयारस्स।
तेण रक्खिदं णयरं, णिवेण दायिदा वसुकण्णा॥84॥
1408. सज्जणाणं सहावो, अयलो सयायाले सव्वखेत्ते।
णेव किदं उवयारं, विम्हरंति सज्जणा कया वि॥85॥
1409. अग्गी जह उण्हत्तं जलं सीयलत्तं पुष्पं गंधं।
सिप्पी मोत्तिअं तहा, रयणायरो देदि रयणं॥86॥

उस देव के समान प्रतिभासित कुमार को देखकर राजा सोचने लगा—“अहो! यह राजकुमार अतिशय पुण्यवान् है। राजपुत्र, कुलीन व शूरवीर है। दया, क्षमा आदि गुणों से युक्त है, विनय आदि नाना गुणों का पुंज है। शुभ लक्षणों से युक्त है। मेरी रत्न समान पुत्रियों के लिए यह सुयोग्य वर है”॥80-81॥ऐसा विचारकर निमित्तज्ञानी के अनुसार शुभ दिन व शुभ मुहूर्त में उसके साथ आठ कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार संपन्न हुआ॥82॥ तब राजा प्रभंजन की जय हो, राजकुमार अर्ककीर्ति की जय हो; इस प्रकार प्रजा के जय-जयकारों से संपूर्ण धरती व आकाश गुंजायमान हो उठा॥83॥ इस देश में परोपकार की महापुरुषों की रीति तो देखो। यदि अर्ककीर्ति ने नगर की रक्षा की तो राजा ने अपनी आठ कन्याएँ उसे प्रदान कीं॥84॥ सर्वकाल व सर्वक्षेत्र में सज्जनों का स्वभाव अचल होता है। सज्जन अपने प्रति किए गए उपकार को कभी नहीं भूलते॥85॥ जिस प्रकार अग्नि ऊष्णता, जलशीतलता, पुष्प गंध, सीप मोती, रत्नाकर रत्न, नदी जल, गाय दुग्ध व घृतादि पंचगव्य देती है, मधुमक्खी शहद, हाथी गजमुक्ता, बादल जल, हरिण कस्तूरी, इक्षु मधुरता, दीपक की ज्योति प्रकाश, आकाश अवगाहन, वृक्ष पुष्प-फल व छाया, अरिहंत सम्यग्ज्ञान, साधु सभी के लिए आशीर्वाद देते हैं उसी प्रकार सज्जन स्वभावतः सभी का हित व उपकार करते हैं॥86-89॥

1410. मंदाइणी सलिलं च, धेणू खीरं धिदाइ-पणगव्वं।
महुमच्छिआ महुं गय-मोत्तिअं गयो जलं मेहो॥87॥
1411. मिगो कत्थूरि-मिक्खू, महुरिमं दीवजोदी पयासं हु।
अवगाहण-मायासो रुक्खो पुप्फं फलं छायां॥88॥
1412. अरिहंतो सण्णाणं, साहू आसीवायं सव्वाण।
सज्जणा सहावादो कुव्वंति तह हिद-मुवयारं॥89॥ (चउक्कं)
1413. किंचण-वासंतं पुण, कुमारो चिट्ठीअ णियपियाहि सह।
आणंदेण णेहेण, अइ-आयरेण एयदा पुण॥90॥
1414. सगपिदर-सिमरणादो, वीदसोग-णयरिं अइयंतो सो।
पहुच्चीअ मित्तेणं, सह णियसेट्टजम्मणयरिं दु॥91॥
1415. बालोव्व सुह-महुर-चित्ताकस्सग-चेट्टाहि विम्हावीअ।
सव्वा णयरवासी दु, पुंडरीगणि-सुहणयरीए॥92॥
1416. पुणो विज्जाबलेणं, अइ-विसाल-गठिद-वाहिणिं खणम्मि।
णिम्माणिदूण तेणं, वज्जावाविदा रणभेरी॥93॥
1417. तं भेरिं सुणिदूणं, विमलकित्ती वि आगच्छीअ तत्थ।
णियसुवाहिणीए सह, रोसेणं रज्ज-रक्खाए॥94॥

पुनः राजकुमार अर्ककार्ति आनंद, स्नेह व अति आदरपूर्वक अपनी प्रियाओं के साथ कुछ वर्ष तक वहाँ ठहरे॥90॥ एक बार उसे अपने पिता का स्मरण हो आया तब वह वीतशोक नगरी से गुजरते हुए अपने मित्र के साथ अपनी श्रेष्ठ जन्म-नगरी अर्थात् पुंडरीकणी नगरी पहुँचा॥91॥ उसने पुंडरीकणी नामक शुभ नगरी में अपनी बाल सुलभ शुभ, मधुर, चित्ताकर्षक चेष्टाओं से सभी नगरवासियों को आश्चर्यचकित कर दिया॥92॥ पुनः विद्या बल से एक ही क्षण में अति विशाल सुगठित सेना बनाकर उसने युद्ध के लिए भेरी बजवा दी॥93॥ उस युद्ध की भेरी को सुनकर अपने राज्य की रक्षा के लिए रोषपूर्वक राजा विमलकीर्ति भी अपनी सेना के साथ आ पहुँचा॥94॥

1418. चक्क-धणु-कुंतादीहि, अत्थसत्थेहि सज्जिदा वाहिणी।
जुञ्जुच्छुगा सत्तूण, भयुप्पायगा दु कुमारस्स॥१९५॥
1419. इभपालेहि सज्जिदं, आरुहिदूणं रोविदत्थं हत्थि।
एरावदे इंदोव्व, पहुच्चीअ सत्तु-सम्मूहे य॥१९६॥
1420. मंगलसूयग-सउणा, दक्खिणबाहुफंदणं जलकलसं।
वामे जंबूग-सरो, गदहस्स मिदुसरो तत्थेव॥१९७॥
1421. उच्छाहजुद-सेणिगा, भारद्दाय-पक्खिणा पदक्खिणा।
इद्धत्थ-सूयगेहिं, विजयो फुडो अक्ककित्तिस्स॥१९८॥
1422. विमलकित्ती भासेदि, उच्चसरे पस्सिय लहुवयं तस्स।
मिच्चुणो किं ण विभेसि, रे बालो आगच्छीअ किं॥१९९॥
1423. अरे दहुरो दुट्ठो, केण कारणेण मिच्चुम्मि णिज्झसि।
बालोव्व तुमं जाणिय, मरहेमि तव सव्वदोसा हु॥१००॥
1424. ण कंखेमि तव मिच्चुं, केण कारणेण इयरहा भणेज्ज।
सव्वराया मूसगो, घादिदो जुञ्जम्मि सीहेण॥१०१॥

कुमार अर्ककीर्ति की सेना चक्र, धनुष व भाला आदि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित व युद्ध के लिए उत्सुक थी। वह सेना उस समय शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाली थी॥१९५॥ जिसे महावतों ने सजाया, जिस पर अस्त्र-शस्त्र रख दिए गए थे ऐसे हाथी पर सवार होकर अर्ककीर्ति शत्रु-सेना के सन्मुख पहुँचा। उस समय वह ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे ऐरावत हाथी पर सवार इंद्र॥१९६॥ युद्ध के लिए जाते समय मंगलसूचक शकुन हुए। उसकी दाँयी भुजा फड़कने लगी, जल से भरे कलश दिखे, बाँई ओर शृगाली शब्द करने लगी और उसी दिशा में गधा कोमल शब्दों में बोलने लगा॥१९७॥ भारद्वाज- खंजरीट पक्षी कहीं से आकर अर्ककीर्ति की परिक्रमा करके चला गया। सभी सैनिक उत्साह से युक्त थे। इन सभी इष्टार्थ सूचकों से अर्ककीर्ति की विजय स्पष्ट हो गई थी॥१९८॥ उधर विमलकीर्ति उस कुमार की लघुवय देखकर उच्च स्वर में कहने लगे-हे बालक! तुम यहाँ क्यों आए हो, क्या तुम्हें मृत्यु से डर नहीं लगता?॥१९९॥ अरे दर्दुर! दुष्ट! किस कारण तुम मृत्यु से स्नेह करते हो। तुम्हें बालक के समान जानकर मैं तुम्हारे सभी दोषों को क्षमा करता हूँ॥१००॥ मैं तुम्हारी मृत्यु नहीं चाहता अन्यथा सब राजा कहेंगे कि एक सिंह ने युद्ध में किस कारण एक चूहे का वध कर दिया॥१०१॥

1425. तह वि अक्ककित्ती णो, कुप्पीअ सुणित्तु इमाणि वयणाणि।
पसण्णचित्तेण भणदि, खणणंतरे पस्सेज्ज णिवो॥102॥
1426. को मूसगो य सीहो, को विच्छिओ को विसव-णागो वा।
को सायरो तडागं, जुङ्गणंतरे हवेज्ज फुडो॥103॥ (जुम्मं)
1427. णवरि महापुरिसो णो, दंसदि विक्कमं मेत्तं वयणेहि।
करेज्ज अस्स णिण्णयं, बाहुबलं वर-सत्थविज्जा॥104॥
1428. णयणादो वरिसंतो, अग्गिजालं भासेदि अइ-कुविदो।
णिच्छयेण तव मरणं, भमदे सिरोवरि वायालो!॥105॥
1429. अहो रायसिरोमणी!, किं तए णो सुणिदाणि वयणाइं।
सारविहीणो चणगो, बहुरवं कुव्वेदि पसिद्धो॥106॥
1430. सरिदाए हि पलावो, होदि अहंकारेणं भो राओ।
किण्णु-रयणायरो णो, उल्लंघेदि सगमज्जादं॥107॥
1431. मम हत्थेहिं मरणं, सुणिच्छिदं तव पस्ससु इसु-वरिसं।
इत्थं भासिदूणं हु, छंडीअ बहु-सरा रोसेण॥108॥

इन वचनों को सुनकर भी अर्ककीर्ति क्रोधित नहीं हुआ। वह प्रसन्नचित्त होकर कहता है—हे राजन्! एक क्षण पश्चात् ही देख लेंगे कि कौन चूहा है और कौन शेर, कौन बिच्छु है और कौन विषैला नाग, कौन सागर है और कौन तालाब; युद्ध के बाद सब स्पष्ट हो जाएगा॥102-103॥ विशेषता यह है कि महापुरुष अपना पराक्रम मात्र शब्दों से प्रदर्शित नहीं करते। भुजाओं का बल और श्रेष्ठ शस्त्रविद्या ही इसका निर्णय करेगी॥104॥ यह सुनकर अति क्रोधित विमलकीर्ति नयनों से अग्नि ज्वाला बरसाते हुए कहता है रे वाचाल! निश्चय से तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिर पर मंडरा रही है॥105॥ अर्ककीर्ति पुनः कहता है अहो राजशिरोमणि! क्या आपने ये वचन नहीं सुने— “थोथा चना बाजे घना, यह बात तो प्रसिद्ध है॥106॥ हे राजन्! अहंकार के कारण नदी में ही बाढ़ आती है किन्तु समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता॥107॥ “लगता है मेरे हाथों ही तुम्हारा मरण सुनिश्चित है, लो देखो, बाणों की वर्षा।” इस प्रकार कहकर रोषपूर्वक राजा विमलकीर्ति ने बहुत से बाण छोड़े॥108॥

1432. सगसेट्ट-धणुविज्जाइ, खंडीअ सव्वबाणा दु मग्गम्मि।
णिव-विमलकित्तिणा बहुविहबाणा छंडिदा पुण पुण॥109॥
1433. किण्णु अक्ककित्तिणा दु, खंडिदा सव्व-बाणा विणयेणं।
एरिसा हि मज्जादा, कुलीण-पुत्तस्स आयंसो॥110॥ (जुम्मं)
1434. कुलमज्जादा सक्किदि-रक्खगो विणदो महुरभासगो या
आणायारी मज्जादिदो धम्मिट्ठो मण्ण-गुणी॥111॥
1435. सयायार-संजुत्तो, णारीउ पडि सम्माणभावजुदो।
हीणोवसणपावादु,णिच्छलोयकुलीण-सुपुत्तो॥112॥(जुम्मं)
1436. तुरंगीणं रहीणं, पदादीणं खलु गजारूढाणं।
समा कच्छा दु जेणं, जस्स सो तं चिय आहवीअ॥113॥
1437. पव्वयादो पडंता, सरिदा व्व तिव्ववेगेणं भिडीअ।
उहयवाहिणी हु तिव्वरोसेण वण्णकूरपसू व्व॥114॥
1438. तुरंगीहिं तुरंगी, गयारूढेहि गयारूढ-छिण्णा।
भिण्णा रहीहिं रहा, हया पदादी पदादीहिं॥115॥

तब अर्ककीर्ति ने अपनी श्रेष्ठ धनुर्विद्या से मार्ग में ही सब बाणों को खंडित कर दिया। राजा विमलकीर्ति ने पुनः पुनः बहुत प्रकार के बाण छोड़े किन्तु कुमार अर्ककीर्ति ने विनयपूर्वक सभी बाणों को खंडित कर दिया। कुलीन पुत्र का आदर्श और उसकी मर्यादा ऐसी ही होती है॥109-110॥ कुलीन पुत्र कुल की मर्यादा व संस्कृति का रक्षक, विनम्र, मधुरभाषी, आज्ञाकारी, मर्यादित, धर्मिष्ठ, मान्य, गुणी, सदाचार से युक्त, नारियों के प्रति सम्मानभाव से युक्त, व्यसन व पाप से हीन और निश्छल होता है॥111-112॥ उस समय कुछ योद्धा घोड़ों पर सवार थे, कुछ रथों पर, कुछ हाथियों पर। इनके अतिरिक्त पयादे भी थे किन्तु जो जिसके जोड़े का था उसने उसे ललकारा॥113॥ दोनों ओर की सेना पर्वत से गिरती हुई नदी के समान तीव्र वेग से एवं वन्य क्रूर पशुओं के समान तीव्र रोष से भिड़ गयीं॥114॥ घुड़सवारों के द्वारा घुड़सवार घायल किए गए, गजारोहियों के द्वारा गजारोही घायल किए गए। रथारोहियों के द्वारा रथ तोड़े गए और पदातियों के द्वारा पदाती मारे जाने लगे॥115॥

1439. कथ वि पदिद-पदादी, कथ वि भिण्णा तुरगा दंती तह।
कथ वि भग्गमहरहा, दुस्संचारं रणंगणम्मि॥116॥
1440. कया य धणुटंकारो, कया दु भिंडिमाल-कुंतादीणां।
अइ भयंकर-रवेणं, कंपीअ चिअ सव्वदिसाओ॥117॥
1441. णरमुंडपंतीए, पुढवी हु वहंतरत्तधाराए।
भयुप्पायगा हु तदा असि-झुणी गुंजीअ जुद्धम्मि ॥118॥



रणंगण में कहीं पयादे पड़े हुए थे कहीं घायल हाथी-घोड़े दिख रहे थे, कहीं टूटे हुए बड़े-बड़े रथों का ढेर लगा हुआ था अतएव वहाँ संचार करना कठिन हो गया था॥116॥ कभी धनुष की टंकार से कभी भिंडिमाल व भाले आदि की भयंकर आवाज से सभी दिशाएँ कंपायमान थीं॥117॥ युद्ध में तलवार की ध्वनि से आकाश गुंजायमान हो रहा था। तब नरमुंडों की कतार व बहती हुई रक्त की धारा से वह पृथ्वी भय को उत्पन्न कर रही थी॥118॥

1442. पस्सिय तं चिंतदि सो, सेणा-हणणं दु णिरत्थगं अत्था
कस्स वि णेव हिदत्थं, इदं जुञ्जं विणास-हेदू॥119॥
1443. मुच्छाबाणेण तदा, मुच्छिदा सव्वा हु रायेण विणा।
पच्छा मंद-गदीए, छंडिदो बाणो पिदु-पदेसु॥120॥
1444. णियणामक्खरेहिं दु, अंकिदं विणयेण पणमंतेणं।
तं अवयच्छिदूणं च, अच्चंताणंदिदो जणगो॥121॥ (जुम्मं)
1445. अहो इमो पुत्तो मम, बहुवासणंतरे चिय पलोट्टीअ।
सुजोग्गो पुण्णवंतो, परिक्कंतो बुद्धिमंतो य॥122॥
1446. अवरुहिय सगरहादो, पहुच्चीअ अवरुहंत-पिदु-णियडे।
पणमीअ सगपुज्ज-पिदु-चरणेसुं सजल-णयणेहिं॥123॥
1447. आवआसिदो पुत्तो, अइणेहेणं च गव्वभावेणं।
णिण्णिमेस-पस्संतो, भो सुदो! पुण्णवंतो तुमं॥124॥
1448. गंभीरो सुगुणीसुं, विणयो जसवंतो पण्णावंतो।
बहु-सुकला-संजुत्तो, व्यवहारकुसलो णीदिण्हू॥125॥ (जुम्मं)
1449. तुमं मज्झं दु गव्वो, दायित्ता रज्जं तुज्झं अहुणा।
कल्लाण-मगगम्मि हं, समत्थो कुव्विदुं पविट्ठिं॥126॥

यह देखकर अर्ककीर्ति विचार करने लगता है कि यहाँ सेना का विनाश निरर्थक है, इससे किसी का भी हित नहीं होगा। अहो! यह युद्ध विनाश का ही हेतु है॥119॥ तब कुमार ने मूर्च्छा बाण के द्वारा राजा को छोड़कर सभी को मूर्च्छित कर दिया। पश्चात् अपने नामाक्षरों से अंकित एक बाण उसने अपने पिता के चरणों में विनयपूर्वक प्रणाम करते हुए छोड़ा। उस बाण पर अपने पुत्र का नाम देखकर पिता विमलकीर्ति बहुत आनंदित हुए॥120-121॥ अहो! यह तो मेरा पुत्र है। बहुत वर्ष बाद यहाँ लौटा है। यह सुयोग्य, पुण्यवान्, पराक्रमी और बुद्धिमान् है॥122॥ उधर अर्ककीर्ति अपने रथ से नीचे उतरकर, अपने रथ से नीचे उतरते हुए अपने पिता के समीप पहुँचे एवं अपने पूज्य पिता के चरणों में सजल नयनों से प्रणाम किया॥123॥ तब एकटक कुमार को देखते हुए राजा विमलकीर्ति ने अति स्नेह व गर्वभाव से अपने पुत्र का आलिंगन किया। पुनः कहा हे पुत्र! तुम पुण्यवान् हो। गुणों में गंभीर, विनम्र, यशवान्, बुद्धिमान्, बहुत श्रेष्ठ कलाओं से युक्त, व्यवहारकुशल नीतिवान् हो॥124-125॥ तुम मेरा गर्व हो, तुम्हें राज्य देकर अब मैं कल्याण मार्ग में प्रवृत्ति करने में समर्थ हो सकूँगा॥126॥

1450. मञ्ज परमोवयारी, करेज्जा मुत्तो रज्जभारादो।
सगकल्लाणस्स तिव्व-भावणा मणे सुबलवंता॥127॥
1451. जहवि तुमं सुजोग्गो हु, बहु-उवएसो ण आवसियो तुज्जा।
किंचिवि भासेमि तहवि, सगकत्तव्वपालणाय हं॥128॥
1452. गायणीदीइ पालसु, धम्मं सया रक्खेसु मज्जादं।
सज्जणोइदं पुण्णं, कम्मं करेज्ज उच्छाहेण॥129॥
1453. मित्तं व सहायो मादुव्व पालगो य रक्खगो पिदुव्व।
तुमं कया वि कत्तव्व-धम्म-मज्जादा ण विम्हरसु॥130॥
1454. इमं रज्जं गहित्ता, देज्ज अणुमदिं विविणं गच्छेदुं।
णिगंथ-दिक्खाए दु, सवर-कल्लाणकारगाए॥131॥
1455. अहो भयवदोव्व पिदू!, तए दायिदो सुसक्कारो मज्जा।
पुण्णहीणत्तादु तव, समीवत्तं ण लहिदं मए॥132॥
1456. अहुणा तव णिअडत्तं, लहित्ता वि ण पप्पोदुं समत्थो।
खमिय सव्वावराहं, ठाएज्जा विप्पसीअसु मे॥133॥

तुम मेरे परम उपकारी हो। तुम मुझे राज्यभार से मुक्त करो। मेरे मन में निज कल्याण की तीव्र भावना बलवती हो रही है॥127॥ यद्यपि तुम योग्य हो, तुम्हें बहुत उपदेश की आवश्यकता नहीं है तथापि अपने कर्तव्य पालन के लिए मैं कुछ कहता हूँ॥128॥ अहो पुत्र! तुम न्याय-नीतिपूर्वक सदैव धर्म का पालन करना, मर्यादा की रक्षा करना तथा उत्साहपूर्वक सज्जनोचित कार्य व पुण्य कार्य करना॥129॥ अपनी प्रजा के प्रति मित्र के समान सहायक, माँ के समान पालक व पिता के समान रक्षक होना। तुम कभी भी कर्तव्य, धर्म व मर्यादा को नहीं भूलना॥130॥ अहो पुत्र! इस राज्य को ग्रहण करके स्वपर कल्याणकारी निर्ग्रन्थ दीक्षा हेतु वन जाने की मुझे अनुमति प्रदान करो॥131॥ यह सुनकर अर्ककीर्ति कहता है अहो, मेरे लिए भगवान् के समान पिता श्री! आपने मुझे सुसंस्कार प्रदान किए किन्तु पुण्यहीन होने से मैं आपकी समीपता को प्राप्त न कर सका॥132॥ अब मैं आपकी निकटता को प्राप्त करके भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं हूँ। हे पिता श्री! मेरे सभी अपराधों को क्षमा करके यहाँ ठहरिये। मुझ पर प्रसन्न होइये॥133॥

1457. णेव चिंतेज्ज इत्थं, अहो सुदो! मम पुण्णुदयो इयाणि।
पुण्णेण विणा ण अप्प-हिद-भावणा णो सामच्छं॥134॥

1458. एवंविह बोहिदूण, णियपुत्तस्स दाएज्ज सगरज्जं।
णियकुलपरंपरा वा, वररायाण पालिदा तेण॥135॥



1459. अध सिद्धपदं लहिदुं, गच्छीअ वण-मुज्झित्ता ममत्तां।
चेयणाचेयणं पडि, विरज्जिय भव-तण-भोयादो॥136॥

1460. सिरिहर-जोगि-समीवे, पहुच्चित्तु णिवेदीअ हे सामी।
णिगगंथ-दिक्खं मज्झ, दाएज्जा अणुगगहिदूणं॥137॥

अहो पुत्र! तुम्हें ऐसा विचार नहीं करना चाहिए। अब मेरे पुण्य का उदय है क्योंकि पुण्य के बिना आत्महित की भावना व उसका सामर्थ्य नहीं होता॥134॥ इस प्रकार समझाकर राजा ने अपने पुत्र के लिए राज्य दिया और अपनी कुल परंपरा अथवा श्रेष्ठ राजाओं की परंपरा का पालन किया॥135॥ फिर सिद्धपद प्राप्त करने के लिए चेतन व अचेतन सभी के प्रति ममत्व भाव को त्यागकर संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर वन की ओर प्रस्थान किया॥136॥ वहाँ श्रीधर योगीराज के समीप पहुँचकर उन्होंने निवेदन किया, हे स्वामी! मुझ पर कृपा कर मुझे निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा प्रदान करें॥137॥

1461. विहाय उहयसंगं दु, केसलुंचणं कट्टु गुरु-किवाए।
जहाजाद-दियंबरो सगवर-कल्लाण-कारगो दु॥138॥
1462. आदावणाइ-जोगं, धारित्ता दुद्धरं तवं किच्चा।
सुक्कज्झाणबलेणं, घादिकम्माइं घादित्ता॥139॥
1463. होज्ज सजोग-केवली, पच्छा खयिदूण अघादिकम्माणि।
अविणस्सर-णिच्चक्खर-अणघ-सिद्धपदं पावीअ॥140॥ (जुम्मं)

त्रोटक छंद

1464. भव-मिच्चु-जरादु सया रहिदं, अयलं अणघं अवियारि-सिवां।
तणहीण - ममुत्तिग - मप्परदं, पणमामि तहा गुण-अट्ट-जुदं॥141॥
1465. मलकम्मविहीण - मणंतसुहिं, अरसं च अरूव - मगंध - मरुं।
अमरं परमुत्तम-लद्धगुणं, अहिणंदमि सुद्धविसुद्धपहुं॥142॥

तब गुरु कृपा से दोनों प्रकार के परिग्रह का परित्याग कर एवं केशलोंच कर वे स्वपर का कल्याण करने वाले यथाजात दिगंबर मुनिराज हो गए॥138॥ क्रमशः उन्होंने आतापन आदि योगों को धारण किया, दुद्धर तप किया एवं शुक्लध्यान के बल से घातिया कर्मों को नष्ट कर सयोग केवली हो गए। पश्चात् अघातिया कर्मों का भी क्षय कर अविनश्वर, नित्य, अक्षर व अनर्घ सिद्ध पद को प्राप्त किया॥139-140॥ जन्म, जरा, मृत्यु से सर्वदा रहित, अचल, अनघ, देह से विहीन, अमूर्तिक, आत्मा में रत, अष्ट गुणों से युक्त उन अविकारी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ॥141॥ कर्ममल से विहीन, अनंत सुखी, अरस-अरूपी-अगंध व रोग से रहित, मुक्तात्मा, परमोत्तम गुणों को प्राप्त, शुद्ध-विशुद्ध-प्रभु का अभिनंदन करता हूँ॥142॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्षण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में राजकुमार अर्ककीर्ति के पुण्य की महिमा एवं राजा विमलकीर्ति को मोक्ष प्राप्ति का वर्णन करने वाला बारहवाँ नंद पूर्ण हुआ।

तेरसम-णंदो

1466. सव्वराणी कोक्किदा, तेण माणेण विहिण्ण-ठाणादो।
णिगाम-उच्छाहेणं, विसिट्ठमहुच्छवेण रज्जे॥1॥
1467. गायेणं सव्वपया, पालिदा पुत्तोव्व दयाभावेण।
सुहकज्जेसु अग्गेण, साहुसेवाए चायगोव्व॥2॥
1468. पडिवस्से महुच्छवं, आणंदस्स विसिट्ठाणं माणं।
णारीण सुसिक्खं पडि, जागरिओ णिवो सो करीअ॥3॥
1469. मज्जाइल्लो विणयो, दयाखमाइ-संजुद-मंती तत्था।
रज्जे सुहं समिद्धी, पवड्डीअ सिदे सायरोव्व॥4॥
1470. जे के अवि दुट्ठा संकप्पेण अवरज्जीअ कुभावेहि।
ताणं तस्स रज्जम्मि, समुइदा दंडववत्था चिय॥5॥
1471. पुज्जेसु विणओ जिणे, भत्ती सुगुरूसुं सेवाभावो।
चउविहदाणं दु तत्थ, सक्किदि-सब्भदा-दंसगो य॥6॥
1472. सम-पत्तदत्तीहिं दु, तह अण्णयदत्ति-दयादत्तीहिं।
विणा इमेहि दाणेहि, कस्स वि रज्जं संभवो णो॥7॥

उधर पिता के द्वारा राज्य सौंपे जाने के पश्चात् अर्ककीर्ति ने राज्य में अत्यंत उत्साहपूर्वक विशिष्ट महोत्सव से विभिन्न स्थानों से रानियों को मान-सम्मानपूर्वक बुलाया॥1॥ वह दयाभाव से न्यायपूर्वक सर्व प्रजा का पालन पुत्रवत् करने लगा। वह प्यासे चातक पक्षी के समान पुण्यकार्यों व साधु-सेवा में अग्रणीय था॥2॥ प्रजा में आनंद के लिए वह प्रतिवर्ष महोत्सव किया करता था, विशिष्ट पुरुषों का मान करता था और वह राजा नारियों की समीचीन शिक्षा के प्रति भी जागरूक था॥3॥ वहाँ उस राज्य में मर्यादित, विनयी, दया व क्षमा आदि सुगुणों से युक्त मंत्री थे। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चंद्रमा की वृद्धि से सागर के जल में वृद्धि होती है उसी प्रकार राज्य में सुख-समृद्धि वृद्धिगत हो रही थी॥4॥ जो कोई भी दुष्ट संकल्पपूर्वक, कुभावों से अपराध करते थे उनके लिए उस अर्ककीर्ति के राज्य में समुचित दंडव्यवस्था भी थी॥5॥ वहाँ पूज्य पुरुषों में विनय का भाव, जिनेंद्रप्रभु में भक्ति, निर्ग्रन्थ गुरुओं में सेवाभाव एवं चार प्रकार के दान की प्रवृत्ति विद्यमान थी जो वहाँ की संस्कृति व सभ्यता को दर्शाने वाली थी॥6॥ वहाँ समदत्ति, पात्रदत्ती, अन्वयदत्ती और दयादत्ती ये चार प्रकार के दान भी थे। इन दानों के बिना किसी भी राजा का राज्य संभव नहीं है॥7॥

1473. महाजणा उराला दु, पइ-अणुगामिया सुसीला इत्थी।
बाला विगारहीणा, बालगा सुकज्ज-उच्छाही॥8॥
1474. राओ सो जागरिओ, विड्डीइ सुसिक्खा-सक्काराणं।
पसुणो पडि अवि णिच्चं, राओ पया करुणा-जुत्ता॥9॥
1475. पाहण्णेण णिरोगी, पुव्वपुण्णुदयादो सव्वा तत्था।
वेज्जावच्चेणं तह, सेवाए खयंति रोया दु॥10॥
1476. सुद्धं मज्जाइल्लं, सक्किदि-अणुरुव-भोयणं अदीआ।
सुणिरवज्जोसहीहिं, वेज्जा कुव्वीअ उवयारं॥11॥
1477. ववत्थिद - मज्जाइल्ल -सिट्ठ - वत्थाभूसणाइं धरीआ।
सव्व-णरा णारी वा, ण असिट्ठ-अमज्जाइल्लाणि॥12॥
1478. जणरंजणत्थं विदूसगो धरीअ विचित्तवेसभूसं।
असिट्ठ-अमज्जाइल्ल-वेसभूसा अहकारगा य॥13॥
1479. अइपावफल-भोयगा, जीवा दुल्लहा दु तम्मि देसम्मि।
पुण्णवंता हि बहुआ, णिच्चं पुण्णकज्जलीणा य॥14॥

वहाँ महाजन उदार थे, स्त्रियाँ सुशीला व पति की अनुगामिनी थीं, बालिकाएँ विकारहीन तथा बालक सुकार्यों के लिए उत्साही थे॥8॥ समीचीन शिक्षा व संस्कारों के लिए वह राजा जागरूक था। राजा व प्रजा, पशुओं के प्रति नित्य करुणा से युक्त थे॥9॥ वहाँ पूर्वकृत-पुण्य के उदय से मुख्यता से सभी निरोगी थे। उचित ही है, वैय्यावृत्ति और सेवा से रोग निश्चय से नष्ट होते हैं॥10॥ वहाँ सभी लोग शुद्ध, मर्यादित और संस्कृति के अनुरूप भोजन करते थे। अच्छी, निर्दोष-निर्वद्य औषधियों के द्वारा वैद्य उपचार किया करते थे॥11॥ सभी पुरुष व स्त्रियाँ व्यवस्थित, मर्यादित व शिष्ट वस्त्र और आभूषण पहना करते थे। अशिष्ट और अमर्यादित वस्त्र व आभूषण कभी धारण नहीं करते थे॥12॥ लोगों के मनोरंजन के लिए विदूषक विचित्र वेशभूषा धारण करते थे। उचित ही है अशिष्ट व अमर्यादित वेशभूषा पापकारक होती है॥13॥ अति पाप का फल भोगने वाले जीव उस देश में दुर्लभ ही थे। बहुलता से वहाँ पुण्यवान् जीव ही थे जो नित्य पुण्यकार्यों में लीन रहते थे॥14॥

1480. चक्कीव रज्जलच्छिं पाविदूणं दिग्घयालंतं पुण।
भवसुहं भुंजतेण, तेणं कुव्विदं चिय रज्जं॥15॥
1481. पस्सिदा पइडि-सोहा, एयदा अक्ककित्ति-हरिसतेण।
सुंदर-मेह-णिम्मिद-विसिद्ध-चित्तं वि तेण णहे॥16॥
1482. तदा तस्स सुचित्तं दु, खडिआइ सिरिदुं तप्परो तदा हि।
पावेण पुण्णफलं व, पवणेण पज्जण्ण-विइण्णं॥17॥



1483. तं दिस्सं पस्सित्ता, जागरिओ सो हु मोहणिद्दाए।
पज्जण्णं व खलु सव्व-दिस्समाण-पदत्थ-अणिच्चा॥18॥

चक्रवर्ती के समान राज्य रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर दीर्घकाल तक सांसारिक सुखों को भोगते हुए उस राजा अर्ककीर्ति ने राज्य किया॥15॥ एक बार अर्ककीर्ति हर्षित होते हुए प्रकृति की शोभा देख रहे थे। उन्होंने आकाश में सुंदर मेघों से निर्मित विशिष्ट चित्र देखा॥16॥ तब वह उस चित्र को खड़िया मिट्टी से बनाने के लिए उद्यत हुए ही थे कि हवा से मेघ उसी प्रकार विलीन हो गए जिस प्रकार पाप से पुण्य का फल नष्ट हो जाता है॥17॥ उस दृश्य को देखकर वह राजा मोह रूपी निद्रा से जागृत हो गया एवं विचार करने लगा—अहो! इन मेघों के समान संसार के सभी दृश्यमान पदार्थ अनित्य हैं॥18॥

1484. तरंगिणीइ वीई व, अथिरं कामिस्स पुण्णवियारोव्व।
देहो धणं जीवणं, इंदधणू व्व ओसबिंदू व्व॥19॥
1485. तेतीस-सायरं चिय, आउं सव्वट्टुसिद्धिवासीणं।
खयदि तं वि तो किं णो, भासदि णराउं खणधंसी॥20॥
1486. चक्कीणं विहवो खण-धंसी सग्गविहूदी वि सक्कस्स।
तदा कहं सक्केमि दु, विहवं भुंजिदुं सुइरंतं॥21॥
1487. इत्थीणं सुंदरिमा, जोव्वणं रूव-लावण्णं अथिरं।
घणसारोव्व चिय तिव्व-अक्कतावम्मि जलबिंदू व्व॥22॥
1488. खयदि देहीण आउं, सिग्घं आयासे मेह-भवणं वा।
तिणणिये जलबिंदू व्व, सच्छिद्द-अंजलीए जलं वा॥23॥
1489. अक्कतिव्व-तावेणं, सोसिद-पंकं व सया खणधंसी।
पंचिंदिय-भोया खलु, पव्वदादो पडिद सरिदा व्व॥24॥

अथवा जिस प्रकार नदी की लहरें, कामी व्यक्ति के पुण्यरूप विचार, आकाश में इंद्रधनुष और ओस की बूंद अस्थिर है, नश्वर है उसी प्रकार यह शरीर, धन और जीवन भी अस्थिर है, नश्वर है॥19॥ अरे! जब सर्वार्थसिद्धि विमान में रहने वाले देवों की भी तैंतीस सागर की आयु क्षय को प्राप्त होती है तो मनुष्य की आयु क्षणध्वंसी क्यों प्रतिभासित नहीं होती? अर्थात् मनुष्य की आयु तो सर्वार्थसिद्धि के देवों की आयु के सामने एक पलक झपकने जितने समय में पूर्ण होने वाली है॥20॥ चक्रवर्ती का वैभव, सौधर्म इंद्र की स्वर्ग विभूति भी क्षणध्वंसी है, तब इस वैभव को चिरकाल तक मैं कैसे भोग सकता हूँ, अर्थात् नहीं भोग सकता। यह भी नाश को प्राप्त होने वाला है॥21॥ जिस प्रकार सूर्य के तीव्र ताप से जल की बूंद शीघ्र नष्ट हो जाती है अथवा कपूर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार स्त्रियों का सौंदर्य, यौवन, रूप व लावण्य भी अस्थिर है, नाश को प्राप्त हो जाता है॥22॥ संसारी प्राणियों की आयु शीघ्र वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे आकाश में मेघ का भवन, घास के अग्र भाग पर स्थित जल की बूंद एवं छिद्र सहित अंजलि में जल शीघ्र नष्ट हो जाता है॥23॥ सूर्य के तीव्र ताप से अवशोषित कीचड़ के समान अथवा पर्वत से गिरती हुई सरिता के समान पंचेंद्रिय के भोग सदा क्षणध्वंसी हैं॥24॥

1490. जिण्णपत्ताणि कया वि, पडेज्ज पवणाघादेण रुक्खादु।
जह तह सरीरं धणं, विहवो जोव्वणं जीवणं च॥25॥
1491. एक्को कुणदि हिंसाइ-पंचपावं च कसाय-भावेहिं।
पंचिंदिय-विसयेसुं, बुद्धेदि य मूढबुद्धीए॥26॥
1492. एक्को करेदि पुण्णं, सुवद-पालणेणं तित्थजत्ताइ।
जिण-सुद-मुणि-भत्तीए, सज्झाय-शील-जव-तवेहिं॥27॥
1493. एक्को हि मोक्खमग्गे, विसयकसायारंभ हीणत्तादु।
पवज्जिदो णिगंगथो, वड्ढदि रयणत्तयं गहित्तु॥28॥
1494. पडदि संसार-कूवे, कुदेव-कुगुरु-कुसत्थ-णिमित्तेणं।
धम्मसरूवं जाणिदु-मखमो मिच्छत्तेण एक्को॥29॥
1495. अणसणाइ-बज्झ-तवं, पायच्छित्ताइ-अंतरं किच्चा।
पसत्थज्झाणफलेण, खयेदि मोहणिज्जं एक्को॥30॥
1496. सुक्कज्झाणबलेणं, सक्कदि खयिदुं घादिं अघादिं च।
एक्को होदि केवली, एक्को हि णिरंजणो सिद्धो॥31॥

जिस प्रकार वायु के आघात से जीर्ण-शीर्ण पत्ते वृक्ष से कभी भी टूटकर गिर जाते हैं उसी प्रकार शरीर, धन, वैभव, यौवन और जीवन सब नष्ट हो जाता है॥25॥ अकेला जीव ही कषाय भावों से हिंसादि पाँच पापों को करता है। मूढ़ बुद्धि से पंचेन्द्रिय के विषयों में डूबता है, निमग्न होता है॥26॥ एक जीव स्वयं ही तीर्थयात्रा, जिनेन्द्रप्रभु-जिनश्रुत व निर्ग्रन्थ गुरुओं की भक्ति, स्वाध्याय, शील, जप, तप और सुव्रतों के पालन से पुण्य करता है॥27॥ एक जीव स्वयं ही विषय-कषाय व आरंभ की हीनता होने से निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण करता है, रत्नत्रय को ग्रहण कर स्वयं ही मोक्षमार्ग पर बढ़ता है॥28॥ कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र के निमित्त से जीव स्वयं ही संसार रूपी कूप में गिरता है। जीव मिथ्यात्व के द्वारा धर्म के स्वरूप को जानने में असमर्थ होता है॥29॥ एक जीव स्वयं ही अनशन आदि बाह्य तप और प्रायश्चित्त आदि अंतरंग तप करके प्रशस्त ध्यान के फल से मोहनीय कर्म को नष्ट करता है॥30॥ जीव एक अकेला ही शुक्लध्यान के बल से घातिया व अघातिया कर्म को नष्ट करने के लिए समर्थ होता है। वह एक अकेला ही केवली होता है, स्वयं ही निरंजन अर्थात् सब कर्मों से रहित सिद्ध होता है॥31॥

1497. रयणत्तयेणं विणा, जविदं भवे अणंतयालं मए।
सुद्धप्परूव-महुणा, लहिस्सामि विआणित्ता तं॥32॥
1498. भव-सरीर-भोयादो, विरज्जिदूणं रज्जाहिसेगं चा।
जसोमदीइ उप्पण्ण-स-जेट्टपुत्तस्स करावित्तु॥33॥
1499. विमलकित्तिस्स हु तस्स, दाएज्ज तदा सव्वरज्जभारं।
पुत्ते णिवेदणे सो, संबोहदि वच्छलभावेण॥34॥
1500. भो सुदो! संपइणिवो, पया-पालणं करेज्जा पुत्तोव्व।
दयाइभावेणं जं, णिवस्स संताणोव्व पया दु॥35॥ (तिअं)
1501. धरेज्ज खमाभावं दु, कया वि अण्णायं पडि णेव णदो।
सचेदो हु अंत-बज्झ-सत्तूदो सुकज्जेसु रदो॥36॥
1502. सच्च-णाय-णीदी कुल-रीदी सुसक्किदी मज्जादा तइ।
रक्खिदव्वा अमज्जाइल्ल-णिवो वि किंकरो होदि॥37॥
1503. कया वि णो विम्हरेज्ज, धम्मं जिणं सुदं णिग्गंथगुरुं।
ते दु सासय-कल्लाण-हेदू हिद-कारगा जम्हा॥38॥

पुनः वह चिंतन करने लगा कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय के बिना मैंने संसार में अनंत काल बिताया। उसे जानकर मैं अब शुद्धात्मा के स्वरूप को प्राप्त करूंगा॥32॥ ऐसा विचारकर राजा अर्ककीर्ति ने संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर अपनी यशोमती रानी से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र विमलकीर्ति का राज्याभिषेक कराकर उसे संपूर्ण राज्यभार सौंप दिया। तब पुत्र के निवेदन करने पर अर्ककीर्ति वात्सल्य भाव से पुत्र को संबोधित करते हुए कहते हैं—हे पुत्र! हे वर्तमान के राजा! दया भाव से सदैव पुत्रवत् प्रजा का पालन करना क्योंकि राजा के लिए प्रजा सदैव संतान के समान होती है॥33-35॥ सदैव क्षमा भाव धारण करना। कभी भी अन्याय के प्रति नहीं झुकना। अंतर-बाह्य शत्रुओं से सावधान रहना और सुकार्यों में रत रहना॥36॥ सत्य, न्याय, नीति, कुल, रीति, सुसंस्कृति और मर्यादा की रक्षा करना क्योंकि मर्यादाविहीन राजा किंकर (सेवक) के समान होता है॥37॥ जिनधर्म, जिनेन्द्रप्रभु, जिनागम और निर्ग्रन्थ गुरुओं को कभी भी विस्मृत नहीं करना क्योंकि वे ही हितकारक हैं और कल्याण के शाश्वत हेतु हैं॥38॥

1504. कत्तव्वं विम्हरित्तु, णेव दुरुवओगं अहियाराणं।
करेज्ज विरत्तीए दु, रज्जसंचालणं सुपुत्तो॥39॥
1505. अंते समाहिमरणं, णियकुलरीदि-अणुसारेणं तुमं।
गहिदूणं जिणदिक्खं, करंतो बहुजोगतवाइं॥40॥
1506. गच्छीअ अक्ककित्ती, अध कंतारे खमिदूणं सव्वा।
खमाभावधारंतो, शीलगुत्त-मुणिराय-णियडे॥41॥
1507. पदक्खिणित्ता पुण पुण, पणमंतो थुदिं कुव्वीअ इत्थं।
अहो आणंदमुत्ती! अणंताणंद-हेदू तुमं॥42॥
1508. संसार-विरत्तीए, परम-कारणं दु अहो णिग्गंथो।
कसाओ उवसमदि तव, दंसणेण णिम्मलं चित्तं॥43॥
1509. भो रयणत्तयपुंजो! मोक्खमग्गस्स पहाण-कारणं दु।
पावक्खयस्स धम्म-पवट्टगो जंगम-तित्थं च॥44॥
1510. तए विणा णेव को वि, समत्थो मम कल्लाणं करेदुं।
अहो गुणुदही! थुवेमि, अंचमि वंदमि पुज्जेमि तं॥45॥

हे सुपुत्र! कर्तव्यों को भूलकर अधिकारों का दुरुपयोग कभी नहीं करना। इस राज्य का संचालन विरक्तिपूर्वक करना॥39॥ अंत में अपनी कुल-रीति के अनुसार जिनदीक्षा को ग्रहण कर बहुत योग व तपादि करते हुए समाधिमरण करना॥40॥ फिर अर्ककीर्ति सभी से क्षमा माँगकर एवं क्षमा-भाव को धारण करते हुए वन में श्री शीलगुप्त मुनिराज के निकट गए॥41॥ वहाँ मुनिराज को प्रणाम करते हुए उनकी परिक्रमा कर अर्ककीर्ति इस प्रकार स्तुति करने लगे—अहो, आनंदमूर्ति! आप अनंत आनंद के हेतु हैं॥42॥ अहो निर्ग्रन्थ गुरुवर! आप संसार से विरक्ति का परम कारण हैं। आपके दर्शन से चित्त निर्मल होता है व कषाय उपशमित होती हैं॥43॥ हे रत्नत्रय के पुंज! आप मोक्षमार्ग के प्रधान कारण हैं, पाप क्षय के मुख्य हेतु हैं, धर्म को प्रवर्तन करने वाले एवं चलते-फिरते तीर्थ हैं॥44॥ आपके बिना मेरा कल्याण करने में कोई भी समर्थ नहीं है, अहो! गुणों के सागर! मैं आपकी स्तुति करता हूँ, अर्चना करता हूँ, वंदना करता हूँ और पूजन करता हूँ॥45॥

1511. अहो करुणासायरो!, जहाजाद-दियंबरो णिगंगथो।
उक्कट्टो वेरागी, हिदत्थं देज्ज दिक्खं मज्झा॥46॥
1512. जह अइसंतत्तमहिं, पस्सिय पज्जण्ण-किवादिट्ठीए।
अमियं व जलं वरिसदि, भूमी हरिद-तुट्ठ-समिद्धा॥47॥
1513. तह सीलगुत्तमुणिणा, करुणापूरिद-चित्तेण जाणित्तु।
सगणिम्मलणाणेणं, तस्स आसण्ण-भव्वत्तं दु॥48॥
1514. दायिदो सुसक्कारो, अहिंसा-सच्च-अचोरिय-वदाणं।
बंभचेर-असंगाण, मोक्खत्थं अप्प-सुद्धीए॥49॥ (तिअं)
1515. इरिया भासेसणा य, आदाणणिक्खेवणं उस्सग्गो।
पमादचाग-हेदू य, सेट्ठपवित्ति-समिदी भणिदा॥50॥
1516. मणवयणकायाणं च, असुहपवट्ठीए दु णिवट्ठीए।
तियगुत्ति-सक्कारो दु, दायिदो णिरुंभिदुं अक्खं॥51॥
1517. पंचक्खजयस्स सडावस्सगाण सत्तविसेसगुणाणं।
दाएज्जा सक्कारं, अट्ठवीस-मूलगुणाणं च॥52॥
1518. तेहिं सह दु चउवीस-उत्तरगुणसक्कारं पि दाएज्जा।
बावीस-परीसहजय-बेदहतवाण विहिं खयिदुं॥53॥

अहो करुणा सागर मुनिराज! यथाजात निर्ग्रन्थ दिगंबर गुरुदेव! उत्कृष्ट वैरागी! मेरे हित के लिए मुझे दीक्षा प्रदान करें॥46॥ जिस प्रकार अति संतप्त धरती को देखकर बादलों की कृपादृष्टि से अमृत के समान जल बरसता है जिससे भूमि हरित, संतुष्ट व समृद्ध हो जाती है उसी प्रकार श्री शीलगुप्त मुनिराज ने करुणा से परिपूरित चित्त से अपने निर्मल ज्ञान से उस अर्ककीर्ति का आसन्न भव्यत्व जानकर मोक्ष के लिए, आत्म शुद्धि के हेतु अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रतों के श्रेष्ठ संस्कार प्रदान किए॥47-49॥ प्रमाद त्याग की कारणभूत ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण व उत्सर्ग ये पाँच श्रेष्ठ प्रवृत्ति, समिति कही गई हैं॥50॥ मन, वचन, काय की अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्ति के लिए एवं इंद्रिय निग्रह के लिए उन्हें तीन गुप्ति के संस्कार भी प्रदान किए॥51॥ पाँच इंद्रियजय, षडावश्यक और सात विशेष गुण इस प्रकार कुल अट्ठाईस मूलगुणों के संस्कार प्रदान किए॥52॥ उनके साथ कर्मक्षय के लिए उन्हें बाईस परीषहजय और बारह तप रूप चौंतीस उत्तर- गुणों के संस्कार भी दिए॥53॥

1519. पालेज्ज मुणिवरो चउरासी - लक्ख - उत्तरोत्तरगुणा दु।
सत्तीए अट्टारस - सहस्स - भेया सय सीलस्स॥54॥
1520. करीअ उग्गुग्ग-घोर-तवं णिग्गंथो चिय विसुद्धीए।
आदावणाइजोगा, धारीअ दु जहासत्तीए॥55॥
1521. सेलोव्व कम्मभारो, हस्सीअ दु णाणज्झाण-तवेहिं।
धारीअ सल्लेहणं, एगमासाउम्मि सेसम्मि॥56॥
1522. पुणो इंगिणीमरणं, किच्चा समत्त-विसुद्धभावेहिं।
परमेट्टी-सिमरंतो, अरिहं सिद्धं च ज्ञायंतो॥57॥
1523. सोलसमच्चुदसगो, महड्डिअ-देवो विहव-संजुत्तो।
बावीस-सायर-आउ-जुत्तो बावीस-पक्खेसुं॥58॥
1524. एगवारं दु गहीअ, उत्तमवग्गणाजुदं उस्सासं।
आणपाणकिरियाए, देवाणं सहजपविट्ठी दु॥59॥ (तिअं)



वे अर्ककीर्ति मुनिराज शक्ति के अनुसार नित्य चौरासी लाख उत्तरोत्तर गुण और शील के अट्टारह हजार भेदों का भी पालन करने लगे॥54॥ वे मुनिराज विशुद्धिपूर्वक उग्रोग्र घोर तप करने लगे। वे यथाशक्ति आतापन आदि योगों को भी धारण करते थे॥55॥ ज्ञान, ध्यान व तप

1525. अमियाहारं दु एग-वारं बावीस - सहस्स - वासेसु।
छव्विह-आहारेसुं, देवाणं माणसाहारो॥60॥
1526. बहुइड्डिसंजुदो वर - वेगुव्विय - देह - जुद - पुण्णवंतो।
सुक्कलेस्साइ सहिदो, भुंजीअ उत्तम-भोयाइं॥61॥
1527. तवेणं लोगिग-सिद्धी पारलोगिग-सिद्धी अवि तवेणं।
अणिमाइ-इड्डीओ वि, तवेणं चउसट्ठि-इड्डी वि॥62॥
1528. तवेणं होदि जीवो, सुरिंदो णरिंदो अहमिंदो वा।
चक्की हली य कामो, तित्थयरो केवली सिद्धो॥63॥
1529. पुण्णोदयेणं विणा, असक्क-सम्मत्तणाणचरियाइं।
तेण विणा भव-सरीर-भोयादो दु विरत्ती णेव॥64॥

के माध्यम से पर्वत के समान कर्म के भार को उन्होंने कम कर दिया। फिर एक मास की आयु शेष रहने पर उन्होंने सल्लेखना व्रत धारण किया॥56॥ पुनः समत्व परिणामों से व विशुद्ध भावों से परमेष्ठी का स्मरण करते हुए अरिहंत व सिद्ध प्रभु का ध्यान करते हुए इंगिनी मरण किया॥57॥ मरण को प्राप्त कर वे सोलहवें स्वर्ग में वैभव से संयुक्त महर्द्धिक देव हुए। वहाँ उनकी आयु बाईस सागर की थी। वह देव बाईस पक्षों अर्थात् ग्यारह माह में एक बार आनप्राण क्रिया के माध्यम से उत्तम वर्गणाओं से युक्त श्वाँस ग्रहण करते थे। यह देवों की सहज प्रवृत्ति होती है॥58-59॥ बाईस हजार वर्षों में एक बार वह देव अमृत का आहार करते थे। ओजाहार, मानसिकाहार, लेपाहार, कवलाहार, कर्माहार व नोकर्माहार ये छह प्रकार के आहार कहे गए हैं। इन छः प्रकार के आहारों में देवों का मानसिक आहार होता है॥60॥ वह देव बहुत-सी ऋद्धियों से युक्त था, उत्कृष्ट वैक्रियक शरीर से युक्त पुण्यवान् व शुक्ल लेश्या से सहित था। वह देव वहाँ उत्तम भोगों को भोगने लगा॥61॥ उचित ही है तप से लौकिक सिद्धि होती है, तप से ही पारलौकिक सिद्धि होती है। तप से ही अणिमा आदि ऋद्धियाँ होती हैं और तप से चौंसठ ऋद्धियाँ होती हैं॥62॥ तप से जीव सुरेंद्र, नरेंद्र अथवा अहमिन्द्र होता है, तप से ही जीव चक्रवर्ती, बलभद्र, कामदेव, तीर्थकर, केवली और सिद्ध होता है॥63॥ पुण्य के उदय के बिना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र अशक्य हैं। उस पुण्योदय के बिना संसार-शरीर व भोगों से विरक्ति भी नहीं होती॥64॥

1530. पुण्णेणं विणा णेव, मूलुत्तरगुणपालण-णिहोसं।
वीयं विणा रुक्खोव्व, ण अक्खजयो अप्पणुभूदी॥65॥
1531. उक्कट्टपुण्णफलेण, भववरसोक्खं परमुक्कट्टेणं।
सूरि - पाढग - साहूण, वंदणीयपदं पाउणेदि॥66॥
1532. सव्वुक्कट्टेण भवी, लहदे अरिहपदं णिस्संदेहो।
गच्छमाण - पुण्णं तं, दाएज्ज वरणिव्वाणपदं॥67॥
1533. अहो! भव्वुल्लो सया, करेज्ज सुहकज्जाइं सत्तीए।
मंदकसायं किच्चा, अहमुज्झिय विरत्तिभावेण॥68॥
1534. जिणपूयं तिव्काले, सव्वदा चउविह-संघसम्माणं।
सुदब्भासं करेज्जा, थिरचित्तेणं सुद्धभावेहि॥69॥
1535. सिरिणिग्गंथ - गुरूणं, पगवंदणं तथा वेज्जावच्चं।
करेज्ज चउविहदाणं, तित्थजत्तं सुपहावणं च॥70॥
1536. जिणबिंब - जिणालयाण, सुद - पगासणस्स तित्थजत्ताए।
णायज्जिद - धणं देज्ज, जिणसासण-पहावणाए य॥71॥

जैसे बीज के बिना वृक्ष नहीं होता वैसे पुण्य के बिना मूलगुण व उत्तरगुणों का निर्दोष पालन भी नहीं होता। न इंद्रियों पर विजय होती है और न ही आत्मानुभूति होती है॥65॥ उत्कृष्टपुण्य के फलस्वरूप जीव संसार के उत्कृष्ट सुखों को प्राप्त करता है एवं परमोत्कृष्ट पुण्य के फलस्वरूप जीव आचार्य, उपाध्याय व साधु के वंदनीय पद को प्राप्त करता है॥66॥ सर्वोत्कृष्ट पुण्य के फलस्वरूप भव्य जीव निःसंदेह अरिहंत पद को प्राप्त करता है तथा वह पुण्य जब जाता है तो उत्कृष्ट निर्वाण पद को देकर जाता है॥67॥ अहो भव्यजीव! विरक्त भाव से कषायों को मंद करके, पापों को त्यागकर सदैव शक्तिपूर्वक शुभ कार्य करो॥68॥ स्थिर चित्त से व शुद्ध भावों से त्रिकाल में जिनपूजा, नित्य चतुर्विध संघ का सम्मान व श्रुत का अभ्यास करो॥69॥ श्री निर्ग्रन्थ गुरुओं का पगवंदन, उनकी वैय्यावृत्ति, चार प्रकार का दान, तीर्थयात्रा व जिनशासन की प्रभावना करो॥70॥ जिनबिंब, जिनमंदिर, श्रुत के प्रकाशन, तीर्थयात्रा और जिनशासन की प्रभावना के लिए अपने द्वारा न्यायार्जित धन देना चाहिए॥71॥

1537. पालेज्जा सीलवदं, उववासं सत्तीए पव्वेसुं।
करेज्ज महाविवेगी, पाव - मुज्झित्ता सय पुण्णं॥72॥
1538. ताइ पूदिगंधाए, जीवो रोहिणीवद - पहावेणं।
अच्चुदसग्गम्मि अस्स, देवस्स पिया महादेवी॥73॥
1539. पुण घाडिदूणं तादु, हत्थिणायपुरम्मि वीदसोगस्स।
विज्जुदपहा-राणीइ, तुमं जोग्गपुत्तो असोगो॥74॥
1540. भो णरपुंगवो पस्स, विचित्तवत्थं संसारि-जीवाण।
कम्मबलेणं अणादि-यालादु परिभमंति दुहेण॥75॥
1541. सग्गे जा पिया तव, चयिय अंगस्स चंपाणयरीए।
मघवा-णिवस्स विसुद्ध-कुले सिरिमदि-राणीए सा॥76॥
1542. सुरूववंत-रोहिणी, अहुणा तव अइपुण्णवंत-राणी।
एवंविहपुव्वभवा, भासिदाओहिणाणि-मुणिणा॥77॥(जुम्मं)
1543. सुणिच्चु सगपुव्वभवा, किदणहुभावपूरिदा भव्वा ते।
उट्टिय सगासणादो, पणमीअ वंदीअ पुण पुण हु॥78॥

शीलव्रत का पालन करना चाहिए, पर्वों में शक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिए। महाविवेकी जनों को पापों को त्यागकर सदैव पुण्य करना चाहिए॥72॥ उस पूतीगंधा का जीव रोहिणी व्रत के प्रभाव से अच्युत स्वर्ग में उस देव की प्रिय महादेवी हुई॥73॥ और वह पूतीगंध का जीव वहाँ अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर राजा वीतशोक और रानी विद्युत्प्रभा के तुम अशोक नामक योग्य पुत्र हुए हो॥74॥ भो नरपुंगव! संसारी जीवों की इस विचित्र अवस्था को देखो। ये जीव अनादिकाल से कर्म के बल से दुःखपूर्वक संसार में परिभ्रमण कर रहा है॥75॥ स्वर्ग में जो आपकी प्रिया थी वह वहाँ से च्युत होकर अंगदेश की चंपानगरी में विशुद्ध कुल में राजा मघवा व रानी श्रीमती की अतिरूपवती रोहिणी नामक पुत्री हुई। अब वह तुम्हारी अतिपुण्यवती रानी है। इस प्रकार उन अवधिज्ञानी मुनिराज ने अशोक व रोहिणी के पूर्व भवों को कहा॥76-77॥ अपने पूर्वभवों को सुनकर वे भव्य जीव मुनिराज के प्रति कृतज्ञ भाव से भर गए। वे अपने आसन से खड़े होकर मुनिराज को पुनः-पुनः प्रणाम करने लगे, वंदन करने लगे॥78॥

1544. धण्णं रोहिणीवदं, धण्णं जिणसासणं हंदि जेणं।
लहिदा वरपज्जाया, अम्हेहि दुग्गंध-देहीहि॥79॥
1545. अमियं व रोहिणिवदं, जे के वि पालंति पुण्ण-सद्धाइ।
मिदोव्व भव्वुल्ला ते, लहंति णिच्च-णिव्वाणपदं॥80॥
1546. जो को अवि भव्वुल्लो, सम्मत्ताइ-धम्म-रहिदा भणिदा।
मिदोव्व तेहि गुणजुदा, विवरीया दु जिणसासणम्मि॥81॥
1547. जावइय-तिव्वभत्ती, रोहिणीवदपालणम्मि सद्धा या
तावइय-सिग्घं लहदि, कम्मक्खयिय वर-णिव्वाणं॥82॥
1548. जाव ण लहदे मोक्खं, ताव भुंजदि वर-णरिंदाइ-पदं।
सम्मत्तेण सह भवी, थोग-भवेसुं च मोक्खपदं॥83॥

शार्दूल विक्रीडित छंद

1549. सद्धाए वदपालणेण सददं पत्ताइ-दाणेण वा,
भत्तीए जिणदंसणेण मणसा पूयाइ जावेण वा।
सज्झायाइ-किदेहि पाविय णरो धण्णं धणं वेहवं,
इंदादीण पुणो लहेदि णियमा णिव्वाणसोक्खं अहो!॥84॥

वे कहते हैं धन्य है रोहिणी व्रत, धन्य है जिनशासन, जिसके द्वारा हम दुर्गन्ध शरीरियों ने उत्कृष्ट पर्याय को प्राप्त किया॥79॥ जो कोई मृत के समान भी भव्यजीव अमृत के समान रोहिणी व्रत का पूर्ण श्रद्धा से पालन करते हैं वे शाश्वत निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं॥80॥ जो कोई भी भव्य जीव सम्यक्त्व आदि धर्म से रहित हैं वे जिनशासन में मृत के समान कहे गए हैं और जो उन सम्यक्त्व आदि गुणों से युक्त हैं वे विपरीत अर्थात् जीवंत हैं॥81॥ रोहिणी व्रत के पालन में जितनी तीव्र भक्ति और श्रद्धा होती है वह भव्य जीव उतनी ही शीघ्र कर्मों का क्षय कर उत्कृष्ट निर्वाण पद को प्राप्त करता है॥82॥ रोहिणी व्रत को पालन करने वाला भव्य जीव जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं करता तब तक उत्कृष्ट राजा आदि के पदों को भोगता है। सम्यक्त्व के साथ वह भव्य जीव स्तोक भवों में मोक्षपद प्राप्त करता है॥83॥ निरंतर श्रद्धापूर्वक व्रत पालन करने से, पात्र आदि दान से, भक्तिपूर्वक जिनदर्शन से, मनोयोगपूर्वक पूजा करने, जाप व स्वाध्याय आदि कृत्यों को करने से मनुष्य; इंद्र आदिकों के धन-धान्य व ऐश्वर्य को प्राप्त करके अहो! नियम से निर्वाण सुख प्राप्त करता है॥84॥

रथोद्धता छंद

1550. पुण्णपाव-उदयादु सव्वदा, उण्णदिं अवणदिं च पावदे।
णोवयारि-अवयारगो जणो, मारुदेण लहरीव वा सरे॥85॥
1551. णिंदणीय-दुरिदं ण सव्वदा, संसदीदु जदि मुत्तिकारणं।
सव्वदा णहि पसंस-सुक्किदं, दुग्गदीइ जदि होज्ज कारणं॥86॥

जिस प्रकार हवा से जलाशय में लहरें उठती-गिरती हैं उसी प्रकार संसारी प्राणी सदा पुण्य व पाप से उन्नति व अवनति की अवस्था को प्राप्त करता है। यथार्थ में इस जीव का न कोई उपकारी है और न कोई अपकारी॥85॥ अहो! जीवन में पाप भी सर्वदा निंदनीय नहीं है यदि वह संसार से मुक्ति का कारण हो तो तथा पुण्य भी सर्वदा प्रशंसनीय नहीं है यदि वह दुर्गति का कारण हो तो॥86॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में अर्ककीर्ति (अशोक का पूर्वभव) का
राज्य संचालन, दीक्षा, समाधि, अच्युतस्वर्ग में देव व अशोक बनने तक
का वर्णन करने वाला तेरहवाँ नंद पूर्ण हुआ।

चउद्धसम-णंदो

1552. पच्छा असोगराओ, मुणिचरणेसुं पुण पुण वंदित्ता।
पुच्छदि णिय-पुत्ताणं, पुव्वभवा हु अइविणयेणं॥1॥
1553. अहो राओ असोगो, भणेमि तव पुण्णवंत-पुत्ताणं।
पुव्वभवा चेइदूण, सुणह जाणिदुं भव-सरूवं॥2॥
1554. जंबुदीवस्स भरदे, सूरसेणत्थ-उत्तर-महुराए।
सिरिहर-णिवो पसिद्धो, णायपियो विक्कंत-धीरो॥3॥
1555. तस्स हिअय-वल्लहा दु, चित्तवासिया उहयकुलपवित्ता।
विमला महाराणी य, धम्मवच्छला सुगुणपुंजा॥4॥
1556. ताण अणुवम-सुंदरी, सुसक्कार-संजुदा पुण्णवंता।
कमला सुजोग्गपुत्ती, बुद्धिमंता सुकला-णिउणा॥5॥
1557. तस्स रायस्स रज्जे, दरिद-कुलुप्पण्णो अगगभोजी।
विप्पो दु अग्गिसम्मा, तस्स णयणवासिया तिलगा॥6॥
1558. ताए सह भुंजंतो, अणुवमसोक्खं होज्ज सत्तपुत्ता।
अग्गिभूदि - सिरिभूदी, वाउभूदी - विसाहभूदी॥7॥

इसके पश्चात् राजा अशोक मुनिराज के चरणों में पुनः पुनः वंदन करके अतिविनय भाव से अपने पुत्रों के पूर्वभव पूछने लगा॥1॥ तब मुनिराज कहते हैं अहो राजा अशोक! मैं आपके पुण्यवान् पुत्रों के पूर्वभवों को कहता हूँ; संसार के स्वरूप को जानने के लिए सावधान होकर सुनो॥2॥ इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में शूरसेन देश में उत्तर मथुरा नगरी है। जहाँ श्रीधर राजा था जो प्रसिद्ध, न्यायप्रिय, विक्रमी और धीर था॥3॥ उस राजा की हृदयवल्लभा, चित्तवासिनी, दोनों कुलों को पवित्र करने वाली विमला नामक महारानी थी जो धर्मवत्सला व सुगुणों की पुंज थी॥4॥ उनके कमला नामक सुयोग्य पुत्री थी जो अनुपम सुंदरी, सुसंस्कार से युक्त, पुण्यवती, बुद्धिमती व सुकलाओं में निपुण थी॥5॥ उस राजा के राज्य में दरिद्र कुल में उत्पन्न अग्निशर्मा नामक एक अग्रभोजी ब्राह्मण था। उसकी नयनवासिनी पत्नी तिलका थी॥6॥

1559. विस्सभूदि - महाभूदि - सुभूदी णिगामपिया गुणवंता।
सत्थेसुं दु विअड्ढा, अच्चंत-दरिद्दा भद्दा य॥8॥ (जुम्मं)
1560. अहिंसाधम्मजुत्ता, अणेग-सुविज्जा-कला-धारगा या।
णिउणा धम्मकिरियासु, आणाइत्ता पिदर-गुरूण॥9॥
1561. पहुच्चीअ इगदिवसे, पाडलिपुत्तणयरं विप्पपुत्ता।
तस्स देसस्स विहवं, परमाणंदिदा पस्सित्ता॥10॥
1562. तस्स देसस्स रायो, सुपदिट्ठिदो सुणायणीदिणिउणो।
पयावच्छलो सूरु, सच्चवायणे सुप्पसिद्धो॥11॥
1563. तस्स परमपीदिजुदा, सरूवा राणी चिय सीलवंता।
धरदीव खमाजुत्ता, पावभीरू पयावच्छला॥12॥
1564. पंचिंदिय-भोयाइं, भुंजीअ सुरोव्व दिग्घयालंतं।
गच्छमाण-बहुयालं, णेव जाणीअ पुण्णवंता॥13॥
1565. ताणं सुपुण्णवंतो, सीहत्थो सुजोग्गायंस-पुत्तो।
सीहोव्व परिक्कंतो, पिदरोव्व बहुगुणसंजुत्तो॥14॥

उसके साथ अनुपम सुख को भोगते हुए उनके सात पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार थे—अग्निभूति, श्रीभूति, वायुभूति, विशाखभूति, विश्वभूति, महाभूति और सुभूति। वे सभी अत्यंत प्रिय, गुणवान्, शास्त्रों में निपुण, बहुत दरिद्र और भद्र परिणामी थे॥7-8॥ वे अहिंसा धर्म से युक्त, अनेक समीचीन विद्या व कलाओं के धारक, धर्म क्रियाओं में निपुण एवं माता-पिता व गुरुओं की आज्ञा का पालन करने वाले थे॥9॥ एक दिन वे ब्राह्मण पुत्र पाटलिपुत्र नगर में पहुँचे। उस देश के वैभव को देखकर वे परम आनंदित हुए॥10॥ उस देश के राजा सुप्रतिष्ठित थे जो न्याय-नीति में निपुण, प्रजावत्सल, शूर और सत्यवादिता में प्रसिद्ध थे॥11॥ उसकी परमप्रीति से युक्त स्वरूपा नाम की रानी थी जो शीलवती, पृथ्वी के समान क्षमा से युक्त, पापभीरू और प्रजावत्सला थी॥12॥ दीर्घकाल तक देव के समान उन्होंने पंचेन्द्रिय भोगों को भोगा। उन पुण्यवानों को बीता बहुत काल ज्ञात ही नहीं हुआ॥13॥ उनके सिंहस्थ नामक पुण्यवान्, सुयोग्य व आदर्श पुत्र था जो सिंह के समान पराक्रमी एवं अपने माता-पिता के समान बहुत गुणों से युक्त था॥14॥

1566. अण्ण-देसस्स राओ, विसोगो सोग-रहिदो किवालू या
धम्मज्झाणम्मि रदो, सुहणीदिरीदिसुं विअङ्को॥15॥
1567. पसण्णचित्तो सुपुण्ण-कज्जेसु रदो सुकत्तव्वणिट्ठो।
सुगुरुवयणं सुणेदुं, तिसाउर-चायगोव्व सया हि॥16॥
1568. तित्थवंदणाइ तस्स, विउसिद-चित्तं अक्केण पउमं वा
सुक्कपक्ख-चंदेणं, संवड्ढिद-सायर-णीरं वा॥17॥
1569. पुप्फपुंजमज्जे अवि, वत्थाणि सुगंधिदाणि पुरिसाणं।
लहित्तु पुण्णवंताण, संगदिं होज्ज पुण्णवंता॥18॥
1570. अस्स रायस्स दु चित्त-विगासिया रूवसिरी पिय-राणी।
आणंदिद-मणोहरा, गुणाणुरागिया तह पदिस्स॥19॥
1571. सगसामिस्स वा पाण-णाहस्स समत्थणिमित्तं राणी।
संतुट्ठि - सोक्खाणंद - संति - इच्चादीणं णिच्चं॥20॥
1572. ताण अइरूववंता, शीलवंता सुसक्कारजुत्ता या
पुत्ती कमललोयणा, विणीदा य कमला कमला वा॥21॥

उसी समय एक अन्य देश का विशोक नामक राजा था जो शोक रहित, कृपालु, धर्मध्यान में रत एवं समीचीन नीति व रीतियों में कुशल था॥15॥ वह राजा सदैव प्रसन्नचित्त, पुण्य कार्यों में रत, कर्तव्यनिष्ठ तथा गुरुओं के वचन सुनने के लिए चातक के समान तृषातुर था॥16॥ तीर्थों की वंदना कर उसका चित्त उस प्रकार विकसित होता था जिस प्रकार सूर्य से कमल विकसित होते हैं अथवा शुक्ल पक्ष में चंद्रमा से समुद्र का जल वृद्धिगत होता है॥17॥ जिस प्रकार पुष्पों के ढेर के मध्य रखे पुरुषों के वस्त्र भी सुगंधित हो जाते हैं उसी प्रकार पुण्यवानों की संगति प्राप्त कर नर सुपुण्यवान् हो जाते हैं॥18॥ इस राजा की रूपश्री नामक प्रिय रानी थी जो उसके चित्त का विकास करने वाली, आनंदिता, मनोहरा एवं अपने पति के गुणों में अनुराग करने वाली थी॥19॥ वह रानी नित्य अपने स्वामी या प्राणनाथ की संतुष्टि, सुख, आनंद व शांति इत्यादि का समर्थ निमित्त थी॥20॥ उनकी कमललोचना, कमला अर्थात् लक्ष्मी के समान कमला नामक पुत्री थी जो विनयी, अतिरूपवती, शीलवती और सुसंस्कारों से युक्त थी॥21॥

1573. सगपिदरस्स हु आणा-कारिया सुहगा णयणतारिगा या
मादूए विसेसेण, अइपिया देहम्मि पाणोव्व॥22॥
1574. कस्स पिदरस्स ण होदि, अच्चंत-पिया सुजोग्गा पुत्ती दु।
जोगीणं संजमोव्व किसीवलस्स सेट्टसस्सं व॥23॥
1575. तिरिया वा णिज्झंते, सग-सिसूसु चिय वच्छलभावेणं।
संताणं रक्खेदुं, पाणं देदुं वि तप्परा हु॥24॥
1576. मादूए अइपियो वि, कुरूव-वियलंग-मूढ-संताणो।
तदा अइ-पुण्णवंतो, संताणो किं ण होज्ज पियो?॥25॥
1577. कंखदि पुण्णवंतस्स, संगदिं मिदुभासणं ववहारं।
पत्तेयं जीवो सय, तस्स दंसणं अवि तिप्पेदि॥26॥
1578. मंतिमंडलेणं सह, वियारित्तु बहुवारं विसोगेण।
पदायिदा णियकण्णा, कुमार-सीहत्थस्स विहीए॥27॥



वह अपने माता-पिता की आज्ञाकारिणी, उनकी नयनों की तारिका व सुभगा थी। जिस प्रकार व्यक्ति के देह में प्राण अत्यंत प्रिय होते हैं उसी प्रकार वह कमला विशेष रूप से अपनी माँ के लिए अति प्रिय थी॥22॥ उचित ही है जिस प्रकार योगियों को अपना संयम और श्रेष्ठ कृषक को अपनी श्रेष्ठ फसल अत्यंत प्रिय होती है उसी प्रकार ऐसे कौन से माता-पिता हैं जिन्हें

1579. तदा देज्ज बहुविहवं, अस्स-हत्थि-रह-पदादि-इच्चादी।
सेविगा परिचारिगा, सगचित्तसंतुट्ठीए चिय॥28॥
1580. सीहत्थो दु पसण्णो, लद्ध-उत्तमसस्स-किसीवलोव्व या
लद्धविहवरंकोव्व य, लद्धजहेच्छफल-माणुसोव्व॥29॥
1581. सस्सियो अप्पत्तुट्ठो, सस्सेण सह लहित्तुं बहुपलालं।
रायेण दत्त-विहवं, लहित्ता जह तह सीहत्थो॥30॥
1582. तम्मि याले विवाहे, धणविहव-पहुदी णेव महच्चं दु।
माण-सम्माण-पीदी, कुलीण-कण्णा गुणी वरो य॥31॥
1583. तत्थ सत्त-भादुणो दु, उवट्ठिदा महुच्छवं पस्संता।
सगभग्गं खिसीअ दु, जं कमलं गहिदुं असक्का॥32॥

अपनी योग्य पुत्री अति प्रिय नहीं होती? अर्थात् वह सभी को प्रिय होती है॥23॥ अथवा देखो! तिर्यंच भी वात्सल्य भाव से अपने शिशुओं को स्नेह करते हैं। वे अपनी संतान की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को भी तत्पर हो जाते हैं॥24॥ जब कुरूप, विकलांग व मूर्ख संतान भी माता को अति प्रिय होती है तब अति पुण्यवान् संतान उन्हें प्रिय क्यों नहीं होगी? अर्थात् अवश्य होगी॥25॥ प्रत्येक जीव पुण्यवान् की संगति, मृदुभाषण व मृदुव्यवहार चाहता है। पुण्यवान् का दर्शन भी संतुष्टि देता है॥26॥ अपने मंत्रीमंडल के साथ राजा विशोक ने बहुत बार विचार विमर्श कर सिंहस्थ कुमार के लिए विधिपूर्वक अपनी कन्या प्रदान की॥27॥ तभी अपने चित्त की संतुष्टि के लिए बहुत वैभव, घोड़ा, हाथी, रथ, पदाति, सेविका व परिचारिका इत्यादि भी प्रदान कीं॥28॥ जिस प्रकार कृषक उत्तम फसल प्राप्त करके प्रसन्न होता है, दरिद्र वैभव को प्राप्त कर प्रसन्न होता है व मनुष्य यथार्थ फल प्राप्त कर प्रसन्न होता है उसी प्रकार कुमार सिंहस्थ उस कन्या को प्राप्त कर प्रसन्न हुआ॥29॥ जिस प्रकार फसल के साथ बहुत पलाल (भूसा) को प्राप्त कर कृषक आत्म संतुष्ट होता है उसी प्रकार कुमार सिंहस्थ राजा के द्वारा दिए गए वैभव को प्राप्त कर संतुष्ट हुआ॥30॥ क्योंकि विवाह में धन, पैसा आदि का महत्व नहीं होता, उस समय मान-सम्मान-प्रीति, कुलीन कन्या और गुणी वर महत्वपूर्ण होते हैं॥31॥ वहाँ उपस्थित सातों भाईयों ने महोत्सव को देखते हुए अपने भाग्य की निंदा की क्योंकि वे राजकुमारी कमला को ग्रहण करने में असमर्थ थे॥32॥

1584. णिय-मिच्छत्तदसाए, अम्हेहि अविवित्तेहि पुण्णुदये।
अज्जिदं महापावं जिणसुदमुणी खिसंतेहि वि॥33॥
1585. पावकज्जपुट्टीए, पावुदये वि सुकज्ज-णिंदाइ वा।
अज्जदि पावं भुंजदि, फलं तस्स दुहं दारिदं॥34॥
1586. णरभवम्मि दारिदं, अहिसावोव्व य भयंकरोयोव्व।
कलह-किलेस-कारणं, अजसकित्ति-अवमाण-हेदू॥35॥
1587. दुरिदज-दारिदस्स य, पुत्तो दुक्खं विपत्ती पुत्ती या।
कंतिं बुद्धिं जसं च, बलं सिरिं खयिदुं परसू व्व॥36॥
1588. दारिदं पक्खोडदि, पद-पदिट्ठा सरजलं सेवालं।
आरोग्गं विणस्सदे, जह घुणो य कट्ठ-मण्णादिं॥37॥
1589. भुंजेदुं धणलच्छिं, उक्किट्ठं गिहलच्छिं पावुदये।
णेव समत्थो जीवो, णेरइयाणं सुहकिरिया व्व॥38॥
1590. दारिदं पावफलं, बहुभोयाकंखाकारणत्तादु।
अइरायदेसजुदस्स, दुल्लहो विरत्ति-भावो संग्गादु॥39॥

वे चिंतन करने लगे अहो! अपनी मिथ्यात्व की दशा में हम अविवेकियों ने जिन, श्रुत, मुनि की निंदा करते हुए पुण्य के उदय में भी महापाप का अर्जन किया है॥33॥ पाप के उदय में पाप कार्यों की पुष्टि व सुकार्यों की निंदा से जीव पाप का अर्जन करता है एवं उसके फलस्वरूप दुःख व दरिद्रता को भोगता है॥34॥ इस मनुष्य भव में दरिद्रता एक अभिशाप या भयंकर रोग के समान है। यह दरिद्रता कलह व क्लेश का कारण है एवं अयशकीर्ति व अपमान का हेतु है॥35॥ पाप से उत्पन्न हुई दरिद्रता के दुःख रूपी पुत्र और विपत्ति रूपी पुत्री है। यह दरिद्रता कांति, बुद्धि, यश, बल व लक्ष्मी का नाश करने के लिए कुठार के समान है॥36॥ दरिद्रता पद व प्रतिष्ठा को उसी प्रकार आच्छादित कर देती है जिस प्रकार शैवाल जलाशय के जल को आच्छादित कर देती है। दरिद्रता आरोग्य को उसी प्रकार नष्ट कर देती है जैसे घुन, अन्न व लकड़ी आदि को अंदर ही अंदर नष्ट कर देता है॥37॥ जिस प्रकार नारकी जीवों के शुभ विक्रिया नहीं होती उसी प्रकार पाप के उदय में जीव उत्कृष्ट धनवैभव व गृहलक्ष्मी को भोगने में समर्थ नहीं होता॥38॥ अहो! बहुत भोगों की आकांक्षा का कारण होने से दरिद्रता पाप का फल है। अति राग-द्वेष से युक्त व्यक्ति के परिग्रह से विरक्ति का भाव दुर्लभ होता है॥39॥

1591. भवतणुभोयसरूवं, वियारित्ता वड्डीअ वेरग्गं।
सम्मत्तं सण्णाणं, सच्चरियं तदा कंखंता ॥40॥
1592. अध जसोहर-मुणिराय-समीवे गच्छीअ संवेगेणं।
मुणिरूवं चिंतंता, तस्स सोम्म-अवियारि-मुहं॥41॥
1593. णिण्णिमेस-अवल्लोयंता कडुअ तियपदक्खिणं चिट्ठीअ।
गुरुचरणेषुं करीअ, थुदिं वंदणं पणमंता य॥42॥ (तिअं)



पुनः संसार, शरीर व भोगों के स्वरूप का विचारकर उन्होंने वैराग्य को वृद्धिगत किया। तभी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र की आकांक्षा करते हुए वे सातों भाई संवेगपूर्वक श्री यशोधर मुनिराज के समीप पहुँचे। उन्होंने मुनिराज के स्वरूप का चिंतन करते हुए और उनकी सौम्य व अविकारी मुद्रा का निर्निमेष अवलोकन करते हुए तीन प्रदक्षिणा की। फिर नमस्कार करते हुए मुनिराज की स्तुति व वंदना की एवं गुरु के चरणों में बैठे॥40-42॥

1594. सम्मत्तं सण्णाणं, सच्चरियं वेरग्गफलं णियमा।
रयणत्तयं विणा णिच्चसुहं लहिदुं ण खमो को वि॥43॥
1595. पुण्णेसु पावपइडी, संकमीअ ताण मुणिदंसणेणं।
मुणिदंसणं ण मेत्तं, पुण्णस्स अहणासहेदू वि॥44॥
1596. भो करुणालयो! पहू!, णिस्संगो! णिरंबरो! णिरवज्जो!
जदवि तव मोणमुद्दा, उवदिसदे मोक्खमग्गं अवि॥45॥
1597. तदवि णिरेय-विसुद्धो, णिद्वंद-णित्तुलो णिरभिस्संगो।
वयं तसिद-चायगोव्व, करेदुं धम्मामिय-पाणं॥46॥ (जुम्मं)
1598. अहो णिरावकंखी! हु, किं धम्मस्स सरूवं माहप्पं।
केणं कारणेणं च, पालेज्ज धम्मं णिम्मोहो!॥47॥
1599. अहे णिरुवट्टाणिणा, उच्छाहिणा सया मोक्खमग्गम्मि।
कहिदं मुणिरायेणं, अच्चंत-करुणाबुद्धीए॥48॥
1600. सव्वकल्लाणकारण-धम्मसरूवं सुणेह भव्वा जो।
दुक्खतावे छाया व्व, भवसायरे णिज्जामगोव्व॥49॥ (जुम्मं)

उचित ही है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र नियम से वैराग्य का फल है। रत्नत्रय के बिना कोई भी नित्य-शाश्वत सुख प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता॥43॥ मुनिराज के दर्शन से उनकी पाप प्रकृतियाँ भी पुण्य में संक्रमित हो गई थीं। मुनिदर्शन ना केवल पुण्य का कारण है अपितु पापनाश का भी हेतु है॥44॥ वे कहने लगे हे करुणा के भवन! हे प्रभु! हे निःसंग, निरंबर, निर्दोष मुनिराज यद्यपि आपकी मौन मुद्रा भी मोक्षमार्ग का उपदेश देती है तद्यपि हे निष्कंप, विशुद्ध, निर्द्वन्द, असाधारण, निःस्पृह मुनिराज हम धर्माभूत का पान करने के लिए तृषित चातक के समान स्थित है॥45-46॥ अहो आकांक्षाओं से रहित मुनिराज! धर्म का स्वरूप व माहात्म्य क्या है? हे निर्मोही! व्यक्ति किस कारण धर्म का पालन करता है?॥47॥ पाप में सदा निरुत्साही और मोक्षमार्ग में सदा उत्साही मुनिराज ने अत्यंत करुणाबुद्धिपूर्वक कहा—हे भव्य जीवों! सभी का कल्याण करने वाले धर्म का स्वरूप सुनो। वह धर्म दुःख की धूप में सुख की छाया के समान और संसार रूपी सागर में कर्णधार के समान है॥48-49॥

1601. धम्मो वत्थु-सहावो, चेदणाइ सुद्धपरिणदी धम्मो।
सुद्धगुणपज्जायाण, संपत्ती ताइ कारणं वि॥50॥
1602. इमो णिच्छयो धम्मो, तस्स कारणं ववहार-धम्मो दु।
णिच्छय-लक्खेण विणा, ववहार-धम्मो जहत्थो ण॥51॥
1603. को वि लहिदुं ण सक्को, णिच्छयरयणत्तयं च सुद्धप्पं।
णिव्विअप्प-अणुभूदिं, विणा ववहार-धम्मेणं हु॥52॥
1604. होज्ज भूदत्थरूवो, बहुविहो ववहारधम्मो णियमा।
सगवेक्खाइ दोण्हं हि, पुण्णजहत्थो जिणसमयम्मि॥53॥
1605. दहविह-धम्मो उत्तम-खमा मह्वं अज्जवं सोचं चा।
सच्चं संजमो तवो, चागाकिंचण-बंभचेरं॥54॥
1606. अहिंसा सच्चं तहा, अचोरियं बंभचेरं असंगं।
सेविद-पणविह-धम्मो, तित्थयराइ-महापुरिसेहि॥55॥
1607. धम्मो दयाविसुद्धो, हियमियपियवयण-जुद-वच्छलेणं।
णियकत्तव्व-पालणं, सुद्धप्पलीणत्तं धम्मो॥56॥

वस्तु का स्वभाव धर्म है, चेतना की शुद्ध परिणति धर्म है, निज शुद्ध गुण व पर्याय की प्राप्ति धर्म है अथवा उन सबकी प्राप्ति का कारण भी धर्म है॥50॥ यह निश्चय धर्म है और उस निश्चय धर्म का कारण व्यवहार धर्म है। निश्चय के लक्ष्य के बिना व्यवहार धर्म यथार्थ नहीं माना जाता॥51॥ व्यवहार धर्म के बिना कोई भी निश्चय रत्नत्रय, शुद्धात्मा व निर्विकल्प अनुभूति को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता॥52॥ व्यवहार धर्म बहुत प्रकार का होता है और वह नियम से भूतार्थ रूप होता है। अपनी-अपनी अपेक्षा से जिनागम में दोनों ही धर्म (व्यवहार व निश्चयधर्म) पूर्ण यथार्थ हैं॥53॥ उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम अकिंचन और उत्तम ब्रह्मचर्य—ये दस प्रकार के धर्म हैं॥54॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये भी धर्म के पाँच भेद हैं जो तीर्थंकर आदि महापुरुषों के द्वारा सेवित हैं॥55॥ दया से विशुद्ध धर्म है अथवा हित-मित-प्रिय वचनों से समन्वित वात्सल्य भाव से अपने कर्तव्यों का पालन करना धर्म है अथवा शुद्धात्मलीनता धर्म है॥56॥

1608. मूलं जिणधम्मस्स दु, सम्मदंसणं सय सव्वखेत्ते।
सव्वभव्व-जीवाणं, मोक्खस्स दु पढमसोवाणं॥57॥
1609. चारित्तं खलु धम्मो, जुदं सम्मदंसणणाणेहि सया।
सम्मत्तहीणचरियं, मोक्खकारणं णेव कया वि॥58॥
1610. सम्मत्तहीणणाणं, णियमेणं कुणाणं जिणुद्धिट्ठं।
माणकसायपोसगं, अण्णकसायकारणं तं पि॥59॥
1611. सगं पंडिद-विदू वा, मणदि जो को वि सुसंजमेण विणा।
सो बंझा - पुत्तोव्व हु, हस्सपत्तो धम्मि - सहाए॥60॥
1612. संजदेसु अवदी णो, सोहदि बगोव्व धयरट्ट-मज्झम्मि।
जदि बहुसद्दणाणी वि, मिच्छो ण पुज्जो धम्मीहिं॥61॥
1613. सम्माइट्ठी अवदी, संजमगहणस्स भावसहिदो जो।
धम्मीणं सहयारी, तेहि विणा सवरघादी सो॥62॥
1614. धम्मो दुविहो णेयो, भेयादो चिय समण-सावयाणं।
सत्तीए पालेज्जा, सयलवदं एगदेसं वा॥63॥

सर्व काल व क्षेत्र में सम्यग्दर्शन ही जिनधर्म का मूल है। यह सम्यग्दर्शन ही सभी भव्य जीवों के लिए मोक्ष का प्रथम सोपान है॥57॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से युक्त चारित्र ही धर्म है। सम्यक्त्व से रहित चारित्र कभी भी मोक्ष का कारण नहीं होता॥58॥ सम्यक्त्व से रहित ज्ञान नियम से कुज्ञान है, ऐसा जिनेंद्रप्रभु ने कहा है। वह मान कषाय का पोषक और अन्य कषायों का कारण भी होता है॥59॥ जो कोई भी व्यक्ति सुसंयम के बिना स्वयं को पंडित या विद्वान् मानता है वह धर्मियों की सभा में बंध्या पुत्र के समान उपहास का पात्र होता है॥60॥ संयमियों के मध्य अव्रती उसी प्रकार शोभा को प्राप्त नहीं होता जिस प्रकार राजहंस पक्षियों के मध्य बगुला शोभा को प्राप्त नहीं होता। यदि मिथ्यादृष्टि बहुत शब्दज्ञानी भी हो तो भी वह धर्मात्माओं के द्वारा पूज्य नहीं होता॥61॥ जो सम्यग्दृष्टि अव्रती जीव संयम ग्रहण करने के भाव से सहित है वह धर्मियों का सहकारी-सहयोगी है। उस सम्यक्त्व और व्रतों के बिना वह स्व-पर का घात करने वाला ही है॥62॥ श्रमण और श्रावकधर्म के भेद से धर्म दो प्रकार का जानना चाहिए। श्रमणधर्म सकलचारित्र युक्त और श्रावकधर्म एकदेशचारित्र युक्त होता है। भव्यों को शक्तिपूर्वक उनका पालन करना चाहिए॥63॥

1615. धम्मो सस्सद-सुहदो, विग्घप्पणासगो दुह-णासगो या
मणोरहपूरगो सय, उहय-सोक्खप्पदायगो सो॥64॥
1616. होदि णियामग-हेदू पाविदुं सुद्धसहावं जो को वि
सो ववहार-धम्मो दु, कया वि उविक्खणीयो णेव॥65॥
1617. गहेज्ज धम्मकारणं, सुद्धप्पगुणं जाणिय विवेगेण।
उज्झित्तु मिच्छत्तयं, कसायं समेज्ज जदणेणं॥66॥
1618. पत्तेयं भव्वेण, सुद्धप्परूवो सय उवादेयो।
अखमो तं लहिदुं तो, पाउणेज्जा कारणं तस्स॥67॥
1619. सेट्टपुण्णकज्जाइं, ववहारेण कारणं सुधम्मस्स।
पुण्णेण लहदि जीवो, भवसोक्खं मोक्खसाहणं पि॥68॥
1620. सुगिहत्थो अणुव्वदी, महव्वदी य सुद्धप्पजोगी वा।
पुण्णफलेणं अरिहो, होदि जीवो णो संकणेज्ज॥69॥
1621. अवदि-सम्माइट्ठी य, मोक्खमग्गी णेव संपइ-याले।
रयणत्तयेण णियमा, मोक्खमग्गी भावियालम्मि॥70॥

धर्म शाश्वत सुख प्रदान करने वाला है। विघ्नों का नाश करने वाला और दुःखों को विनाश करने वाला है। वह सदा मनोरथों को पूर्ण करने वाला और दोनों सुखों (निःश्रेयस व अभ्युदय सुख) को प्रदान करने वाला है॥64॥ जो कोई भी शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के लिए नियामक हेतु होता है वह ही व्यवहार धर्म है। व्यवहार धर्म कभी उपेक्षा के योग्य नहीं होता॥65॥ विवेकपूर्वक शुद्धात्म गुणों को जानकर धर्म के कारणों को ग्रहण करना चाहिए। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र का त्यागकर यत्नपूर्वक कषायों का शमन करना चाहिए॥66॥ शुद्धात्मा का स्वरूप प्रत्येक भव्य जीव के द्वारा सदैव उपादेय है। यदि वह उस शुद्धात्म स्वरूप को प्राप्त करने में असमर्थ हों तो उसका कारण प्राप्त करना चाहिए॥67॥ व्यवहार से श्रेष्ठ पुण्य कार्य करना धर्म का कारण है। पुण्य से ही जीव संसार का सुख प्राप्त करता है और पुण्य से ही वह मोक्ष के साधन प्राप्त करता है॥68॥ पुण्य के फलस्वरूप जीव समीचीन गृहस्थ, अणुव्रती, महाव्रती वा शुद्धोपयोगी होता है। पुण्य के फलस्वरूप ही जीव अरिहंत होता है इसमें कोई शंका नहीं करनी चाहिए॥69॥ अब्रती सम्यग्दृष्टि वर्तमानकाल में मोक्षमार्गी नहीं हैं किन्तु भविष्य में रत्नत्रय के द्वारा नियम से मोक्षमार्गी होंगे॥70॥

1622. सुणित्तु धम्मवएसं, सत्तविप्पेहि लहिदो आणंदो।
पुण णिवेदीअ सामी, सीसह अम्हाण पुव्वभवा॥71॥
1623. सगोहिणाणेणं चिय, पुण्णपावफलसंजुद-पुव्वभवा।
वित्थरेणं जसोहर-मुणिवरेणं उप्पालिदा हु॥72॥
1624. सुणित्तु सगपुव्वभवा, वेरग्गुत्तालवीइसंजुदेहि।
वत्थाभूसण-मुज्झिय, ओग्गहिदा णिग्गंथदिक्खा॥73॥
1625. धीरं दु जस्स जणगो, खमाभावो जणणी संति-भगिणी।
करुणा पाणवल्लहा, संजम-भादू तवो मित्तं॥74॥
1626. त्तिजोग-संजमो सुदा, महव्वदं सुदो विरागो भादू।
दिसावसणं च उवसम-गेहो मुणी णिग्गंथो सो॥75॥ (जुम्मं)
1627. धम्मसुक्कज्झाणं च, हिअफंदण-माणपाणो समत्तं।
पाणगं च जिणभत्ती, विरत्ती तह भोयणं ताण॥76॥
1628. दिग्घयालपज्जंतं तवुग्गं कुणंता समाहिमरणं।
लहिदं सुहज्जाणंता, जोगीहि समत्तभावेहिं॥77॥
1629. उत्तमसमाहिबलेण, सोहम्मसग्गे महड्डिय-देवा।
दिव्व-इड्डि-संजुत्ता, पीदलेस्साजुत्ता सुहगा॥78॥

धर्मोपदेश सुनकर सातों ही ब्राह्मणों ने आनंद प्राप्त किया। पुनः निवेदन किया हे स्वामी! हमारे पूर्वभव बतलाइये॥71॥ तब यशोधर मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान के माध्यम से विस्तारपूर्वक उनके पुण्य व पाप फल से संयुक्त पूर्वभवों को बताया॥72॥ अपने पूर्वभवों को सुनकर उनके चित्त में वैराग्य की उत्ताल लहरें उछलने लगीं तब उन्होंने अपने वस्त्र व आभूषणों का त्याग कर निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण की॥73॥ धैर्य जिसके पिता हैं, क्षमाभाव माँ है, शांति बहन, करुणा जिसकी प्राण वल्लभा है, संयम भ्राता है और तप मित्र है। तीनों योगों का संयम जिसकी पुत्री है, महाव्रत पुत्र है, वैराग्य भाई है, दिशा ही कपड़े हैं और उपशम भाव ही गृह है ऐसे वे निर्ग्रन्थ मुनिराज थे॥74-75॥ धर्म व शुक्लध्यान उन मुनिराजों के हृदय का स्पंदन था, समत्व भाव श्वासोच्छ्वास था, जिनभक्ति ही उनका पानक और विरक्ति ही उनका भोजन था॥76॥ दीर्घकाल पर्यंत उग्र तप करते हुए उन योगियों ने शुभ ध्यान करते हुए समत्व भाव से समाधिमरण किया॥77॥ उत्तम समाधि से वे सौधर्म स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए। वे सभी सौभाग्य युक्त देव दिव्य ऋद्धियों से संयुक्त व पीत लेश्या से युक्त थे॥78॥

1630. बेसहस्सवासेसुं, इगवारं माणसामियाहारं।
गहीअ सुहपरिणामी, आणपाणं बेपक्खेसुं॥79॥
1631. अकिट्टिम - चेइयालय - वंदणाए सुणिग्गंथ - थुदीए।
केवलिदिव्वज्झुणिं हु, सुणित्तु अज्जीअ बहुपुण्णं॥80॥
1632. बेसायरपज्जंतं, भोयंता उक्किट्ट - सग्ग - सुहं चा।
अवसिट्टपुण्णफलेण, चयिदूणं सत्तपुत्ता तव॥81॥
1633. तुज्झ अट्टमपुत्तस्स, लोयवालस्स पुव्वपुण्णभवं चा।
उप्पालेमि हं सुणह, अण्णाणं धम्म-पेरगो वि॥82॥
1634. विज्जाहर-सिरिभदो, कत्तव्वणिट्टो जिणाणाइत्तो।
णिदोसवदपालगो पुव्वभवे वरसावगो सो॥83॥
1635. एयदा गच्छीअ मुणि - दंसणस्स मुणि - गुणाणुरायेणं।
समणधम्मं उवदिसिय, सावय-उसो देसिदो तेण॥84॥
1636. सावगाण एयारस-संजमठाणं जहक्कमेण जाण।
सगसत्तीए सगप्प-हिदत्थं पालंति विवेगी॥85॥

दो हजार वर्षों में एक बार वे देव शुभ परिणामों से युक्त मानसिक अमृताहार और दो पक्षों में एक बार श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे।79॥ वे देव अकृत्रिम जिनालयों की वंदना से, निर्ग्रन्थ गुरुओं की स्तुति से एवं केवली प्रभु की दिव्यध्वनि सुनकर बहुत पुण्य का अर्जन करते थे॥80॥ वे सातों ही देव दो सागर पर्यंत स्वर्ग के उत्कृष्ट सुखों को भोगते हुए अवशेष पुण्य के फलस्वरूप वहाँ से च्युत होकर हे राजा अशोक! तुम्हारे सात पुत्र हुए हैं॥81॥ अब तुम्हारे अष्टम पुत्र लोकपाल के पूर्व पुण्य भव को मैं कहता हूँ जो अन्यो को भी धर्म की प्रेरणा देने वाला है॥82॥ वह लोकपाल पूर्वभव में श्रीभद्र नाम का विद्याधर था जो कर्तव्यनिष्ठ, जिनाज्ञा का पालन करने वाला व निर्दोष व्रतों का पालन करने वाला श्रेष्ठ श्रावक था॥83॥ एक बार वह विद्याधर मुनिराज के गुणों के अनुराग से मुनि दर्शन के लिए वहाँ गया। उन मुनिराज ने श्रमणधर्म का उपदेश देकर श्रावक धर्म का उपदेश दिया॥84॥ वह इस प्रकार था—श्रावकों के यथाक्रम से ग्यारह संयमस्थान जानने चाहिए। विवेकी जन निज आत्महित के लिए शक्ति के अनुसार उनका पालन करते हैं॥85॥

1637. जिणसुदणिग्गंथाणं पूयं सज्झायं वेज्जावच्चं।
कुणदि पावक्खयेदुं, पुण्णवंत-सावयो जो सो॥86॥
1338. तिविह - सावयो पक्खिखग - णेट्ठिग - साहगाणं च भेयादो।
जिणधम्म-पक्खधरो दु, पक्खिखगो सावयो जाणेज्ज॥87॥
1639. जिणण्णं सहहंतो, अट्टमूलगुणं पालदे जो सो।
वसणचागी पूयाइ-सुकज्जेसु लीणो पक्खिखगो॥88॥
1640. पालदि अप्पहिदत्थं, दंसणाइ - संजमठाणाइं जो।
णिट्ठाए णेयो सो, णेट्ठिगो सावयो पसंतो॥89॥
1641. जीवणंतम्मि हु मिच्चु-समये साहणं कुव्वेदि जो सो।
साहगो सावयो खलु, अप्पसुद्धीइ समाहीए॥90॥
1642. उवासगो सुगिहत्यो, सागारो य णिग्गंथाणुगामी।
सावगो गेही तहा, अहिंसापेम्मी एगट्ठो॥91॥
1643. पाणादु सेट्ठो जिणो, णिग्गंथो धम्मो आगमो जस्स।
सो भव-देह-भोयादु, विरत्तो स-दंसणपडिमा हु॥92॥
1644. मज्जादिदं कुव्वेदि, भोयणं साहणं वेज्जावच्चं।
सो अभक्खचागी सय, तित्थजत्तं जव-मुववासं॥93॥ (जुम्मं)

जो जिनेन्द्र देव की पूजा, श्रुत का स्वाध्याय और निर्ग्रन्थ गुरुओं की वैय्यावृत्ति अपने पापों के क्षय के लिए करता है वह पुण्यवान् श्रावक जानना चाहिए॥86॥ पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक के भेद से श्रावक तीन प्रकार का जानना चाहिए। जिनधर्म के पक्ष को ग्रहण करने वाला पाक्षिक श्रावक होता है॥87॥ जो जिनाज्ञा पर श्रद्धान करता हुआ अष्टमूलगुणों का पालन करता है, सप्त व्यसनों का त्यागी है और पूजा आदि सत्कार्यों में लीन रहता है वह पाक्षिक श्रावक कहलाता है॥88॥ जो आत्मा के हित के लिए दर्शनादि संयम स्थानों का निष्ठापूर्वक पालन करता है वह प्रशांत नैष्ठिक श्रावक जानना चाहिए॥89॥ जीवन के अंत में मृत्यु के समय जो आत्मशुद्धि हेतु समाधि की साधना करता है वह निश्चय से साधक श्रावक कहलाता है॥90॥ उपासक, सद्गृहस्थ, सागार, निर्ग्रन्थानुगामी, श्रावक, गृही तथा अहिंसाप्रेमी ये एकार्थवाची हैं॥91॥

1645. अणुव्वदाणि अहिंसा, सच्चमचोरियं सदार-तोसो या
परिग्रह-परिमाणं च, सावगाण पुण्णविड्डीए॥११४॥
1646. दिव्वदं देसव्वदं, अणुदंडविरदी गुणव्वदाणि।
सामाइयो पोसहोववासो अदिहिसंविभागो॥११५॥
1647. भोगुवभोग - परिमाण - माहु सल्लेहणा वेज्जावच्चं।
णादव्वाणि चत्तारि-सिक्खावदाणि जिणसमयेहि॥११६॥ (जुम्मं)
1648. इमाणि बारसवदाणि, जो को अवि पालेदि य णिहोसं।
सङ्गाए णिट्ठाए, विदिय-पडिमा-जुदो वदी सो॥११७॥
1649. तियसंझाकालेसुं, समत्त-मब्भसदि तिजोगसुद्धीइ।
जिणा जिणालयाइं च, पणगुरू वंददि सामइयो॥११८॥
1650. सत्तीइ चउपव्वेसु, मासे अणसणं पोसहाणसणो।
कुणदि एगासणं पुव्वणंतरदिणोसु विसुद्धीइ॥११९॥

जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, जिनधर्म व जिनागम जिसके लिए प्राणों से भी श्रेष्ठ हैं और जो संसार, शरीर, भोगों से विरक्त है वह दर्शन प्रतिमाधारी जानना चाहिए। वह श्रावक मर्यादा युक्त भोजन करता है। सर्व अभक्ष्य का त्यागी सदैव साधना, वैय्यावृत्ति, तीर्थयात्रा, जाप और उपवास करता है॥११२-११३॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदार-संतोष और परिग्रह- परिमाण-श्रावकों के पुण्य की वृद्धि के लिए ये पाँच अणुव्रत जानने चाहिए॥११४॥ दिग्व्रत, देशव्रत व अनर्थदंडविरति व्रत ये तीन गुणव्रत जानने चाहिए। सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और भोगोपभोग परिमाण अथवा कहीं-कहीं वैय्यावृत्ति या सल्लेखना को भी स्वीकार किया गया है। जिनग्रंथों में ये चार शिक्षाव्रत जानने चाहिए॥११५-११६॥ जो कोई भी श्रद्धा व निष्ठा से इन बारह व्रतों का निर्दोष पालन करता है वह द्वितीय प्रतिमा से युक्त व्रती श्रावक है॥११७॥ जो तीनों संध्याकालों में योगत्रय की विशुद्धिपूर्वक समता भाव का अभ्यास करता है। चैत्य, चैत्यालयों की व पंच गुरु अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु की वंदना करता है वह सामायिक प्रतिमाधारी है॥११८॥ जो विशुद्धि हेतु एक माह में चार पर्व के दिनों में शक्तिपूर्वक उपवास करता है एवं पूर्व (पहले) व अनंतर (अगले) दिन एकासन करता है वह प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी श्रावक है॥११९॥

1651. मज्जादिदाइं गहदि, जल-खीर-फल-अण्ण-पुष्पादीइं।
सुद्ध-मचित्तं जो सो, सचित्त-विरदो मुणेदव्वो॥100॥
1652. खज्जं सज्जं लेहं, पेयं आमयदि चउविहाहारं।
रत्तीइ किदकारिदणुमोदेहि रत्तिभुत्तिचागी॥101॥
1653. सगित्थीए सह सव्व - इत्थीओ मादु - भगिणि - सुपुत्तीव।
जस्स सो बंभयारी, विचारभावरहिदो धम्मी॥102॥
1654. आरंभचागी हु किसि - सेवा - वाणिज्जादीदु विरत्तो।
मुणिस्स सगणिमित्तेण, अदणं पयिदुं वरं सक्को॥103॥
1655. धम्मज्झाण-विड्डीइ, छंडित्ता उवजोगि-उवयरणाणि।
अट्टकारणं संगं, सव्व - मुज्जेदि संग - विरदो॥104॥
1656. विवाह-उज्जोग-पहुदि-सावज्जकम्माण अणुमदिं णेव।
देज्जा अणुमदि-विरदो, वरं अगो धम्मकज्जेसु॥105॥
1657. उद्धिदु - चाग - पडिमा - धारग - उक्किदुसावगो दुविहो।
खुल्लयो एलगो अवि, संपइ दिस्संति विहरंता॥106॥
1658. णियसंजमपालणस्स, सोच - संजमाहार - उवयरणाणि।
गहेदि खुल्लयो एग-वत्थ-कोवीणेहि सहिदाणि॥107॥(जुम्मं)

जो मर्यादित शुद्ध व अचित्त जल, दुग्ध, फल, अन्न व पुष्पादि को ग्रहण करता है वह सचित्त विरत वा सचित्त त्यागी जानना चाहिए॥100॥ जो रात्रि में कृत, कारित व अनुमोदना से खाद्य, स्वाद्य, लेह्य व पेय इन चार प्रकार के आहार का त्याग करता है वह रात्रिभुक्तित्यागी जानना चाहिए॥101॥ जिसके लिए अपनी स्त्री के साथ-साथ सभी स्त्रियाँ माता, बहन व पुत्री के समान हैं वह विकार भाव से रहित धर्मात्मा ब्रह्मचारी जानना चाहिए॥102॥ जो कृषि, सेवा, वाणिज्य आदि सर्व आरंभ से विरक्त है वह आरंभ त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है विशेषता यह है कि वह मुनिराज व अपने लिए भोजन बना सकता है॥103॥ जो धर्मध्यान की वृद्धि हेतु उपयोगी उपकरणों को छोड़कर अन्य सभी आर्त्तध्यान के कारणभूत परिग्रह का त्याग कर देता है वह परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी है॥104॥ जो विवाह, उद्योग आदि सावद्य कर्मों की अनुमति नहीं देता वह अनुमति त्याग प्रतिमाधारी जानना चाहिए; किन्तु वह धर्मकार्यों में सदैव अग्रणीय

1659. एलगो गहदि पिच्छि, कमंडलुं खलु कोवीणेणं सह।
णियमादो पकुब्बेदि, कचलुंचणं पगविहारं च॥108॥
1660. पडिमा-धारगाणं दु, जण्णोववीदं धम्मचिण्हं तां
धारेज्जा सय जावइय-पडिमा तावइय-सुत्ताणं॥109॥
1661. तियपडिमापज्जंतं, जण्णोववीदं तिसुत्ताण णरो।
तं जण्णोववीदं दु, एलगो णेव धारदि णवरि॥110॥ (जुम्मं)



होता है॥105॥ उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं। वे दो प्रकार के जानने चाहिए—क्षुल्लक व ऐलक। ये क्षुल्लक व ऐलक आज भी विहार करते हुए दिखाई देते हैं। जो अपने संयम के पालन के लिए एक वस्त्र व कौपीन के साथ संयमोपकरण, शौचोपकरण व आहारोपकरण धारण करता है वह क्षुल्लक जानना चाहिए॥106-107॥ ऐलक कौपीन के साथ पिच्छी व कमंडलु ही धारण करते हैं। वे नियम से केशलोंच व पगविहार करते हैं॥108॥ प्रतिमाधारियों के लिए यज्ञोपवीत धर्म का चिह्न है। उन्हें इसे सदैव धारण करना चाहिए। जिसकी जितनी प्रतिमाएँ हों उसे उतने सूत्रों का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। विशेषता यह है कि तीन प्रतिमा पर्यंत व्यक्ति को तीन सूत्रों का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। ऐलक जी उस यज्ञोपवीत को कभी धारण नहीं करते॥109-110॥ उस श्रीभद्र श्रावक ने वैराग्यपूर्वक आचार्य श्री पिहितास्रव मुनिराज के चरणों में अपनी शक्ति के अनुसार ग्यारह प्रतिमाएँ ग्रहण कीं॥111॥

1662. एयारस-पडिमा सग-सत्तीइ गहिदा तेण सावगेण।
विरागेण पिहिदासव-पदेसु सुणिच्चा उवएसं॥111॥
1663. बहुविज्जाधारगो दु, जं विज्जाहर-सुकुलुप्पणो सो।
गगणगामिणिं विणा हु, अवहेडीअ सव्वविज्जाउ॥112॥
1664. अकिट्टिम-जिणबिंब-जिणचेइयालयाणि वंदीअ णिच्चं।
तियसंझायालेसुं, आगासगामिणि- विज्जाए॥113॥
1665. तिसंझासु वंदंतो, जिणं पच्चक्खे परोक्खे अहवा।
किट्टिमाणि पडि वि परमभत्ति-आणंद-संजुदो सो॥114॥
1666. कुव्वंते जिणभत्तिं, जे के वि परमगुणाणुरायेणं।
णिल्लूरंति संसार-तरुं मूलादो भव्वुल्ला॥115॥
1667. जिणभत्ति-पहावेणं, पाविदा उत्तमसमाही तेणं।
सोहम्मे देवो सो, पालिदूणं णिदोसवदं॥116॥
1668. महड्डिय-पुण्णवंतो, पणवीस-पल्ल-आउ-धारगो सो।
तत्थ वि जिणभत्ति-रदो, कुव्वंतो तच्चचिंतणं दु॥117॥
1669. कया वि समवसरणम्मि, परिअलीअ दिव्वज्झुणिं सुणेदुं।
कया वि तित्थयरस्स य, पंचकल्लाणमहुच्छवम्मि॥118॥

वह श्रावक बहुत-सी विद्याओं का धारक था क्योंकि वह विद्याधरों के श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुआ था। ग्यारह प्रतिमा स्वीकार करते हुए उसने आकाशगामिनी विद्या के अतिरिक्त अन्य सभी विद्याओं का परित्याग कर दिया था॥112॥ वह क्षुल्लक होने के पश्चात् तीनों संध्याकालों में आकाशगामिनी विद्या के द्वारा सदा अकृत्रिम जिनबिंबों व जिन चैत्यालयों की तीनों संध्याकालों में प्रत्यक्ष वंदना किया करता था॥113॥ तीनों संध्याकालों में प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से श्री जिनेन्द्र प्रभु की वंदना करते हुए वह कृत्रिम जिनालयों के प्रति भी परम भक्ति व आनंद से युक्त था॥114॥ जो कोई भी भव्य जीव परम गुणानुराग से श्री जिनेन्द्रप्रभु की भक्ति करते हैं वे संसार रूप वृक्ष को मूल से नष्ट कर देते हैं॥115॥ उस श्रीभद्र क्षुल्लक ने व्रतों का निर्दोष पालन कर श्री जिनभक्ति के प्रभाव से उत्तमसमाधि प्राप्त की एवं सौधर्म स्वर्ग में पच्चीस पल्य की आयु वाला पुण्यवान् महर्द्धिक देव हुआ, वहाँ भी वह देव तत्त्वचिंतन करता हुआ श्री जिनेन्द्रप्रभु की भक्ति में अनुरक्त रहता था॥116-117॥ वह कभी समवसरण में भगवान् की दिव्यध्वनि सुनने जाता तो कभी तीर्थकर प्रभु के पंच-कल्याणक महोत्सव में जाता॥118॥

1670. जवंतो भक्ति-जत्तादीहि वि सुहेण बहुपुण्णमज्जीअ।
पुण चयित्ता पुण्णेण, सुरपुज्जो सुद-लोयवालो॥119॥

सान्द्र छंद

1671. पुव्वभवं जाणिय जणभव्वो, संभलदे संपडिसमये वा।
सोक्खमयं सक्कदे णियभाविं, हंदि करेदुं सरल-सुभदो॥120॥

1672. चिंतिय जो सो णहि सगभूदं, संपइयाले हवदि पमादी।
कं वि फलं णो लहदि भविस्से, तं संपइ कुव्वदु पुरिसट्टं॥121॥

1673. दोस-तुडीहिं च समयपुव्वे, जो अवराहेहि णियकिदेहि।
ओग्गहदे पावण-सुहसिक्खं, सो खलु णेयो सुविदु-विवित्तो॥122॥

शार्दूल विक्रीडित छंद

1674. साफल्लं विवरीय-माहु वलये, उप्पण्ण-सस्सं तदा,
चिंतंतो णहि वट्टमाणसमये, जो सस्सिगो आलसो।
पावेदुं सुफलं ण सक्कदि कया, याले भविस्सम्मि सो,
तं सम्मं सुपरिस्समं कुणदु णिच्चं वट्टमाणम्मि भो॥123॥

उसने भक्ति, यात्रा आदि के द्वारा सुखपूर्वक काल व्यतीत करते हुए बहुत पुण्य का अर्जन किया। पुनः वहाँ से चय होकर पुण्य से देवों के द्वारा पूज्य तुम्हारा लोकपाल नामक पुत्र हुआ है॥119॥ सरल-भद्र जीव अपने पूर्वभव को जानकर वर्तमानकाल में संभल सकता है और अपने भविष्य को भी सुखमय बनाने में समर्थ हो सकता है॥120॥ जो अपने अतीत का विचार कर भी वर्तमान काल में प्रमादी होता है वह भविष्य में कोई फल प्राप्त नहीं कर सकता अतः वर्तमान में पुरुषार्थ करो॥121॥ जो पूर्व समय में अपने द्वारा किए गए दोष, त्रुटियों व अपराधों से पावन सुशिक्षा ग्रहण करता है वह निश्चय से विद्वान्, विवेकवान् जानना चाहिए॥122॥ जो कृषक उसके खेत में हुई फसल की सफलता व असफलता पर विचार न करता हुआ, वर्तमान में प्रमादी वा आलसी हो जाता है, वह भविष्य में श्रेष्ठ फल प्राप्त करने में कभी समर्थ नहीं हो पाता। अतः हे भव्य जीव! वर्तमान में सदैव सम्यक् परिश्रम वा पुरुषार्थ करो॥123॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में महाराज अशोक के पुत्रों के
पूर्वभवों का वर्णन करने वाला चौदहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ।

पंचदसम-पंदो

1675. आयण्णिय पुव्वभवं, कहदि पणमंतो विप्पसीअंतो।
अणुग्गहिदूणं पहू!, सीसहि वि पिय-पुत्तीण भवा॥1॥
1676. सिंधू व्व गंभीरेण, उसहोव्व भद्देण जलं व मणेण।
गयोव्व साहिमाणिणा, मुणिणा उप्पालिदं च तदा॥2॥
1677. जंबूदीवस्स पुव्व-विदेहे कच्छमणोहरो देसो।
तत्थ रयदायलस्स दु, दक्खिणसेणीए ठिदाए॥3॥
1678. सुह-अलगाणयरीए, राओ गरुडसेणो सुप्पसिद्धो।
रज्जविज्जाजाणगो, सडंतरंगसत्तुविहीणो॥4॥ (तिअं)
1679. पेयसी तस्स कमला, इत्थि-उइद-गुण-संपण्णा णिउणा।
सुहविज्जाकलासुं च, धम्मवच्छला पुण्णवंता॥5॥
1680. मज्जादा-रक्खिगा य, मिदुभासिया पदिगुणाणुरागिया।
सगपइचित्तहारिया, सुसीला सुसक्कार-जुत्ता॥6॥
1681. ताणं चउपुत्ती चउ-विह-णिहीव सुगुणी लच्छीरूवा।
सगपिदरस्स गुणेहिं, अहिसंचिदा लावण्णजुदा॥7॥

अपने पुत्र के पूर्वभव को सुनकर प्रसन्न होते हुए राजा अशोक मुनिराज को नमस्कार करते हुए कहने लगे हे प्रभु! कृपया कर हमारी प्रिय पुत्रियों के पूर्वभव भी बतायें॥1॥ तब सागर के समान गंभीर, वृषभ के समान भद्र, हाथी के समान स्वाभिमानी एवं जल के समान चित्त वाले मुनिराज कहने लगे—जंबूद्वीप के पूर्वविदेहक्षेत्र में कच्छ नामक मनोहर देश है। उसमें विजयाद्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में अलका नाम की शुभ नगरी है। उस देश का राजा गरुडसेन सुप्रसिद्ध था। वह राज्य की विद्याओं को जानने वाला एवं छः अंतरंग शत्रुओं से विहीन था॥2-4॥ उसकी प्रेयसी का नाम कमला था। वह स्त्री उचित गुणों से सम्पन्न, शुभ विद्या व कलाओं में निपुण, धर्मवत्सला और पुण्यवती थी॥5॥ वह महारानी कमला मर्यादा की रक्षा करने वाली, मृदुभाषिणी, पति के गुणों में अनुराग करने वाली, अपने पति के चित्त का हरण करने वाली, सुशीला और सुसंस्कारों से युक्त थी॥6॥ उनकी चार प्रकार की निधि के समान चार पुत्रियाँ थीं। वे सुगुणी, लक्ष्मी का स्वरूप, लावण्य से युक्त, अपने माता-पिता के गुणों से अभिसंचित थीं॥7॥

1682. कुलदीविगा विणीदा, दया-धम्म-सहिदा विअडा धीरा।
तासु फुडित्तु णारीण, सुसोहिदा कला चउसट्टी॥8॥
1683. ताण सुहणामा कमलसिरी कमलगंधिणी विमलसिरी या
विमलगंधिणी सव्वा, सुसद्दा य सेट्ट-ववहारी॥9॥
1684. 'सु'-अक्खरस्स अट्टो य, सुहंकरा सुमंगल्ला सुसीला।
'दा'-अट्टो दामिदा य, दायगा धम्मसक्काराण॥10॥
1685. दिवसेगे पहुच्चीअ, उवरिल्ल-अट्ट-सुसत्थगा कण्णा।
उज्जाणे ठिदिड्ढिजुद-सिरि-सुव्वदारिय-चरणेसुं॥11॥
1686. रत्ती जुण्हाए जह, सरसी खलु सुरम्म-सरसिरुहेहिं।
गगणं जोदिसगहेहि, णायो भादि गयमुत्ताए॥12॥
1687. सीहो परक्कमेणं, गवो विउलमिट्टदुद्धदाणेणं।
उसहो भद्दत्तेणं, रयणायरो रयणरासीइ॥13॥
1688. पंडिदो सण्णाणेण, तित्थयरो पणकल्लाणपूयाइ।
धम्मीहि लोगत्तयं, धणदो बहुरयणविट्ठीए॥14॥

वे कुल दीपिका, विनयी, दया धर्म से सहित, लज्जावती व धैर्यवती थीं। नारियों की चौंसठ कलाएँ उनमें प्रकट होकर शोभा को प्राप्त हो रही थीं॥8॥ उनके शुभ नाम कमलश्री, कमलगंधिनी, विमलश्री और विमलगंधिनी थे। वे सभी मधुर आवाज वालीं और श्रेष्ठ व्यवहार से युक्त थीं॥9॥ 'सुदा' शब्द में 'सु' अक्षर का अर्थ है—सुख को करने वाली, सुमंगलकारी, सुशीला। 'दा' का अर्थ है—संयमित एवं धर्म के संस्कारों को देने वाली। इस प्रकार जो सुख करने वाली, मंगलकारी, सुशीला, संयमित एवं धर्म के संस्कारों को प्रदान करती है वही पुत्री है॥10॥ एक दिन उपर्युक्त अर्थ को सार्थक करने वाली वे कन्याएँ उद्यान में स्थित, ऋद्धियों से युक्त निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री सुव्रताचार्य के चरणों में पहुँचीं॥11॥ जैसे रात्रि चंद्रमा की चाँदनी से, तालाब कमलों से, आकाश ज्योतिष ग्रहों से, हाथी गजमुक्ता से, सिंह पराक्रम से, गाय प्रचुर मिष्ट दुग्ध देने से, बैल भद्रता से, रत्नाकर रत्नराशि से, पंडित सम्यग्ज्ञान से, तीर्थकर पंचकल्याणक पूजा से, लोकत्रय धार्मिक जनों से, कुबेर रत्नवृष्टि से, श्रावक अणुव्रतों से, समवसरण तीर्थकर भगवान् से, संयमी संयम से, तपस्वी सदा सम्यक् तप से, कुल सुपुत्र से, जिनालय जिनपूजा व

1689. अणुव्वदेहि सावयो, समोसरणं तिथ्यरजिणिंदेण।
संजमी संजमेणं, तवस्सी सय सम्मतवेणं॥15॥
1690. कुलो सुपुत्तेणं तह, जिणालयो पूयामंगलादीहि।
सिस्सो गुरुभत्तीए, पूयगो य जिण-अच्चणाए॥16॥
1691. सहा सिट्टपुरिसेहिं, हिय-मिय-पिय-सुवयणेहिं वाणी या
जिणवयणसवणेणं च, सोदू सिवेहि सिद्धखेत्तं॥17॥
1692. तह मूलुत्तरगुणेहि, चउ-आराहणाहिं मुणिवरो सो।
सोहिदोसज्झाणेण, तवादुअणुवम-तणु-कंतीइ॥18॥(सत्तगं)
1693. तियपदक्खिणं किच्चा, पुण पुण शुवन्ता वंदन्ता तत्था।
चिट्ठीअ भत्तीइ ता, पणमन्ता तिण्णिजोगेहिं॥19॥
1694. पउमाणि विअसन्ति जह, उल्लसन्ति खगा अक्कोदयेणं।
सज्जणा दुज्जणा वा, णंदन्ति पुलअन्ते रुक्खा॥20॥
1695. चंदुदयेण कुमुदाणि, दिग्घयालन्तरे लहिय सुपुत्तं।
दंपत्ती णंदन्ते, वा जहेच्छधणं धणकंखी॥21॥
1696. जहेच्छ-मिट्ठण्णं वा, हरिसन्ति अइछुहाउरा लहित्ता।
स-सिसुं पस्सिय मादू, वा मादुं बालगो सरलो॥22॥
1697. तह कट्टु मुणिदंसणं, विसुद्धीइ भत्तीइ तिप्पीअ ता।
णिस्सीम-विहूदी वा, दिवि-समिद्धी पाविदा ताहि॥23॥(चउक्कं)

मंगलद्रव्यादि से, शिष्य गुरुभक्ति से, पूजक श्री जिनेन्द्र प्रभु की अर्चना से, सभा शिष्ट पुरुषों से, मधुर वाणी हित-मित-प्रिय श्रेष्ठ वचनों से, श्रोता जिन वचनों के श्रवण से, सिद्धक्षेत्र सिद्धों से शोभायमान होता है उसी प्रकार वे मुनिराज मूलगुण, उत्तरगुण, चार आराधना, सद्ध्यान एवं तप के कारण अनुपम देहकांति से युक्त थे॥12-18॥ वे कन्यायें मुनिराज की तीन परिक्रमा करके पुनः-पुनः स्तुति-वंदना करते हुए तीनों योगों से प्रणाम करते हुए भक्तिपूर्वक मुनिराज के चरणों में बैठीं॥19॥ जैसे सूर्य के उदय से कमल खिलते हैं, पक्षी उल्लसित होते हैं, वृक्ष रोमांचित होते हैं तथा सज्जन वा दुर्जन सभी आनंदित होते हैं, जैसे चंद्र के उदय से कुमुद विकसित होते हैं, जैसे दीर्घकाल पश्चात् सुपुत्र को प्राप्त कर दंपति आनंदित होते हैं व धन के आकांक्षी यथेच्छ

1698. सगकल्लाणाय ताहि, णिवेदिदं भत्तीए मुणि-पदेसु।
हे सामी! उवदिसेज्ज, भवसायरं णित्थारेदुं॥24॥



1699. सुव्वदमहाजोगिणा, उवदिसिदं अइ-करुणाबुद्धीए।
सव्वेसुं जीवेसुं, करुणा-भावो धम्म-मूलो॥25॥

1700. वीयं विणा रुक्खोव्व, धम्मट्टिदी हु अहिंसाए विणा।
चंदं विणा जुण्हा व्व, अक्कं विणा अक्कतावोव्व॥26॥

धन प्राप्त कर आनंदित होते हैं, अति क्षुधातुर यथेच्छ मिष्ठान्न को प्राप्त कर हर्षित होते हैं, माँ अपने शिशु को व सरल बालक अपनी माता को देखकर प्रसन्न होता है वैसे ही वे बालिकाएँ मुनिराज के विशुद्धि व भक्तिपूर्वक दर्शन कर संतुष्ट हुईं मानो उन्होंने निःसीम विभूति या स्वर्ग की समृद्धि ही प्राप्त कर ली हो॥20-23॥ उन्होंने अपने कल्याण के लिए भक्तिपूर्वक मुनिराज के चरणों में निवेदन किया हे स्वामी! संसार सागर से पार होने के लिए हमें उपदेश प्रदान करें॥24॥ उन श्री सुव्रत महायोगी ने अति करुणा बुद्धि से इस प्रकार धर्म का उपदेश दिया—सभी जीवों में करुणा का भाव धर्म का मूल है॥25॥ जैसे बीज के बिना वृक्ष नहीं होता, चंद्र के बिना ज्योत्सना-चाँदनी नहीं होती, सूर्य के बिना सूर्य का ताप नहीं होता उसी प्रकार अहिंसा के बिना धर्म की स्थिति नहीं होती॥26॥

1701. सुमे गंधोव्व अणले, उण्हत्तं व जले सीयलत्तं वा
सहावेण पत्तेयं, जीवम्मि अहिंसा करुणा य॥27॥
1702. विहिक्खयं विणा सिवो, संजमेण विणा जह मोक्खमग्गो।
तह अहिंसाए विणा, णेव धम्मो कत्थ वि कया वि॥28॥
1703. पंचगुरुवंदणं जिण-पूयादि-सावयधम्मं पालेज्ज।
चउविह-संघेसुं चउविहदाणं देज्ज सत्तीए॥29॥
1704. जिणबिंबवंदणेणं, णिधत्ति-णिकाइद-असुह कम्माइं।
णिज्जरदि पावपइडी, संकमंति पुण्णपइडीसुं॥30॥
1705. जिणदंसणेण णस्सदि, असुहकम्मं तमोव्व अक्कुदयेण।
भव्वचित्तंबुजं तह, विअसेदि जह पउमं तेणं॥31॥
1706. सया मंगलकारगं, कारणं सासय - सोक्ख - संतीणं।
अप्पविसुद्धीए अवि, असुहहारगं जिणदंसणं॥32॥
1707. रत्तिभुत्तिं जो कुणदि, कहं अहिंसगो दयालू णरो सो।
भवदुहभोत्ता दुग्गइ-गामी रत्तिभोयणकत्ता॥33॥

जिस प्रकार अग्नि में ऊष्णता, जल में शीतलता और पुष्प में गंध होती है उसी प्रकार प्रत्येक जीव में स्वभाव से ही अहिंसा और करुणा होती है॥27॥ जिस प्रकार कर्मक्षय के बिना मोक्ष नहीं होता, संयम के बिना मोक्षमार्ग नहीं होता उसी प्रकार अहिंसा के बिना कहीं भी और कभी भी धर्म नहीं होता॥28॥ श्रावक को पंचगुरुओं की वंदना करनी चाहिए। जिनेन्द्र पूजा आदि श्रावक धर्म का पालन करना चाहिए। चार प्रकार के संघों में शक्तिपूर्वक चार प्रकार का दान देना चाहिए॥29॥ जिनबिम्ब की वंदना से निधत्ति-निकाचित कर्म भी निर्जीर्ण होते हैं; पाप प्रकृतियाँ पुण्य प्रकृतियों में संक्रमित हो जाती हैं॥30॥ जिस प्रकार सूर्य के उदय से अंधकार नष्ट हो जाता है और कमल खिल जाता है उसी प्रकार जिनेंद्रप्रभु के दर्शन से अशुभ कर्म नष्ट होते हैं और भव्यों का हृदय-कमल विकसित हो जाता है॥31॥ जिनेंद्र प्रभु का दर्शन नित्य मंगलकारक, शाश्वत सुख व शांति का कारण, आत्मविशुद्धि का हेतु और अशुभहारक है॥32॥ अहो! जो व्यक्ति रात्रि में भोजन करता है वह अहिंसक या दयालु कैसे हो सकता है? रात्रि में भोजन करने वाला संसार के दुःखों का भोक्ता और दुर्गति में जाने वाला होता है॥33॥

1708. णादव्वं समयेहिं, रत्तपाणं व पाणं रत्तीए।
रत्तीए भुंजणं दु, मंसपिंडभुंजणं व तहा॥34॥
1709. जा आसत्ती हवदे, रत्तिभोयणे तहेव णो दिवसे।
अच्चासत्ती णेया, अच्चंत पाव - किच्छ - हेदू॥35॥
1710. णिसिभुंजगो अज्जदे, महा-अहं बहुजीवघादत्तादु।
तेण फलेण थावरो, वियलिंदियो असण्णी आहु॥36॥
1711. जदि सण्णि-पंचिंदियो, तो णेरइयो वा कूरतिरियो दु।
णरेसु मुक्को अंधो, बहिरो हीणजादिमंतो य॥37॥
1712. सज्जणेसुं हु मण्णो, कोलीणो रत्तिभोयणचागेण।
साहुसंगदिं लहदे, णिरामय - सुदेहं देवोव्व॥38॥
1713. मंडलीगो तह अब्ध - मंडलीगो महामंडलीगो दु।
मदणो अब्धचक्की वा तित्थयर - जणगो तित्थयरो॥39॥
1714. देविंदो अहमिंदो, लोयंतिगो धणदो लोयवालो।
णिहि - रयणाणं सामी, बत्तीस - सहस्स - रायाणं॥40॥
1715. पच्छा रज्जं उज्झिय, जहाजादो य दियंबरो हवेदि।
समाहिमरणं किच्चा, पाउणदि सारज्जं मोक्खं॥41॥ (चउक्कं)

रात्रि में जलादि का पीना रक्तपान के समान एवं रात्रि में भोजन करना माँस पिंड को खाने के समान है ऐसा शास्त्रों से जानना चाहिए॥34॥ जो आसक्ति रात्रि भोजन में होती है उस प्रकार दिन में कभी नहीं होती और अति आसक्ति को अत्यंत पाप व दुःख का कारण जानना चाहिए॥35॥ बहुत जीवों का घात होने से रात्रि में भोजन करने वाला महापाप का अर्जन करता है। उसके फलस्वरूप स्थावर, विकलेन्द्रिय अथवा असंज्ञी होता है॥36॥ यदि संज्ञी पंचेन्द्रिय होता है तो नारकी व क्रूर तिर्यच होता है अथवा यदि मनुष्य होता है तो उनमें गूंगा, अंधा, बहरा व हीन जाति वाला होता है॥37॥ रात्रिभोजन के त्याग से जीव सज्जनों में मान्य व कुलीन होता है, वह साधुओं की संगति और देवों के समान रोग रहित सुंदर देह प्राप्त करता है। रात्रिभोजन त्याग से जीव मंडलीक, अर्द्धमंडलीक, महामंडलीक, कामदेव, अर्द्धचक्रवर्ती अर्थात् नारायण वा प्रतिनारायण, तीर्थकर का पिता व तीर्थकर होता है। वह देवेन्द्र, अहमिन्द्र, लौकान्तिक देव, कुबेर,

1716. ण अददि रत्तिभोयणं, णवणीदाइ-अभक्खं तिमयारं।
उदंबरं सद्धाए, आसण्ण - भव्वो दिवसेगं॥42॥
1717. चउविहाहार-मुज्झदि, रत्तीइ एगवस्संतं जो सो।
छम्मासुववास-फलं, लहदि आइक्खंति गणेसा॥43॥
1718. गिहत्थाण वर-धम्मो, णायेण अज्जणं सम्मंदाणं।
पुव्वजकित्तिरक्खणं, तहा मज्जादा-पालणं पि॥44॥
1719. साहम्मीसुं वच्छल-भावो, उवयार-भावो सत्तीइ।
जिणसासणपहावणा, उवगूहणं अवि ठिदिकरणं॥45॥
1720. वेज्जावच्चं मुणीण, तित्थसेवा जवो जिणिंदपूया।
सवणं जिणवयणाणं, सीलपालणं च उववासो॥46॥ (तिअं)
1721. पालंति सगसत्तीइ, कत्तव्वं अण्णा ण उविकिंखता।
जो सो आसण्ण-भवी, सुइरं पाउणदि णिव्वाणं॥47॥

लोकपाल अथवा नवनिधि, चौदह रत्न एवं बत्तीस हजार राजाओं का स्वामी अर्थात् चक्रवर्ती होता है। इन श्रेष्ठ पदों को प्राप्त कर पश्चात् यथाजात दिगंबर मुनि होता है एवं समाधिमरण करके स्वर्ग का साम्राज्य व मोक्ष प्राप्त करता है॥38-41॥ जो श्रद्धा से संकल्पपूर्वक एक दिन भी रात्रिभोजन नहीं करता, मक्खन आदि अभक्ष्य पदार्थ, तीन मकार व उदंबर फलों का सेवन नहीं करता वह आसन्न भव्य है॥42॥ जो एक वर्ष पर्यंत रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग करता है वह छः माह के उपवास के फल को प्राप्त करता है ऐसा गणधर परमेष्ठी कहते हैं॥43॥ न्यायपूर्वक धन अर्जन करना, समीचीन दान देना, पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा करना तथा मर्यादा का पालन करना, साधर्मियों में वात्सल्य भाव, उपकार भाव, शक्तिपूर्वक जिनशासन की प्रभावना, उपगूहन, स्थितिकरण, मुनियों की वैय्यावृत्ति, तीर्थसेवा, जिनेंद्रपूजा, जप, जिनवचनों का श्रवण, शीलपालन और उपवास ये गृहस्थों का श्रेष्ठ धर्म है॥44-46॥ जो आसन्न भव्य जीव अन्यों की उपेक्षा न करता हुआ अपनी शक्ति के अनुसार कर्तव्यों का पालन करता है वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त करता है॥47॥

1722. सत्तवसणाणि णियमा, दुहसिंधु-सत्तणिरयाण दाराणि।
जे केअवि वसणी ते, कहं ण लहंति णिरयवासं॥48॥
1723. मंसं मज्जं जूअं, चोरिय-माहेडं परित्थिरमणं।
वेस्सागमणं इमाणि, वसणाणि अइपाव-हेदू हु॥49॥
1724. जे के अवि सेवते, मज्जं कहं णो महापावी ते।
मज्जसेवणं णियमा, कारणं च सत्तवसणाणं॥50॥ (जुम्मं)
1725. हिंसा मुसा चोरियं, अबंभं परिग्गहं पणपावाणि।
णवरि वसणाणि लोए, महापावाणि हु पसिद्धाणि॥51॥
1726. लहदि सारज्जं सिवं, चाग-संकप्पं सत्तवसणाणं।
जदि पालदि णिद्दोसं, सगप्प-परमप्प-सक्खीए॥52॥
1727. णियमेणं पव्वेसुं, सीलं पालेज्ज धम्म-भावणाइ।
करेज्ज कम्मक्खयिदुं, उववासं हु सग-सत्तीए॥53॥
1728. करेज्ज वि अण्णदिणेसु, उववासं च णमोक्काराइ वदं।
आसण्णभव्वुल्ला दु, णियमेणं सग-कल्लाणाय॥54॥

सप्त व्यसन नियम से दुःख के सिंधु स्वरूप सात नरकों के द्वार हैं। जो कोई भी व्यसनीजन हैं वे नरक का वास कैसे प्राप्त नहीं करते? अर्थात् वे नरकवास प्राप्त करते ही हैं॥48॥ माँस, मद्य, जुआ, चोरी, शिकार, परस्त्रीरमण और वेश्यागमन ये व्यसन अति पाप के हेतु हैं। जो कोई भी जीव मद्य सेवन करते हैं वे महापापी क्यों नहीं कहलाते? अर्थात् वे महापापी ही हैं। मद्य सेवन नियम से सात व्यसनों का कारण है॥49-50॥ हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह ये पाँच पाप हैं। किन्तु विशेषता ये है कि लोक में व्यसन ही महापाप रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं॥51॥ भव्य जीव यदि अपनी आत्मा व परमात्मा की साक्षी में सप्त व्यसनों के त्याग के संकल्प का निर्दोष पालन करता है तो वह स्वर्ग के साम्राज्य पुनः मोक्ष को प्राप्त करता है॥52॥ श्रावक को धर्म की भावना से पर्वों में नियम से शील का पालन करना चाहिए एवं अपनी शक्ति के अनुसार कर्म क्षय के लिए उपवास करने चाहिए॥53॥ आसन्न भव्यों को अपने कल्याण के लिए अन्य दिनों में भी उपवास और णमोकार आदि के व्रत नियम से करने चाहिए॥54॥

1729. सुहृत्तित्थवन्दणाए, संगहेज्जा विउलपुण्णरासिं चा
को वि पुण्णेणं विणा, पाउणेदि णेव इट्ठफलं॥55॥
1730. जिणिंदवयणसरूवं, आगमसत्थं पढेज्ज सुणेज्जा या
सो सज्झाओ धम्मे, परमहेदू चित्तथिरिमाइ॥56॥
1731. जिणागम-सज्झायेण, विणा ण संभवो सण्णाण-विड्डी।
सण्णाणं च संवेग - विराग - वच्छल - भत्ति - हेदू॥57॥
1732. केवलणाणं लहिदुं, कहां सक्केदि सुदणाणेण विणा।
सुदणाणं सय धम्मज्झाणस्स पहाण-कारणं दु॥58॥
1733. अंत-तवो सज्झाओ, सम्मत्त-संवर-णिज्जरा-हेदू।
चित्त- सोहग - अग्गी य, मोक्ख-कारणं परंपराइ॥59॥
1734. पुण पुच्छंते सामी! उववास- सरूवो किं तस्स फलं।
सव्व-पावक्खयस्स दु, वयं तिव्वभाव-संजुत्ता॥60॥
1735. चउविहाहारो जाण, खज्ज-सज्ज-लेह-पेय-भेयादो।
ताणं चागुववासो, सोलस-पहर-पज्जंतं चिय॥61॥
1736. धम्मज्झाणेणं सह, अवहेडिदूणं विसयकसायं चा।
विसुद्धिं पवड्ढंतो, सत्तीइ करेज्ज उववासं॥62॥

तीर्थों की वंदना से विपुल पुण्य राशि का संग्रह करना चाहिए। कोई भी जीव पुण्य के बिना इष्ट फल को प्राप्त नहीं करता॥55॥ श्री जिनेन्द्र भगवान् के वचन स्वरूप आगम शास्त्रों को पढ़ना चाहिए और सुनना चाहिए। वह स्वाध्याय धर्म में चित्त की स्थिरता का परम हेतु है॥56॥ जिनागम के स्वाध्याय के बिना सम्यग्ज्ञान की वृद्धि संभव नहीं है। सम्यग्ज्ञान, संवेग, वैराग्य, वात्सल्य और भक्ति का हेतु है॥57॥ श्रुतज्ञान के बिना जीव केवलज्ञान प्राप्त करने में समर्थ कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। श्रुतज्ञान सदैव धर्मध्यान का प्रधान कारण है॥58॥ स्वाध्याय अंतरंग तप है, सम्यक्त्व, संवर व निर्जरा का हेतु है, चित्त शोधक अग्नि है और परंपरा से मोक्ष का कारण है॥59॥ पुनः वे कन्याएँ पूछती हैं हे स्वामी! उपवास का स्वरूप क्या है और उसका क्या फल है? हे प्रभु! सभी पापों के क्षय के लिए हम तीव्र भाव से युक्त हैं॥60॥ मुनिराज कहते हैं कि खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय के भेद से आहार चार प्रकार का जानना चाहिए। उन सबका सोलह पहर त्याग करना उपवास है॥61॥ विषय-कषायों का त्याग कर धर्मध्यान के साथ विशुद्धि को बढ़ाते हुए शक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिए॥62॥

1737. फासाइपणिंदियाण, णो रज्जेज्ज सत्तवीस-विसयेसु।
लहेज्ज उववास-दिणे, परमसंति-मुवसमभावेहि॥63॥
1738. तद्विसम्मि विरत्तो, होज्ज संसार-सरीर-भोयादो।
वेरगं वड्ढंतो, जवेज्ज दिणं जिणवयणेहिं॥64॥
1739. विरोयणेणं च सुक्करुक्ख-संजुद-अइ-सघण-काणणं वा
उववासेणं णियमा, संधुक्कंति सव्वकम्माणि॥65॥
1740. णिविड-कम्माणि खयिदुं, जोग्गाणि सहजदाइ उववासेण।
जह तह जल-सिंचणेण, सुकोमला सुक्कमिदिगा अवि॥66॥
1741. वड्ढदि उववासेणं, पुण्णं सुक्कपक्खस्स मिअंगोव्व।
हासेदि पावं तहा, एणंगोव्व किण्हपक्खस्स॥67॥
1742. समिच्चादी बहुगुणा, अणसणतवसाहगचित्तम्मि सया।
रयणायर-तलम्मि चिय, विज्जंत-बहु-रयणरासीव॥68॥
1743. उववासेण वड्ढंति, णाणं खमा विणयो-वच्छल्लं या
करुणा सोक्खं संती, अप्पबलं संजमो पहुदी॥69॥

उपवास के दिन स्पर्शन आदि पंचेन्द्रियों के सत्ताईस विषयों में रंजायमान नहीं होना चाहिए तथा उपशम भावों से परम शांति प्राप्त करनी चाहिए॥63॥ जिन वचनों के अनुसार उस उपवास के दिन संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होना चाहिए एवं वैराग्य को बढ़ाते हुए दिन व्यतीत करना चाहिए॥64॥ जिस प्रकार अग्नि से सूखे वृक्षों से युक्त अति घना जंगल भी धूँ-धूँ कर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार उपवास से सभी कर्म नियम से नष्ट हो जाते हैं॥65॥ जिस प्रकार जल से सिंचन करने पर शुष्क मिट्टी भी सुकोमल हो जाती है उसी प्रकार उपवास से निविड कर्म सहजता से ही क्षय करने के योग्य हो जाते हैं॥66॥ उपवास करने से शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के समान पुण्य संवर्द्धित होता है तथा कृष्ण पक्ष के चंद्रमा के समान पाप घटता जाता है॥67॥ जिस प्रकार समुद्र के तल में बहुत सी रत्नराशि विद्यमान होती है उसी प्रकार अनशन आदि तप की साधना करने वाले के चित्त में समिति आदि बहुत गुण होते हैं॥68॥ उपवास से ज्ञान, क्षमा, विनय, वात्सल्य, करुणा, सुख, शांति, आत्मबल व संयम आदि वृद्धि को प्राप्त होते हैं॥69॥

1744. अविवागि-णिज्जराए, खयंति पुव्वकम्माणि अणसणेण।
पुण्णपइडीसुं तहा, संकमंते, पावपइडी वि॥70॥
1745. उववासेण दिस्सेदि, देहो-सिढिलो णवरि सीयलप्पा।
जलासयस्स अक्केण, उण्हं जह तह उवरिणीरं॥71॥
1746. इत्थं मुणिरायेणं, वज्जरंतो उववास-माहच्चं।
पणमी-वद-महप्पुरो, उप्पालिदो विसेसेणं दु॥72॥
1747. पणमीवद-माहप्पं, आयण्णिय पुण मुणिणा सद्धाए।
णिवेदीअ सुवदं तं, ओग्गहिदुं विहिं पुच्छंता॥73॥
1748. पणमीइ सिदपक्खस्स, करेज्ज उववासं पणवासंतं।
विसयकसायपावं च, उज्झित्ता असुहवियारं पि॥74॥
1749. गच्छीअ वदं गहित्तु पणमित्ता मुणिं णिय-णिय-ठाणम्मि।
पढम-पंचमीइ किदं, उववासं ताहि कण्णाहिं॥75॥
1750. अच्चंत विसुद्धीए, अहोरत्तीए विणा पमादेण।
उच्छाहेण पुण्णम्मि, पूयं जवादिं कुणंतहि॥76॥
1751. सहसत्ति एयदिवसे, विज्जुद-पइणादो आयासादो।
मरीअ चउकण्णाओ, विसुद्ध-संत-परिणामेहिं॥77॥ (तिअं)
1752. पढम - सोहम्म - सग्गे, पणपल्लाउधारगा देवीओ।
दिणेग-वदपहावेण, होही ताउ सुहलेस्साए॥78॥

उपवास से अविपाकी निर्जरा के द्वारा पूर्वबद्ध कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं तथा पाप प्रकृतियाँ भी पुण्य प्रकृतियों में संक्रमित होती हैं॥70॥ जिस प्रकार सूर्य ताप से जलाशय का ऊपर का जल तो उष्ण हो जाता है किन्तु अंदर शीतल रहता है उसी प्रकार उपवास से शरीर शिथिल दिखाई देता है जबकि विशेषता यह है कि आत्मा शीतल होती है॥71॥ इस प्रकार मुनिराज ने उपवास के माहात्म्य को कहते हुए पुनः विशेष रूप से पंचमी व्रत के माहात्म्य को बताया॥72॥ मुनिराज से श्रद्धापूर्वक पंचमी व्रत का माहात्म्य सुनकर उन्होंने मुनिराज से उस व्रत की विधि पूछी और व्रत को ग्रहण करने के लिए मुनिवर से निवेदन किया॥73॥ मुनिवर ने बताया कि शुक्लपक्ष की पंचमी को विषय-कषाय, पाप और अशुभ विचारों का त्याग कर पाँच वर्ष पाँच महीनों तक उपवास करने चाहिए॥74॥

1753. अकिट्टिमजिणबिंबाण, पूयाइं कुणंता सुभोयाइं।
भोयंता जवीअ पण-पल्लं पणखणोव्व सग्गम्मि॥79॥
1754. अध चयित्तु भो राओ! ता सुरंगणा चउ पुत्ती तुज्झं।
अप्पभवेसुं सव्वा, पाविस्संति णिव्वाणपदं॥80॥
1755. रूवकुंभ-मुणिवरेण, सुणिच्चु सग सग-पुव्वभवा इत्थं।
णंदंता रज्जे पुण, गच्छीअ दंसण-भावणाइ॥81॥
1756. असोगेणं सह रायपरिवारो गच्छीअ जिणालयाणि।
चउगदिं णिवारेदुं, अणंतचदुट्टयं लहेदुं॥82॥
1757. वणट्ठिठदिभूदि - महाभूदि - विभूदि - अंबरतिलगाणं च।
जिणभवणाण दंसणं, वंदणं करीअ भत्तीए॥83॥ (जुम्मं)
1758. सगचेयण-विसुद्धीइ, फुडेदुं सगजिणिंदत्तं कुणंति।
भवी भत्ति-पूयाइं, जिणचेइयचेइयालयाण॥84॥

वे कन्याएँ व्रत ग्रहण कर मुनिराज को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान पर चली गईं। पूजा, जाप इत्यादि करते हुए उन कन्याओं द्वारा प्रमाद के बिना अहोरात्रि अत्यंत विशुद्धि पूर्वक प्रथम पंचमी पर उपवास किया गया। उत्साहपूर्वक व्रत पूर्ण होने पर अचानक एक दिन आकाश से बिजली गिरने से विशुद्ध व शांत परिणामों से चारों कन्याओं का मरण हो गया॥75-77॥ वे कन्याएँ एक दिन व्रत करने के प्रभाव से शुभ लेश्या पूर्वक प्रथम सौधर्म स्वर्ग में पाँच पल्य की आयु वाली देवियाँ हुईं॥78॥ अकृत्रिम जिनबिंबों की पूजा आदि करते हुए भोगों को भोगते हुए स्वर्ग में उन देवियों की पाँच पल्य की आयु पाँच क्षण के समान व्यतीत हो गई॥79॥ फिर वहाँ से चयकर हे राजन्! वे देवियाँ तुम्हारी चार पुत्रियाँ हुई हैं। वे सभी पुत्रियाँ अल्पभवों में निर्वाण पद प्राप्त करेंगीं॥80॥ इस प्रकार श्री रूपकुंभ मुनिराज से अपने-अपने पूर्व भवों को सुनकर आनंदित होते हुए राजा सहित समस्त परिकर मुनिराज के पुनः दर्शन की भावना से राज्य में चले गए॥81॥ तब सर्वप्रथम राजा अशोक के साथ राजपरिवार भी जिनमंदिर गया। वहाँ चारों गतियों के निवारण और अनंत चतुष्टय की प्राप्ति के लिए वन में स्थित अतिभूति, महाभूति, विभूति और अंबरतिलक नामक जिनालयों के भक्तिपूर्वक दर्शन व वंदना की॥82-83॥ उचित ही है भव्य जीव अपनी चेतना की विशुद्धि और स्वयं में जिनेंद्रत्व प्रकट करने हेतु ही जिनचैत्य व जिनचैत्यालयों की भक्ति-पूजा आदि करते हैं॥84॥

1759. णिम्लणीरेणं सह, णिम्लं खार-पदत्थ-पउत्तेण।
वत्थुं जह तह अप्पा, होदि एगत्तजिणभत्तीइ॥85॥
1760. जह वइस्साणरेणं, सुज्जेदि कलधोदं असंकेज्जा।
सगचेयणा वि तहेव, एगत्तजिणिंदभत्तीए॥86॥
1761. जह विलिज्जेदि सप्पिं, सित्थं पहुदी तिव्वक्ककिरणेहि।
तह जिणदंसणेणं दु, तिव्व-अप्पसत्थ-कम्माइं॥87॥
1762. जिणिंदभत्ती पूया, असाद-विग्घ-असुहणामकम्माणि।
जह तह विरोयणं चिय, आलुंखेदि अवगरकुडं च॥88॥
1763. णाण - दंसणावरणं, समंते तह जिणिंदत्थुदीए दु।
जह उक्कलंत - दुद्धं, उब्भाअं सीयलणीरेण॥89॥
1764. जिणचरणवंदणाए, खयंते भयसोगवाहिविग्घाणि।
खयदि णिक्कयत्तं, विज्जुदेण विज्जुद-उवयणाण॥90॥
1765. मत्तंडपयासेणं, जह तह कच्चं दिप्पेदि वज्जं वा।
जिणबिंब-दंसणेणं, भव्वो हु आसण्णभव्वोव्व॥91॥

जिस प्रकार निर्मल जल के साथ क्षारीय पदार्थ का प्रयोग करने से वस्तु निर्मल हो जाती है उसी प्रकार एकत्व जिनभक्ति से आत्मा भी निर्मल हो जाती है॥85॥ जैसे अग्नि से सोना परिशुद्ध हो जाता है उसी प्रकार एकत्व जिनेन्द्रभक्ति से अपनी चेतना भी शुद्ध हो जाती है इसमें शंका नहीं करनी चाहिए॥86॥ जिस प्रकार सूर्य की तीव्र किरणों के द्वारा घी, मोम आदि पदार्थ पिघल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार जिनेंद्रप्रभु के दर्शन से तीव्र अप्रशस्त कर्म भी नष्ट हो जाते हैं॥87॥ जिनेंद्रभक्ति-पूजा असातावेदनीय, अंतराय व अशुभ नामकर्म को उसी प्रकार नष्ट कर देती है जिस प्रकार अग्नि कूड़े के ढेर को जला डालती है॥88॥ जिस प्रकार उबलता हुआ दूध शीतल नीर से शांत हो जाता है उसी प्रकार श्री जिनेंद्रप्रभु की स्तुति से ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्म शमित हो जाते हैं॥89॥ जिस प्रकार विद्युत से विद्युत उपकरणों का निष्क्रियत्व नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जिनेंद्रप्रभु के चरणों की वंदना से भय, शोक, रोग और विघ्न सब नष्ट हो जाते हैं॥90॥ जिस प्रकार काँच पर सूर्य का प्रकाश पड़ने पर वह हीरे के समान दीप्तिमान होता है उसी प्रकार जिनबिंब के दर्शन से भव्य जीव आसन्न भव्य के समान प्रतिभासित होता है॥91॥

1766. विणस्सेदि जह रुक्खं, मूलादु तक्कविसाइपउत्तेण।
तह भवमूलं जिणिंददेवस्स एगत्त - भत्तीइ॥१२॥
1767. रुक्खकट्ट-पहुदी जह, खयंति वामलूराइकीडेहिं।
पणगुरुभत्तीए तह, अयाले वि असुहकम्माइं॥१३॥
1768. जिणत्थवणं समत्थं, छिंदिदुं अप्पसत्थकम्मरुक्खं।
जो तिजोगसुद्धीए, कुणदि सो होज्ज तिलोयपदी॥१४॥

अपरवक्त्र या वैतालीय छंद

1769. खयदि सय रयं च वारिणा, तणुसुरहं मलयेण पावदे।
वर-अभिअणमक्खदेण वा, मणहर-भोय-वरं सुमेहि ओ॥१५॥
1770. सुमहुर-बलिणा य वेहवं, सुहद-सुमदिं च पदीवगेण भो!।
विअसदि सुह-भग्ग-उप्पलं, जिणचरणे खलु धूवणेण वा॥१६॥
1771. रुइर-महुर-पुप्फजेहि वा, लहदि जहेच्छफलं सिवं तथा।
वर-मणहर-अग्घ-मप्पदे, लहदि अणग्घपदं भवी सया॥१७॥(तिअं)

जिस प्रकार मट्टा, विष आदि के प्रयोग से वृक्ष, मूल से नष्ट हो जाता है उसी प्रकार श्री जिनेंद्रदेव की एकत्व भक्ति से संसार का मूल नष्ट हो जाता है॥१२॥ जिस प्रकार दीमक आदि कीटों के द्वारा वृक्ष, काष्ठ आदि नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार पंचगुरु की भक्ति से अकाल में भी अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं॥१३॥ जिनेंद्रप्रभु का स्तवन अप्रशस्त कर्म रूप वृक्ष को छेदने में समर्थ है। जो भव्य तीनों योगों की शुद्धि पूर्वक जिनेंद्र भगवान् का स्तवन करता है वह त्रिलोकपति अर्थात् स्वयं भगवान् होता है॥१४॥ अहो! भगवान् के चरणों में जल चढ़ाने से रज का नाश होता है। चंदन से सुगंधित देह की प्राप्ति होती है। अक्षत से पूजा करने से उत्तम कुल एवं पुष्पों से पूजा करने से मनहर उत्कृष्ट भोगों की प्राप्ति होती है। सुमधुर नैवेद्य चढ़ाने से वैभव व दीपक चढ़ाने से सुखद सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है। धूप खेने से सौभाग्य रूपी कमल विकसित होता है। सुंदर, मधुर फलों से पूजा करने से जीव यथेच्छ फल तथा मोक्ष प्राप्त करता है एवं जो भव्य सदा उत्तम, मनहर अर्घ्य अर्पित करता है वह अनर्घ्य पद प्राप्त करता है॥१५-१७॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में राजा अशोक की पुत्रियों के पूर्वभव का
वर्णन करने वाला पन्द्रहवाँ नंद पूर्ण हुआ।

सोलसम-णंदो

1772. रायअसोगेण रज्ज-संचालणं करिदं सु णायेणं।
बे जणा एयदिवसे, आगच्छीअ तत्थ णायस्स॥1॥



1773. णरेगो भणदि सामी! मए कयिदं अस्स खेत्तं पच्छा।
बे सुवण्ण-जुद-कलसं, लहिदं तत्थ खणण-समयम्मि॥2॥

1774. मए कयिदं खेत्तं हि, णेव सुवण्णजुत्तकलसं तम्हा।
णेव ग्रहण-जोग्गं मइ, किण्णु णेव ओग्गहदे सो वि॥3॥

1775. विदियो बोल्लेदि तदा, भो राओ! विच्चिदं मए खेत्तं।
णो ओग्गहिस्सामि तं, सगणायज्जिदधणे तुट्ठो॥4॥

राजा अशोक न्यायपूर्वक राज्य का संचालन कर रहे थे। एक दिन दो लोग राजा के पास न्याय के लिए आए॥1॥ तब एक व्यक्ति कहता है हे स्वामी! मैंने इसके खेत को खरीदा था। उसके पश्चात् वहाँ खुदाई के समय मुझे दो स्वर्ण से युक्त कलश प्राप्त हुए॥2॥ हे राजन्! मैंने मात्र खेत ही खरीदा था, स्वर्ण युक्त कलश मैंने नहीं खरीदे इसलिए ये मेरे द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं हैं; किन्तु यह व्यक्ति भी उन कलशों को नहीं लेता॥3॥ दूसरा व्यक्ति कहता है हे राजन्! मैंने तो खेत बेच दिया है इसलिए उन कलशों को मैं ग्रहण नहीं करूंगा। मैं अपने द्वारा न्यायोपार्जित धन में संतुष्ट हूँ॥4॥

1776. सुणिच्चा उहय-वत्तं, ताण सरलचित्ताण वच्छलेणं।
कहदि भो पुण्णवंता, सोहग्गिआ तुज्झ पुण्णेण॥5॥
1777. पाविदं दोण्णिकलसं, तम्हा गहेज्जा कलसमेगेणं।
भणदि तदा तं मंती, धणं रायकोसस्स सामी॥6॥ (जुम्मं)
1778. गायप्पिय-तुट्ठ-णिवो, भासदि चेयणसंपत्ती दु पया।
धणं णो रज्ज-बज्जे कोसम्मि ताण समीवे वा॥7॥
- 1779 पया पुत्तोव्व मज्झं, लहिदं धणं तेहिं सोहग्गेण।
पस्सिय पुत्तुत्थाणं, को जणगो होदि पसण्णो ण?॥8॥
1780. पच्छा, रायभवणम्मि, आगद-बेपुरिसेहिं विणयेहिं।
णिवेदिदं दु गायस्स, सगवित्तंत-भणंतेहिं च॥9॥
1781. पढमेण भासिदं मे, पुत्तीइ सह सुणिच्छिदो विवाहो।
इमेण दायिदाणि बहुधण-वत्थाभूसणाणि ताइ॥10॥
1782. मम पावकम्मुदयेण, दिवंगदा णयणतारिगा सा तां।
पच्चप्पिणेमि अहुणा, किण्णु ण गहदि महाणुभावो॥11॥

उन सरल चित्त वाले दोनों लोगों की वार्ता सुनकर राजा कहते हैं हे पुण्यवान्, सौभाग्यशाली नरों! आपके पुण्य से ही वे दो कलश प्राप्त हुए हैं इसलिए दोनों एक-एक स्वर्ण कलश ग्रहण करें। तब एक मंत्री कहता है हे स्वामी! यह धन तो राजकोष का होना चाहिए॥5-6॥ तब न्यायप्रिय व संतुष्ट राजा अशोक कहते हैं हे मंत्रीवर! ये प्रजा हमारी चेतन संपत्ति है। ये धन राज्य के बाहर नहीं है। यदि उनके पास है तो वह कोष में ही मानिये॥7॥ पश्चात् राजभवन में दो पुरुषों का आगमन हुआ। उन्होंने विनयपूर्वक अपना वृत्तांत कहा एवं न्याय के लिए निवेदन किया॥9॥ पहले व्यक्ति के कहा हे राजन्! (इनके पुत्र का) मेरी पुत्री के साथ विवाह निश्चित हुआ था तब इन्होंने उसके लिए बहुत-सा धन व वस्त्राभूषण प्रदान किए थे॥10॥ मेरे पाप कर्म के उदय से मेरे आँखों की तारिका पुत्री का देहांत हो गया। अब मैं वह धन, वस्त्राभूषणादि इन्हें लौटा रहा हूँ किन्तु ये महानुभाव उसे ग्रहण ही नहीं कर रहे हैं॥11॥

1783. भो णायप्पिय-राओ, तं धणं णेव मम इयाणिं।
अहं णेव गहिस्सामि, लोहो पाव-जणगो जम्हा॥12॥
1784. विदियो कहदि दायिदं, धणाइं मइ भावि-पुत्तवहूए।
अहुणा भो रायो तं, दाण-धणं व गहिदु-मसक्को॥13॥
1785. अम्हाणं कुल-रीदी एरिसा पहू तुमं अवि सहमदो।
पदत्तधणं दु कया वि, णेव ओग्गहण-जोग्गं पुणो॥14॥
1786. तुज्झ वयणं उत्तमं, किण्णु किं करिदव्वं अस्स धणस्स।
सहसा उहया वदंति, रायकोसस्स गहेज्ज पहू॥15॥
1787. तदा महामच्चादी, कहंति उइदो पुढविपालगो भो॥
ठाएज्ज सुणह णायं, मंतिमंडलो अहो मज्झं॥16॥
1788. णियसुकुलसासण-रीदि-अणुसारेण इदं गहण-जोग्गं ण।
तहा अजोग्गं दु राय-कोसस्स किण्णु ण जदि गहेह॥17॥
1789. तो धणमिदं अण्णाइ, कण्णाए चिय उवजुंजस्सिमो या
हिदत्थं जे पयाए, सव्वा कण्णा मम पुत्तीव॥18॥ (जुम्मं)

तब दूसरा व्यक्ति कहता है हे न्यायप्रिय राजन्! अब यह धन मेरा नहीं है। मैं वह कदापि ग्रहण नहीं करूंगा क्योंकि लोभ पाप का बाप है। वह धनादि मैंने अपनी होने वाली पुत्रवधू के लिए दिया था। अहो राजन्! जैसे दान किए हुए धन को पुनः ग्रहण नहीं कर सकते, उसी प्रकार मैं वह दिया धन अब ग्रहण नहीं कर सकता॥12-13॥ ऐसी हमारी कुल की रीति है। दिया गया धन कभी भी पुनः ग्रहण करने योग्य नहीं होता। हे प्रभु! इस बात से तो आप भी सहमत हैं॥14॥ तब महाराज अशोक कहते हैं तुम्हारा वचन उत्तम है किन्तु इस धन का क्या करना चाहिए। अचानक दोनों बोलते हैं हे प्रभु! राजकोष के लिए इसे ग्रहण कर लीजिए॥15॥ तब महामात्य आदि कहते हैं हे पृथ्वीपालक! उचित है, उचित है। राजा पुनः कहते हैं ठहरिये, अहो मंत्रीमंडल! मेरा न्याय सुनिये॥16॥ अपने कुल व शासन की रीति के अनुसार यह धनादि मेरे ग्रहण करने योग्य नहीं है। और राजकोष के लिए भी यह अयोग्य है। यदि ये दोनों उसे ग्रहण नहीं करते तो यह धन हम अन्य कन्या के हितार्थ उपयोग करेंगे; क्योंकि प्रजा की सभी कन्याएँ मेरी पुत्री के समान हैं॥17-18॥

1790. रायणायं सुणित्ता, पस्सिय ओदारियं भणंति तदा।
साहू साहू पच्चक्ख-भयवदोव्व अम्हाण णिवो॥19॥
1791. इत्थं तस्स सासणे, सुणायो विज्जमाणो वच्छलेण।
सुह-संती संतोसो जत्थ णायो तत्थ समिद्धी॥20॥
1792. णागरिआण भावणा, णेव परत्थं अहियारं गहिदुं।
परोवयारम्मि रदा, संतोसी ते दु धम्मिट्टा॥21॥
1793. णेव तत्थ अण्णायो, दंडो तहा महुरइक्खुदंडोव्व।
सगवत्थुं उज्झित्ता, सया हरिसीअ णंदीअ ते॥22॥
1794. पुप्फम्मि दुग्गंधोव्व, दुट्टा असब्भा य तम्मि देसम्मि।
देसो सो सायरोव्व, णवरि रयणायरम्मि जलं हु॥23॥
1795. तस्स रायस्स देसे, णिवसीअ जलं व जलबुद्धी णेवा।
तत्थ पुण्णकज्जाइं, रयणायरे धवल-फेणोव्व॥24॥ (जुम्मं)

तब राजा के न्याय को सुनकर, उनकी उदारता को देखकर सब कहते हैं साधु-साधु। हमारा राजा प्रत्यक्ष भगवान् के समान है॥19॥ हे मंत्रीवर! मेरे लिए प्रजा पुत्र के समान है। उन्होंने अपने सौभाग्य से धन प्राप्त किया है। अरे! पुत्र के उत्थान को देखकर कौन-सा पिता प्रसन्न नहीं होता अर्थात् सब होते हैं। इस प्रकार उस राजा अशोक के शासन में वात्सल्यपूर्वक श्रेष्ठ समीचीन न्याय विद्यमान था। उचित ही है जहाँ न्याय होता है वहीं सुख, शांति, संतोष और समृद्धि होती है॥20॥ तब उस राज्य में नागरिकों की भावना दूसरों की वस्तु या अधिकार ग्रहण करने की नहीं थी। वे सभी परोपकार में रत, संतोषी और धर्मिष्ठ थे॥21॥ वहाँ अन्याय बिल्कुल नहीं था, दंड केवल इक्षुदंडों में ही था। जिस प्रकार इक्षु दंड में दंड होता है किन्तु वह मधुरता से युक्त होता है उसी प्रकार राजा अशोक के राज्य में दंड व्यवस्था थी किन्तु वह कटु नहीं मधुर थी। वहाँ अपनी वस्तुओं का त्याग कर व अन्यो को देकर वे लोग सदा हर्षित होते थे, आनंदित होते थे॥22॥ जिस प्रकार पुष्प में दुर्गंध नहीं होती है उसी प्रकार उस देश में असभ्य जन नहीं थे। वह देश समुद्र के समान था किन्तु विशेषता यह है कि जैसे समुद्र में जल होता है वैसे उस देश में जल के समान सरल लोग रहते थे। जड़बुद्धि या मूर्ख कदापि भी निवास नहीं करते थे। वहाँ नागरिकों द्वारा किए जाने वाले पुण्यकार्य समुद्र में धवल फेन के समान थे॥23-24॥

1796. तदा देसस्स किन्ती, रयणायरस्स उत्तंगवीई व्व।
बहुकला सुविज्जा तह, णाणावण्णिरयणरासी व्वा॥25॥
1797. सायरो णेव लंघदि, सगसीमं कयावि आपदयाले।
तस्स देसवासी णो, अहकम्मदये वि सगसीमं॥26॥
1798. णयरवासीण धणं ण, खयदि दाणाइ-सुकज्जं कुणंता।
दायंतो सगजलं पि, ओरुम्मादि सायरो णेव॥27॥
1799. पिवासं समिदूण जह, रयणायरो तिप्पेदि सव्वदा हु।
उवयारं जणा मिहो, करीअ णिवक्कंखभावेणं॥28॥
1800. वीईहि सायरो जह, खिवदि अणावस्सग-वत्थुं बहिरे।
सव्वा दोस-विगारा, छड्ढिदा देसणिवासीहिं॥29॥
1801. धम्माणंदेण देसवासी जयघोसं परमेड्डीणं।
हरिसेण सायरो जह, करेज्ज तह गंभीरघोसं॥30॥
1802. वड्ढिदि सायर-णीरं, जह पवड्ढतेण मिअंगेण सह।
जिण-चंददंसणेणं, धम्मविड्ढी तह णिवासीसु॥31॥

उस समय उस देश की कीर्ति रत्नाकर की उत्तुंग लहरों के समान थी। वहाँ बहुत कलाएँ व समीचीन विद्याएँ रत्नाकर में नाना वर्णों की रत्न राशि के समान गर्भित थीं॥25॥ जिस प्रकार समुद्र आपत्तिकाल में भी कदापि अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता उसी प्रकार उस देश के निवासी पापकर्म के उदय में भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते थे॥26॥ बहुत दान आदि पुण्य कार्य करते हुए भी नगरवासियों का धन उसी प्रकार क्षय को प्राप्त नहीं होता था जिस प्रकार अपना जल देते हुए भी सागर कभी सूखता नहीं है॥27॥ जिस प्रकार समुद्र लोगों की प्यास शांत करके सर्वदा उन्हें संतुष्ट करता है उसी प्रकार वहाँ लोग आपस में निःकांक्ष भाव से उपकार किया करते थे॥28॥ जिस प्रकार समुद्र अपनी लहरों से अनावश्यक वस्तु को बाहर फेंक देता है उसी प्रकार उस देश के निवासियों ने सभी दोष व विकार छोड़ दिए थे॥29॥ जिस प्रकार सागर हर्षपूर्वक गंभीर घोष करता है उसी प्रकार उस देश के निवासी धर्म के आनंद से परमेष्ठियों की जयघोष किया करते थे॥30॥ जिस प्रकार चंद्रमा की वृद्धि से समुद्र का जल भी वृद्धिगत होता जाता है। उसी प्रकार चंद्रमा के समान श्रीजिनेंद्र-प्रभु के दर्शन से उस देश के निवासियों में धर्म की वृद्धि हुआ करती थी॥31॥

1803. तत्थ आगच्छीअ बहु-इड्ढिधारगा चदुव्विहो-संघो।
जह तह रयणायरम्मि, बहुविह-तरंगिणी णंदेण॥32॥
1804. जदवि रयणायर-तडे, सिप्पी पासाणखंडकच्चादी।
देस-समीवम्मि तदवि, णेव अवगुणो दोसगो अवि॥33॥
1805. तावं मरिसंतो अवि मेहरूव-जलं दायदि गगणस्स।
देसवासी वि आपदयाले सगधणं दरिद्दाण॥34॥
1806. लोयपसिद्धो सिंधू, लहदि सम्माणं सव्वसरिदाहिं।
तह कुरुजंगलदेसो, वि सम्माणं अण्णदेसेहि॥35॥
1807. डिंडीरेण जह होदि, अच्छादिदं तस्स णिम्मलणीरं।
तह गुत्तरूवेण तं, करीअ सगधम्मकत्तव्वं॥36॥
1808. अवगाहंति सायरे, मराला जह णीर-खीर-विवित्ता।
तह तम्मि देसम्मि चिय, वदी विदू भेदविण्णाणी॥37॥
1809. सायरस्स गंभीरं, मादुं जह णो को वि समत्थो तह।
पच्चक्खणाणिं विणा, णेव को वि देस-गंभीरं॥38॥

जिस प्रकार सागर में बहुत प्रकार की लहरें उठती हैं उसी प्रकार वहाँ आनंदपूर्वक बहुत ऋद्धियों के धारक चार प्रकार के संघ (यति, ऋषि, मुनि, अनगार) आया करते थे॥32॥ यद्यपि समुद्र के तट पर सीप, पाषाण खंड व काँच आदि होते हैं तद्यपि उस देश के समीप में कोई अवगुण या दोषक नहीं था॥33॥ जैसे सूर्य के ताप को सहन करते हुए भी सागर आकाश के लिए वाष्पीकरण द्वारा मेघरूप में जल प्रदान करता है उसी प्रकार उस देश के वासी भी आपत्तिकाल में दरिद्रों व जरूरतमंदों के लिए अपना धन देते थे॥34॥ जिस प्रकार लोकप्रसिद्ध सागर सभी नदियों से सम्मान प्राप्त करता है उसी प्रकार वह कुरुजांगल देश भी अन्य देशों से सम्मान प्राप्त करता था॥35॥ जिस प्रकार फेन से सागर का निर्मल नीर आच्छादित होता है उसी प्रकार उस देश के नागरिक गुप्त रूप से अपने धर्म के कर्तव्य किया करते थे॥36॥ जिस प्रकार समुद्र में नीर-क्षीर विवेकी हंस अवगाहन करते हैं उसी प्रकार उस देश में व्रती, विद्वान् व भेदविज्ञानी थे॥37॥ जिस प्रकार सागर की गहराई को मापने के लिए कोई भी समर्थ नहीं होता उसी प्रकार उस समय प्रत्यक्षज्ञानी के बिना उस देश के गांभीर्य को मापने में कोई भी समर्थ नहीं था॥38॥

1810. देसम्मि सुसक्कारो, णिवस्स सुसक्कार-कारणत्तादु।
असोगो रोहिणिजुदो, सोहेज्ज रोहिणिजुदिंदू व्व॥39॥
1811. दिव्वजोदिसंजुत्तो, सीयलो तावहारगो चंदोव्व।
सव्वजणोसु पहाणो, सम्म-णेदुत्त-सत्ति-जुत्तो॥40॥
1812. मिअंगो कलंक-जुदो णवरि रायो णिवक्कलंगो लोए।
हस्सीअ णिवविहवो ण, अहण्णिणसं परिअड्डमाणो॥41॥
1813. णियमिद-गमणसीलो हु, णियदीए पारतंतेण चंदो।
जह तह पुरिसट्टेणं, सव्वदा रायो असोगो वि॥42॥
1814. जह सुविसालदेसम्मि, पव्वय-तरंगिणि-आइ-संजुत्तं।
अणेगतरूहि सहिदं, महारण्णं तहेव राओ॥43॥
1815. महापुण्णवंतो चिय, उक्किट्ट-जसकित्ति-पव्वय-जुत्तो।
करुणा-तरंगिणीए, वच्छलाइ-सुगुण-रुक्खेहिं॥44॥ (जुम्मं)
1816. रायम्मि परोवयार-मेत्ति-पमोदाइ-भावा पसत्था।
उल्लास-पमोदेणं, विहसंत-बहुविह-पुप्फाणि व॥45॥

राजा के सुसंस्कारी होने के कारण उस देश में सुसंस्कार थे। रोहिणी के साथ राजा अशोक उस प्रकार सुशोभित था जैसे रोहिणी नक्षत्र से युक्त चंद्रमा॥39॥ राजा अशोक चंद्रमा के समान दिव्यज्योति से संयुक्त, शीतल व ताप का हरण करने वाला था। वह राजा सभी जनों में प्रधान एवं समीचीन नेतृत्व शक्ति से युक्त था॥40॥ विशेषता यह है कि चंद्रमा तो कलंक से युक्त होता है किन्तु राजा अशोक लोक में निष्कलंक था। चंद्रमा तो कृष्ण-पक्ष में घटता है किन्तु राजा का वैभव निरंतर प्रवर्द्धमान था॥41॥ जिस प्रकार नियति की परतंत्रता से चंद्रमा नियमित गमनशील होता है उसी प्रकार राजा अशोक भी पुरुषार्थ के बल से सदैव गमनशील था॥42॥ जिस प्रकार एक विशाल देश में पर्वत, नदी आदि से संयुक्त व अनेक वृक्षों से सहित महाअरण्य होता है उसी प्रकार महापुण्यवान् राजा अशोक उत्कृष्ट यशकीर्ति रूपी पर्वत, करुणा रूपी नदी एवं वात्सल्य आदि गुण रूपी वृक्षों से सहित था॥43-44॥ जिस प्रकार वन में बहुत प्रकार के खिले हुए पुष्प होते हैं उसी प्रकार उल्लास व प्रमोदपूर्वक राजा में परोपकार, मैत्री, प्रमोद आदि प्रशस्त भाव थे॥45॥

1817. परोष्परे घसणेणं, सयमेव डज्जंत-सुक्करुक्खोव्व।
बद्धकम्मोदयादो, विज्जंत-वियारा वि राये॥46॥
1818. सगिट्टकज्जसिद्धिं दु, कुणंत-काणणासिद-बहुजीवा व्व।
णिवासिदा सुपया अवि, पावीअ जहेच्छ-इट्टफलं॥47॥
1819. णंदंत-विहरंत-उडुंत-बहुविह-पक्खीव काणणम्मि।
णिवासिदा-वदी सुहं, संतिं लहीअ आणंदं वि॥48॥
1820. काणणम्मि विज्जमाण-दक्खिणरुक्खा जह तह पवडुंति।
णिवासिद-सरल-पुरिसा, सवरहिदतप्परा फलंता॥49॥
1821. विवरीय-वक्क-रुक्खा, सुक्का पुप्फफलपत्तविहीणा या
केवलं मूलजुत्ता णट्ट-जोग्गा य खयंति सयं॥50॥
1822. जह तह राय-समीवे, णेह-वद-चरियाइ-रहिदा कुडिला।
जडबुद्धिसहिद-णरावि,सयमेवचियपावकिदेहिं॥51॥(जुम्मं)
1823. परिहाएज्ज विवत्थिद-मुल्ल-सुवत्थाणि पया हु देसस्सा।
णारी देवंगणा व्व, धरित्तु कणगाइ-भूसणाणि॥52॥

जिस प्रकार परस्पर घर्षण से सूखे वृक्ष स्वयं ही जल जाते हैं उसी प्रकार पूर्वबद्ध कर्मों के उदय से राजा में विद्यमान विकार भी नष्ट हो गए थे॥46॥ जिस प्रकार वन में आश्रित बहुत जीव अपने इष्ट कार्यों की सिद्धि करते हुए रहते हैं, उसी राजा के आश्रित प्रजा भी यथेच्छ फल प्राप्त कर रही थी॥47॥ जिस प्रकार वन में बहुत प्रकार के पक्षी विचरण करते हुए, उड़ते हुए आनंदित होते हैं उसी प्रकार उस राजा के देश में रहने वाले व्रतीजन सुख, शांति व आनंद को प्राप्त कर रहे थे॥48॥ जिस प्रकार वन में विद्यमान सीधे वृक्ष वृद्धि को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार वहाँ देश में रहने वाले स्व-पर हित में तत्पर सरल पुरुष फलित हो रहे थे, वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे॥49॥ इसके विपरीत जो वक्र वृक्ष हैं, पुष्प, फल व पत्तों से विहीन शुष्क वृक्ष हैं, केवल मूल से युक्त हैं, वे नष्ट होने के योग्य हैं या वे स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार राजा के समीप स्नेह-वात्सल्य, व्रत, चारित्र आदि से रहित, कुटिल व जड़ बुद्धि से सहित लोग भी अपने पापकृत्यों से स्वयं ही नष्ट हो जाते थे॥50-51॥ उस देश की प्रजा व्यवस्थित, मूल्यवान् समीचीन वस्त्रों को धारण किया करती थी। उस समय स्वर्ण आदि के आभूषणों को धारण कर नारियाँ सुरांगनाओं के समान प्रतिभासित होती थीं॥52॥

1824. जीवरक्खंता तित्थ-जत्ताइ गच्छीअ समये समये।
उवाणया-रहिदा सुद्धभावणाइ गुरु-वंदणाइ॥53॥
1825. विवत्थिद-वेस-भूसं, पस्सिय रोहीअ ताण चित्ते णो।
कुराग-वासणा य, थुदि-आइ-करंता गंधव्वोव्व॥54॥
1826. तत्थ णरा णारीओ, धारीअ भूसणाणि उच्छाहेण।
सभूसणा हु करेज्जा, जिणभत्ती सुगुरुवंदणा य॥55॥
1827. अणेगविहपुप्फेहिं, सदेहं मंडीअ बहुणरणारी।
जं पुप्फाणि णंद-सुह-संति-सुंदरिमाण हेदू य॥56॥
1828. सुंदर-सुहग-सुगंधिद-पुप्फेहि सुसज्जिदं जणसमूहं।
अवयच्छिदूणं तदा, उल्लासुच्छाह-कारगेहि॥57॥
1829. भमरा हवेज्ज भमिदा, णर-णारी वा पुप्फजुत्तरुक्खा।
आगरिसगुववणं वा, तिव्वासत्ता मयरंदम्मि॥58॥ (जुम्मं)
1830. धारीअ पुण्णवंता, सुवण्णरजदरयणाभूसणाइं।
पुण्णहीणा लहंते, णेव कयावि इट्ठवत्थूणि॥59॥

समय-समय पर उस देश के नागरिक तीर्थयात्रा व गुरु-वंदना के लिए जीवों की रक्षा करते हुए नंगे पैर जाया करते थे॥53॥ सभी की वेशभूषा व्यवस्थित हुआ करती थी। किसी की वेशभूषा को देखकर उनके चित्त में कुराग या वासना उत्पन्न नहीं हुआ करती थी। स्तुति आदि करते हुए वे लोग गंधर्व के समान प्रतीत होते थे॥54॥ वहाँ नर-नारियाँ सभी उत्साहपूर्वक आभूषण धारण किया करते थे। उन्हीं आभूषणों से युक्त वे जिनेंद्रभक्ति व गुरु-वंदना किया करते थे॥55॥ बहुत से नर-नारियाँ अनेक प्रकार के पुष्पों से अपनी देह को मंडित किया करते थे; क्योंकि पुष्प आनंद, सुख, शांति और सौंदर्य का कारण हैं॥56॥ उल्लास व उत्साह के कारक सुंदर, सुभग व सुगंधित पुष्पों से सजे हुए जनसमूह को देखकर पुष्प पराग में तीव्रासक्त भ्रमर भी यह सोचकर भ्रमित हो जाते थे कि ये नर-नारी हैं या पुष्पों से सज्जित वृक्ष हैं अथवा कोई उपवन ही है॥57-58॥ पुण्यवान् जीव स्वर्ण, चाँदी व रत्नों के आभूषण धारण किया करते थे। पुण्यहीन जीव इष्ट वस्तुओं को कदापि प्राप्त नहीं करते॥59॥

1831. कणगभूसण - धारगा, सच्चवायि - णायपिय - सयायारी।
सुवण्णं व फुडवादी, वेरागी सुधम्मसीला य॥60॥
1832. पाहण्णेणं राओ, णयरसेट्टी धणिगा महाजणा य।
कणयरयद-भायणेसु, करीअ भोयणं हरिसंता॥61॥
1833. विमलभावेहि भक्खं, फासुगं मज्जादिदं पच्चग्गं।
वड्ढगं वत्तसमाइ-गुणाण पसत्थवियारंता॥62॥ (जुम्मं)
1834. अमियं व पुट्टिमंतं, सुद्धभावेहि भुंजावणत्तादु।
महोसहिरूवं तं च, पयणत्तादु गहणत्तादो॥63॥
1835. तत्थ बाला जुवदी य, मज्जादिदा लज्जापइत्तआ य।
केसबंधणजुदा तं, वितराइ-बाहा अप्पा दु॥64॥
1836. होज्ज धम्मविवज्जिदा, सूदग - पादगाइ - असुद्धियाले।
रिउयाले तियदिवसा, णो करीअ गिहकज्जं कं पि॥65॥
1837. बहुआ सम्माइट्टी, मिच्छाइट्टी य अइ-णूणा तत्था।
णो पुज्जीअ कुदेवा, तं लोगिग-कज्ज-सिद्धीए॥66॥

स्वर्णाभूषणों को धारण करने वाले सत्यवादी, न्यायप्रिय व सदाचारी होते हैं। वे स्वर्ण के समान स्पष्टवादी, वैरागी व धर्मशील होते हैं॥60॥ राजा, नगरश्रेष्ठी, धनिक और महाजन हर्षित होते हुए, प्रशस्त विचार करते हुए निर्मल भावों से आरोग्य, शम आदि गुणों की वृद्धि करने वाला भक्ष्य, प्रासुक, मर्यादित व श्रेष्ठ भोजन प्रायःकर स्वर्ण व चाँदी के बर्तनों में किया करते थे॥61-62॥ शुभ भावों से भोजन पकाने, कराने व ग्रहण करने से वह उनके लिए अमृत के समान पुष्टिकारक व महौषधि रूप होता है॥63॥ वहाँ बालिकाएँ व युवतियाँ मर्यादित व लज्जावती थीं। उनके केश बंधन को प्राप्त रहते थे अतः वहाँ व्यंतरादि की बाधा अल्प थी॥64॥ सूतक-पातकादि अशुद्धिकाल में वे सभी धर्मकार्यों से विवर्जित होते थे। ऋतुकाल में तीन दिन वे नारियाँ कोई भी गृहकार्य नहीं किया करती थीं॥65॥ वहाँ मुख्यता से सम्यग्दृष्टि जीव ही थे, मिथ्यादृष्टि जीव बहुत कम थे। अतः लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए वे कुदेवों की पूजा नहीं किया करते थे॥66॥

1838. मेत्तं ण गिहकज्जेसु, अण्णकज्जेसु पवीणा णारी वि।
सुराय - धम्म - रण - णाय - णीदीसुं ववहार - कुसला॥67॥
1839. सहविज्जा - सिद्धंत - अज्झप्प - आगम - दंसणसत्थेसु।
चउसट्टिकलासुं ता, णिउणा सीलवंता णारी॥68॥
1840. बाल-बालिगा तत्थ य, थिरबुद्धी सुसिक्खा-सक्कारेसु।
कुविज्जाइ-विहीणा दु, विवज्जिदा अणट्ट-कज्जादु॥69॥
1841. भासीअ बालिगा ता, मधुरभासिया सुकोमलकलिगा वा।
मिदु-हास-विलास-जुदा, मणरंजग-सुहदा सुजणाण॥70॥
1842. सुहगइगामिया देव-कण्णा व्व सुंदरी पुण्ण-णिमित्ता।
सहजेण आगरिसगा, सीला मज्जादा-रक्खगा॥71॥
1843. अणेगसुलक्खणजुदा, बहुवण्णिवत्थजुदा सुगुणसहिदा।
उववणं व हु भासीअ, विविहकलाविज्जा-संजुदा॥72॥
1844. सुरभिदं गेहंगणं, जह तह उववणेणं बालिगाणं।
बाल-सुलह-चेट्टाए, कसायुवसमिदो सुजणाणं॥73॥

नारियाँ मात्र गृहकार्यों में ही निपुण नहीं थीं अपितु अन्य कार्यों में भी निपुण थीं; राजनीति, धर्मनीति, रणनीति व न्यायनीति में भी निपुण थीं। वे व्यवहार-कुशला थीं॥67॥ वे शीलवती नारियाँ शब्दविद्या, सिद्धांत, अध्यात्म, आगम, दर्शनशास्त्र व चौंसठ कलाओं में निपुण थीं॥68॥ वहाँ बालक व बालिका सम्यक् शिक्षा व संस्कारों में स्थिर बुद्धि वाले थे। वे कुविद्याओं से विहीन तथा अनर्थकारी कार्यों से विवर्जित थे॥69॥ वे बालिकाएँ सुकोमल कली के समान प्रतिभासित होती थीं। वे मधुरभाषिणी, सुकोमला, हास-विलास से युक्त, सज्जनों के मन को रंजायमान करने वाली व सुख प्रदान करने वाली थीं॥70॥ वे बालिकाएँ गजगामिनी, देवकन्याओं के समान सुंदरी, पुण्य की निमित्त, सहज ही आकर्षक, शीलवती व मर्यादा की रक्षा करने वाली थीं॥71॥ अनेक सुलक्षणों से युक्त, बहुवर्णी वस्त्रों से युक्त, गुणों से सहित, विविध कला व विद्या से संयुक्त वे बालिकाएँ उपवन के समान ही प्रतिभासित होती थीं अर्थात् जिस प्रकार अनेक प्रकार के विविध वर्णी पुष्पों से उपवन सुशोभित होता है उसी प्रकार वे बालिकाएँ विविध कला, विद्या व गुणों से सुशोभित थीं॥72॥ जिस प्रकार उपवन से गृहांगन सुगंधित हो जाता है उसी प्रकार बालिकाओं की बाल सुलभ चेष्टा से सज्जनों की कषाय उपशमित हो जाती थीं॥73॥

1845. पुष्पाङ्गं पस्सित्ता, कोमलपरिणामा होज्ज पुरिसाणा।
जह तह बालिगाओ दु, मदविहीणा सहजरूवेण॥74॥
1846. रुक्खा फलभारेणं, विणीदा मणमोहग-पुष्फवंता।
सुहदा सगछायाइ, जह तह कण्णाओ अवि तत्थ॥75॥
1847. ता आलस-विहीणा य, सब्ब-कज्जेसुं तप्परा हयोव्व।
बुद्धिमंता विअड्ढा, भवणं सुसक्कार-सिक्खाणा॥76॥
1848. णिब्भया य णिस्संका, विक्कमा सीह-सावगोव्व बाला।
अणट्टकज्जविरहिदा, अण्णायाणीदि-विमुहा चिय॥77॥
1849. धवलमेहोव्व पुरिसा, णिट्ठावंता य सुदाण - धम्ममि।
मण्णेज्ज विणा दाणं, किण्हमेहोव्व मुहं किण्हं॥78॥
1850. दायग-मेहो उच्चो, गाहगा सर-खादिगा अहट्ठिदा।
दाणधम्ममि वसणी, धवलुज्जलो णिज्जलघणोव्व॥79॥

जिस प्रकार पुष्पों को देखकर लोगों के परिणाम कोमल हो जाते हैं उसी प्रकार उन बालिकाओं को देखकर पुरुषों के परिणाम सहज ही अहंकार से रहित-ऋजु हो जाते थे॥74॥ जिस प्रकार वृक्ष फलों के भार से झुके हुए, मन को मोहने वाले, पुष्पों से युक्त व अपनी छाया से सभी को सुख प्रदान करने वाले होते हैं उसी प्रकार वहाँ युवतियाँ उन्नत उरुओं के भार से झुकी हुई, अपने गुणों व चेष्टाओं से मन को मोहने वाली, पुष्पवती व अपनी उपस्थिति से सभी को सुख प्रदान करने वाली थीं॥75॥ वे बालिकाएँ अश्व के समान सर्वकार्यों में आलस्य से रहित व कार्य करने में तत्पर रहती थीं। वे बुद्धिमान्, पांडित्य से युक्त एवं सुसंस्कार व सुशिक्षा का भवन ही थीं॥76॥ वहाँ बालक निर्भय, निःशंक, सिंह के बच्चे के समान पराक्रमी, अनर्थ कार्यों से रहित एवं अन्याय व अनीति से विमुख थे॥77॥ पुरुष धवल मेघों के समान सम्यक् दान-धर्म में निष्ठावान् थे। दान दिए बिना उस व्यक्ति का मुख भी श्याम मेघ के समान श्यामल माना जाता है। (और जब वे श्याम मेघ जल बरसा देते हैं तब वे धवल रूप हो जाते हैं)॥78॥ देखो देने वाले बादल ऊँचे होते हैं और ग्रहण करने वाले सरोवर व खाई नीचे होते हैं। दान-धर्म में व्यसनी (लीन) जन निर्जल मेघों के समान उच्च, उज्ज्वल व धवल होते हैं॥79॥

1851. ठाणणेगेसु किड्डागिहा णाडयसाला उववणाणि या
णर-णारीणं पिथगुच्छवा वस्से मज्जादाए॥80॥
1852. सरद-वसंत-हेमंत-पाविडयालेसु वा जिणपूयाइ।
मणोरंजणं करीअ, भत्तिणच्च-कित्तणादीहि य॥81॥
1853. सुणाणं पसारेदुं, उत्तम-गुरुकुल विज्जागिहा तत्था।
णाणगोट्टीए तच्च-वत्ताइ वड्ढेज्ज सुणाणं॥82॥
1854. रायाणाए णिम्मावीअ पसुपक्खीण करुणाधीए।
सेट्टचारिगिहा वास - ठाणाणि पेयजलववत्था॥83॥
1855. वंदुरा गो-मेस-गय-आदीण णिम्माविदाणि सालाणि।
जं णिवो ण मेत्तं णर-रक्खगो दु पसुपक्खीणं पि॥84॥
1856. दुरिताइं कुवियारा, अवरहा दुल्लहा तत्थ जह तह।
दिवायर-दंसणं णो, पाविडे घणेणच्छादणे॥85॥
1857. णो पइडि-पकोवो अइ-वरिसा अणावरिसा महामारी।
णिरावाह-सुहं सव्व-पया राओ भुंजीअ तत्थ॥86॥

वहाँ अनेक स्थानों पर क्रीडागृह, नाट्यशाला और उपवन थे जहाँ स्त्री व पुरुषों के पृथक् उत्सव मर्यादापूर्वक वर्ष में कई बार हुआ करते थे॥80॥ शरद ऋतु, वसंत ऋतु, हेमंत ऋतु व वर्षाकाल में वे देवपूजा, भक्ति, नृत्य व कीर्तन आदि के द्वारा मनोरंजन किया करते थे॥81॥ समीचीन ज्ञान के प्रसार के लिए वहाँ उत्तम गुरुकुल व विद्यागृह थे। वहाँ लोग ज्ञान गोष्ठी व तत्त्ववार्ता के द्वारा सम्यग्ज्ञान का वर्धन किया करते थे॥82॥ राजा की आज्ञा से करुणाबुद्धि पूर्वक पशु-पक्षियों के लिए श्रेष्ठ चारागृह व निवास स्थान का निर्माण कराया गया था॥83॥ वहाँ अश्वशाला, गौशाला, भेड़शाला, गजशाला आदि का निर्माण भी कराया गया क्योंकि राजा न केवल मनुष्यों का रक्षक होता है अपितु पशु व पक्षियों का भी रक्षक होता है॥84॥ वहाँ कुविचार, कुविकार व पाप उसी प्रकार दुर्लभ थे जिस प्रकार वर्षाकाल में बादल के द्वारा ढके जाने पर सूर्य का दर्शन नहीं होता॥85॥ वहाँ अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी आदि प्रकृति प्रकोप नहीं होते थे। राजा व प्रजा सभी निराबाध सुख भोगते थे॥86॥

1858. णो कंखीअ परधणं, इत्थि-महियारमण्णपद-खेत्ताणि।
सोहग्गं सिरिदुं पडिफद्धं करीअ उच्छाहेण॥87॥
1859. सिक्खगाणं धवलं च, पूयगाण पीदवत्थं णिरवज्जं।
धणिगाणं रत्तिमं च, ताणं व भवणाण वण्णा वि॥88॥
1860. कट्टणिम्मिद-वाहणं, विहिण्ण-सगडं रहं च इच्चादी।
सिविगा पउत्ता तदा, णारीणं गमणागमणस्स॥89॥
1861. उत्तम - पुट्टिग - सादू, सहजुप्पण्ण - फल - पुप्फसागादी।
बहुविह-धण्णं च सुक्क-फलाइं तिलहणाइं तत्थ॥90॥
1862. तेहि णिट्ठाणं तत्थ, पयिदं गोरस-णिम्मिद-वंजणं च।
इक्खुरस - खज्जुरेहि, पिंडगुलादीहि मिट्ठण्णं॥91॥
1863. पव्वेसु आमंतीअ, अइणेहेणं परोप्परे जणा दु।
णेह - मित्त - भावाणं, तहा पविट्ठि - हेदुत्तादो॥92॥
1864. सगसंताणा णिवेण, पढाविदा जहवि वरपाढगेहिं।
तहवि धम्म-मज्जादायाराण दायिदा सुसिक्खा॥93॥

कोई दूसरे के धन, स्त्री, अधिकार, पद व खेत आदि की आकांक्षा नहीं करता था। सौभाग्य के निर्माण के लिए वे उत्साहपूर्वक प्रतिस्पर्द्धा करते थे॥87॥ तब शिक्षकों के वस्त्र धवल, पुजारियों के पीत तथा धनिकों के लाल होते थे। वस्त्र निर्दोष-निरवद्य हुआ करते थे। उनके समान ही उनके भवनों के वर्ण भी थे॥88॥ उस समय लकड़ी से बने वाहन, विभिन्न गाड़ियाँ व रथ इत्यादि थे। नारियों के गमनागमन के लिए पालकी का प्रयोग होता था॥89॥ वहाँ उत्तम, पौष्टिक, स्वादिष्ट व सहजोत्पन्न फल-पुष्प-सब्जी आदि एवं बहुत प्रकार के धान्य, शुष्क फल तथा तिलहन आदि थे॥90॥ वहाँ उनके द्वारा सर्वगुणयुक्त भोजन, गोरस से निर्मित व्यंजन एवं इक्षुरस, खर्जूर व गुड़ आदि से मिष्ठान्न बनाया जाता था॥91॥ स्नेह और मित्र भावों की वृद्धि का कारण होने से वे लोग पर्वों पर एक-दूसरे को अति-स्नेहपूर्वक आमंत्रित किया करते थे॥92॥ यद्यपि राजा ने अपनी संतानों को श्रेष्ठ पाठकों से पढ़वाया तथापि उसने अपनी संतानों को धर्म, मर्यादा व आचरण की समीचीन शिक्षा प्रदान की॥93॥

1865. सिक्खावेज्ज सुपुत्ता, धम्म - राय - समाय - लोयणीदीउ।
साम - दाम - दंड - भेद - णीदी विज्जा उच्छाहेण॥94॥
1866. तित्थयर-पुरुदेव-अणुसज्जंतो अणेगलिवी कला अवि।
दव्वाइ-अणुसारेण, सव्वासिदा सिक्खा वेज्जा॥95॥
1867. बंभि-पहुदि-लिवी तहा, वत्थु-जोदिस- वज्ज-णच्चाइ-कला।
णाडय - संगीदादी, सुधम्मवड्डगा जीविगा य॥96॥
1868. असि-संचालणं तहा, धणुसंधाणं अवि बहुविहवेहा।
दंद - मल्लाइ - जुज्झं, भिंडिमालाइ - सुप्पओगं॥97॥
1869. णिज्जणारणण - गमणं, रह - संचालण - मस्सगयारुहणं।
पहुदी बहुविह-सुकला, सिक्खावेज्ज वरविगासाय॥98॥
1870. पडिवासे कत्तिय-सिद-पक्खम्मि पारंभ-सत्तदिवसेसु।
पडिप्फद्धा विहिण्ण-सुकला-कउसलाण णिव-हुत्ते॥99॥
1871. पुण णंदीसर-पव्वे, कडुअ ठवणं णंदीसरदीवस्स।
णंदीसर-महच्चणं, सिद्धचक्क-अच्चणं कुणीअ॥100॥

अपने पुत्रों को उसने धर्मनीति, राजनीति, समाजनीति व लोकनीति सिखायी। उसने उत्साहपूर्वक साम, दाम, दंड, भेद नीतियाँ व विद्याएँ भी सिखायीं॥94॥ तीर्थंकर पुरुदेव का अनुसरण करते हुए राजा ने अपने पुत्र को अनेक लिपी व कला भी सिखायीं। द्रव्यादि (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) के अनुसार सभी आश्रितों को भी कलादि सिखायीं॥95॥ ब्राह्मी आदि लिपी, वास्तुकला, ज्योतिषकला, वाद्यकला, नृत्यकला, नाट्यकला, संगीतकला, सद्धर्मवर्द्धक कला व आजीविका आदि कलाएँ सिखायीं॥96॥ असि संचालन, धनुषबाण चलाना, बहुत प्रकार के वेध, द्वंदयुद्ध, मल्ल आदि युद्ध, भिंदिपाल आदि का प्रयोग भी सिखाया॥97॥ निर्जन वन में गमन, रथ संचालन, अश्वारोहण, गजारोहण आदि बहुत प्रकार की कलाएँ उनके श्रेष्ठ विकास के लिए उन्हें सिखायीं॥98॥ प्रत्येक वर्ष कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष के प्रारंभ के सात दिनों में राजा के सन्मुख विभिन्न श्रेष्ठ कलाकौशल की प्रतिस्पर्धा हुआ करती थी॥99॥ पुनः नंदीश्वर पर्व में नंदीश्वर द्वीप की स्थापना करके नंदीश्वर महार्चना वा सिद्धचक्र अर्चना की जाती थी॥100॥

1872. पच्छा, विजयी जणा दु, रायेण सह सुह तित्थजत्ताए।
अवसरं लहीअ ताण, सम्माण-पदिट्ठा-वड्ढगं॥101॥
1873. पडिवासोव्व हु पडिहा-संपण्ण-वर-जुवा-जुवदी विजयी।
माणीअ इह वासे वि, पुरक्कारो घोसिदो तेण॥102॥
1874. गच्छीअ पुव्व-वासे, सम्मेद-सिहरं जत्ताइ जह तह।
गच्छिस्सामो अहुणा, अट्ठापदं जिणवंदणाइ॥103॥
1875. सस्सदं तित्थभूमिं-अजुद्धं अण्ण-तित्थयराणं अवि।
जम्ममहिं भावाणं, विसुद्धीइ पावक्खयेदुं॥104॥ (जुम्मं)
1876. हणिहणिं व तद्दिणे वि, रायो जिणहिसेगं पूयं कडुआ।
दार - पेक्खण - कुणंतो, मुणि - पडिग्गहण - तप्परो सो॥105॥
1877. तदा गगणमग्गादो, इड्ढि-संपण्णो मुणिवर-जुगलो या।
आवीअ तमहारगो, णाणपसारगो अक्किदु व्व॥106॥
1878. मुणिदंसणेण खयंति, मिच्छत्तं अण्णाणं भव्वाणं।
कोआसंति चित्ताणि, अक्कुदयेणं कमलाइं व॥107॥

पश्चात् विजयीजनों को सम्मान व प्रतिष्ठा में वृद्धि करने वाला राजा के साथ-शुभ तीर्थयात्रा का अवसर प्राप्त होता था॥101॥ प्रतिवर्ष के समान इस वर्ष भी विजयी प्रतिभा संपन्न श्रेष्ठ युवक व युवतियों का सम्मान किया गया एवं राजा के द्वारा पुरस्कार भी घोषित किया गया॥102॥ जिस प्रकार पिछले वर्ष यात्रा के लिए सम्मेद शिखर गए थे उसी प्रकार अब जिनवंदना के लिए हम अष्टापद जाएँगे एवं शाश्वत तीर्थक्षेत्र अयोध्या एवं अन्य तीर्थकरों की जन्मभूमि भी विशुद्धिपूर्वक व पापक्षय के लिए जाएँगे; इस प्रकार की घोषणा भी की गई॥103-104॥ प्रतिदिन की भाँति उस दिन भी राजा अशोक जिनाभिषेक व पूजन करके द्वारप्रेक्षण करते हुए मुनिराज के पडगाहन के लिए तत्पर हुए॥105॥ तभी आकाशमार्ग से ऋद्धि संपन्न, सूर्य-चंद्रमा के समान अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाले, ज्ञान का प्रसार करने वाले मुनि युगल पधारे॥106॥ अहो! मुनिराज के दर्शन से भव्यों का मिथ्यात्व व अज्ञान नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य के उदय से कमल विकसित होते हैं उसी प्रकार मुनि दर्शन से भव्यों के चित्त विकसित हो जाते हैं॥107॥

1879. पडिग्गहं करेज्ज सग-सहधम्मिणि-रोहिणीए सह णिवो।
मणवयणकायेसणा - सुद्धिं भणित्ता आयरेण॥108॥
1880. पवेसं कराविदूण, उच्चासणं दु भोयणसालाए।
देज्ज पुण पक्खालित्तु, सिरिमुणिवर-चरणं अच्चीअ॥109॥ (जुम्मं)
1881. अणंतरं पणमंतो, सत्तगुणेहि इगवीसेहि सह वा।
विहाय पणदूसणाणि, धरित्ता पंचाभूसणाणि॥110॥
1882. संजम - सज्जाय - धम्म - वड्ढगं णिदोसाहारं देज्ज।
अदियारं मुंचित्ता, तहा सगवर-अणुग्गहत्थं॥111॥ (जुम्मं)
1883. सद्धा भत्ती तुट्ठी, खमा सत्त-मलुद्धत्तं विवेगो।
जाणेज्जा दायगस्स, सत्तविसेसगुणा समयेण॥112॥
1884. आयरेणं सुदाणं, महुरवयणेहि णिम्मलभावेहिं।
तहा अहोभावेणं, परमाणंदेण भूसणाणि॥113॥
1885. तव्विवरीय-दूसणं, सावगा चिअ णिल्लुंछिदूणं तं।
आहारं दाएज्जा, लहिदुं सम्मफलं दाणस्स॥114॥
1886. परववदेसो य तहा, सचित्तणिक्खेवो पिहाणं जाणा।
मच्छरो य अदिक्कमो, कालस्स दाणपणदियारा॥115॥

तब अपनी सहधर्मिणी रोहिणी के साथ राजा ने मुनिराज का पड़गाहन किया। मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि व आहारशुद्धि बोलकर आदरपूर्वक भोजनशाला में प्रवेश कराकर उच्चासन दिया। पुनः मुनिवर के चरणों का प्रक्षालन कर उनकी पूजन की॥108-109॥ अनंतर प्रणाम करते हुए स्व-पर अनुग्रह के लिए पाँच दूषणों को छोड़कर पाँच भूषणों को धारण कर अतिचारों का त्याग कर दाता के सात व इक्कीस गुणों के साथ संयम, स्वाध्याय व धर्मवर्द्धक निर्दोष आहार मुनिराज को प्रदान किया॥110-111॥ श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि, क्षमा, सत्व, अलुब्धता और विवेक ये दाता के सात विशेषगुण आगम से जानने चाहिए॥112॥ आदरपूर्वक दान देना, मधुर वचनों के साथ दान देना, निर्मल भावों से, अहोभाव व परमानंद से दान देना ये दाता के पाँच आभूषण जानने चाहिए॥113॥ इन भूषणों के विपरीत दूषण होते हैं। दान के सम्यक् फल को प्राप्त करने के लिए श्रावकों को उन दूषणों का त्याग करना चाहिए॥114॥ परव्यपदेश, सचित्तनिक्षेप, सचित्तपिधान, मात्सर्य व काल का अतिक्रम ये दान के पाँच अतिचार हैं॥115॥

1887. सव्वरायकुडुबेण, उच्छाहेण दायिदो आहारो।
पच्छा रायभवणम्मि, पणच्छरिअं तस्स फलेणं॥116॥



1888. सुदुदुभि-वादणं खे, दाण-महो! दायगो! अहो पत्तो!!
मंदसुगंधिदपवणं, पुप्फविट्ठी रयणविट्ठी य॥117॥

1889. इत्थं देज्जा सव्वा, ते पुण्णवंता आहारदाणं।
अणेगवारं कुणीअ पणमेरु-णंदीसर-पूयं॥118॥

1890. अकिट्टिमजिणसदणाण, सव्वदोभदं दु इंदद्धयं चा
पंचकल्लाणपूयं, सिद्धमहीए उच्छाहेण॥119॥ (जुम्मं)

सर्व राजपरिवार ने उत्साहपूर्वक मुनिराज को आहार दिया। पश्चात् उसके फलस्वरूप राजभवन में पंचाशचर्य प्रकट हुए॥116॥ आकाश में दुंदुभि वादन, अहो दान! अहो दाता! अहो पात्र! (की देवों द्वारा ध्वनि), मंद-सुगंधित पवन, पुष्पवृष्टि व रत्नवृष्टि॥117॥ इस प्रकार वे सभी पुण्यवान् आहार दान देते थे। अनेक बार सिद्धभूमि पर उत्साहपूर्वक पंचमेरु पूजन, नंदीश्वर पूजन, अकृत्रिम जिनमंदिरों की पूजन, सर्वतोभद्र व इंद्रध्वज पूजन किया करते थे॥118-119॥

मालिनी छंद

1891. मदणहलिपदं वा सेट्टरज्जाहिसेगं,
सुहदमहिसिमाणायारिपुत्ता सुपुत्ती।
हयगयरहजुत्तं, वाहिणिं पाउणंते,
जयबलसिरिकिती, पत्तदाणेण भव्वा॥120॥
1892. दयदि सुमुणिदाणं, तिब्बभत्तीइ जो सो,
सयलसुहगुणेहिं, भूसणेहिं जुदो वा।
णरसुरवरसोक्खं, पावदे भोयभूमिं,
सय सिवसुहहेदू, पत्तदाणं कमेण॥121॥
1893. रजदसुकलधोदं, तुंगमेरू व्व दाणं,
रयणमणिमयत्थं, णायछक्खंड - भूमिं।
गयहयपहुदी वा, लक्खकोडी वरं ओ,
सयलविहवदाणं, पत्तदाणं समं णो॥122॥

मुनिराजों को आहार दान देने से भव्यजीव कामदेव व बलभद्र जैसे पदों को, श्रेष्ठ राज्याभिषेक को, सुख देने वाली रानी, आज्ञाकारी पुत्र व पुत्री, हाथी-घोड़ों व रथों से युक्त सेना, विजय, बल, लक्ष्मी व कीर्ति को प्राप्त करते हैं॥120॥ जो सकल शुभ गुण व भूषणों से युक्त जीव तीव्र भक्ति से मुनिराज को आहारदान देता है वह भोगभूमि, मनुष्य व देव के श्रेष्ठ सुखों को प्राप्त करता है। पात्रदान नियम से सदैव मोक्ष सुख का हेतु है॥121॥ मेरु पर्वत के बराबर सोने-चाँदी का दान, रत्नमणिमय पदार्थों का दान, प्रसिद्ध छः खंड की भूमि का दान, लाखों-करोड़ों हाथी-घोड़ों आदि का दान व सकल वैभव का दान, श्रेष्ठ पात्रदान के समक्ष कुछ भी नहीं है॥122॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्षण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक-रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में राजा अशोक द्वारा सुव्यवस्थित राज्य संचालन का वर्णन करने वाला सोलहवाँ नंद पूर्ण हुआ॥

सन्तरसम-णंदो

1894. सगवस्सविद्धिदिवसे, एयदा दु सग-सीहसणारूढो।
रायपासादे णिवो, रोहिणीइ सह आणंदेण॥1॥
1895. सहसा पस्सिदो ताइ, सिरोवरि णियपदिअसोगस्स तदा।
एगसेदकेसो तं, थक्कविदं उप्फालिदूणं॥2॥
1896. तस्स करपउमम्मि चिय, हस्संताए य महाराणीए।
तं केसं पस्सित्ता, इत्थं विचिंतीअ राओ दु॥3॥
1897. जह सहजदाए किण्ह-केसा परिवट्टेज्ज सेदवण्णे।
तहेव जोवणादो हु, बुद्धावत्थाए सरीरं॥4॥ (तिअं)



एक बार अपने वर्षवृद्धिदिवस (जन्मदिन) के अवसर पर महाराज अशोक राजप्रासाद में महारानी रोहिणी के साथ अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे॥1॥ तभी अचानक महारानी रोहिणी की दृष्टि अपने पति महाराज अशोक के सिर पर आए एक सफेद बाल पर गयी। महारानी ने हँसते हुए वह श्वेत बाल उखाड़कर उस राजा के हस्त कमल पर रख दिया। उस केश को देखकर

1898. हरिद-पत्ताण पीदे, परिवट्टणं अंतकालं ताणं।
जह तह दंसावेदि य, किण्हाण सेदे जीवाणं॥5॥
1899. जह कलिगा सुविअसिदं, पुष्पं होच्चा पडेदि रुक्खादो।
पुण पक्कफलं तहेव, विवागयाले पुण्णफलं पि॥6॥
1900. सरीरेगे विणट्टे, पुण देह-पावण-मसुद्धजीवस्स।
पवट्टी होदि तह जह, णिसाए अणंतरं दिवसो॥7॥
1901. जावदु जलं सरिदाइ, जावदु रयणरासी सायरम्मि या।
पाणो देहे तावदु, करेज्ज चिय सगकज्जसिद्धिं॥8॥
1902. जो लोयम्मि विवित्तो, मरणपुव्वम्मि सो सगकल्लाणं।
करिदुं सक्कदि खयित्तु, भवकारणं सव्वकम्मं च॥9॥
1903. श्रेज्ज-मसंभवो जिण्ण-सहाविस्स चिय रोयमय-देहस्स।
सामग्गि-संगहणं पि, पावो तस्स पोसगस्स खलु॥10॥
1904. देहसुहं दिंता अवि, देहो णेव कया वि दु पुण्णसुही।
आउक्खीणे सो खलु, खयदि अक्क-करेहि ओसा व्व॥11॥

राजा ने इस प्रकार विचार किया; जिस प्रकार काले बाल सहजता से श्वेत वर्ण में परिवर्तित हो जाते हैं उसी प्रकार संसारी जीवों का शरीर यौवनावस्था से वृद्धावस्था रूप परिवर्तित हो जाता है॥2-4॥ जिस प्रकार हरे पत्तों का पीत वर्ण में परिवर्तन उनके अंतकाल को दर्शाता है उसी प्रकार जीवों के काले बालों का श्वेत में परिवर्तन उनके अंतकाल को दर्शाता है॥5॥ जिस प्रकार कलि, खिला हुआ पुष्प होकर पेड़ से गिर जाती है अथवा फल भी पककर वृक्ष से गिर जाता है उसी प्रकार विपाककाल में पुण्य-फल भी नष्ट हो जाता है॥6॥ जिस प्रकार रात्रि के बाद दिन होता है उसी प्रकार एक शरीर के नष्ट होने पर पुनः देह का प्राप्त करना अशुद्ध जीव की प्रवृत्ति होती है॥7॥ जब तक नदी में जल है, जब तक सागर में रत्नराशि है, देह में प्राण हैं तब तक अपने कार्य की सिद्धि करनी चाहिए॥8॥ जो लोक में विवेकवान् है वह मरण के पूर्व संसार के कारणभूत सर्व कर्म क्षयकर अपना कल्याण करने में समर्थ होता है॥9॥ जीर्ण स्वभावी, रोगमय इस शरीर की स्थिरता असंभव है। इसकी पोषण सामग्री का संग्रह करना भी पाप है॥10॥ देह को सुख देते हुए भी वह देह कभी भी पूर्ण सुखी नहीं होती। वह आयु के क्षीण होने पर उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जैसे सूर्य की किरणों से ओस की बूंद नष्ट हो जाती है॥11॥

1905. गगणम्मि इंद्रधनुं व, मेहोव्व चवला व इंद्रजालं वा
खणधंसी हु सरीरं, इंदीवरदलगदणीरं व॥12॥
1906. बहिरम्मि इमो देहो, कंतिवंतो पडिब्भासदि रयणं वा
रयणं उहयभागम्मि, कंतिवंतं णवरि देहो ण॥13॥
1907. पुध पुध कुणदि पवट्टिं, बहिअंतरेसुं जो को वि पुरिसो।
सो कहं णेव दुट्टो, कुडिलो वक्को अहोगामी॥14॥
1908. भोयेसु कसायेसुं, पावेसुं लीणो दुट्टो जो सो।
इमादु विरत्त-सिट्टो, विवित्तो कल्लाणजोग्गो य॥15॥
1909. को णो जाणदि जीवो, णासवंता दु पंचिंदिय-भोया।
तह वि मोही दु पुण पुण, भुंजदि दुग्गइ-हेदु-भोया॥16॥
1910. मज्जदि मलिण-जलं णो, मलं जह मलिणभायणवत्थाणं।
मालिण्णं भोगेहिं, मणं कहं होदि तह सुद्धो॥17॥
1911. रत्तेण णो जह धुवदि, रत्तरंजिदपडो कत्थ वि कया वि।
तह भोया भुंजित्ता, सक्कदि को सिवसुहं लहिदुं॥18॥

यह शरीर आकाश में इंद्रधनुष, बादल व बिजली के समान, इंद्रजाल या कमल के दल पर जलबिंदु के समान क्षणध्वंसी है॥12॥ बाहर से यह शरीर रत्न के समान कांतिमान् प्रतिभासित होता है। विशेषता यह है कि रत्न दोनों ओर से कांतिमान् होते हैं किंतु देह ऐसी नहीं है॥13॥ जो कोई भी पुरुष बाह्य व अंतरंग में पृथक्-पृथक् प्रवृत्ति करता है वह दुष्ट, कुटिल, वक्र व अधोगामी कैसे नहीं होता? अर्थात् होता ही है॥14॥ जो भोगों, कषायों व पापों में लीन है वह दुष्ट है। इससे जो विरक्त है वह शिष्ट, विवेकी और कल्याण के योग्य है॥15॥ कौन सा जीव नहीं जानता कि पंचेन्द्रिय भोग नाशवान् हैं तथापि मोही जीव पुनः पुनः दुर्गति के हेतुभूत भोगों को भोगता है॥16॥ जिस प्रकार मलिन जल, मलिन बर्तन वा वस्त्र के मल को साफ नहीं कर सकता उसी प्रकार से चित्त की मलिनता भोगों से किस प्रकार शुद्ध हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती॥17॥ जिस प्रकार रत्तरंजित वस्तु को रत्न से कभी भी, कहीं भी धोया नहीं जा सकता उसी प्रकार भोगों को भोगकर मोक्ष सुख प्राप्त करने में कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई समर्थ नहीं हो सकता॥18॥

1912. पंचिंदिय भोया खलु, पणविह-संसारकारणं णिच्चं।
जाणिय ताण सरूवं, मुमुक्खुणा उज्झिदव्वा ते॥19॥
1913. णेव भुंजंति भोया, णवरि आउ-पहुदि-पाणं ते किण्णु।
जीवा णंति णो भेयणाणरहिद-मिच्छाइट्ठीव॥20॥
1914. सरिदाहि सायरोव्व य, इंधणेण अग्गीव तिप्पदि णेव।
जीवो अणंतवारं, वर-भोया अवि भुंजिदूणं॥21॥
1915. जलमंथणेण घिदं व, तहा सिकया-पेल्लणेण तिल्लं व।
सुमोव्व बीअ-ववणेण, खे भोयेहि णो अप्पहिदं॥22॥
1916. अभव्वस्स संसारो, अंतहीणो खलु अणंत-गगणं व।
णो को वि खयिदुं खमो, अणंत-दुक्खं भोगिजणाण॥23॥
1917. सीयल-सुंदर-मणहर-सुगंधिद-सादिट्ठ-रुइगर-विसं व।
आगरिसग-पंचिंदिय-भोया दु अप्पघादगा अवि॥24॥
1918. पंचिंदिय-विसयं खलु, उज्जेज्ज सहावं जाणिअ ताणं।
करेज्ज णर-पज्जायं, धणं कुणंतो घोरतवं॥25॥

पंचेन्द्रिय भोग नित्य ही पाँच प्रकार के संसार का कारण हैं। उनके स्वरूप को जानकर मोक्ष के इच्छुक जनों को वे भोग छोड़ देने चाहिए॥19॥ जीव भोगों को नहीं भोगते अपितु वे भोग आयु आदि प्राणों को भोगते हैं; किन्तु जीव इसे ऐसे ही नहीं जानते जैसे मिथ्यादृष्टि जीव भेदज्ञान को नहीं जानते॥20॥ जैसे नदियों से सागर और ईंधन से अग्नि संतुष्ट नहीं होती वैसे ही जीव अनंत बार उत्कृष्ट भोगों को भोगकर भी संतुष्ट नहीं होता॥21॥ जैसे जलमंथन से घृत, बालू को पेलने से तेल और आकाश में बीज वपन करने से पुष्प प्राप्त नहीं हो सकता उसी प्रकार भोगों से आत्महित नहीं हो सकता॥22॥ जिस प्रकार अनंत आकाश के समान अभव्य जीव का संसार अंतहीन होता है उसी प्रकार भोगीजनों के दुःख भी अनंत होते हैं, उनके दुःखों का क्षय करने में कोई भी समर्थ नहीं होता॥23॥ पंचेन्द्रियभोग शीतल, सुंदर, मनोहर, सुगंधित, स्वादिष्ट व रुचिकर विष के समान आकर्षक होते हैं। ये आत्मा का घात करने वाले होते हैं॥24॥ पंचेन्द्रिय विषयों को उनका स्वभाव जानकर छोड़ देना चाहिए। घोर तप करते हुए नर पर्याय को धन्य करना चाहिए॥25॥

1919. दीवजोदिं गहेदुं, तिव्वकंखाजुद-विआउल-सिसुव्वा।
अण्णाणी कुव्वंतो, पुण्ण-कज्जं जायदि भोयं॥26॥
1920. तिव्वकंखाए गहिद-अयसत्थेहि पत्तकट्टबालोव्वा।
जाणिय सहाव-मुज्झदि, भोयाण कडुग-फलं भुंजिय॥27॥
1921. भव्वुल्लो किं णेव दु, आमुहेसि विणस्सरं भोयमिमं।
पस्स मोहमाहप्पं, तस्स पहावेण भमदि भवे॥28॥ (जुम्मं)
1922. सग-उच्छिट्ठं भुंजदि, जह बालो साणो अत्थि अहवा।
तह हु दिग्घसंसारी, भुंजदि भोयं आसत्तीइ॥29॥
1923. मए पंचिंदिय-सुहं, भुंजिदं बहुवारं पज्जायेसु।
किण्णु णो हं सक्केज्ज, सुद्धप्पणंतसुहं लहिदुं॥30॥
1924. णहस्सवगाहणत्तं, गदि-ठिदि-हेदुत्तं धम्मिदराणं।
यालस्स तह वट्टणं, इत्थं दव्वाण सहावोव्वा॥31॥

जिस प्रकार बालक दीपक की ज्योति पकड़ने के लिए तीव्र आकांक्षा से युक्त व व्याकुल होता है उसी प्रकार अज्ञानी जीव पुण्यकार्य करते हुए भोगों की याचना करता है। अर्थात् दीपक की ज्योति हाथ जलाएगी, यह न जानने वाला बालक जिस प्रकार उसे पकड़ने के लिए व्याकुल होता है उसी प्रकार ये भोग आत्मा का घात करने वाले हैं यह न जानने वाला अज्ञानी भी उन्हें पाने के लिए व्याकुल होता है॥26॥ जिस प्रकार कोई बालक तीव्र आकांक्षा से ग्रहण किए गए लौह अस्त्रों से स्वयं का घात हो जाने से कष्ट प्राप्त करता है, पुनः उनका स्वभाव जानकर उन्हें छोड़ देता है उसी प्रकार हे भव्य जीव! भोगों के कटुक फल को भोगकर तुम उन नाश को प्राप्त होने वाले भोगों को क्यों नहीं छोड़ते? अहो! मोह का माहात्म्य तो देखो, उसके प्रभाव से जीव संसार में परिभ्रमण करता है॥27-28॥ जिस प्रकार बालक अपने उच्छिष्ट (वमनादि) को ग्रहण करता है, श्वान अस्थि चबाकर अपने मुख से निकले रक्त को यह समझकर आनंदित हो लेता है कि यह रक्त उस अस्थि में से निकल रहा है उसी प्रकार दीर्घसंसारी आसक्तिपूर्वक भोगों को भोगता है॥29॥ अहो! मैंने विभिन्न पर्यायों में बहुत बार पंचेंद्रिय सुखों को भोगा किन्तु मैं अपनी शुद्धात्मा के अनंत सुख को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सका॥30॥ आकाश द्रव्य का स्वभाव अवगाहनत्व, धर्मद्रव्य का गतिहेतुत्व, अधर्म द्रव्य का स्थितिहेतुत्व और काल द्रव्य का वर्तना है। इसी प्रकार द्रव्यों के स्वभाव के समान भोगों का स्वभाव भी संसार की वृद्धि करना और कर्मों का बंध कराना है। वे दुःख, दुर्गति व अप्रिय पाप रूप फल देते हैं॥31-32॥

1925. भोयाणं सहावो वि, संसार - वड्डुगो कम्म-बंधगो।
देज्ज पावफलरूवं, दुक्खं दुग्गदिं दुप्पियं च॥32॥ (जुम्मं)
1926. चिंतेदि भव-सरूवं, पुण पुण भूवदी मंदकसायेण।
भवो जालोव्व भासमि, भासीअ सुहसदणं व पुरं॥33॥
1927. मोहीणं संसारो, सग्गोव्व सुपुण्णदायगो सुहदो।
कारागारोव्व भेदविण्णाणीणं सद्धिटीण॥34॥
1928. अणादीदो जीवो दु, भमदि मोहाइ - णिमित्तेण पुण पुण।
अत्थेसुं सोक्खं णो, अचेयणेसु चेयणत्तं व॥35॥
1929. मम जणगो जणणी वा, पुत्ता पुत्ती धण-धण्णं पहुदी।
हं सुंदर-सुभासगो, एरिसो मण्णदि अण्णाणी॥36॥
1930. अण्णा सव्व - पदत्था, सगप्पादो खलु सव्वदा भिण्णा।
चिंतदि सहज - भावेण, आसण्ण - भव्वुल्लो णियमा॥37॥
1931. अणादीदो इह भवे, करदि जम्मं मरण-मणंतवारं।
मरिसदि बहु - किच्छं सय, जाणेज्जा मोह - माहप्पं॥38॥

इस प्रकार राजा अशोक पुनः-पुनः कषायों की मंदतापूर्वक संसार के स्वरूप का चिंतन करते हैं। वे विचार करते हैं अहो! जो संसार पहले मुझे सुख का सदन प्रतीत होता था आज वह मुझे अग्नि की ज्वाला के समान प्रतिभासित हो रहा है॥33॥ मोही जीवों के लिए संसार स्वर्ग के समान सुखद व पुण्यदायक है किन्तु सम्यग्दृष्टि जीवों व भेदविज्ञानियों के लिए यह संसार कारागृह के समान है॥34॥ मोहादि के निमित्त से यह जीव अनादिकाल से इस संसार में पुनः-पुनः परिभ्रमण कर रहा है। जैसे अचेतन पदार्थों में चेतनत्व गुण नहीं पाया जाता उसी प्रकार इस संसार में सुख नहीं है॥35॥ मैं सुंदर हूँ, अच्छा वक्ता (मधुरभाषी) हूँ, ये पिता-माँ-पुत्र-पुत्री मेरी हैं, धन-धान्यादि मेरा है; जो ऐसा मानता है वह अज्ञानी है॥36॥ अन्य सभी पदार्थ अपनी आत्मा से सर्वदा भिन्न हैं आसन्न भव्य जीव नियम से सहजभाव से ऐसा चिंतन करता है॥37॥ अनादिकाल से इस संसार में यह जीव अनंत बार जन्म-मरण करता है, सदैव बहुत दुःखों को सहता है, यह सब मोह का माहात्म्य जानना चाहिए॥38॥

1932. भो विण्णो! मम सरिसो, किं होज्ज रंजायमाणो भवम्मि?।
ण जहत्थसुहस्स कणं, वरं कंखसि अणंतसुहं पि॥39॥
1933. सुद्धप्पस्स सहावो, मइ लहिदव्वो सम्म-पुरिसट्ठेण।
अणंताण अक्ख-सुहं, अणू व्व अप्पसुहहुत्ते अवि॥40॥
1934. णादुं सगसरूवं ण, सक्केदि मिच्छत्तवसेण जीवो।
जह तह जम्मंध-णरो, वत्थूण विहिण्ण-वण्णं णो॥41॥
1935. मोहुदयेण स-सरूव-मजाणंतो परत्थं मण्णदि तह।
अप्पुल्लो दु पित्त-जर-पीडिदस्स दुद्ध-कडुगं जह॥42॥
1936. सहसा एगभूवदी, तदा भंजदि तस्स चिंतण-धारां।
उवहारं दायंतो, पुच्छदि किं चिंतेसि? भद्दो॥43॥
1937. किं णो णंदसि? राओ!, किं तव देहे को पीडा रोयो?।
किं असुहवियारो? वा, अणुग्गहित्तु कह तव कट्ठं॥44॥(जुम्मं)
1938. मंद-मंदं हसंतो, भासदि णेव को वि पीडा चिंता।
उवदिसिदं केसेणं, परिवट्ठणं अत्थ-सहावो॥45॥

अहो ज्ञानी! मेरे समान तुम इस संसार में रंजायमान क्यों होते हो? इस संसार में तो यथार्थ सुख का कण भी नहीं है जबकि तुम अनंतसुख की वांछा करते हो॥39॥ मुझे सम्यक् पुरुषार्थ से शुद्धात्मा के स्वभाव को प्राप्त करना चाहिए। आत्मसुख के सामने अनंत जीवों का इंद्रिय सुख भी अणु के समान है॥40॥ मिथ्यात्व के वशीभूत होकर जीव उसी प्रकार अपने स्वरूप को जानने में समर्थ नहीं होता जैसे जन्म से अंधा व्यक्ति वस्तुओं के विभिन्न वर्णों को जानने में समर्थ नहीं होता॥41॥ जिस प्रकार पित्त ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को मिष्ट दुग्ध भी कड़वा प्रतिभासित होता है उसी प्रकार मोह के उदय से जीव अपने स्वरूप को न जानता हुआ पर को अपना मानता है॥42॥ तभी अचानक एक राजा उनके चिंतन की धारा तोड़ देते हैं एवं उपहार देते हुए पूछते हैं कि हे भद्र! आप क्या विचार कर रहे हैं? हे राजन्! आप प्रसन्न क्यों नहीं होते, क्या आपके शरीर में कोई पीड़ा या रोग है अथवा कोई अशुभ विचार (या चिंता) है कृपा कर आप अपना कष्ट कहिये॥43-44॥ मंद मंद मुसकराते हुए राजा अशोक कहते हैं कि न तो मुझे कोई पीड़ा है और न कोई चिंता। श्वेत केश ने मुझे उपदेश दिया है कि परिवर्तन प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव है॥45॥

1939. जलबुब्बुदोव्व देहो, विणस्सरो विचिंतेमि भो मित्तं!।
भोया रोय-कारणं, पावबंधगा भववड्डगा॥46॥
1940. संसारो अणुऊलो, भासदि तावदु जावदु पुण्णुदयो।
पावुदये पडिऊलो, पत्तेयं जीवस्स सया हि॥47॥
1941. को जाणदि देहाउं, देहट्टिदिं तं कुणमु कल्लाणं।
भोगुवभोग-वत्थूसु, रच्चणं मे सहावो णत्थि॥48॥
1942. रायेगेण भासिदं, ण चिंतेज्ज एरिस-मिह अवत्थाइ।
णेव वेरग्ग-समयो, तं पयं पालेज्ज करुणाइ॥49॥
1943. तदा रोहिणी भणदे, जहवि विआरो अइसेट्टो तुज्झं।
पुणो संजमं गहेज्ज, किच्चा रज्जसंचालणं दु॥50॥
1944. णिवेदंते सगज्जणग-पदेसु संताणा खेदचित्तेण।
अहो पिदू! अप्पवयी, तुमं विणा अणाहोव्व वयं॥51॥
1945. रज्जं संचालिदुं ण, को वि सक्को णेउण्णेणं पिदू!।
तुमं सव्वाण भयवो, दया-खमाइ-जुत्तत्तादो॥52॥

अहो मित्र! मैं चिंतन कर रहा हूँ कि यह देह पानी के बुलबुले के समान नश्वर है। भोग रोग का कारण हैं, पाप का बंध व संसार की वृद्धि कराने वाले हैं॥46॥ जब तक पुण्य का उदय है तब तक प्रत्येक जीव को यह संसार अनुकूल प्रतिभासित होता है और जब तक पाप का उदय है तब तक यह सदा ही प्रतिकूल प्रतिभासित होता है॥47॥ भोग-उपभोग की वस्तुओं में रंजायमान होना मेरा स्वभाव नहीं है। देह आयु वा देह की स्थिति को कौन जानता है अतः अब मुझे अपना कल्याण करना चाहिए॥48॥ तब राजा ने कहा-हे महाराज! अभी इस अवस्था में आपको इस प्रकार का चिंतन नहीं करना चाहिए। यह वैराग्य का समय नहीं है अतः करुणापूर्वक प्रजा का पालन कीजिए॥49॥ तभी रोहिणी कहती है कि यद्यपि आपका विचार अतिश्रेष्ठ है किंतु राज्य संचालन कर पुनः संयम ग्रहण करना॥50॥ तभी उनके पुत्र खेद चित्त से अपने पिता के चरणों में निवेदन करते हैं अहो पिता श्री! हम अल्पवयी हैं, आपके बिना हम अनाथ के समान हो जाएँगे॥51॥ हे पिता श्री! निपुणता से राज्य का संचालन करने में अभी कोई भी समर्थ नहीं है। दया, क्षमा आदि से युक्त होने से आप सभी के लिए भगवान् के समान हैं॥52॥

1946. अण्ण - मित्त - रायादी णिवेदंते बद्धकरंजलीए।
भो राओ! तुमं विणा, जीवण-णिरट्टगं अम्हाण॥53॥
1947. णीरं विणा सरिदा व्व, रयणं विणा सिंधू व्व अम्हाणं।
जीवणं करेहि विणा, रविं व जुण्हं विणा ससीव॥54॥ (जुम्मं)
1948. ठिदीए विणा मेरू, सीयलत्तं विणा जह णीरं खलु।
गंधेण विणा पुप्फं, महुरिमाए विणा इक्खू य॥55॥
1949. णिग्घत्तं विणा घिदं, णयणं विणा मुहं च जोदिं तां।
पउमेहि विणा सरो य, परक्कमेणं विणा सीहो॥56॥
1950. विहवेण विणा इंदो, अणंतचउक्कं विणा सव्वण्हू।
चक्केण विणा चक्की, संजमेण विणा सिवमगो ॥57॥
1951. सम्मत्तेणं विणा दु, सण्णाणं तं विणा भेयणाणं।
तवं विणा अहक्खयो, सावगो विणा दाण-पूयं॥58॥
1952. तह लोए अम्हाणं, ठिदी तुमं विणा भो महारायो।
करुणासायर-देवो, अवहेडेज्ज इमं वियारं॥59॥ (पंचगं)
1953. भो णिवो! पस्ससु तत्थ, विहग-सावा चुणणे मिदु-चंचूइ।
विहीणसत्तीए अवि, पयासरदो सगजीवणस्स॥60॥

अन्य मित्र राजा आदि हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं हे राजन्! जल के बिना नदी, रत्न के बिना रत्नाकर, किरणों के बिना सूर्य और ज्योत्सना के बिना चंद्रमा के समान आपके बिना हमारा जीवन निरर्थक है॥53-54॥ स्थिति के बिना मेरु, शीतलता के बिना जल, गंध के बिना पुष्प, मधुरता के बिना इक्षु दंड, स्निग्धता के बिना घी, नयनों के बिना मुख, ज्योति के बिना नयन, कमलों के बिना सरोवर, पराक्रम के बिना सिंह, वैभव के बिना इंद्र, अनंत चतुष्टय के बिना सर्वज्ञ, चक्र के बिना चक्रवर्ती, संयम के बिना मोक्षमार्ग, सम्यक्त्व के बिना सम्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान के बिना भेदविज्ञान, तप के बिना पापों का क्षय एवं दान व पूजा के बिना श्रावक के समान; आपके बिना लोक में हमारी स्थिति है। हे महाराज! हे करुणा सागर देव! इस विचार को छोड़ दो॥55-59॥ हे राजन्! वहाँ देखो, पक्षी के बच्चे शक्ति से हीन होने पर भी अपने जीवन के लिए अपनी कोमल चोंच से दाना चुनने में प्रयासरत हैं॥60॥

1954. णियुवायं कुणंति सयमेव परामस्सादीणं सव्वा।
जीवा आवसियं णो, किं चिंतिदेण रज्जादीण॥61॥
1955. पुव्वकम्मोदयेणं, लहदि अणुऊल-पडिऊल-णिमित्तं।
संपइ पुरिसट्टेणं, सुहं दुहं हाणिं लाहं च॥62॥
1956. सव्ववत्तं सुणिय बहिदस्सं पस्सिय विरागं चिंतित्तु।
संबोहीअ सग-सहं, अप्पजणा इमेहि सदेहि॥63॥
1957. ववहारजगे सव्वा, सगजणा भासते इट्ठरूवा।
पुण्णोदयेणं तत्थ, सुहं संति-मणुभवदि जीवो॥64॥
1958. पावोदयम्मि सव्वा, अरीव कट्ठप्पदायगा तदा या
मरणं पि पियं भासदि, इह लोए सगजणादो पुण॥65॥ (तिअं)
1959. देह-सुंदरो सुहदो, भासदि पुण्णोदये इट्ठरूवो।
पावोदयम्मि सो चिय, दुहदो अणिट्ठरूवो होदि॥66॥
1960. भोया भुजंगसरिसा, णिच्छयेणं णाणी मुणंति सया।
मूढो जीवो सुहदा, सुहिदयारी सस्सदा किण्णु॥67॥

सभी जीव स्वयं ही अपना उपाय कर लेते हैं। उनके लिए सलाह आदि की कोई आवश्यकता नहीं। तब राज्य आदि की चिंता करने से क्या लाभ?॥61॥ पूर्व कर्म के उदय से जीव अनुकूल व प्रतिकूल निमित्त प्राप्त करता है एवं वर्तमान में पुरुषार्थ से सुख, दुःख, हानि, लाभ को प्राप्त करता है॥62॥ इस प्रकार सर्व वार्ताओं को सुनकर व बाह्य दृश्यों को देख वैराग्य का चिंतन कर राजा अशोक ने अपनी सभा व आत्मीयजनों को इन शब्दों से संबोधित किया—व्यवहार जगत् में सभी आत्मीयजन इष्ट रूप प्रतिभासित होते हैं। पुण्य के उदय से जीव सुख-शांति का अनुभव करता है तथा पाप के उदय में सभी जन शत्रु के समान कष्टदायक प्रतिभासित होते हैं। उस पाप के उदय में इस लोक में स्वजनों से भी अधिक मृत्यु प्रिय लगती है॥63-65॥ पुण्य के उदय में शरीर सुंदर, सुखद व इष्टरूप प्रतिभासित होता है और पाप के उदय में वह ही शरीर दुःखद व अनिष्टरूप होता है॥66॥ ज्ञानीजन भोगों को निश्चय से सदा सर्प के समान मानते हैं किन्तु मूर्ख जीव भोगों को सुखद, हितकारी और शाश्वत मानते हैं॥67॥

1961. मिच्छत्तेणं जीवो, अणादीदु परिभमेदि संसारे।
जम्म-मरणं कुणंतो, लहदि बहुदुहं कम्मफलेण॥68॥
1962. भासिदो मोक्खमग्गो, अप्पहिदत्थरूवो जिणवरेहिं।
सो मग्गो बेविहो दु, ववहार-णिच्छय-भेयादो॥69॥
1963. णिच्छयमोक्खमग्गो य, गहिज्जेदि दु सयलमहव्वदीहिं।
ववहाररयणत्तयं, गहंति ते तं गहिदुं किण्णु॥70॥
1964. समणोवासग-धम्मा-वेक्खाइ दुविहो ववहारधम्मो।
थूलाहचागरूवा, ससत्तसीला सावग-वदा॥71॥
1965. उवासय-धम्मो खमो, होदुं मोक्खकारणं परोक्खेण।
पच्चक्खेणं दु मोक्ख-कारणं समण-धम्मो तहा॥72॥
1966. ण पालिदो मए सयल-पाव-चागरूवो य समणधम्मो।
अणादीदु तं लोए, परिभमेमि दुहं भुजंतो॥73॥
1967. अज्जं पुण्णुदयेणं, रयणत्तय-ग्रहण-जोग्गावसरो या
लहिदो मइ तं अहुणा, सग-कल्लाणं च करिस्सामि॥74॥

मिथ्यात्व के वशीभूत हो जीव अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। कर्म के फलस्वरूप जन्म-मरण करते हुए जीव बहुत दुःखों को प्राप्त करता है॥68॥ जिनवरों के द्वारा आत्महितार्थ रूप मोक्षमार्ग कहा गया है। वह मार्ग व्यवहार व निश्चय के भेद से दो प्रकार का है॥69॥ सकल महाव्रतियों के द्वारा निश्चय-मोक्षमार्ग ग्रहण किया जाता है किन्तु उस निश्चय-मोक्षमार्ग को ग्रहण करने के लिए वे व्यवहार रत्नत्रय ग्रहण करते हैं॥70॥ श्रमण धर्म और श्रावक धर्म की अपेक्षा से व्यवहार धर्म दो प्रकार का होता है। सप्त-शील सहित एवं स्थूल पाप के त्याग रूप श्रावक व्रत होते हैं॥71॥ उपासक या श्रावकधर्म परोक्ष रूप से मोक्ष का कारण होने में समर्थ है तथा श्रमणधर्म प्रत्यक्ष से मोक्ष का कारण है॥72॥ अहो! मैंने सकल पाप के त्याग रूप श्रमणधर्म का पालन नहीं किया अतएव अनादिकाल से दुःख भोगते हुए लोक में परिभ्रमण कर रहा हूँ॥73॥ आज पुण्य के उदय से मैंने रत्नत्रय के ग्रहण करने योग्य अवसर को प्राप्त किया है। अब मैं अपना कल्याण करूंगा॥74॥

1968. इह मम कुलमि पुव्वे, जणग-पिदामहाइ-पुव्वजेहिं चा
गहिय णिगगंथदिक्खं, पाविदो सस्सदप्प-विहवो॥75॥
1969. तुम्हे वि धम्ममग्गं, दुरुहेज्जा दु सगसत्तीए।
धम्मो खलु सासयसुह-हेदू सया सव्वभव्वाण॥76॥
1970. रज्जं संचालंतो, जदि होज्ज अणुइद-कज्जं मए तो।
लहिदं किच्छं कट्ठं, णिम्मलचित्तेण विणयेणं॥77॥
1971. खामेमि लहुभावेण, विणा खमाइ चित्त-वियडी ण खयदि।
खमंतु मे धारित्ता, वच्छलभावं मेत्तिभावं॥78॥ (जुम्मं)
1972. मरहेमि वि सव्वाणं, तुम्हेहि जहवि पालिदा णिवाणा।
तुम्ह कत्तव्वणिट्ठा, तह वि चित्तविअप्पं खयिदुं॥79॥
1973. संबोहदि सगपुत्ता, कत्तव्वं पालंतो पाउणंति।
पुण्णेणं उहयसुहं, पुण्णं विणा कज्जसिद्धी ण॥80॥
1974. सुसव्विकदिं सब्भदं च, कुलादीण मज्जादं साहिमाणं।
रक्खेज्ज चिय पालेज्ज, पयं पुत्तोव्व वच्छलेणं॥81॥

इस मेरे कुल में पूर्व में पिता, दादा आदि पूर्वजों ने निर्ग्रन्थ दीक्षा को ग्रहण कर आत्मवैभव को प्राप्त किया॥75॥ अहो! आपको भी अपनी शक्ति के अनुसार धर्म मार्ग पर आरूढ़ होना चाहिए। सभी भव्यजीवों के लिए धर्म शाश्वत सुख का हेतु है॥76॥ राज्य का संचालन करते हुए यदि मुझसे कोई अनुचित कार्य हुआ हो, मेरे कारण किसी ने कष्ट व दुःख प्राप्त किया हो तो निर्मल चित्त से विनयपूर्वक लघुभाव से मैं क्षमायाचना करता हूँ; क्योंकि बिना क्षमा के चित्त की विकृति (मनोविकार) नष्ट नहीं होती। अतः आप सभी वात्सल्य व मैत्री भाव धारण कर मुझे क्षमा करें॥77-78॥ यद्यपि आप सभी ने राजा की आज्ञा का पालन किया, आप कर्तव्यनिष्ठ हैं तथापि आपके चित्त के विकल्प की शान्ति के लिए मैं आप सभी को क्षमा करता हूँ॥79॥ राजा अशोक अपने कर्तव्य का पालन करते हुए पुनः अपने पुत्रों को संबोधित करते हैं कि जीव पुण्य से उभय (लौकिक व पारमार्थिक) सुख प्राप्त करता है। पुण्य के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती॥80॥ अहो पुत्र! संस्कृति, सभ्यता, कुल आदि की मर्यादा व स्वाभिमान की सदैव रक्षा करना। प्रजा का वात्सल्यपूर्वक पुत्रवत् पालन करना॥81॥

1975. पयाए उण्णदीए, रज्जुण्णदी ताए जं रायस्स।
पयाइ विणा रायस्स, ठिदी संभवो णेव कयावि॥82॥
1976. तारिगाहि विणा ससी, मिअंगेणं विणा य सव्वरी जह।
पउमेहिं विणा सरो, जलासयेणं विणा गामो॥83॥
1977. तह राय-मंति-किलाहि, तहा कोस-देस-सेणा-मित्तेहि।
इमेहि सत्तंगेहिं, विणा णेव सोहदे रज्जं॥84॥ (जुम्मं)
1978. भव-सरीर-भोयादो, विरज्जिय धरेज्ज दियंवर-दिक्खं।
सगकल्लाणाय पुणो, कुलमज्जादाणुसारेणं॥85॥
1979. पिदु-वयणाणि सुणिच्चा, सव्वपुत्तेहि णिवेदिदं पुज्जो!।
भोयरोयमयो दुक्खमयो जदि असार-संसारो॥86॥
1980. किं देज्जा रज्जमिदं, अम्हाणं संचालेदुं हु तदा।
करिदुमप्पकल्लाणं, तए सह वयं भावणा अवि॥87॥ (जुम्मं)
1981. हे पढमगुरू-जणगो!, देज्ज सिवपहे वड्ढिदुमासीसं।
णिय-सत्त-जेट्ठ-सुदाण, कहदि पस्सित्ता वेरग्गं॥88॥
1982. भो पुत्त-लोयपालो, रज्जं णो कंखंति अग्गजा तवा।
वेरग्गपुण्णत्तादु, तम्हा संगच्छेज्ज रज्जं॥89॥ (जुम्मं)

प्रजा की उन्नति से राज्य की उन्नति और राज्य की उन्नति से राजा की उन्नति होती है। प्रजा के बिना राजा की स्थिति कभी भी संभव नहीं है॥82॥ जिस प्रकार तारिकाओं के बिना चंद्रमा, चंद्रमा के बिना रात्रि, कमलों के बिना सरोवर और जलाशय के बिना गाँव सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार राजा, मंत्री, किला, कोष, देश, सेना व मित्र इन सात अंगों के बिना राज्य सुशोभित नहीं होता॥83-84॥ अहो! पुनः संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर कुलमर्यादा के अनुसार अपने कल्याण के लिए दिगंबर दीक्षा को धारण करना॥85॥ अपने पिता के वचन सुनकर सभी पुत्रों ने निवेदन किया कि हे पूज्य! यदि भोग रोगमय हैं, दुःखमय हैं, यदि संसार असार है तो आप संचालन के लिए यह राज्य हमें क्यों दे रहे हैं? आपके साथ आत्मकल्याण करने की हमारी भी भावना है॥86-87॥ हे प्रथम गुरु पिता श्री! हमें शिवपथ पर बढ़ने का आशीष प्रदान करें। पुनः अपने सात ज्येष्ठ पुत्रों के सम्यक् वैराग्य को देखकर राजा अशोक कहने लगे हे पुत्र लोकपाल! तुम्हारे बड़े भाई वैराग्य से पूरित होने के कारण राज्य को नहीं चाहते अतः तुम राज्य को स्वीकार करो॥88-89॥

1983. चरियमोहुदयेण, सगसामिं णिरुंभिदुं करीअ जदणं।
पसरीअ समायारो, देसे सुक्कवणे अग्गीव॥90॥
1984. मोहेण रज्ज-सहाइ, परिदेवंता आकंदंता तह।
सव्व-पयाजणा तदा, आगच्छीअ चिय रोदंता॥91॥
1985. अहो भयवदो! राओ!, तुमं विणा अणाहोव्व होज्ज वयं।
तुज्झ छत्तछायाए, हि णिवसेदुं इच्छाम पहू!॥92॥
1986. पवाहिदस्सुं पस्सिदु - मसोग - महाराय - विजोग - समये।
अक्को वि णो समत्थो, पच्छिमे गच्छिदुं तप्परो॥93॥
1987. भावि-मुणि-दंसणाय हु, आगच्छिदुं विआउलो मिअंगो।
रुक्खादो पडंताणि, सुमपत्ताणि ताण अस्सुं व॥94॥
1988. अण्णजलं आमुहिदं, सोगाउल-हय-गयाइ-पसूहिं पि।
कयाइ जणा पसण्णा, कयाइ दुही विआउल-मणा॥95॥
1989. कयाइं तच्चणाणी, अप्पसंसारी पसण्णा दुही वि।
तिदिय-मिस्सट्ठाणं व, तदा राय-विरागुदयादो॥96॥

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से तब सभी ने अपने स्वामी को रोकने का प्रयास किया। महाराज अशोक के राज्य त्याग का समाचार शुष्क वन में अग्नि के समान समस्त देश में फैल गया॥90॥ तब मोह के वशीभूत सभी प्रजाजन विलाप करते, क्रंदन करते व रोते हुए राजसभा में आए॥91॥ हे भगवन्! हे राजन्! आपके बिना हम अनाथ हो जाएँगे। हे प्रभु! हम आपकी ही छत्रछाया में रहना चाहते हैं॥92॥ महाराज अशोक के वियोग के समय सूर्य भी प्रजाजनों, परिजनों व पुरजनों के अश्रु देखने में समर्थ नहीं था अतः वह भी पश्चिम की ओर जाने को तत्पर हुआ॥93॥ उस समय वृक्ष से गिरते हुए पुष्प व पत्ते ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो उनके आँसू ही गिर रहे हों। भावी मुनिराज के दर्शन हेतु आने के लिए तब चंद्र भी व्याकुल हो रहा था॥94॥ शोकाकुल अश्व व हाथियों आदि पशुओं ने भी अन्न-जल छोड़ दिया था। कितने लोग महाराज के इस निर्णय से प्रसन्न थे तो कितने ही दुःखी थे और कितनों के मन आकुल-व्याकुल हो गए थे॥95॥ जिस प्रकार तृतीय गुणस्थान सम्यक्मिथ्यात्व मिश्र रूप होता है, उस गुणस्थानवर्ती के परिणाम मिश्र रूप होते हैं उसी प्रकार राग वा विराग दोनों की मिश्र अवस्था रूप उदय से उस समय कितने ही तत्त्वज्ञानी, अल्पसंसारी प्रसन्न भी थे और दुःखी भी थे॥96॥

1990. वेरगिआ हरिसिदा, मुदिद-चित्ता आणंदिदा होज्जा।
क्लिण्णु मोही रायी य, दिट्टिगोयरा णिगाम-दुही॥१७७॥

भुजंग प्रयात छंद

1991. विणिककट्टवत्थुं च मुंचेदि पाणी,
सहावादु वत्थुं सुसेट्टं लहेदुं।
सुतोसाणुभूदी य सोक्खस्स णिच्चं,
भवं एअ-मुज्झित्तु दिक्खं गहेदु॥१७८॥

1992. तिलोए णियप्पस्स संपत्ति-सेट्टा,
विरज्जित्तु संसारभोयादु तम्हा।
सुआसण्ण-भव्वो य दिक्खं गहित्ता,
सया तप्परो होदि सुद्धप्प-झाणे॥१७९॥

वैरागी जन हर्षित, प्रसन्नचित्त व आनंदित हो रहे थे किन्तु मोही-रागी जीव अत्यंत दुःखी दिखाई दे रहे थे॥१७७॥ संसारी प्राणी श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त करने के लिए स्वभाव से ही निकृष्ट वस्तु को स्वतः छोड़ देता है। इसमें उसे नित्य संतोष व सुख की अनुभूति होती है। इसी प्रकार एक वैरागी को दीक्षा ग्रहण हेतु संसार को छोड़कर संतोष व सुख की अनुभूति होती है॥१७८॥ निज आत्मा का वैभव व संपत्ति तीनों लोकों में श्रेष्ठ है इसलिए ही आसन्नभव्य जीव संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर सदैव शुद्धात्म ध्यान में तत्पर होता है॥१७९॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में राजा अशोक के वैराग्य
का वर्णन करने वाला सत्रहवाँ नंद पूर्ण हुआ।

अट्टारसम-णंदो

1993. राय-असोगेणं सह, अण्णा वि गच्छीअ गहिदुं दिक्खं।
कुरुजंगलदेसस्स हु, गयणायपुर - णिअडारामं॥1॥
1994. पढम - बाल - बंभयारि - वासुपुज्ज - बारसम - तित्थयरस्स।
राजीअ समवसरणं, तत्थ उच्छाह-विरागेहिं॥2॥
1995. दूरादो पस्सित्ता, जिणधम्मसहं समवसरण-महवा।
भत्ति-रायेण सव्वा, हरिसिदा मंदकसायेणं॥3॥ (जुम्मं)
1996. चउहत्थबाहल्लजुद - इंदणीलमणीए समवसरणं।
अणुवम - अगाध - सुरयण - पव्वयोव्व य आगरिसिगं हु॥4॥
1997. विंसदिसहस्ससुरयण-खइद-सोवाण-मारुहिदुं सक्का।
सव्व-आबालवुड्ढा, पसु-पक्खी अंतोमुहुत्ते॥5॥



राजा अशोक के साथ सात पुत्र व अन्य राजा आदि भी दीक्षा ग्रहण करने के लिए कुरुजांगल देश की हस्तिनागपुर नगरी के निकट उपवन में गए॥1॥ वहाँ प्रथम बालब्रह्मचारी बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य भगवान् का समवसरण विराजित था। उत्साहपूर्वक, वैराग्यभाव से युक्त सभी जन भक्ति के अनुराग व मंदकषाय से जिनधर्मसभा व समवसरण को दूर से ही देखकर अति हर्षित हुए॥2-3॥

1998. चउदिसासु चउगोउर - दाराइसुंदरा रयणणिम्मिदा।
तत्थुहयपस्सभागे, पडि णिही अट्टोत्तरसया हु॥6॥
1999. चउसाला पणवेदी, अट्टभूमीओ जिणसमवसरणे।
अच्चंत-विहव-जुत्ता, जिणधम्मसहा मणोहरा हु॥7॥
2000. चउमाणत्थंभा चउ - दिसासु माणं खयेदुं समत्था।
तत्थ अंत - सिरि - मंडव - महीइ राइदो तित्थयरो॥8॥
2001. तिय - रयणमइ - पीढुवरि, सीहासणे वासुपुज्जो देवो।
बाल - अक्कोव्व - रत्तिम - वण्ण - संजुत्तो आरज्जो॥9॥
2002. रायअसोगेण तत्थ सुवदिदो सिरिवासुपुज्जसामी।
चउघादिकम्मरहिदो, अद्धणारीसरो जिणिंदो॥10॥
2003. तंब-वण्णी भव्वाण, णाणमत्तंडोव्व वासुपुज्जो या
अक्कोव्व अवहारगो, सया मिच्छत्तयंधयारं॥11॥
2004. अहो णाणदिवायरो!, सण्णाण - करं पसरेसि चित्तम्मि।
अक्को ताव - कारगो, भवसंतावणासगो णवरि॥12॥

चार हाथ बाहल्य युक्त इंद्रनीलमणि पर स्थित आकर्षक समवसरण ऐसा लग रहा था मानो अनुपम अगाध रत्नों का पर्वत ही हो॥4॥ आबाल-वृद्ध, पशु-पक्षी इत्यादि सभी रत्न खचित बीस हजार सीढ़ियों को अंतर्मुहूर्त में चढ़ने में समर्थ थे॥5॥ चारों दिशाओं में चार गोपुर द्वार थे; जो रत्ननिर्मित व बहुत सुंदर थे। वहाँ दोनों पार्श्व भाग में नवनिधि थीं और प्रत्येक निधि 108-108 थीं॥6॥ प्रभु के समवसरण में चार कोट, पाँच वेदियाँ व आठ भूमियाँ थीं। वह जिनेंद्रप्रभु की धर्मसभा अत्यंत वैभव से युक्त मनोहरा थी॥7॥ चारों दिशाओं में चार मानस्तंभ थे जो मान का क्षय करने में समर्थ थे। वहाँ अंतिम श्रीमंडप भूमि में श्रीतीर्थकरदेव राजित थे॥8॥ वहाँ तीन रत्नमयी पीठ पर सिंहासन पर बाल सूर्य के समान लाल वर्ण से युक्त आराध्य देव श्रीवासुपूज्य भगवान् विराजमान थे॥9॥ वहाँ राजा अशोक ने चार घातिया कर्मों से रहित, अर्द्धनारीश्वर जिनेंद्र श्री वासुपूज्य स्वामी की वंदना की॥10॥ ज्ञान सूर्य के समान ताम्र वर्ण वाले श्री वासुपूज्य भगवान् सदैव भव्यों के मिथ्यात्व रूपी अंधकार को हरण करने वाले हैं॥11॥ हे ज्ञान दिवाकर! आप चित्त में सम्यग्ज्ञान रूपी रश्मियों का प्रसार करते हो। अहो! सूर्य ताप कारक है किन्तु विशेषता यह है कि आप संसार ताप को नष्ट करने वाले हैं॥12॥

2005. मूले सीयल-सूरो, वरं उण्ह-पहा होदि णियमादो।
तावह - हारगो जिणो, सीयलो उहय - पयारेणं॥13॥
2006. रयणत्तय - सीयलत्त - महोरत्तिभेयेण विणा णाहो।
णिसाइ मिअंगो देदि, णिच्चं सीयल-जुण्हं किण्णु॥14॥
2007. तुज्झ णाम-मेत्तेणं, मिहिलाणरेसो होज्ज सुरपुज्जो।
कुणदि सुभावेहि थुदिं, वंदणीयो सुरासुरेहिं॥15॥
2008. तव पहाणो सिस्सो हु, बहुइड्ढिधारगो चउणाणजुदो।
जुगचरणकमलभमरो, मंदरो य गणहरो पढमो॥16॥
2009. सेट्ठधम्मधारगा य, गणेसण्णा, सेट्ठधम्ममुत्ती वि।
णमंति तुमं तं अंह वि, पणमामि पप्पोदुं धम्मं॥17॥
2010. वसुहाइ सुपुज्जं, वसुपुज्जसुदं वासुपुज्जं सुवंदे।
सहाव-पगासणाए, लहिदुं संपुण्ण धम्मफलं॥18॥
2011. अहो पढमबालजदिं, धम्मप्पवट्टगं सिरितित्थयरं।
सयलप्पगुणं लहिदुं, णमंसामि सयलपरमप्पं॥19॥

हे प्रभु! सूर्य मूल में शीतल होता है किन्तु उसकी प्रभा नियम से उष्ण होती है। हे जिनेन्द्र देव! आप पाप ताप का हरण करने वाले हैं और दोनों प्रकार से ही शीतल हैं॥13॥ चंद्रमा नित्य रात्रि में शीतल चाँदनी देता है किन्तु हे नाथ! आप दिन व रात्रि के भेद के बिना निरंतर रत्नत्रय की शीतलता प्रदान करते हो॥14॥ हे नाथ! आपके नाम मात्र से मिथिला नरेश पद्मरथ देवों के द्वारा पूज्यता को प्राप्त हुआ। जो शुभ भावों से जिन प्रभु की स्तुति करता है वह सुर व असुरों के द्वारा वंदनीय होता है॥15॥ हे प्रभु! आपके प्रमुख शिष्य प्रथम गणधर मंदर जो बहुत ऋद्धियों के धारक हैं, चार (मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यय) ज्ञान से युक्त हैं वे आपके युगल चरण कमल के भ्रमर हैं॥16॥ श्रेष्ठ धर्म के धारक व श्रेष्ठ धर्ममूर्ति अन्य गणधर भी आपको प्रणाम करते हैं अतः धर्म की प्राप्ति के लिए मैं भी आपको प्रणाम करता हूँ॥17॥ वसुधा पर पूज्य, वसुपूज्य के पुत्र, श्री वासुपूज्य भगवान् को अपने स्वभाव के प्रकटीकरण व संपूर्ण धर्मफल की प्राप्ति के लिए वंदन करता हूँ॥18॥ अहो प्रथम बालयति, धर्मप्रवर्तक, श्री तीर्थकरदेव, सकल परमात्मा को संपूर्ण आत्मगुणों की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ॥19॥

2012. सगभालम्मि तवचरण-रय-मण्णसामण्ण केवली धरिया।
सुद्धा मुणियालम्मि दु, पारसेणं अयसपिंडोव्व॥20॥
2013. गदरायं गददोसं, णमामि सुद्धगुणा लहिदुं पुण पुणा।
सव्वकम्मक्खयेदुं, जिणगुणरायेण सुभत्तीइ॥21॥
2014. विमलणाणसरिदाए, णाणं फुडदे तव दिव्वज्झुणिणा।
गणेसा व मराला य, आसण्णभवी अवगाहंति॥22॥
2015. तित्थयर-गिरीदो चउसंझासु पडिदा भव्वुत्थाणाय।
दिव्वज्झुणी दु गंगा, खालंता पावमलं वहदि॥23॥
2016. जिणवयं परमोसही, जम्म-जरा-मरण-वाहि-णासगं चा।
आसण्णभवी पिबंति, पीदीइ भवोवहिं तरिदुं॥24॥
2017. लोए विज्जंत - अण्ण - मिच्छातित्थं संसारवड्ढगं।
सिआवाय - जुत्त - धम्म - तित्थेण कल्लाणं कुणंति॥25॥
2018. जे के वि दंसंति तं, सुद्धगुणपुंजं णिम्मल-भावेहिं।
लहंति णरसुरविहूदि - मइरं बहुसुपुण्णरासिं चा॥26॥

मुनि काल में अन्य सामान्य केवली भी आपके चरण रज को अपने भाल पर धारण कर उसी प्रकार शुद्ध हो गए जिस प्रकार पारस मणि से लोहे का पिंड (स्वर्ण) शुद्ध हो जाता है॥20॥ वीतरागी व वीतद्वेषी जिनेन्द्रप्रभु को उनके गुणों के अनुराग से सर्व कर्मों के क्षय व शुद्ध गुणों की प्राप्ति के लिए पुनः-पुनः भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥21॥ आपकी दिव्यध्वनि रूपी निर्मल ज्ञान की सरिता में विशद ज्ञान प्रकट होता है जिसमें गणधर रूपी हंस व आसन्न भव्य जीव अवगाहन करते हैं॥22॥ तीर्थंकर रूपी पर्वत से पतित, भव्यजीवों के उत्थान के लिए, उनके पाप मलों को प्रक्षालित करती हुई दिव्यध्वनि रूपी गंगा चारों संध्याकालों में प्रवाहित होती है॥23॥ अहो! जिनवचन ही परम औषधि है जो जन्म-जरा-मृत्यु रूपी व्याधियों का नाश करने वाली है संसार रूपी सागर से पार होने के लिए आसन्न भव्य जीव प्रीतिपूर्वक उसका पान करते हैं॥24॥ लोक में विद्यमान अन्य मिथ्यातीर्थ नित्य ही संसार की वृद्धि करने वाले हैं; स्याद्वाद युक्त धर्मतीर्थ से ही जीव अपना कल्याण कर सकते हैं॥25॥ जो कोई भी भव्य जीव निर्मल भावों से, आप, शुद्ध गुणों के पुंज का दर्शन करते हैं वे शीघ्र ही नर व सुरों के ऐश्वर्य व बहुपुण्यराशि को प्राप्त करते हैं॥26॥

2019. तुज्झं दिव्वज्झुणी हु, अणक्खरी अणेगंतधम्मजुदो।
पडिदिणे चउसंझासु, णिस्सरदि अइसयपुण्णेणं॥27॥
2020. चउतीस-अदिसय-जुदो, वसुपाडिहेरेहि खइयलद्धीहि।
संपण्णे तं सक्को, दादुं चिय खयियदाणाइं॥28॥
2021. हे तिलोयणाहो! तव, धम्मसहाए णो जम्मं मरणं।
णो रोयो णो णिहा, णेव सोगादी णेव दुहं॥29॥
2022. णेव तव समवसरणे, इट्ठविओगो अणिट्ठसंजोगो।
वियलंगा मुच्छिदा ण, णेव वियलिंदिया असण्णी॥30॥
2023. णो कया वि आहारो, णेव णिहारो ण कूर-परिणामा।
भय-दुगुंछा सोग-रदि-कुभावा खयंति दंसणेण॥31॥
2024. अइसयपुण्णजुदं अट्टारस-दोस-रहिदं जम्ममुक्कं।
सव्वदोसक्खयेदुं, णमंसामि वासुपुज्ज-जिणं॥32॥
2025. तव वंदणेण खयंति, णिधत्तिणिकाइदकम्मं सव्वं पि।
सामण्ण-पाव-कम्मं, किं ण तदा जिणिंदभत्तीइ॥33॥
2026. खंडिज्जेदि णायोव्व, गिरी जदि पवणेण पलययालस्स।
तो सुक्कपत्ताणि णो, रयकणं किं उट्ठीज्ज तेण॥34॥ (जुम्मं)

आपकी दिव्यध्वनि अनक्षरी व अनेकांत धर्म से युक्त है। प्रतिदिन चारों संध्याकालों में वा जीव के अतिशय पुण्य से वह दिव्यध्वनि निःसृत होती है॥27॥ हे प्रभु! आप चौंतीस अतिशयों से युक्त हैं, अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त हैं, क्षायिक लब्धियों से संपन्न हैं अतः आप क्षायिकदान देने में समर्थ हैं॥28॥ हे त्रिलोकी नाथ! आपकी धर्मसभा में जन्म-मरण नहीं होता, रोग, निद्रा, दुःख वा शोक आदि नहीं होते॥29॥ आपके समवसरण में इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोग नहीं होता। वहाँ विकलांग, मूर्च्छित, विकलेन्द्रिय अर्थात् दो, तीन वा चार इंद्रिय एवं असंज्ञी जीव नहीं होते॥30॥ वहाँ आहार, निहार व कूर परिणाम नहीं होते। आपके दर्शन से भय, जुगुप्सा, शोक, रति व कुभाव नष्ट हो जाते हैं॥31॥ अतिशय पुण्य से युक्त, अट्टारह दोषों से रहित, जन्म से मुक्त श्रीवासुपूज्य जिनेंद्र को सर्व दोषों के क्षय के लिए नमस्कार करता हूँ॥32॥ हे प्रभु! आपकी वंदना से जब निधत्ति-निकाचित आदि सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं तब जिनेंद्र भक्ति से सामान्य कर्म नष्ट क्यों नहीं होते? अरे! प्रलय काल की पवन से जब हाथी के समान पर्वत भी खंड-खंड हो जाता है तो क्या उससे सूखे पत्ते या धूलि के कण नहीं उड़ेंगे? अवश्य ही उड़ेंगे॥33-34॥

2027. जिणभत्तीए भव्वो, सक्को बंधिदुं तित्थयरक्कम्मं।
दंसणविसुद्धि - आइं, भाविदूण विसुद्धचित्तेण॥35॥
2028. तव भत्तीए पावदि, मादंगो वि सुरपदं णच्छरिअं।
किं दीवपयासो णो, खयदि गेहस्स अंधयारं॥36॥
2029. तव भत्ति - दंसणेणं, तिरिया वि अणंतरं लहंति सिवां।
अवकस्सणं सहजेण, णिरयाउ - पहुदि - अहकम्माणि॥37॥
2030. सिदपक्खमिअंगेणं, वड्ढदि सायरजलं सहावेण।
जह तह तव भत्तीए, सुहपइडीण ठिदिअणुभागा॥38॥
2031. सगभवभयं खयेदुं, वसुकम्मं सुद्धप्पगुणं लहिदुं।
वसुयामे कुणमि भत्ति - मिमं भवणासगं णियमेण॥39॥
2032. णियसत्तभवं सक्का, पस्सिदुं भवी भामंडले तुज्झ।
अट्टपाडिहेराइं, कारणं अट्टमपुढवीए॥40॥
2033. कंखंति सगप्पसिद्धि - परमविहूदिं जे सहजभावेण।
परमपुज्जचरणेसुं, तव पणामं कुव्वंते ते॥41॥

भव्य जीव विशुद्धचित्तपूर्वक जिनभक्ति से दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं को भाकर तीर्थकर कर्म का बंध करने में समर्थ होता है॥35॥ हे प्रभु! आपकी भक्ति से चांडाल भी देव पद को प्राप्त करता है इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। क्या दीपक का प्रकाश घर के अंधकार को नष्ट नहीं करता? करता ही है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है॥36॥ हे परमेश्वर! आपके भक्तिपूर्वक दर्शन करने से नरकायु आदि पाप कर्मों का सहज ही अपकर्षण होता है, तिर्यच जीव भी अनंतर मोक्ष को प्राप्त करते हैं॥37॥ जिस प्रकार शुक्ल पक्ष के चंद्रमा से सागर का जल स्वभाव से वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार आपकी भक्ति से शुभ-पुण्य प्रकृतियों का स्थिति व अनुभाग वृद्धि को प्राप्त होता है॥38॥ अपने संसार व अष्ट कर्मों के क्षय के लिए एवं शुद्ध आत्म-गुणों की प्राप्ति के लिए मैं आठों याम जिनभक्ति करता हूँ। ये जिनभक्ति नियम से संसार का नाश करने वाली है॥39॥ हे जिनदेव! भव्य जीव आपके भामंडल में अपने सात भव देखने में समर्थ होते हैं। आपके सन्निकट में विद्यमान अष्टप्रातिहार्य अष्टम पृथ्वी का ही कारण हैं॥40॥ जो भव्य जीव स्वात्मसिद्धि रूप परम वैभव की आकांक्षा करते हैं वे सहज भाव से आप श्री वासुपूज्य जिनेंद्र के परम पूज्य चरणों में नमस्कार करते हैं॥41॥

2034. सुसक्खीइ उज्झिदाणि, वत्थाभूसणाणि वासुपुज्जस्स।
असोगेण पंचमुट्ठि - केसलुंचणं करिदं तत्थ॥42॥
2035. जहाजाद - दियंबरो, होही तेणं सह अण्णराया वि।
रोहिणि-आइ-णारीहि, लहिदा दिक्खा सुमदि-गणीइ॥43॥
2036. धरिदं अहिंसा सच्च-मचोरियं बंभचेरं असंगं।
महव्वदं विवेगेण, अणंतसंसारं खयेदुं॥44॥
2037. इरियं भासमेसणं, आदाण-णिक्खेवणं उस्सगं।
पंचसमिदी पालीअ, असुह-पवट्ठिं णिराकरिदुं॥45॥
2038. पंचिदियं जयेदुं, पदिण्णा गहिदा चिय सडावसियं।
सत्तविसेसगुणा तह, धरिदा तेण अप्पसुद्धीइ॥46॥
2039. बावीस-परिसहं बेदहतवं जयंतो कुव्वंतो सो।
पालीअ उत्तरगुणा, तदा लहीअ बहुइड्डीओ॥47॥
2040. चउणाणधारगं तित्थयर-समवसरणे गणहर-देवं।
पणमामि सुभत्तीए, असोगं चउकम्मक्खयिदुं॥48॥

पुनः वहाँ राजा अशोक ने श्रीवासुपूज्य भगवान् की शुभ साक्षी में समस्त वस्त्राभूषणों का परित्याग किया एवं पंचमुष्टि केशलोंच किया॥42॥ उनके साथ अन्य राजागण भी यथाजात दिगंबर मुनि हुए एवं रोहिणी आदि नारियों ने भी सुमति नामक गणिनी आर्यिका से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की॥43॥ अनंत संसार के क्षय के लिए विवेकपूर्वक अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह रूप महाव्रत धारण किए॥44॥ ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालन अशुभ प्रवृत्ति के निराकरण के लिए किया॥45॥ पंचेंद्रियों को जीतने की प्रतिज्ञा ग्रहण की। आत्मविशुद्धि पूर्वक उन अशोक मुनिराज ने छः आवश्यक व सात विशेष गुण धारण किए॥46॥ अशोक मुनिराज बाईस परीषहों को जीतते हुए, बारह तपों को करते हुए, उत्तरगुणों का पालन कर रहे थे; तब उन्होंने बहुत सी ऋद्धियों को प्राप्त किया॥47॥ श्री वासुपूज्य भगवान् के समवशरण में जो चार ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान) के धारी गणधर हुए उन श्री अशोक गणधरदेव को चार कर्मों (जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, भवविपाकी व क्षेत्रविपाकी) के क्षय के लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥48॥

2041. तित्थयर-सुकेवलिणा, सह अणेगगामणयरेसु करिदो।
मंगलविहारो तेण, धम्म-झाणे पलीमाणेण॥49॥
2042. अणसणं ऊणोदरं, रस-चागं विट्ठिपरिसंखाणं च।
विवित्त-सेज्जासणं च, णाणाविह-कायकिलेसं दु॥50॥
2043. बहिर-तवं अंतरं पि, पायच्छित्तं विणयं तह करीअ।
वेज्जावच्चं सज्जायं, विउस्सगं सुहं झाणं च॥51॥ (जुम्मं)
2044. जहवि लोए विज्जंत - जीवाइ - छद्वेसु सहावदो।
मुत्तिगा मुणेदव्वा, पोगगला तह असुद्ध-जीवा॥52॥
2045. अणाइणिहणो सुद्धो, धम्माधम्मा कालो आयासो।
तहेव मे अप्पा अवि, सत्तीइ अज्जं वि अणुभवमि॥53॥
2046. सगपुरिसट्टबलेणं, सुहझाणेण खयिय घादि-कम्माणि।
पाउणिस्सामि हु सुद्ध-सहावं सगअप्पस्स हंदि॥54॥
2047. जावदु जीवो रच्चदि, मुज्झदि दुस्सदि वा परदव्वेसुं।
तावदु बंधदि चदुविह-सुहासुहकम्माणि णियमेण॥55॥

उन गणधरदेव ने धर्मध्यान में लीन होते हुए श्री तीर्थकर केवली के साथ अनेक गाँव, नगरों में मंगल विहार किया॥49॥ वे अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग, वृत्ति-परिसंख्यान, विविक्तशय्यासन व नाना प्रकार के कायक्लेश ये बाह्य तप और प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग व शुभध्यान ये अंतरंग तप किया करते थे॥50-51॥ (वे मुनिराज इस प्रकार तत्त्वचिंतन किया करते थे अहो!) यद्यपि लोक में जीवादि छः द्रव्य विद्यमान हैं उनमें पुद्गल द्रव्य तथा अशुद्ध जीव स्वभावतः मूर्तिक जानने चाहिए॥52॥ धर्म, अधर्म, काल व आकाश द्रव्य अनादिकाल से शुद्ध हैं और अनंतकाल तक शुद्ध रहेंगे उसी प्रकार मेरी आत्मा आज भी शक्ति से शुद्ध है, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ॥53॥ अपने पुरुषार्थ के बल से, शुभध्यान से घातियाकर्मों का क्षय कर मैं अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव को निश्चय से प्राप्त करूंगा॥54॥ जब तक जीव परद्रव्यों में रंजायमान होता है, मोहित होता है व उनसे द्वेष करता है तब तक वह नियम से शुभ-अशुभ कर्मों का बंध करता है॥55॥

2048. पड़डी पदेस-बंधो जोगवसादो हवेदि जीवाणं।
ठिदी अणुभाग - बंधो, जीवाण कसायभावादो॥56॥
2049. तह तह अणुभाग-ठिदी, जह जह पवड्डे कसाओ।
अजोग-जिण विवज्जिदा, सेसा बंधगा पडिसमये॥57॥
2050. मिच्छत्तवसेण भमदि, अणादीदु दुहपूरिद-संसारे।
अविणाभावि-रूवेण, तेण सह अणंताणुबंधी॥58॥
2051. पण-महव्वदं समिदिं, गुत्तिं पालंतो जयिय अक्खाणि।
बेदहतवं च किच्चा, अविवागि-णिज्जरं करेज्जा॥59॥
2052. विज्जंताणंतत्था, सहावो वि अणंतरूवो ताणं।
लोए मोक्खं लहिदुं, पओजणभूद-सत्त-तच्चं॥60॥
2053. तिक्काले तियलोए, जीवो उत्तमो सव्वतच्चेसुं।
दव्वेसु वरो जीवो, पदत्थेसु अत्थिकायेसुं॥61॥
2054. सुद्धगुणपज्जाय-जुद-दव्वो हं सय सुद्ध-सहावादो।
सिद्धोव्व मे सहावो, लहेज्ज तं दव्वदिट्ठीए॥62॥

जीवों के प्रकृति व प्रदेश बंध योग के वशीभूत होता है तथा स्थिति व अनुभाग बंध कषाय भावों से होता है॥56॥ जैसे-जैसे कषाय वृद्धिगत होती हैं वैसे-वैसे कर्मों का अनुभाग व स्थिति भी वृद्धिगत होती है। अयोग केवली बंध से वर्जित होते हैं एवं शेष जीव प्रतिसमय कर्म का बंध करते हैं॥57॥ मिथ्यात्व के वश होकर जीव अनादिकाल से इस दुःखपूरित संसार में परिभ्रमण कर रहा है। उस मिथ्यात्व के साथ अनंतानुबंधी कषाय भी अविनाभावी रूप से होती है॥58॥ अब पंच महाव्रत, पंच समिति व तीन गुप्तियों का पालन करते हुए इंद्रियों को जीतकर तथा बारह प्रकार के तप कर अविपाकी निर्जरा करनी चाहिए॥59॥ लोक में अनंत पदार्थ विद्यमान हैं और उनके स्वभाव भी अनंत रूप हैं। मोक्ष को प्राप्त करने के लिए प्रयोजनभूत सात तत्त्व होते हैं॥60॥ तीनों काल व तीनों लोक में जीवतत्त्व ही सर्व तत्त्वों में उत्तम होता है। सभी द्रव्यों, सभी पदार्थों व सभी अस्तिकायों में जीव ही उत्तम होता है॥61॥ शुद्ध स्वभाव से मैं सदैव शुद्ध गुण-पर्याय से युक्त द्रव्य हूँ। द्रव्यदृष्टि से सिद्धों के समान ही मेरा स्वभाव है। मुझे उस शुद्ध द्रव्य को प्राप्त करना चाहिए॥62॥

2055. पोग्गलदव्वो णेयो, भिण्णो सव्वदा जीव-जादीदो।
जीवलक्खण - चेयणा, चेयणाइ दंसणं णाणं॥63॥
2056. लोए पोग्गला होंति, संजुदा फास-रस-गंध-वण्णेहि।
रागादु देसादु पुण, पुण पोग्गल-वग्गणा गहदे॥64॥
2057. करिदं सहस्सवारं, एरिसं चिंतणं मुणिवरेणं दु।
सुभावेहि अणिच्चाइ-बारसाणुवेक्खाण पुण पुण॥65॥
2058. जहायाले उण्हम्मि, गिरिसिहरम्मि आदावणं जोगं।
करीअ धम्मझाणेण, सीयलो सगप्प-मणुभवीअ॥66॥
2059. सीदयालम्मि जोगी, तडम्मि सायर-सरिदा-सरादीणं।
झाएज्जा सुद्धप्पं, चिंतीअ सगगुणं सिद्धोव्व॥67॥
2060. णाणग्गि पज्जलित्तु, अप्पं सोहेज्ज तच्चचिंतणेण।
णिव्विअप्प-झाणेण वि, संकमीअ असुहा सुहेसुं॥68॥
2061. रणसूरोव्व धारिदं, कवयं अणुवेक्खाणं मुणिवरेण।
पंचमहव्वद-सरेहि, हणिदं पणअघं विसुद्धीइ॥69॥

पुद्गल द्रव्य जीव की जाति से सदैव भिन्न जानना चाहिए। जीव का लक्षण चेतना है और चेतना का लक्षण दर्शन व ज्ञान है॥63॥ लोक में स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से युक्त पुद्गल द्रव्य होते हैं। जीव राग या द्वेष से पुनः-पुनः पुद्गल वर्णणाओं को ग्रहण करता है॥64॥ मुनिराज ने इस प्रकार हजारों बार शुभ भावों से अनित्य आदि द्वादश अनुप्रेक्षाओं का पुनः पुनः चिंतन किया॥65॥ मुनिराज यथासमय ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर आतापन योग किया करते थे किंतु विशेषता यह है कि वे धर्मध्यान से शीतल थे एवं अपनी आत्मा का अनुभव किया करते थे॥66॥ शीतकाल में वे योगीराज सागर, नदी, जलाशय आदि के तट पर शुद्धात्मा का ध्यान किया करते थे, सिद्धों का चिंतन किया करते थे॥67॥ तत्त्वचिंतन के बल से ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित कर आत्मा का शोधन करते थे। कभी निर्विकल्प ध्यान से अशुभ प्रकृतियाँ शुभ में संक्रमित किया करते थे॥68॥ जिस प्रकार संग्राम में पराक्रमी योद्धा युद्ध हेतु कवच धारण करता है उसी प्रकार उन अशोक मुनिराज ने विशुद्धिपूर्वक अनुप्रेक्षाओं का कवच धारण किया था, पाँच महाव्रत रूपी बाणों से पाँच पापों का हनन किया था॥69॥

पथ्यावक्त्र छंद

2062. सुत्ते वत्थुम्मि रज्जुम्मि, वंसे मालाइ जत्थ वा।
गंठी तत्थ कठोरत्तं, बाहा मुत्तीइ होज्ज सा॥70॥
2063. अंतगंठिं पि मुंचेदि, बहिगंठिं ण केवलं।
णिगंथो अप्पमुत्तीए, तं सक्को करिदुं हिदं॥71॥ (जुम्मं)

वंशस्थ छंद

2064. मिदत्थणत्थाण हवेज्ज कारणं,
सुलोयवालो भुवणम्मि णो वरं।
सुसेट्ट-णिगंथ-मुणी इगो जगे,
सुरक्खिदो तेण विणा हु को वि णो॥72॥
2065. अकारणं सेट्टसुही दियंबरो,
जगम्मि जीवा सकारणं वरं।
ससत्थसिद्धीइ रिऊ ण ते खमा,
वरं सुजोगी सिविणे कया वि णो॥73॥

धागे, वस्त्र, रस्सी, बांस व माला में जहाँ-जहाँ गाँठ होती है वहाँ-वहाँ कठोरता होती है और कठोरता से मुक्ति में बाधा होती है। अतः निर्ग्रन्थ मुनिराज आत्ममुक्ति के लिए केवल बाह्य ग्रंथियों को ही नहीं छोड़ते अपितु अंतरंग ग्रंथियाँ भी तज देते हैं तभी तो वे मुनिराज सबका हित करने में तत्पर होते हैं॥70-71॥ लोक में कहे जाने वाले लोकपाल कदाचित् सीमित अर्थ व अनर्थ का कारण भी हो सकते हैं किन्तु संसार में एक दिगंबर मुनिराज ही श्रेष्ठ लोकपाल हैं; उनका आश्रय लिए बिना कोई भी आत्मा सुरक्षित नहीं है॥72॥ दिगंबर संत प्रत्येक प्राणी के अकारण बंधु हैं। संसार में अन्य जीव सकारण बंधु होते हैं। यद्यपि संसारी प्राणी अपना स्वार्थ सिद्ध होने पर शत्रु भी हो सकते हैं किन्तु वे योगी स्वप्न में भी कभी किसी के शत्रु नहीं होते॥73॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में राजा अशोक की दीक्षा और तत्त्वचिंतन का वर्णन करने वाला अट्टारहवाँ नंद पूर्ण हुआ।

एगुणवीसडम-णंदो

2066. एयदा रुक्खमूले, करीअ सुद्धप्पज्झाणं जोगी।
विसुद्धीइ आरुहीअ, उवसमसेटिं सज्झाणेण॥1॥
2067. अजसकित्ति-अरदि-सोग-असादादीण किच्चा परिणमेदि।
बंधपरावत्तिसहस्सं अधपवत्तकरणेहिं च॥2॥
2068. पुव्वोव्व ण ठिदिघादो, णणुभागघादो ण गुणसंकमणा।
पडिसमयं पवड्ढेदि, खलु अणंतगुण-विसुद्धीए॥3॥
2069. अपुव्वकरणस्स पढम-समए ठिदिखंडग-पारंभंतो।
पलिदोवमस्स, संखेज्जदिभागं जहणणेण गहदि॥4॥
2070. ठिदिखंडगं हु जोगी, उवसंतदंसणमोहणीओ सो।
उक्कस्सेणं च णवरि, सायरोवमपुधत्त-मेत्तं॥5॥ (जुम्मं)
2071. असुह-कम्माण-मणंत-भागो अणुभाग-खंडय-पमाणं।
अपुव्वकरण-पढमम्मि, ठिदिसंतकम्मं ठिदिबंधो॥6॥
2072. अंतकोडाकोडी य, वरं अपुव्वकरणद्धादो तथा।
अणियट्टिकरणद्धादु, विसेसाहिया दु गुणसेढी॥7॥ (जुम्मं)

एक बार वे योगीराज वृक्षमूल में शुद्धात्मध्यान कर रहे थे। तब सद्धान के बल से विशुद्धिपूर्वक उपशम श्रेणी पर आरूढ़ हुए॥1॥ सप्तम गुणस्थान में स्थित वे उपशामक श्री अशोक महा-मुनिराज असाता, अरति, शोक व अयशःकीर्ति आदि प्रकृतियों की सहस्रों बार बन्धपरावृत्तियों को करके अर्थात् अप्रमत्त से प्रमत्त और प्रमत्त से अप्रमत्त गुणस्थान में जाकर, कषायों के उपशमाने के लिए अधःप्रवृत्तकरण परिणामों से परिणमता है॥2॥ यहाँ पूर्व के समान स्थितिघात नहीं है, न अनुभाग घात है और न ही गुणसंक्रमण। यहाँ अनंतगुणी विशुद्धि से प्रतिसमय वह योगी बढ़ता रहता है॥3॥ अपूर्वकरण के प्रथम समय में वह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि योगी स्थितिकाण्डक को प्रारंभ करते हुए जघन्य से पल्योपम के संख्यातवें भाग और उत्कर्ष से सागरोपम पृथक्त्व मात्र स्थितिकाण्डक को ग्रहण करते हैं॥4-5॥ अशुभ कर्मों के अनुभाग काण्डक का प्रमाण अनंत भाग होता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिसत्व और स्थितिबंध अंतःकोडाकोडी मात्र है। किन्तु गुणश्रेणी, अपूर्वकरण काल से और अनिवृत्तिकरण काल से विशेष अधिक है॥6-7॥

2073. उदयावलियबाहिरे, आउग - वज्जिदसेसकम्माणं चा
गुणसेडी णिक्खित्ता, अपुव्वकरणपढमसमयम्मि॥8॥
2074. विदियसमयम्मि ते ठिद-अणुभागखंडआ तह ठिदिबंधा।
णवरि पढमसमयम्मि हु, हंदि ओकड्डिददव्वादो॥9॥ (जुम्मं)
2075. असंखेज्जगुणं दव्व-मोकड्डिय गलिदसेसगुणसेढिं।
उदयावलियबाहिरट्टिदिप्पहुडि कुव्वेदि णियमा॥10॥
2076. इत्थ-मंतोमुहुत्तं, गंतूण अणुभागखंडगपढमो।
खयदि उवसामगं तं, णमंसामि तिव्वभत्तीए॥11॥
2077. अपुव्वकरणट्टाणे, अणुभागखंडगसहस्स - गदेसुं।
पढमो हु ठिदिखंडयो, ठिदिबंध-अणुभागखंडगो॥12॥
2078. जुगवं णिट्टिदा तदो, अण्णट्टिदिबंधो ठिदिखंडयो या
अण्णणुभागखंडयो, आढत्तो विहाणेणियेण॥13॥ (जुम्मं)
2079. ठिदिखंडयपुधत्तम्मि, गदम्मि बंध-वोच्छेदो हवेज्जा।
णिद्दा-पयलाणं चिय, ठाण-सत्तखंडेसु पढमे॥14॥

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम समय में आयु को छोड़ शेष कर्मों की गुणश्रेणी उदयावली से बाह्य में निक्षिप्त है। अपूर्वकरण के द्वितीय समय में स्थितिकांडक, अनुभाग कांडक और स्थितिबंध वे ही हैं॥8-9॥ विशेषता यह है कि प्रथम समय में अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यात गुणे द्रव्य का अपकर्षण कर उदयावलि से बाह्य स्थिति से लेकर गलित शेष गुणश्रेणी को नियम से करता है॥10॥ इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त जाकर प्रथम अनुभाग कांडक नष्ट होता है। अहो! उन उपशामक योगीराज को मैं तीव्रभक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ॥11॥ अपूर्वकरण गुणस्थान में अनुभाग कांडक सहस्रों के बीतने पर प्रथम स्थितिकांडक, प्रथम स्थितिबंध और एक अन्य अनुभाग कांडक, ये एक साथ ही समाप्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् अनन्तर समय में अन्य स्थितिबंध, अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडक का प्रारंभ हुआ। (परंतु गुणश्रेणी अपूर्वकरण काल, अनिवृत्तिकरण काल और सूक्ष्मसांपरायिक काल से विशेष अधिक होकर जो पूर्व में की थी वही यहाँ भी है। विशेषता केवल यह है कि वह यहाँ से गलित शेष है॥12-13॥ इस विधान के अनुसार आदि से लेकर स्थितिकांडक पृथक्त्व के व्यतीत होने पर निद्रा व प्रचला की बंधव्युच्छिन्ति होती है। अर्थात् अपूर्वकरण काल के सात खंड करके प्रथम खंड में निद्रा व प्रचला की बंधव्युच्छिन्ति होती है॥14॥

2080. अंतोमुहुत्ते गदे, परभविग-णामकम्म-पइडीणं दु।
होदि बंधवोच्छेदो, पंच - सत्तभागे गंतूण॥15॥
2081. णामकम्माण जाणं, पइडीणं परभवसंबंधीए।
सुह-देवगदीए सह, बंधो होदि परभविगा ता॥16॥
2082. जहण्णेणुक्कस्सेण, सत्तवीसा तीसा ता कमेणं।
देवगदी पंचिंदिय-जादी समचउरसं तहेव॥17॥
2083. पसत्थ-विहायोगदी, तहा तस-वण्ण-अगुरुलहु-चउक्कं।
थिर-सुह-सुहग-सुस्सरादेय-णिम्माण-तित्थयरा य॥18॥
2084. ओरालिय - विवज्जिदा, चउदेहा देवगच्चाणुपुव्वी।
वेगुव्विय-आहारग-अंगोवंगाणि खलु तीसा॥19॥ (तिअं)
2085. अपुव्वकरणस्स-चरिम-समयम्मि ठिदि-अणुभाग-खंडयो दु।
ठिदिबंधो य णिट्ठिदा, समगं तह बंधवोच्छेदो॥20॥
2086. तत्थ हस्स-रदि-दुगुंछ-भयाण छकम्माणुदयवोच्छेदो।
उत्त-चउक्केणंसह,अविअरदि-सोग-पइडीणंच॥21॥(जुम्मं)

तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त बीतने पर परभविक नामकर्मों की बंधव्युच्छिति होती है। अर्थात् अपूर्वकरण के सात भागों में से पाँच भाग बीत जाने पर परभविक नामकर्मों की व्युच्छिति होती है॥15॥ नामकर्म की जिन प्रकृतियों का परभवसम्बन्धी देवगति के साथ बंध होता है उन्हें परभविक नामकर्म कहते हैं॥16॥ ये प्रकृतियाँ जघन्य से सत्ताईस व उत्कृष्ट से तीस हैं। देवगति, पंचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक को छोड़कर शेष चार शरीर, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियक व आहारक अंगोपांग, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, वर्णादि चार व अगुरुलघु आदि चार, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर ये 30 परभविक नामकर्म प्रकृतियाँ हैं॥17-19॥

विशेष (काल का अल्पबहुत्व)-जिस अपूर्वकरण काल में निद्रा-प्रचला प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं, वह काल स्तोक है। इससे परभविक नामकर्मों की व्युच्छिति का काल पाँच गुणा है। इससे अपूर्वकरणकाल दो बटे सात भाग अधिक है।

2087. पढमसमयअणियट्टी, जादो पुणो उवसामगो जोगी।
पढमम्मि ट्टिदिखंडयो, पल्लस्स संखेज्जदिभागो॥22॥
2088. अपुव्वट्टिदी बंधो, पलिदोवमस्स संखेज्ज-भागेण।
हीणो अणुभाग-खंडगो, सेसस्स अणंत-भागा॥23॥
2089. पुण गुणसेणी सेसे, सेसे असंखेज्जगुणिदसेणीइ।
तिण्णिणकरण-वोच्छिण्णा, अप्पसत्थ-पइडीण तदा हि॥24॥
2090. उवसामणाकरणं च, णिधत्तिकरणं णिकाचनाकरणं।
आउ-वज्जिद-सेसाण, ठिदिसंतकम्मं ठिदिबंधो॥25॥
2091. अंतोकोडाकोडी, अंतोकोडीए लक्खपुधत्तं।
ठिदिखंडयसहस्सेसु, गदेसु संखेज्जभाग-गदा॥26॥ (तिअं)
2092. अणियट्टीअद्दाए, पुण संखेज्जभागेसुं गदेसुं।
असण्णीव ठिदिबंधो, ठिदिबंधपुधत्ते गदे पुण॥27॥
2093. चउरिंदियोव्व ट्टिदी, बंधो ठिदिबंधपुधत्ते गदे या।
तिअक्खट्टिदि-बंधेण, समगो ट्टिदिबंधो हवेदि दु॥28॥ (जुम्मं)

अपूर्वकरणकाल के अंतिम समय में स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबंध ये एक साथ समाप्त होते हैं और उसी समय में हास्य, रति, भय व जुगुप्सा, इन चार कर्मों की बंध व्युच्छिति होती है और वहाँ ही उक्त चार (हास्य, रति, जुगुप्सा व भय) कर्मों के साथ अरति व शोक इन छः कर्मों की उदय व्युच्छिति भी होती है॥20-21॥ इसके पश्चात् वे उपशामक योगी प्रथम समय अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती हुए। अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में स्थितिकांडक पल्लोपम के संख्यातवें भाग प्रमाण है॥22॥ अपूर्व अर्थात् नवीन स्थितिबंध पल्लोपम के संख्यातवें भाग से हीन होता है। अनुभागकांडक शेष के अनंत बहुभाग मात्र है॥23॥ पुनः असंख्यातगुणी श्रेणी रूप से शेष शेष में गुणश्रेणी होती है। उसी समय अप्रशस्त प्रकृतियों के उपशामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनाकरण ये तीन करण व्युच्छिन्न होते हैं। आयु को छोड़कर शेष कर्मों का स्थितिसत्त्व अंतःकोडाकोडी प्रमाण और स्थितिबंध अंतःकोडाकोडी के भीतर लक्षपृथक्त्वमात्र होता है। पश्चात् स्थितिकाण्डक सहस्रों के व्यतीत होने पर अनिवृत्तिकरणकाल के संख्यात बहुभाग चले जाते हैं॥24-26॥ पुनः अनिवृत्तिकरणकाल के संख्यात बहुभागों के बीत जाने पर

2094. पुण ठिदिबंधपुधत्ते, गदे बेइंदियोव्व ठिदिबंधो दु।
ठिदिबंधपुधत्त - गदे, एइंदिय - ठिदिबंधोव्व चिय॥29॥
2095. पुण ठिदिबंधपुधत्ते, गदे णामगोदकम्म-पइडीणं।
पलिदोवम-ठिदि-बंधो, तदा हु णाणावरणिज्जस्स॥30॥
2096. दंसणावरणिज्जस्स, ठिदी वेयणिज्जंतरायाणं दु।
दिवड्डुपलिदोवमो य, बेपलिदोवमो दु मोहस्स॥31॥ (जुम्मं)
2097. पलिदोवमट्टिदिगादु, णाम-गोदाण ठिदिबंध-समत्ते।
ठिदिबंधादु जमण्णं, बंधदि संखेज्जगुणहीणो॥32॥
2098. सेसाणं ठिदिबंधो, पुव्वठिदिबंधादु पलिदोवमस्स।
संखेज्जभागहीणो, एत्तो पहुडि - णाम - गोदाण॥33॥
2099. पुण्णम्मि ठिदिबंधम्मि, संखेज्जगुणहीणो अण्णबंधो।
सेसाणं जाव णेव, पलिदोवमो खलु ठिदिबंधो॥34॥
2100. ताव ठिदिबंधपुण्णे, णो अण्णो ठिदिबंधो हवेदि सो।
पलिदोवमस्स हीणो, हंदि संखेज्जदिभागेणं॥35॥ (तिअं)

असंज्ञी के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है। पुनः स्थितिबंध पृथक्त्व बीत जाने पर चतुरिन्द्रिय के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है। पुनः स्थितिबंध पृथक्त्व के बीत जाने पर त्रीन्द्रिय के स्थितिबंध के समान स्थिति बंध होता है॥27-28॥ पुनः स्थितिबंध पृथक्त्व के व्यतीत होने पर दो इंद्रिय के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है। पुनः स्थितिबंध पृथक्त्व के व्यतीत होने पर एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के सदृश स्थिति बंध होता है॥29॥ पुनः स्थितिबंध पृथक्त्व के व्यतीत होने पर नाम व गोत्र कर्म प्रकृतियों का पल्योपम स्थिति वाला बंध होता है। उस समय ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्मों का डेढ़ पल्योपम स्थिति वाला और मोहनीय का दो पल्योपम स्थिति वाला बंध होता है॥30-31॥ इस स्थिति बंध के समाप्त होने पर नाम-गोत्रों के पल्योपम स्थिति वाले बंध से जो अन्य स्थिति बंध बंधेगा वह स्थिति बंध संख्यातगुणा हीन है॥32॥ शेष कर्मों का स्थितिबंध पूर्व स्थितिबंध से पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन है। यहाँ से लेकर नाम-गोत्र के स्थितिबंध के पूर्ण होने पर संख्यात गुणाहीन अन्य स्थिति बंध होता है। शेष कर्मों का जब तक पल्योपम स्थिति वाला बंध नहीं प्राप्त होता तब तक स्थितिबंध के पूर्ण होने पर जो अन्य स्थितिबंध है वह पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन है॥33-35॥

2101. णाण - दंसणावरणी - वेयणीय - विग्घाण ठिदिग - बंधो।
पलिदोवमो गदेसुं, ठिदिबंधसहस्सेसुं तहा॥36॥
2102. मोहणिज्जस्स तिभाग-अहिय-पलिदोवमो ठिदि-बंधो पुणा।
ताणं ठिदिबंधो पुव्वादो संखेज्जगुणहीणो॥37॥ (जुम्मं)
2103. मोहस्स य ठिदिबंधो, पल्लस्स य संखेज्जभागहीणो।
ठिदिबंधपुधत्त - गदे, तस्स वि पलिदोवमो ठिदिगो॥38॥
2104. आउ-वज्जिदाणं पुण, सेसाणं कम्माण ठिदी बंधो।
णेयो पलिदोवमस्स, संखेज्जदिभागमेत्तं खलु॥39॥ (जुम्मं)

इस प्रकार स्थितिबंध सहस्रों के बीतने पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय इनका पल्योपम स्थिति वाला बंध होता है व मोहनीय का त्रिभाग अधिक पल्योपमस्थिति वाला बंध होता है। तत्पश्चात् उन ज्ञानावरणादि चारों प्रकृतियों का भी जो अन्य स्थिति बंध है वह पूर्व स्थिति बंध से संख्यातगुणा हीन है॥36-37॥ मोहनीय का स्थितिबंध पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन है। पश्चात् स्थितिबंध पृथक्त्व के व्यतीत होने पर उस मोहनीय का भी पल्योपम स्थिति वाला बंध होने लगता है। तदनन्तर आयु को छोड़कर शेष कर्मों का अन्य स्थितिबंध पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र होता है॥38-39॥

विशेष अल्पबहुत्व—तब स्थितिबंध का अल्पबहुत्व इस प्रकार हुआ—नाम व गोत्र प्रकृतियों का स्थितिबंध स्तोक है। मोहनीय को छोड़कर शेष कर्मों का स्थितिबंध परस्पर तुल्य होता हुआ संख्यातगुणा है। मोहनीय का स्थितिबंध संख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्व विधि से बहुत स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर नाम-गोत्र प्रकृतियों का स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग हो गया। उस समय शेष कर्मों का स्थितिबंध पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र ही है।

यहाँ अल्पबहुत्व इस प्रकार है—नाम, गोत्र प्रकृतियों का स्थितिबंध स्तोक है। चार कर्मों का स्थितिबंध तुल्य असंख्यात गुणा है। मोहनीय का स्थितिबंध संख्यात गुणा है। इस अल्पबहुत्व से बहुत स्थिति बंध सहस्रों के बीत जाने पर चार कर्मों का स्थितिबंध असंख्यात गुणा है। मोहनीय का स्थितिबंध असंख्यातगुणा है। इस अल्पबहुत्व विधि से बहुत स्थिति बंध सहस्रों के व्यतीत होने पर तब मोहनीय का स्थितिबंध पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व का क्रम यह है—नाम-गोत्र प्रकृतियों का स्थितिबंध स्तोक है। चार कर्मों का स्थितिबंध असंख्यात गुणा है। मोहनीय का स्थितिबंध असंख्यात गुणा है। इस क्रम से बहुत स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर

2105. उवरि गच्छंतस्स संखेज्ज - ठिदिबंध - सहस्साइं कट्टु।
बज्झमाणपइडीणं, पलिद - असंखेज्जदि - भागो हु।।40।।
2106. उदीरणा होज्ज तदा, असंखेज्जसमयपबद्धाणं खलु।
पुण संखेज्जठिदि - बंध - सहस्सेसु गदेसुं हवेदि।।41।।
2107. अणुभागो बंधेणं, देसघादी मणपज्जयकम्मस्स।
दाणंतरायस्स पुण, संखेज्जठिदिबंध - गदेसुं।।42।।
2108. ओहिणाण - दंसणावरणिज्ज - लाहंतरयाणं पुणो या
पुण संखेज्जठिदिबंध - गदेसुं होदि देसघादी।।43।।

तब एक साथ मोहनीय का स्थितिबंध उपर्युक्त चार कर्मों के स्थितिन्ध से असंख्यात गुणा हीन हो जाता है। तब अल्पबहुत्व ऐसा होता है—नाम-गोत्र प्रकृतियों का स्थितिबंध स्तोक है। मोहनीय का स्थितिबंध असंख्यात गुणा है, चार कर्मों का स्थिति बंध तुल्य असंख्यात गुणा है तब तक मोहनीय का स्थिति बंध ऊपर अर्थात् कर्मों से अधिक था। तब तक चार कर्मों के स्थितिबंध से असंख्यात गुणा ही था परंतु अब वह कर्म चतुष्टय से असंख्यात गुणा अधिक न होकर असंख्यातगुणा हीन हुआ है। इस अल्पबहुत्व विधि से बहुत स्थितिबंधसहस्रों के बीत जाने पर नाम-गोत्र प्रकृतियों के स्थितिबंध से एक साथ मोहनीय का स्थितिबंध असंख्यात गुणा हीन हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व ऐसा होता है—मोहनीय का स्थितिबंध स्तोक है, नाम-गोत्र प्रकृतियों का स्थितिबंध असंख्यातगुणा है। चार कर्मों का स्थितिबंध तुल्य असंख्यातगुणा है। इस क्रम से बहुत स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर एक साथ वेदनीय के स्थितिबंध से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इनका स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन अथवा विशेष हीन न होकर असंख्यात गुणा हीन ही हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मोहनीय का स्थितिबंध स्तोक है, नाम-गोत्र प्रकृतियों का स्थितिबंध तुल्य असंख्यात गुणा है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इनका स्थितिबंध तुल्य असंख्यात गुणा है, वेदनीय का स्थितिबंध असंख्यात गुणा है, इस अल्पबहुत्व विधि से बहुत स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर एक साथ तीनों कर्मों का स्थितिबंध नाम-गोत्र प्रकृतियों के स्थितिबंध से असंख्यातगुणा हीन हो जाता है। वेदनीय का स्थितिबंध भी नाम-गोत्र प्रकृतियों के स्थितिबंध से विशेष अधिक हो जाता है। उस समय अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मोहनीय का स्थिति बंध स्तोक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इनका स्थितिबंध तुल्य असंख्यात गुणा है। नाम-गोत्र प्रकृतियों का स्थिति बंध तुल्य असंख्यात गुणा है। वेदनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक है।

2109. सुदणाणावरणिज्जस्स य अचक्खुदंसणावरणिज्जस्स।
अणुभागो बंधेणं, देसघादी भोयविग्घस्स॥44॥ (चउक्कं)
2110. चक्खुदंसणावरणिज्जस्स अणुभागो होदि बंधेणं।
देसघादी गदेसुं, संखेज्जठिदि-बंधेसुं पुण॥45॥
2111. संखेज्जठिदि-बंधेसु, गदेसुं मदिणाणावरणिज्जस्स।
बंधेणणुभागो उवभोयविग्घस्स देसघादी॥46॥
2112. संखेज्जठिदिबंधेसु, गदेसु वीरियविग्घस्सणुभागो।
बंधेण देसघादी, मोहे ठिदी बंधो थोगो॥47॥
2113. णाणा-दंसणावरण-विग्घेसु असंखेज्जगुणिदो ठिदी।
बंधो णामगोदेसु, वेयणीये विसेसाहियो॥48॥
2114. देसघादिकरणादो, संखेज्ज-ठिदिबंधसहस्स-गदेसु।
बारसकसाय-णवणोकसायाण अंतरकरणं च॥49॥

इस अल्पबहुत्व विधि से संख्यात स्थितिबंध सहस्रों को करके ऊपर जाने वाले जीव के बध्यमान प्रकृतियों का स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र ही रहता है॥40॥ तभी असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा भी होती है। पुनः संख्यात स्थितिबंधसहस्रों के व्यतीत होने पर मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानांतराय का अनुभाग बंध से देशघाती होता है। तत्पश्चात् संख्यातस्थितिबंधों के बीतने पर अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभांतराय का, इनका अनुभाग बंध से देशघाति हो जाता है। पुनः संख्यात स्थितिबंधों के बीतने पर श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगांतराय, इनका अनुभाग बंध से देशघाती हो जाता है॥41-44॥ तत्पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिबंधों के व्यतीत होने पर चक्षुदर्शनावरणीय का अनुभाग बंध से देशघाति हो जाता है॥45॥ पश्चात् पुनः संख्यात स्थितिबंधों के बीतने पर मतिज्ञानावरणीय और उपभोगांतराय का अनुभाग बंध से देशघाती हो जाता है॥46॥ संख्यात स्थितिबंधों के बीतने पर वीर्यांतराय का अनुभाग बंध से देशघाती हो जाता है। (सर्व अक्षपक व सर्व अनुपशामक इन कर्मों के सर्वघाती अनुभाग को बांधते हैं, इन कर्मों के बंध से देशघातित्व को प्राप्त होने पर) मोहनीय में स्थितिबंध स्तोक होता है॥47॥ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय में स्थितिबंध असंख्यातगुणा होता है। नाम व गोत्र में स्थितिबंध असंख्यात गुणा होता है। वेदनीय में स्थितिबंध विशेष अधिक होता है॥48॥ इसके पश्चात् देशघाती करण से संख्यात स्थिति बंधसहस्रों के बीतने पर बारह कषाय और नव नोकषायों का अंतरकरण करता है॥49॥

2115. पत्तुदयसंजलणस्स, उदयपत्तवेदस्स पढम-ठिदीउ।
अंतोमुहुत्तं ठविय, अंतरकरणं चिय कुव्वेदि॥50॥
2116. सेसेयारसकसाय - अट्टणोकसायाण - मुदयावलिं।
विहाय कुणदि अंतरं, उवरि अंतरं समट्टिदी य॥51॥
2117. हेट्टा दु विसमट्टिदी, अंतरमुक्कीरिदुमाढत्ते चिया।
अण्णो-ठिदिबंधो ठिदि-अणुभाग-खंडयाढत्तो य॥52॥ (जुम्मं)
2118. गदेसु खंडयणुभाग-सहस्सेसु अणुभागखंडयण्णो।
सो ठिदिखंडअ-बंधो, अंतरुक्कीरद्धा समगं॥53॥
2119. विसेसेण कमेणं अंतरमुक्कीरमाण - मुक्किण्णं।
अत्तकहिदसत्थेहिं, जाणेज्ज सण्णाणविट्ठीइ॥54॥

(अन्य कर्म का अंतरकरण नहीं है) जो संज्वलन उदय को प्राप्त है और जो वेद उदय को प्राप्त है इन (संज्वलन चतुष्क में से उदय प्राप्त कोई एक और वेदत्रय में से उदय प्राप्त कोई एक) दोनों कर्मों की प्रथम स्थितियों को अंतर्मुहूर्त मात्र स्थापित कर अंतरकरण करता है॥50॥ (अंतर के लिए इन दोनों कर्मों की स्थितियाँ प्रथम स्थितियों से संख्यातगुणी ग्रहण की जाती हैं।) शेष ग्यारह कषाय और आठ नोकषायों की उदयावली को छोड़कर अंतर करता है। अंतर से ऊपर के उदय व अनुदय रूप सब कषायों के निषेक सदृश हैं परंतु अंतर के नीचे उदय व अनुदय रूप प्रकृतियों के निषेक प्रथम स्थिति के विषम होने से परस्पर में समान नहीं है। उक्त निषेकों को उत्कीर्ण करने के लिए अंतर के प्रारंभ होने पर अन्य स्थितिबंध, अन्य स्थिति कांडक और अन्य ही अनुभाग कांडक का प्रारंभ होता है॥51-52॥ अनुभागकांडक सहस्रों के बीतने पर अन्य अनुभाग कांडक तथा वही स्थिति कांडक, वही स्थितिबंध और अंतर का उत्कीरण काल ये एक साथ पूर्णता को प्राप्त होते हैं॥53॥ विशेष क्रम से उत्कीर्ण किया जाने वाला अंतर उत्कीर्ण हो जाता है। उस क्रम को आप्त कथित शास्त्रों के द्वारा सम्यग्ज्ञान की वृद्धि के लिए जानना चाहिए॥54॥

विशेष-अंतर को करने वाले जो कर्मांश बंधते हैं और उदय में रहते हैं उन कर्मों की अंतर स्थितियों को उत्कीर्ण करता हुआ उन स्थितियों के प्रदेशाग्र को बंध प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में भी देता है और द्वितीय स्थिति में भी देता है। जो कर्मांश न बंधते हैं और न उदय को ही प्राप्त होते हैं उनके उत्कीर्ण किये जाने वाले प्रदेशाग्र को स्वस्थान में नहीं देता। वर्द्धमान प्रकृतियों की

2120. पुण्णाणि पुण मोहणिज्जस्स आणुपुव्वीसंकमो तथा।
लोहस्स दु असंकमो, मोहेगट्टाणीअ - बंधो॥55॥
2121. णउंसयवेदस्स चिय, हवेज्ज पढम-समय-उवसामगो।
छ-आवलियासु गदासु, उदीरणा य मोहणिज्जस्स॥56॥
2122. एगट्टाणीयुदओ, संखेज्जवस्सट्ठिदीओ बंधो।
इमाणि सत्तकरणाणि, होज्जंतरकदपढमसमए॥57॥ (तिअं)
2123. गदेसुं संखेज्ज - ठिदिबंध - सहस्सेसु णउंसय - वेदो।
उवसंतो अणंतरं, थीवेदस्स उवसामगो दु॥58॥
2124. पुरिसवेदोदयेणं, उवसमसेडियारोहणादु तदा।
अपुव्वट्ठिदिखंडओ, अपुव्वअणुभागखंडओ य॥59॥
2125. अपुव्वंतठिदिबंधो, पत्थिदो ठिदिबंधसहस्स - गदेसु।
थीवेदस्सुवसामण - अब्धा - संखेज्जभाग - गदे॥60॥

उत्कीर्ण नहीं की जाने वाली स्थितियों में देता है। जो कर्माश नहीं बंधते हैं किन्तु उदय में आते हैं उसके उत्कीर्ण होने वाले प्रदेशाग्र अपनी प्रथम स्थिति में देता है तथा बंधने वाली और उत्कीर्ण नहीं होने वाली स्थितियों में भी देता है। जो कर्माश बंधते हैं किन्तु उदय को प्राप्त नहीं होते हैं उनके उत्कीर्ण किए जाने वाले प्रदेशाग्र को बध्यमान प्रकृतियों की उत्कीर्ण न की जाने वाली स्थितियों में देता है। इस क्रम से उत्कीर्ण किया जाने वाला अंतर उत्कीर्ण हो गया। तभी मोहनीय का आनुपूर्वी संक्रमण, लोभ का असंक्रमण एवं मोहनीय का एकस्थानीय (लता समान) बंध, नपुंसकवेद का प्रथम समयवर्ती उपशामक छः आवलियों के व्यतीत होने पर उदीरणा, मोहनीय का एकस्थानीय (लता स्थान) उदय, मोहनीय का संख्यात वर्ष मात्र स्थिति वाला बंध ये सात करण अंतर कर चुकने के पश्चात् प्रथम समय में होते हैं॥55-57॥ संख्यात स्थितिबंधसहस्रों के व्यतीत होने पर (उपशम को प्राप्त कराया जाने वाला) नपुंसक वेद उपशांत हो जाता है। इसके उपशांत होने के अनंतर स्त्रीवेद का उपशामक होता है॥58॥ क्योंकि पुरुषवेद के उदय से उपशम श्रेणी का आरोहण हुआ था। उसी समय अपूर्व स्थितिकांडक, अपूर्व अनुभाग कांडक और अपूर्व अंतिम स्थिति बंध प्रारंभ होता है। (स्त्रीवेद को गुणश्रेणी से उपशामाया है) इस प्रकार स्थितिबंधसहस्रों के व्यतीत होने पर स्त्रीवेद के उपशामन काल का संख्यातवाँ भाग

2126. णाण - दंसणावरणंतरायाण संखेज्जवस्स-बंधो।
तदा तिमूलपइडीण, पुण्णणाणदंसणं विहाय॥61॥
2127. सेसुत्तरपइडीणं, एगट्टाणिय - अणुभागबंधो दु।
पुण संखेज्जगुणहीण-बंधो अण्णो य हवेदि खलु॥62॥(चउक्कं)
2128. गदेसुं संखेज्जठिदिबंधसहस्सेसुं इत्थी वेदो।
उवसंतो णमंसामि, तं उवसामगं भत्तीए॥63॥
2129. थीवेदे उवसंते, उवसामगो सत्तणोकसायाण।
तदेव ठिदिखंडअण्ण-णुभाग-खंडओ ठिदिबंधो॥64॥
2130. गदेसुं संखेज्जठिदिबंध - सहस्सेसुवसामगयाले।
गदे णाम-गोदवेदणिज्जाणं संखेज्जवासो॥65॥

बीतने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का संख्यात वर्ष की स्थिति वाला बंध होता है। तभी तीन मूल प्रकृतियों की पूर्णज्ञान अर्थात् केवलज्ञानावरण व केवलदर्शनावरण को छोड़कर शेष उत्तर प्रकृतियों का एकस्थानिक अनुभागबंध होने लगता है। (जहाँ से लेकर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का संख्यात वर्ष की स्थिति वाला बंध है उसके पूर्ण होने पर) जो अन्य बंध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है॥59-62॥

अल्प-बहुत्व विशेष : मोहनीय का स्थिति बंध सबसे स्तोक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इनका स्थितिबंध संख्यात गुणा है। नाम-गोत्र का स्थिति बंध असंख्यात गुणा है। वेदनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक है।

पुनः संख्यात स्थितिबंधसहस्रों के बीतने पर स्त्रीवेद उपशांत हो जाता है। उन उपशामक मुनिराज को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥63॥ स्त्रीवेद के उपशांत होने पर अनंतर काल में सात नोकषायों का उपशामक होता है। उसी समय में अन्य स्थितिखंड कांडक और अन्य ही अनुभाग कांडक ग्रहण किया जाता है तथा अन्य ही स्थितिबंध बंधता है॥64॥ इस प्रकार संख्यात स्थितिबंध सहस्रों के बीतने पर जब सात नोकषायों के उपशामक का काल बीत जाता है तब नाम, गोत्र व वेदनीय इन कर्मों का संख्यात वर्ष की स्थिति वाला बंध होने लगता है॥65॥

अल्पबहुत्व विशेष : इसका अल्पबहुत्व इस प्रकार है। मोहनीय का स्थितिबंध सबसे स्तोक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का स्थितिबंध संख्यातगुणा है। नाम व गोत्र का स्थिति बंध संख्यातगुणा है। वेदनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक है। इस स्थितिबंध के पूर्ण होने पर जो अन्य स्थितिबंध होता है यह सब कर्मों का ही अपने-अपने स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन होता है।

2131. गदेसुं कमेणं ठिदि - बंधसहस्सेसुं खलु उवसंता।
सत्तणोकसाया हं, पणमामि भावविसुद्धीए॥66॥
2132. णवरि पुरिस-वेदस्स दु, समऊणबेआवलि-समयबद्धा।
अणुवसंता य तदा हि, पुरिसस्स सोलसवस्साइं॥67॥
2133. संजलण-चउक्काणं, ठिदि-बंधो बत्तीस-वस्साइं चा।
सेसाणं कम्माणं, संखेज्जवाससहस्साइं॥68॥ (जुम्मं)
2134. पुरिसस्स पढमठिदीइ, दो-आवलिसेसे पडिआगालो।
आगालो वोच्छिण्णो, पदेसगं णेव संछुहदि॥69॥
2135. पुरिसवेदम्मि अंतरकदादो चिय छण्णोकसायाणं।
कोहसंजलणम्मि पुण, आणुपुव्वीसंकमत्तादु॥70॥ (जुम्मं)
2136. पढमसमय-अवेदस्स, बेसमऊणदो आवलियबद्धा।
अणुवसंता दु ताणं, पदेसगं उवसमेदि चिय॥71॥
2137. असंखेज्जगुणाए य, सेडीइ परपइडीइ संकमदे।
पढमसमयअवेदस्स, संजलाणाण ठिदी बंधो॥72॥
2138. अंतोमुहुत्तूण - बत्तीस - वस्साइं सेसकम्माणं।
ठिदि बंधो हवेदि तह, संखेज्जवाससहस्साइं॥73॥ (तिअं)

क्रम से स्थितिबंधसहस्रों के बीतने पर उपशांत की जाने वाली सात नोकषायें उपशांत हो जाती हैं। उन उपशामक मुनिवर को भावों की विशुद्धिपूर्वक मैं नमस्कार करता हूँ॥66॥ विशेषता यह है कि पुरुषवेद के एक समय कम दो आवली मात्र समयप्रबद्ध अभी अनुपशांत हैं। उस समय में पुरुषवेद का स्थितिबंध सोलहवर्ष, संज्वलन चतुष्क का बत्तीस वर्ष और शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यातवर्ष सहस्र मात्र है॥67-68॥ पुरुषवेद की प्रथम स्थिति में जब दो आवली शेष रह जाती हैं तब आगाल-प्रत्यागाल का व्युच्छेद हो जाता है। अंतरकरण समाप्ति समय से लेकर हास्यादि छः नोकषायों के प्रदेशाग्र को पुरुषवेद में स्थापित नहीं करता है किन्तु आनुपूर्वीसंक्रमण होने से संज्वलन क्रोध में स्थापित करता है॥69-70॥ जो प्रथम समय अपगतवेद वाला है उसके (पुरुषवेद के) दो समय कम दो अवलिमात्र समयप्रबद्ध जो अनुपशांत हैं उनके प्रदेशाग्र को असंख्यात गुणी श्रेणी द्वारा उपशांत करता है। पुनः (अधःप्रवृत्त संक्रमण के द्वारा) परप्रकृति

2139. पढमसमयअवेदी हु, उवसामदि अपच्चक्खाण-कोहं
पच्चक्खाण-संजलण-कोहं हेट्टाणिय-पढम-ठिदी॥74॥
2140. पत्तेयं ठिदिबंधे, पुण्णे संजलाण विसेसहीणो।
ठिदिबंधो य सेसाण, बंधो संखेज्जगुणहीणो॥75॥
2141. आवलि-पच्चावलीइ, सेसे संजलणकोहस्समित्थं।
विदिय-ठिदीदु आगाल-पच्चागालो य वोच्छिण्णो॥76॥
2142. विदियावलियादो चिय, उदीरणा पुण कोहसंजलणस्स।
तम्मि समयेग-सेसे, तस्स जहण्णट्टिदीए खलु॥77॥
2143. अहुणा संजलण-चउक्काण ठिदिबंधो चत्तारि-मासा।
सेसाणं कम्माणं, संखेज्जवाससहस्साइं॥78॥

(संज्वलन क्रोध) में संक्रमण करता है। (प्रथम समय अपगतवेदी द्वारा संक्रमण कराया जाने वाला प्रदेशाग्र बहुत है। अनंतर काल में विशेष हीन है, यह विशेष हीन कम पूर्ण उपशांत होने तक जानना चाहिए। एक समयप्रबद्ध का अधिकार करके यह क्रम कहा गया है), प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी के संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम बत्तीस वर्ष और शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यातवर्ष सहस्र मात्र होता है। 71-73॥ प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी, अप्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यान क्रोध और संज्वलन क्रोध को उपशमाता है। वही अधःस्थानिक प्रथमस्थिति है॥74॥ प्रत्येक स्थितिबंध के पूर्ण होने पर संज्वलन चतुष्क का अन्य स्थितिबंध विशेष हीन होता है। शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यातगुणाहीन होता है॥75॥ इस प्रकार इस क्रम से जब संज्वलन क्रोध की आवली या प्रत्यावली ही शेष रहती है तब द्वितीय स्थिति से आगाल-प्रत्यागालों की व्युच्छिन्ती हो जाती है॥76॥ तब द्वितीय आवली (प्रत्यावली) से ही उदीरणा होती है। उस प्रत्यावली में एक समय शेष रहने पर उस संज्वलनक्रोध की जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है॥77॥ इस समय चार संज्वलन कषायों का स्थितिबंध चार माह और शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यातवर्ष सहस्र मात्र होता है॥78॥ (प्रत्यावली उदयावली में प्रवेश करती हुई प्रविष्ट हो चुकी) तभी दो समय कम दो आवलीमात्र संज्वलन क्रोध के समयप्रबद्धों को छोड़कर उपशांत किए जाने वाले तीन प्रकार के क्रोध के प्रदेश उपशांत हो चुकते हैं॥79॥

2144. संजलण-कोहस्स दोसमऊणदो-आवलियबद्धं खलु।
मोत्तूणं तिविहकोह-पएसा उवसंता तदा हि॥79॥
2145. दुविह कोहो संछुहदि, कोहसंजलणे संजलणकोहस्स।
पढमट्टिदीए तिण्णि-आवलियाओ सेसाओ त्ति॥80॥
2146. समयूणति-आवलिया, सेसासु उत्तदुविहकोहो।
णेव संजलणकोहे, संछुब्भदि माणसंजलणे॥81॥
2147. समयूणावलियाए, सेसाइ संजलणकोहस्स हवदि।
पढमट्टिदीए बंध-उदय-वोच्छिण्णो तदा तस्स॥82॥
2148. तिविह-माणुवसामगो, तस्स मुणिस्स संजलणत्तयाणं।
अंतोमुहुत्तूण-चउ-मासा ट्टिदी बंधो तदा दु॥83॥
2149. सेस-कम्माण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ठिदिबंधो।
माणस्स पढमठिदीइ, समयूणतिआवलिसेसासु॥84॥
2150. बेविहो माणो णेव, संछुब्भदि संजलणमाणे किण्णु।
संजलणमायाए दु, पडिआवलियाइ सेसाए॥85॥
2151. वोच्छिण्णो आगालो, पडिआगालो य पडिआवलियाइ।
समयेग-सेसे माण-संजलणस्स चिय मोत्तूणं॥86॥

संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में तीन आवलियों के शेष रहने तक दो प्रकार के (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) क्रोध को संज्वलन क्रोध में स्थापित करता है॥80॥ एक समय कम तीन आवलियों के शेष रहने पर उक्त दोनों प्रकार के क्रोध को संज्वलन क्रोध में स्थापित नहीं करता किन्तु संज्वलन मान में स्थापित करता है॥81॥ संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में एक समय कम आवलि मात्र शेष रहने पर उस संज्वलन क्रोध का बंध व उदय व्युच्छिन्न हो जाता है॥82॥ तभी से वह तीन प्रकार के मान का उपशामक होता है। उस समय उन मुनिराज के संज्वलनत्रिक का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम चार माह प्रमाण होता है॥83॥ तथा शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यातसहस्रवर्ष प्रमाण होता है। संज्वलन मान की प्रथम स्थिति में एक समय कम तीन आवलि शेष रहने पर दो प्रकार के (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) मान को संज्वलन मान में नहीं स्थापित करता है किन्तु संज्वलन माया में स्थापित करता है। प्रत्यावलि के शेष

2152. समरुणदोआवलिय-मेत्त-बद्धा सेसतिविहमाणस्स।
संतकम्ममुवसंतं, तदा तियसंजलणाणं तह॥87॥
2153. दुमासट्टिदिअ-बंधो, संखेज्जाइं वाससहस्साइं।
सेसाणं तदो मायमोकड्डिय पढमठिदिं कुणदि॥88॥
2154. तिविहमायुवसामगो, तस्स अंतोमुहुत्तूण दु-मासा।
माया-लोहाण ठिदी बंधो सेसाणं पुव्वोव्व॥89॥ (छट्ट)
2155. सेसाण ठिदिखंडयो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।
थिउक्कसंकमेण, समयूणुदयावलिमाणसंतं॥90॥
2156. विपच्चिहिदि जिम्हुदये, दुसमयूण-दुआवलि-समयबद्धा।
अणुवसंता माणस्स, गुणसेणीए दु उवसंता॥91॥ (जुम्मं)
2157. संकमिद - पदेसगं, मायाइ विसेसहीण - सेणीए।
संकमदे ठिदि-खंडय-सहस्स-बहूणि गदाणि तदो॥92॥
2158. जिम्हस्स पढमठिदीइ, समयूणतियआवलिय-सेसासुं।
बेविहमाया लोहे, संजलणम्मि संछुहेदि चिय॥93॥ (जुम्मं)

रहने पर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। प्रत्यावली में एक समय शेष रहने पर संज्वलन मान की एक समय कम दो आवलि मात्र समयप्रबद्धों को छोड़कर शेष तीन प्रकार के मान का सत्व उपशम को प्राप्त हो चुकता है। तभी संज्वलन मान, माया और लोभ का दो मास प्रमाण स्थितिवाला बंध होता है। शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात वर्ष सहस्र मात्र होता है। तत्पश्चात् माया का अपकर्षण कर संज्वलन माया की प्रथम स्थिति को करता है। तब से तीन प्रकार की माया का उपशामक होता है। संज्वलन माया व लोभ का स्थिति बंध अंतर्मुहूर्त कम दो मास प्रमाण होता है। शेष कर्मों का स्थितिबंध पूर्व के समान अर्थात् संख्यात वर्ष सहस्र मात्र होता है॥84-89॥ शेष कर्मों का स्थितिकांडक पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र होता है। एक समय कम उदयावली मात्र में जो मान का सत्व है वह स्तिबुक संक्रमण द्वारा माया के उदय में विपाक को प्राप्त होगा। मान के दो समय कम दो आवली प्रमाण जो समयप्रबद्ध अनुपशांत हैं वे भी गुणश्रेणी द्वारा उपशांत हो जाते हैं॥90-91॥ जो प्रदेशाग्र माया में संक्रमण करता है वह प्रत्येक समय में विशेष हीन श्रेणी के द्वारा संक्रमण करता है। (यह प्ररूपणा माया के प्रथम

2159. पडिआवलिय-सेसाइ, आगाल-पडिआगाल-वोच्छिण्णो।
समयाहियावलिय - सेसाइ सेसतिविहमायाए॥94॥
2160. चरिमसमयुवसामगो, समयूण - बेआवलि - समयबंधे।
मोत्तूण तदो माया-लोहाणं ठिदी मासेगो॥95॥
2161. सेसाण संखेज्ज-वस्साणि, बंधो उदयो य वोच्छिण्णो।
जिम्हस्स पढमठिदीइ, इगसमयूणावली लोहे॥96॥
2162. विपच्चिहिदि चिय थिउक्कसंकमेण तदा ओकड्ढिदूणं।
संजलणलोहं तस्स, पढमट्ठिदिं कुव्वदि जोगी॥97॥ (चउक्कं)
2163. लोहवेदगद्धाइ दु-तिभाग - पढमट्ठिदीए लोहस्स।
लोहस्स य ठिदिबंधो, अंतोमुहुत्तूणो मासो॥98॥
2164. सेसाण पुव्वोव्व अध, संखेज्जठिदिबंध-सहस्स-गदेसु।
लोहस्स पढमठिदीइ, अब्दयालं गदं णियमेण॥99॥ (जुम्मं)

समय उपशामक की है)। यहाँ से बहुत स्थितिकांडकसहस्र व्यतीत होते हैं। तब माया की प्रथम स्थिति में एक समय कम हीन आवलियों के शेष रहने पर दो प्रकार की माया (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) को (संज्वलन माया में न स्थापित कर) संज्वलन लोभ में स्थापित करता है॥92-93॥ प्रत्यावली के शेष रहने पर आगाल व प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। एक समय अधिक आवलि के शेष रहने पर एक समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्ध को छोड़कर शेष तीन प्रकार की माया का अंतिम समयवर्ती उपशामक होता है। उस समय संज्वलन माया व लोभ का स्थितिबंध एक मास और शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात (सहस्र) वर्ष मात्र होता है। तब उसी समय बंध व उदय व्युच्छिन्न होते हैं। संज्वलन माया की प्रथम स्थिति में जो एक समय कम आवली शेष रही वह स्तिवुक संक्रमण द्वारा लोभ में विपाक को प्राप्त होगी। उसी समय संज्वलन लोभ का अपकर्षण कर योगी लोभ की प्रथम स्थिति को करता है॥94-97॥ यहाँ से लेकर लोभ वेद काल के दो त्रिभाग प्रमाण लोभ की प्रथम स्थिति हो जाती है। उस समय संज्वलन लोभ का स्थिति बंध अंतर्मुहूर्त कम एक मास प्रमाण होता है। शेष कर्मों का स्थितिबंध पूर्व के समान संख्यात (सहस्र) वर्ष मात्र होता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबंध सहस्रों के बीतने पर लोभ की प्रथम स्थिति का आधा काल समाप्त हो जाता है॥98-99॥

2165. तस्स चरिमसमए ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं हु लोहस्स।
सेसाणं कम्माणं, ठिदी वस्ससहस्सपुधत्तं॥100॥
2166. से विदियतियभागस्स, पढमसमए दु जहण्णफहस्स।
हेट्टदो अणुभागकिट्टी लोह-अणुभागसंतस्स॥101॥
2167. पमाणं एगफहय-वग्गणाणमणंतभागो ताणं।
बहुकिट्टीउ कदाउ दु, पढमसमयम्मि अणंतरं च॥102॥
2168. असंखेज्जगुणहीणा, अपुव्वकिट्टी दु विदिय-तिभागस्स।
जाव चरिमसमओत्ति हु, असंखेज्जगुणहीणा जाण॥103॥(जुम्मं)
2169. इमो विदियतिभागो दु, किट्टीकरणद्धा ताए गदेसु।
संखेज्जेसु भागेसु, लोहस्स अंतोमुहुत्तो दु॥104॥
2170. ठिदीबंधो य तिण्हं, कम्माणं दिवसपुधत्तं मेत्तं।
किट्टिकरणद्धाए दु-चरिम-ठिदिबंधो जाव ताव॥105॥
2171. ठिदी बंधो संखेज्ज-वस्ससहस्साणि णाम-गोदाणं।
वेयणिज्जस्स य किट्टिकरणद्धाए पुण लोहस्स॥106॥
2172. चरिमो अंतमुहुत्तो, णाण - दंसणावरणीय - विग्घाण।
अहोरत्तस्संतो य, णाम-गोद- वेदणीयाणं॥107॥
2173. बेवस्साणमंतो दु, ताइ समयूण तिआवलि-सेसेसु।
दुविह-लोहो संकमदि, णेव लोहसंजलणम्मि खलु॥108॥

तब उस आधे काल के अंतिम समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबंध दिवसपृथक्त्व प्रमाण होता है। शेष कर्मों का स्थितिबंध वर्ष सहस्रपृथक्त्व मात्र होता है॥100॥ अनंतर काल में द्वितीय त्रिभाग के प्रथम समय में संज्वलन लोभ के अनुभाग सत्त्व के जघन्य स्पर्धक के नीचे अनुभाग कृष्टियों को करता है॥101॥ उन अनुभाग कृष्टियों का प्रमाण एक स्पर्धक की वर्गणाओं का अनंतवाँ भाग है। प्रथम समय में बहुत अनुभाग कृष्टियाँ की जाती हैं। अनंतर अपूर्व कृष्टियाँ असंख्यातगुणी हीन हैं। इस प्रकार द्वितीय त्रिभाग के चरिम (अंतिम) समय तक असंख्यातगुणा हीन होती जाती है॥102-103॥

विशेषार्थ-कृष्टियाँ करने वाला प्रथम समय में जिस प्रदेशाग्र को कृष्टियों में निक्षिप्त करता है वह स्तोक है। इसके अनंतर समय में वह असंख्यातगुणा होता है। इस प्रकार वह अंतिम समय

2174. सट्टाणे उवसंतो, आवलि - पडिआवलीए सेसाइ।
वोच्छिण्णो आगालो, पडिआगालो णियमेणं च॥109॥
2175. पडिआवलीए एगसमये सेसे संजलणलोहस्स।
हवेज्जा णिच्छयेणं, जहण्णियट्ठिदि-उदीरणा दु॥110॥
2176. समऊणदो-आवलिय-समयपबद्धा लोहसंजलणस्स।
अणुवसंता सव्वाउ, किट्ठीउ चिय अणुवसंताउ॥111॥

तक असंख्यात गुणा होता जाता है। प्रथम समय में जघन्य कृष्टि में प्रदेशाग्र बहुत, द्वितीय कृष्टि में प्रदेशाग्र विशेष हीन, इस प्रकार अंतिम कृष्टि तक प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है। द्वितीय समय में जघन्यकृष्टि में प्रदेशाग्र पृथक् समय में की गई प्रथम कृष्टि के प्रदेशाग्र से असंख्यातगुणा, द्वितीय कृष्टि में प्रदेशाग्र विशेष हीन इस प्रकार द्वितीय समय संबंधी समस्त कृष्टियों में उत्कृष्ट कृष्टि तक प्रदेशाग्र विशेष हीन दिया जाता है। ऊपर स्पर्धक की आदि वर्गणा में अनंतगुणा हीन व इससे ऊपर सर्वत्र विशेष हीन है। जैसा क्रम द्वितीय समय में है वैसा ही शेष समयों में भी है। तीव्रता व मंदता से जघन्य कृष्टि स्तोक है, द्वितीय कृष्टि अनंतगुणी है, तृतीय कृष्टि अनंत-गुणी है। इस प्रकार अंतिम कृष्टि तक अनंतगुणी श्रेणी का क्रम चला जाता है।

यह द्वितीय त्रिभाग कृष्टिकरण काल है। उस कृष्टिकरण काल के संख्यात भागों के बीत जाने पर संज्वलन लोभ का अंतर्मुहूर्त स्थिति वाला बंध होता है। तीन कर्मों का स्थितिबंध दिवस पृथक्त्व मात्र होता है। जब तक कृष्टिकरण काल में द्विचरम स्थितिबंध होता है तब तक नाम, गोत्र व वेदनीय का स्थिति बंध संख्यात वर्ष सहस्र होता है। कृष्टिकरण काल में संज्वलन लोभ का अंतिम स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त मात्र होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का स्थिति बंध कुछ कम अहोरात्र प्रमाण होता है। नाम, गोत्र व वेदनीय का स्थितिबंध कुछ कम दो वर्ष प्रमाण होता है। उस कृष्टिकरण काल में एक समय कम तीन आवलियाँ शेष रहने पर दो प्रकार का लोभ संज्वलन लोभ में संक्रमण नहीं करता बल्कि स्वस्थान में ही उपशांत हो जाता है। कृष्टिकरण काल में आवली और प्रत्यावली के शेष रहने पर आगाल व प्रत्यागाल नियम से व्युच्छिन्न हो जाते हैं॥104-109॥ प्रत्यावली में एक समय शेष रहने पर संज्वलन लोभ की जघन्य स्थिति की उदीरणा होती है॥110॥ उस समय में एक समय कम दो आवली मात्र संज्वलन लोभ के समयप्रबद्ध अनुपशांत हैं और सब ही कृष्टियाँ अनुपशांत हैं॥111॥

2177. दुविह -लोह - उवसंतो, चरिमसमयबादरसंपराइगो।
अणिविट्टीकरणं वा, पुण दसमगुणट्टाणवट्टी॥112॥
2178. अण्णपढमठिदी कदा, पढमसमयसुहुमसंपराइएण।
दुभागो थोवूणओ, पढमिमा ताइ पढमठिदीइ॥113॥
2179. किदा अपुव्वकिट्टी य, अपढम-अचरिम-समयेसु उदिण्णा।
सव्वा पढमसमयम्मि, सुहुमसंपराइगं णमामि॥114॥
2180. पढमसमयम्मि किद-किट्टीण उवरिम- असंखेज्जदि-भागं।
चरिमे जहण्णप्पहुडि-असंखेज्जदि-भागं विहाय॥115॥
2181. सेसाओ सव्वाओ, किट्टीओ चिय उदिण्णाओ तदा।
सव्वाण पदेसगं, उवसामेदि गुणसेडीए॥116॥ (जुम्मं)
2182. उवसामदि सेणीइ, दुआवलि-समयबद्धा दुसमऊणा।
फह्दि-उदयावलिया, थिउक्क-संकमेण किट्टीसु॥117॥
2183. विपच्चिहिदि य विदियम्मि, उदिण्णकिट्टीणं अग्गगादो।
असंखेज्जदिभागं दु, मुंचदि तह गणेस-असोगो॥118॥
2184. हेट्टदी अपुव्वमसंखेज्जदिभाग - माकुंदेदि इत्थं।
जाव चरिमसमयसुहुम-संपराइओ त्ति णियमेणं॥119॥(तिअं)

दो प्रकार का सब ही लोभ उपशांत हो जाता है। यह ही अंतिम समयवर्ती बादर सांपरायिक या अनिवृत्तिकरण है। पुनः वह दशम गुणस्थानवर्ती (सूक्ष्मसांपरायिक) हो जाता है॥112॥ उस प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक के द्वारा अन्य प्रथम स्थिति की जाती है। उस प्रथम स्थिति के दो भाग से कुछ कम यह सूक्ष्मसांपरायिक की प्रथम स्थिति होती है॥113॥ पहले उन सूक्ष्मसांपरायिक मुनिराज को नमस्कार करता हूँ। पुनः प्रथम समय व अंतिम समय को छोड़कर शेष समयों में जो अपूर्वकृष्टियाँ की हैं वे सब प्रथम समय में उदीर्ण हो जाती हैं॥114॥ जो कृष्टियाँ प्रथम समय में की गई हैं उनके उपरिम असंख्यातवें भाग को छोड़कर और जो कृष्टियाँ अंतिम समय में की गई हैं उनके जघन्य से लेकर असंख्यातवें भाग को छोड़कर शेष सब कृष्टियाँ उदीर्ण हो जाती हैं उसी समय सब कृष्टियों के प्रदेशाग्र को असंख्यात गुणित श्रेणी से उपशांत करता है॥115-116॥ गुणश्रेणी में जो दो समय कम दो आवली मात्र समयप्रबद्ध थे

2185. तस्स दु णाण-दंसणावरणिज्जंतरायाण ठिदिबंधो।
अंतोमुहुत्तो णाम-गोदाणं सोलसमुहुत्ता॥120॥



2186. चउवीस- मुहुत्ता ठिदि- बंधो अणंतरं वेदणीयस्सा।
सव्वं मोहणिज्जं दु, उवसंत-मुवसंतकसाओ॥121॥ (जुम्मं)

उन्हें भी उपशम करता है। बादर सांपरायिक के तारा स्पर्धकगत उदयावली कृष्टियों में परिणत होकर स्तिबुक संक्रमण के द्वारा परिपाक को प्राप्त है। द्वितीय समय में उदीर्ण कृष्टियों में से उपरिम कृष्टि से लेकर अधस्तन असंख्यातवें भाग को छोड़ता है। अर्थात् उतनी कृष्टियाँ उदय को प्राप्त नहीं होती है। तथा अधस्तन अनुदय प्राप्त कृष्टियों के असंख्यातवें भाग मात्र अपूर्व कृष्टियों को ग्रहण करता है अर्थात् उतनी कृष्टियाँ उदय को प्राप्त होती हैं। इस प्रकार वे अशोक गणधर चरमसमयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक होने तक करते हैं॥117-119॥ उन चरिमसमयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक के ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का अंतर्मुहूर्त स्थिति वाला बंध होता है। नाम व गोत्र का स्थितिबंध सोलह मुहूर्त प्रमाण होता है। वेदनीय का स्थितिबंध चौबीस मुहूर्त मात्र होता है। अनंतर काल में सब मोहनीय कर्म उपशांत हो जाता है। (तब से लेकर अंतर्मुहूर्त तक उपशांत कषाय वीतराग रहते हैं)॥120-121॥

2187. अंतोमुहुत्तुवसंत - वीदरायं सिरि - गणहरं देवं।
तस्स गुणाणुरायेण, भत्तीए परियंदामि तं॥122॥

नाराच छंद

2188. भूवियारहीण - सुप्पसण्ण - सुब्भ - आणणं,
अप्पजाणुओवसंत - मोह - गेत्तणिच्छलं।
अप्पवित्त - णिम्मलं अणुद्धयामयाममं,
सुक्कझाणकारगं णमामि राय-उज्झिदं॥123॥

2189. संपरायहीण-मुत्तमं जिणं दियंबर,
सुप्पसंतरूव - धीरमुत्ति - देव - मुज्जलं।
सुक्कलेस्सजुत्तणेजणोज्ज - दंत - मुत्तरं,
आणुकंपिदं णमामि भूधरोव्व णिच्चलं॥124॥

अंतर्मुहूर्त के लिए उन उपशांत कषाय वीतराग श्री गणधर देव को उनके गुणों के अनुराग से मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥122॥ जिनकी भृकुटी विकार रहित, मुख प्रसन्न व शुभ्र था, जो उस समय अपनी आत्मा को जान रहे थे, मोह का जिन्होंने उपशम कर दिया था, जिनके नेत्र निश्छल थे, जो प्रवृत्तियों से रहित, निर्मल, विनयी, सर्व विकार रहित, ममत्व से हीन थे, जो शुक्लध्यान में लीन थे और जो राग से विमुक्त थे उन अशोक मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ॥123॥ जो कषायों से हीन, श्रेष्ठ व दिगंबर थे, जो देव प्रशांत रूप, धैर्य की मूर्ति व उज्ज्वल थे, जो शुक्ललेश्या से युक्त, निष्कंप, अनवद्य, जितेन्द्रिय, प्रशस्त, दयालु व पर्वत के समान निश्चल थे उन जिन अर्थात् गणधर देव को मैं नमस्कार करता हूँ॥124॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में श्री अशोक गणधर के “उपशम श्रेणी पर आरोहण”
का वर्णन करने वाला उन्नीसवाँ नंद पूर्ण हुआ।

वीसम-पंदो

2190. कालक्खयादो पडदि, सुहुमसंपराइम्मि हु जोगी सो।
तिविहलोहमोकट्टदि, अणुवसंता तिविहालोहा॥1॥
2191. ठिदिबंधो तिघादीण, अंतोमुहुत्तो णाम-गोदाणं।
बत्तीसमुहुत्ता तह, वेदणिज्जस्सडदालीसा॥2॥
2192. अप्पसत्थकम्माणं, अणंतगुणो चिय अणुभागबंधो।
तहा पसत्थकम्माण, अणंतगुणहीणो दु अहवा॥3॥
2193. इह सुहुमसंपराइय - कालम्मि विसेसाहियवड्डीए।
किट्टीणं उदयो पुण, वेदगद्धाए गदाए दु॥4॥
2194. सो गणहरो दु जादो, पढमसमयबादर - संपराइओ।
तदा हि मोहणीयस्स, अणाणुपुव्विसंकमो होदि॥5॥ (जुम्मं)
2195. दुविहलोहो संछुहदि, संजलणलोहे य किट्टी णट्टा।
तस्स ठिदिबंधो लोह - संजलणस्संतोमुहुत्तो ॥6॥

अनन्तर काल क्षय होने से वे योगी नीचे गिरने लगते हैं। (योगी सर्वप्रथम सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थान में गिरता है क्योंकि उसे छोड़कर अन्य गुणस्थान में जाने का अभाव है।) वह तीन प्रकार के लोभ का अपकर्षण करता है। तब पुनः वह तीन प्रकार का लोभ उपशांत हो जाता है॥1॥ उस समय तीन घातिया कर्मों का बंध अंतर्मुहूर्त स्थिति वाला, नाम-गोत्र कर्मों का स्थितिबंध बत्तीस मुहूर्त और वेदनीय का स्थितिबंध अड़तालीस मुहूर्त प्रमाण होता है॥2॥ तब अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग बंध अनंत गुणा और प्रशस्त कर्मों का अनंतगुणा हीन होता है॥3॥ इस सूक्ष्मसांपराय के काल में विशेषाधिक वृद्धि से कृष्टियों का उदय होता है। कृष्टियों के वेदक काल के बीतने पर वे गणधर प्रथम समयवर्ती बादर सांपरायिक हो जाते हैं तब ही मोहनीय कर्म का आनुपूर्वी रहित संक्रमण होता है॥4-5॥ उसी समय दो प्रकार के लोभ को संज्वलन लोभ में स्थापित करता है। सभी कृष्टियाँ नष्ट हो जाती हैं। (विशेष ये है कि जो कृष्टियाँ उदयावली के भीतर हैं वे स्तिबुक संक्रमण के द्वारा स्पर्धकों में विपाक को प्राप्त होती हैं) उस प्रथमसमयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक के संज्वलन लोभ का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त होता है॥6॥

2196. देसूण - दु अहोरत्ती, तिघादीणं तहा णामगोदाण।
देसूण - चउवस्साणि, वेदणिज्जस्स वि ठिदिबंधो ॥7॥
2197. एदम्हि ठिदिबंधम्मि, पुण्णे वेदणीय-णाम-गोदाण।
ठिदीबंधो संखेज्ज-वाससहस्साणि तिघादीण॥8॥
2198. अहोरत्तिपुधत्तिओ, लोहस्स पुव्वबंधादो अहियो।
लोहवेदगद्धाए, विदिय - तिभागस्स गंतूणं॥9॥
2199. संखेज्जदिभागं खलु, मोहणिज्जस्स मुहुत्तपुधत्तिओ।
णामतिगाणसंखेज्ज-वस्स-सहस्साणिठिदिबंधो॥10॥(तिअं)
2200. अहोरत्तिपुधत्तादु, तिघादीण वस्स - सहस्सपुधत्तं।
ठिदिबंध - सहस्स - गदेसु लोहवेदगद्धा पुण्णा॥11॥
2201. तिविहमायमोकट्टिय, मायाइ उदयादिगुणसेडि-कदा।
आवलियबाहिरा गुण - सेडी कदा दुविह - मायाइ॥12॥
2202. जिम्हवेदगस्स तिविह - लोहो दुविहा - माया संकमदे।
संजलणमायाए य, तिविह-माया दुविह-लोहो य॥13॥
2203. तहा संजलणलोहे, दुसंजलणाण दुमास - ठिदि बंधो।
पढमसमयमायाए, वेदगस्स तहा सेसाणं॥14॥

तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध देशोन दो अहोरात्र मात्र होता है। वेदनीय नाम व गोत्र कर्मों का स्थितिबंध देशोन चार वर्ष प्रमाण होता है॥7॥ इस स्थितिबंध के पूर्ण होने पर जो वेदनीय, नाम व गोत्रकर्मों का अन्य स्थितिबंध है वह संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है। तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध अहोरात्र पृथक्त्व प्रमाण होता है। संज्वलन लोभ का स्थितिबंध पूर्वबंध से अधिक होता है। लोभवेदककाल के द्वितीय त्रिभाग के संख्यातवें भाग जाकर मोहनीय का स्थितिबंध मुहूर्त पृथक्त्व तथा नाम, गोत्र व वेदनीय का स्थितिबंध संख्यात वर्ष सहस्र मात्र होता है॥8-10॥ तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध अहोरात्र पृथक्त्व से वर्ष सहस्र पृथक्त्व मात्र होता है। इस प्रकार स्थितिबंध सहस्रों के बीतने पर लोभ वेदक काल पूर्ण होता है॥11॥ अनंतर तीन प्रकार की माया का अपकर्षण कर संज्वलन माया की उदयादि गुणश्रेणी की गयी एवं शेष दो प्रकार की माया की उदयावली बाह्य गुणश्रेणी की गयी॥12॥

2204. संखेज्जाइं च वस्स - सहस्साणि पुण पुण्णे ठिदिबंधो।
मोहणिज्ज-वज्ज-सेस-कम्माणं दु संखेज्जगुणो॥15॥ (तिअं)
2205. गदेसु संखेज्जट्टिदि - बंधसहस्सेसु गदेसु जादो हु।
चरिमसमयस्स माया-वेदगो हीणविसुद्धीए॥16॥
2206. दुसंजलणाणबंधो, चिय अंतोमुहुत्तूण-चउ-मासा।
सेसाणं ठिदिबंधो, संखेज्जवस्ससहस्साइं॥17॥ (जुम्मं)
2207. तिविहमाणमोकट्टिय, उदयाइ-गुण-सेडिं कुणेदि तदा।
संजलणमाणस्स खलु, दुविहमाणस्स दु गुणसेडिं॥18॥
2208. आवलियाबाहिरम्मि, तिविहाणं लोह-माण-मायाणं।
गुणसेडीणिक्खेवो, हवेदि णवविह-कसायाणं॥19॥ (जुम्मं)
2209. संकमदे पढम-समय-माणवेदगस्स णवविह-कसाओ।
तियसंजलणाणं चउ-मासा पुव्वोव्व सेसाणं॥20॥

प्रथम समय माया वेदक के तीन प्रकार का लोभ और दो प्रकार की माया संज्वलनमाया में संक्रमण करती है तथा तीन प्रकार की माया व दो प्रकार का लोभ संज्वलनलोभ में संक्रमण करता है। प्रथम समय माया वेदक के दो संज्वलनों का दो मास प्रमाण स्थिति वाला बंध होता है। शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात वर्षसहस्र मात्र होता है। पुनः प्रत्येक स्थितिबंध के पूर्ण होने पर मोहनीय को छोड़कर शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात गुणा होता है (मोहनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक होता है)॥13-15॥ इस प्रकार संख्यात स्थितिबंधसहस्रों के बीतने पर अंतिमसमयवर्ती माया वेदक होता है। तब विशुद्धि की हीनता से दो संज्वलनों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम चार मास और शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात वर्षसहस्र मात्र होता है॥16-17॥ पश्चात् तीन प्रकार के मान का अपकर्षण कर संज्वलन मान की उदयादि गुणश्रेणी करता है। दो प्रकार मान की आवलि के बाह्य गुण श्रेणी करता है। अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व संज्वलन इन तीनों के लोभ, माया व मान इन नौ प्रकार की कषायों का गुणश्रेणी निक्षेप होता है॥18-19॥ प्रथम समय मानवेदक की नौ प्रकार की भी कषाय संक्रमण करती है। तब तीन संज्वलनों का स्थितिबंध चार मास प्रमाण तथा शेष कर्मों का स्थिति बंध पूर्व के समान अर्थात् संख्यात वर्षसहस्र मात्र होता है॥20॥

2210. तिविहकोहमोकट्टिय, कोहस्सुदयाइगुणसेडिं कुणदि।
दुविह - कोहस्सावलिय - बाहिरम्मि गुणसेडिं करदि॥21॥
2211. बारसविह - कसायस्स, होदि पढमसमयकोहवेदगस्स।
संकमो य ठिदि - बंधो, चउ - संजलणाणट्ट - मासा॥22॥
2212. सेसाणं च पुव्वोव्व, संखेज्ज - ठिदिबंध - सहस्सगदेसु।
मोहस्स दु चरिमसमय - चउव्विहबंधगो जादो य॥23॥
2213. तदा मोहस्स बंधो, अंतोमुहुत्तूण - चउसट्टी वस्साइं।
ठिदिबंधो सेसाणं, संखेज्जवस्ससहस्साइं॥24॥
2214. पच्छा पुरिसवेदस्स, बंधगो तदा हि सत्तकम्माणं।
पदेसग्गमणुवसंत - मोकट्टिय सत्तकम्मसे॥25॥
2215. पुरिसवेदस्स कुव्वदि, उदयाइ - गुणसेडिं तम्मि समये।
उदयावलि-बहिरे गुण-सेडिं दु छक्कम्मंसाणं॥26॥ (जुम्मं)
2216. बत्तीस-वस्सा पुरिस-वेदस्स ठिदिबंधो संजलणाण।
चउसट्टी वस्सा तह, सेसाण कम्माण पुव्वोव्व॥27॥

अनंतर तीन प्रकार के क्रोध का अपकर्षण करके संज्वलन क्रोध की उदयादि गुणश्रेणी करता है तथा दो प्रकार (अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान) क्रोध की उदयावली के बाहर गुणश्रेणी करता है॥21॥ प्रथम समय क्रोध वेदक के बारह प्रकार की ही कषाय का संक्रमण होता है। उस समय चार संज्वलनों का स्थिति बंध पूर्ण आठ मासप्रमाण होता है॥22॥ शेष कर्मों का स्थितिबंध पूर्व के समान अर्थात् संख्यातवर्षसहस्र मात्र होता है। इस क्रम से संख्यात स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर मोहनीय के चतुर्विध बंध का अंतिम समय प्राप्त होता है॥23॥ (मोहनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक होता है।) उस समय मोहनीय का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम चौंसठ वर्ष प्रमाण होता है तथा शेष कर्मों का स्थितिबंध संख्यात वर्षसहस्र मात्र होता है॥24॥ पश्चात् अनंतर काल में पुरुष वेद का बंधक हो जाता है। तभी सात कर्मों का प्रदेशाग्र (प्रशस्त उपशामना से रहित होकर) सब अनुपशांत हो जाता है। उसी समय में सात कर्मांशों का अपकर्षण करके पुरुषवेद की उदयादि गुणश्रेणी को करता है। छः कर्मांशों की उदयावली के बाहर गुणश्रेणी करता है॥25-26॥ पुरुषवेद का स्थितिबंध बत्तीस वर्ष, संज्वलनों का स्थिति बंध चौंसठ वर्ष तथा शेष कर्मों का स्थितिबंध पूर्व के समान अर्थात् संख्यात वर्षसहस्र मात्र होता है॥27॥

2217. पुरिसवेदणुवसंते, थी - उवसंतस्स संखेज्जभागेसु।
गदेसु णामतिगाणं, असंखेज्जवस्सठिदिबंधो॥28॥
2218. ठिदिबंधसहस्सेसुं, गदेसु थीवेदं अणुवसामेदि।
थीवेद - मोकड्डित्तु, गुणसेडि - मुदयावलि - बहिरे॥29॥
2219. थीवेद - अणुवसंते, संदुवसंतस्ससंखेज्जभागेसु।
गदेसुं णाणावरण - तिगाण असंखेज्जवस्साणि॥30॥
2220. तदा समयिगे चउविह - णाणावरणिज्जं पणंतरायं।
तिदंसणावरणिज्जं, बंधेणं च दुट्टाणियाणि॥31॥
2221. संखेज्जबंधसहस्स - गदेसु णउंसगं अणुवसामेदि।
तमोकड्डिय णिक्खिबदि, उदयावलिबहिरे सेडीइ॥32॥

पुरुषवेद के अनुपशांत होने पर स्त्रीवेद के उपशांत काल के संख्यात बहुभागों के बीत जाने पर नाम, गोत्र व वेदनीय का असंख्यात वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है॥28॥

अल्पबहुत्व विशेष : मोहनीय का स्थितिबंध सबसे स्तोक होता है। तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध संख्यातगुणा होता है। नाम व गोत्र कर्मों का स्थितिबंध असंख्यात गुणा होता है। वेदनीय का स्थितिबंध-विशेष अधिक होता है।

यहाँ से स्थितिबंध सहस्रों के बीतने पर स्त्रीवेद को एक समय में अनुपशांत करता है। उसी समय में स्त्रीवेद का अपकर्षण करके उदयावली के बाहिर गुणश्रेणी करता है॥29॥ स्त्रीवेद के अनुपशांत होने पर जब तक नपुंसकवेद उपशांत है, तब तक इस काल के संख्यात बहुभागों के बीतने पर ज्ञानावरण त्रिक अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अंतराय का बंध असंख्यात वर्षप्रमाण स्थिति वाला हो जाता है॥30॥

अल्पबहुत्व विशेष : उस समय में मोहनीय का स्थितिबंध स्तोक, तीन घातिया कर्मों का स्थिति बंध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्र का स्थितिबंध असंख्यातगुणा तथा वेदनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक होता है।

उसी समय ही एक समय में चार प्रकार का ज्ञानावरणीय, तीन प्रकार का दर्शनावरणीय और पाँच अंतराय, ये बंध से दो स्थान (लता और दारू) वाले हो जाते हैं॥31॥ पश्चात् संख्यात स्थिति बंध सहस्रों के बीत जाने पर नपुंसकवेद को अनुपशांत करता है उसी समय उस नपुंसकवेद का अपकर्षण करके उदयावली के बाह्य गुणश्रेणी में निक्षेपण करता है॥32॥ (यह गुणश्रेणी निक्षेप इतर कर्मों के गुणश्रेणी निक्षेप के सदृश होता है।)

2222. णडंसय-अणुवसंते, अंतरकदपढमसमयं ण लहेदि।
जाव ताव दु संखेज्ज-भाग-गदेसु मोहणिज्जस्स॥33॥
2223. असंखेज्जवस्साइं ठिदिबंधो दुट्टाणिय-बंधुदया।
पडिडमाण-जोगिस्स दु, छ आवलियासुं गदासुं च॥34॥
2224. उदीरणाइ ण णियमो, उदीरिज्जदि आवलियदिव्कंतां।
अणियट्टिप्पहुडि तस्स, ओयरंतस्स चिय मोहस्स॥35॥
2225. अणाणुपुव्विसंकमो, लोहस्स वि संकमो हवेदि तदा।
मोहम्मि दु असंखेज्ज-वस्स-ठिदिबंधे तिघादीण॥36॥
2226. असंखेज्जगुणिदो तह, णामगोदाणं पि वेयणिज्जस्स।
विसेसाहिया ठिदिगा -बंधो एदेणं कमेणं॥37॥
2227. गद - संखेज्जठिदि - बंध - सहस्सेसुं अणुभागो बंधेण।
वीरियंतराइयं च, जादं सव्वघादी पच्छा॥38॥
2228. मदिणाणावरणिज्जं, सव्वघादी ठिदिबंधपुधत्तेण।
परिभोगंतरायं पि, पुण चक्खुदंसणं वि इत्थं॥39॥ (सत्तगं)

नपुंसकवेद के अनुपशांत होने पर जब तक अंतर करने के प्रथम समय को प्राप्त नहीं करता तब तक इस काल के संख्यात बहुभागों के बीत जाने पर मोहनीय का स्थितिबंध असंख्यातवर्ष प्रमाण होता है। उसी समय मोहनीय का बंध व उदय द्विस्थानीय (लता व दारू) रूप हो जाता है। श्रेणी से उतरने वाले योगी के छः आवलियों के बीत जाने पर उदीरणा हो ऐसा नियम नहीं है किन्तु बंधावली के व्यतीत होने पर उदीरणा होने लगती है। अनिवृत्तिकरण के काल से प्रारंभ कर उन उतरने वाले योगी के मोहनीय का आनुपूर्वी रहित संक्रमण होता है। लोभ का भी संक्रमण होने लगता है। जब मोहनीय का असंख्यात वर्ष स्थिति वाला बंध होता है तब तीन घातिया कर्मों का स्थितिबंध असंख्यात गुणा, नाम व गोत्र का स्थितिबंध असंख्यातगुणा तथा वेदनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक होता है। इस क्रम से संख्यात स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर वीर्यांतराय अनुभाग बंध से सर्वघाती हो जाता है। पश्चात् स्थितिबंध पृथक्त्व से मतिज्ञानावरण और परिभोगांतराय भी सर्वघाती हो जाते हैं। पुनः स्थितिबंध पृथक्त्व से चक्षुदर्शनावरणीय भी सर्वघाती हो जाता है॥33-39॥

2229. सुदणाणावरणिज्जं, अचक्खुदंसणावरणिज्जं पुणो।
भोगंतराइयं ठिदिबंधपुधत्तेणं दु तहेव॥40॥
2230. ओहीणाणदंसणा-वरणिज्जं च लाहंतराइयं दु।
सव्वघादीणि पुण मणपज्जवणाणावरणिज्जं च॥41॥
2231. दाणंतराइयं अणुभागो बंधेणं सव्वघादीणि।
ठिदिबंधपुधत्तेणं, पुण ठिदिबंधसहस्स-गदेसु॥42॥
2232. उदीरणा पडिहम्मदि, असंखेज्जाण समयपबद्धाणं।
उदीरणा असंखेज्ज-लोगभागो समयबद्धस्स॥43॥ (चउक्कं)
2233. मोहस्स ठिदिबंधो, थोगो घादीण असंखेज्जगुणो।
णामगोदाण वि वेदणिज्जस्स विसेसाहियो तह॥44॥
2234. गदेसुं संखेज्ज ठिदिबंधसहस्सेसु एक्कसराहेण।
मोहस्स थोवो णाम-गोदाणं असंखेज्जगुणो॥45॥
2235. तुल्लो विसेसाहिओ, णाणदंसणावरणंतरायाण।
वेदणिज्जस्स विसेस-अहियो ठिदीबंधो इत्थं॥46॥
2236. गदेसुं संखेज्जठिदि-बंधसहस्सेसु एक्कसराहेण।
मोहस्स थोवो णाम-गोदाणं असंखेज्जगुणा॥47॥

तत्पश्चात् स्थितिबंधपृथक्त्व से श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगांतराय से ये उसी प्रकार सर्वघाती हो जाते हैं। पुनः स्थितिबंधपृथक्त्व से अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभांतराय भी सर्वघाती हो जाते हैं। पश्चात् स्थितिबंध पृथक्त्व से मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानांतराय भी अनुभाग बंध से सर्वघाती हो जाते हैं। पश्चात् स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा नष्ट हो जाती है और समयप्रबद्ध के असंख्यात लोक मात्र भागहार रूप अर्थात् एक समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र उदीरणा होती है॥40-43॥ तब मोहनीय का स्थितिबंध स्तोक, घातिया कर्मों का स्थितिबंध असंख्यातगुणा, नाम व गोत्र कर्मों का स्थितिबंध असंख्यात गुणा और वेदनीय का स्थितिबंध विशेषाधिक होता है॥44॥ इस क्रम से स्थितिबंधसहस्रों के बीत जाने पर पश्चात् एक साथ मोहनीय का स्थितिबंध स्तोक, नाम व गोत्र कर्मों का स्थितिबंध असंख्यात गुणा होता है तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों कर्मों का स्थितिबंध

2237. तुल्लो विसेसाहिओ, अण्ण - चदु - कम्माणं ठिदीबंधो।
इत्थं संखेज्जट्टिदि - बंधसहस्साइं गदाइं॥48॥
2238. एक्कसराहेण अण्ण-ठिदिबंधो थोवो णाम-गोदाण।
मोहस्स विसेसाहिओ चउण्हं तुल्ल-विसेसहियो॥49॥ (पंचगं)
2239. इमेण कमेण बहूणि, गदाइं ठिदिबंधसहस्साइं चा।
एक्कसराहेण अण्ण-ठिदि थोवो णाम-गोदाणं॥50॥
2240. तुल्लो विसेसाहिओ, ठिदिबंधो दु चउण्हं कम्माणं।
मोहणिज्जकम्मस्स य, विसेसाहिओ हु ठिदिबंधो॥51॥ (जुम्मं)
2241. असंखेज्जवस्सट्टिदि-बंधो जत्तो पाए तह तत्तो।
ठिदिबंध-पुण्णे अण्ण-असंखेज्ज-गुणिदुं बंधेदि॥52॥
2242. इत्थं सत्त-कम्माण, असंखेज्जदि-भागिगादु पल्लस्सा।
ठिदिबंधो दु पल्लस्स, संखेज्जदिभागिगो जादो॥53॥

तुल्य विशेष अधिक होता है। वेदनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक होता है। इस प्रकार संख्यात स्थिति बंधसहस्रों के व्यतीत होने पर एक साथ मोहनीय का स्थितिबंध स्तोक, नाम व गोत्र कर्मों का स्थितिबंध असंख्यातगुणा तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय इन चार कर्मों का स्थितिबंध तुल्य विशेषाधिक होता है। इस प्रकार संख्यात स्थिति बंधसहस्रों के बीतने पर अन्य स्थितिबंध एक साथ नाम व गोत्र का स्तोक, मोहनीय का विशेष अधिक एवं ज्ञानावरणादि चार का तुल्य विशेषाधिक होता है॥45-49॥ इस क्रम से बहुत स्थितिबंधसहस्रों के बीतने पर अन्य स्थिति बंध एक साथ नाम व गोत्र कर्मों का स्तोक, चार कर्मों का स्थितिबंध तुल्य विशेषाधिक और मोहनीय का स्थितिबंध विशेषाधिक होता है॥50-51॥ जहाँ से लेकर असंख्यात वर्ष मात्र स्थिति बंध होता है वहाँ से लेकर प्रत्येक स्थितिबंध के पूर्ण होने पर अन्य असंख्यात गुणे स्थितिबंध को बांधता है॥52॥ इस प्रकार सातों कर्मों का पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थितिबंध से एक साथ पल्योपम के संख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिबंध होने लगता है॥53॥

2243. तादु ठिदिबंध - पुण्णे, अण्णसंखेज्जगुणं ठिदिबंधं या
बंधदि संखेज्जट्टिदि - बंधसहस्साणं दु इत्थं॥54॥
2244. संखेज्जदिभागो खलु, पलिदोवमस्स अपुव्वविड्डी तह॥
ताधे चउकम्माणं, ठिदिबंधस्स विड्डी हवेदि॥55॥
2245. सादिरेगेणूणयं, चदुभागेणं तह पलिदोवमं दु।
संखेज्जदिभागूणं, पल्लद्धं णामगोदाणं॥56॥ (तिअं)
2246. जाधे विड्डी ताधे, मोहस्स पल्लं च चउकम्माणं।
चदुभागूणंपल्लं, णामगोदाणं पल्लद्धं॥57॥
2247. ठिदिबंधे पुण्णे पुण, पलिदोवमस्स तहा संवड्ढेदि।
संखेज्जदिभागेणं, ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु॥58॥
2248. सेसणियट्टिकरणस्स, तहा सव्वापुव्वकरणद्धंतं।
पलिदोवमस्स संखेज्जदि भागपरिवड्डीए पुण॥59॥
2249. ठिदिबंधो एड्ढिय - ठिदिबंध - समओ हंदि संजादो।
दोण्णि तिण्णि चउरिंदिय-असण्णीण ठिदिबंधसमओ॥60॥ (चउक्कं)

वहाँ से प्रत्येक स्थितिबंध के पूर्ण होने पर अन्य संख्यात गुणे स्थितिबंध को बांधता है इस प्रकार संख्यात स्थितिबंधसहस्रों अपूर्व वृद्धि पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र होती है। उस समय में चार कर्मों की स्थितिबंध के साधिक चतुर्थभाग से ही पल्योपम मात्र वृद्धि होती है। उसी समय नाम व गोत्र कर्मों की स्थितिबंध वृद्धि संख्यातवें भाग से हीन अर्द्ध पल्योपम मात्र होती है॥54-56॥ जब यह वृद्धि होती है तब मोहनीय का जो स्थितिबंध पल्योपम प्रमाण, चार कर्मों का जो स्थितिबंध चतुर्थ भाग से हीन पल्योपम प्रमाण और नाम व गोत्र का जो स्थिति बंध अर्द्ध पल्योपम मात्र होता है उससे लेकर प्रत्येक स्थितिबंध के पूर्ण होने पर पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र वृद्धि होती है। जितना शेष अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरणकाल है उतने काल तक इस पल्योपम के संख्यातवें भाग मात्र वृद्धि से स्थितिबंध सहस्रों के बीत जाने पर अन्य स्थितिबंध एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान हो जाता है। पुनः इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी इनके स्थितिबंध के समान स्थितिबंध हो जाता है॥57-60॥

2250. ठिदिबंधसहस्सेसुं गदेसुं चरिमसमयअणियट्टिस्स।
पुण सायरोवमलक्ख - पुधत्तमंतोकोडीए दु॥61॥
2251. अपुव्वकरण - पविट्टो, अप्पसत्थ - उवसामणाकरणं च।
उग्घाडिदाणि णिधत्ति-णिकाचणा-करणं च तदा हि॥62॥
2252. णवविह - मोहबंधगो, तदा उदीरगो हु संघादयस्स।
हस्स - रदि - अरदि - सोगाणमेक्कदरस्स हु जोगी सो॥63॥
2253. भय-दुगुंछाण वि सिया, मुणी अपुव्वकरणद्धाए गदे।
संखेज्जदिभागे पुण, बंधगो परभवियणामाण॥64॥
2254. ठिदिबंधसहस्सेहिं, गदेहि ताए संखेज्ज-भागेसु।
गदेसु णिहं पयलं, बंधदि पुण जादो गणेसो॥65॥
2255. गदेसुं संखेज्जठिदिबंधसहस्सेसु चरिमसमयो पुण।
अपुव्वकरणो जोगी, पढमसमय-अधापवत्तो य॥66॥ (जुम्मं)
2256. पुण तस्स पढमसमये, पुव्वादो गुणसेडिणिक्खेवादु।
संखेज्जगुणो अण्णो, हवेदि गुणसेडिणिक्खेवो ॥67॥

पुनः स्थितिबंध सहस्रों के व्यतीत होने पर अंतसमयवर्ती अनिवृत्तिकरण होता है। उसके स्थितिबंध कोटि के भीतर सागरोपम लक्षपृथक्त्व मात्र होता है। (अर्थात् मोहनीय का लक्षपृथक्त्व-सागरो के 4/7, ज्ञानावरणादि चार कर्मों का उक्त 3/7 और नाम व गोत्र कर्मों का उक्त 2/7 मात्र स्थितिबंध होता है)॥61॥ उसके अनंतर अपूर्वकरण में प्रविष्ट होता है। उसी समय अप्रशस्त उपशामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनकरण प्रकट हो जाते हैं॥62॥ उसी समय नौ प्रकार के मोहनीय का बंधक होता है। उसी समय हास्य, रति, अरति व शोक इनमें से किसी एक संघात का वह योगी उदीरक होता है॥63॥ कदाचित् भय व जुगुप्सा का उदीरक होता है। पश्चात् अपूर्वकरण काल का संख्यातवाँ भाग बीतने पर तब परभविक नामकर्म अर्थात् देवगति आदि 30 या 27 प्रकृतियों का बंधक वह मुनि हो जाते हैं॥64॥ तत्पश्चात् स्थितिबंधसहस्रों के बीतने से उस अपूर्वकरणकाल के संख्यात बहु भाग व्यतीत होने पर निद्रा व प्रचला प्रकृतियों को बांधता है। पुनः वे गणधर संख्यात स्थितिबंध सहस्रों के व्यतीत होने पर अपूर्वकरण के अंत समय को प्राप्त होते हैं। अनंतर समय में वे अशोक योगीराज प्रथमसमयवर्ती अधःप्रवृत्तकरण हो गए॥65-66॥ तब उस अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय में अन्य गुणश्रेणी निक्षेप पूर्व गुणश्रेणी निक्षेप से संख्यातगुणा होता है॥67॥

2257. णिक्खेवो ओयरंत - सुहुमकसाय - पढमसमयप्पहुदि हु।
सेसे सेसे तदा हि, चरिमसमय - अपुव्वकरणादु॥68॥
2258. पढमसमयधापवत्त - करणे णिक्खेव - अंतमुहुत्तिओ।
तत्तियो तत्तियो खलु, अंतोमुहुत्त - पज्जंतं च॥69॥
2259. सिया वड्ढेदि य सिया, हायेदि तह सिया अवट्टायेदि।
तेणं परं पुण पढम - समय - अधापवत्तकरणम्मि॥70॥
2260. गुणसंकम-वोच्छिण्णो, अधापवत्तसंकमो सव्वाणं।
णवरि णेयो विज्झाद-संकमो ताण विज्झादो हि॥71॥ (जुम्मं)
2261. उवसामगस्स हु पढम-समय-अपुव्वकरणप्पहुडिजोगी।
पतंतस्स चरिम-समय-अपुव्वकरणेत्ति चिय यालं॥72॥
2262. एत्तो संखेज्जगुणं, पडिणियत्तो य अधापवत्तेणं।
उवसमसम्मत्तद्धं, पालेदि इत्थं मुणिरायो॥73॥ (जुम्मं)
2263. मुणी उवसमसेणीइ, पडिदो णिव्वाणं पावदि तादो।
अण्णादु भवादो वा, सादी जहक्खाद-चरियस्स॥74॥
2264. पस्स मोहमाहप्पं, उवसम-सेणीए पडिदो मुणी वि।
अद्धपोग्गलपरावट्टणयालंतं भमेज्ज भवे॥75॥

उतरते हुए सूक्ष्मसांपरायी के प्रथम समय से लेकर अपूर्वकरण के अंतिम समय तक शेष-शेष में निक्षेप होता है॥68॥ अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय में जो अंतर्मुहूर्तमात्र निक्षेप है, वह अंतर्मुहूर्त तक उतना-उतना ही रहता है॥69॥ उसके आगे कदाचित् बढ़ता है, कदाचित् हानि को प्राप्त होता है और कदाचित् अवस्थित रहता है। अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय में गुणसंक्रमण व्युच्छिन्न हो जाता है और सब कर्मों का अधःप्रवृत्त-संक्रमण होता है। किन्तु विशेषता यह है कि जिनका विध्यात संक्रमण होता है उनका विध्यात संक्रमण ही रहता है॥70-71॥ उपशामक की श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर उतरते हुए अपूर्वकरण के अंतिम समय तक जो काल है उससे संख्यात गुणे काल तक कषायोपशामना से लौटते हुए मुनिराज अधःप्रवृत्तकरण के साथ इस प्रकार द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को पालते हैं॥72-73॥ उपशम श्रेणी से पतित हुए यथाख्यात चरित्र के आस्वादी मुनिवर उस भव से या अन्य भव से निर्वाण प्राप्त करते हैं॥74॥ अहो! मोह का माहात्म्य तो देखो उपशम श्रेणी से पतित मुनिराज अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल तक भी संसार में परिभ्रमण कर सकते हैं॥75॥

2265. दया-थीड़ अवऊढो, सच्चाणुरदो अचोरिय-तप्परो।
बंभचरियासंगेसु, लीणो भावणा विचिंतीअ॥76॥
2266. जह रयणेसुं वइरं, णगेसु सुमेरू खीरो सिंधूसु।
गुत्तीसु मणो तरूसु, चंदणं च खमा धम्मेसुं॥77॥
2267. तवेसु वेज्जावच्चं णरेसुं चक्की सुरेसुं वज्जी।
तित्थेसुं सम्मेदो, भूमीसुं ईसिपब्भारा॥78॥
2268. पदवीसुं तित्थयरो, भासासु पागदो गंगा णदीसु।
कम्मेसु मोहणिज्जं, पवज्जा कल्लाणगेसुं च॥79॥
2269. साहूसुं णिग्गंथो, णाणेसु केवलं लवणं रसेसु।
बारससहासुं मुणी, जह तह वदेसुं अहिंसा दु॥80॥ (चउक्कं)
2270. मणवयगुत्ती इरियादाणणिक्खेवण - समिदी भणिदा।
दिण-पयासे भोयणं, पणभावणा वद-विसुद्धीइ॥81॥
2271. सुगुरुवयणं चित्तं दु, सोहेदु य वइस्साणरो धादुं।
खारो वत्थं जह तह, पणभावणा अहिंसावदं॥82॥

दया रूपी स्त्री से आलिङ्गित, सत्य में अनुरक्त, अचौर्य व्रत में तत्पर, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह में लीन वे मुनिवर इनकी (पाँच महाव्रतों की) भावना का चिंतन किया करते थे॥76॥ जैसे रत्नों में हीरा, पर्वतों में सुदर्शन, समुद्रों में क्षीर समुद्र, गुप्तियों में मनोगुप्ति, वृक्षों में चंदन वृक्ष, धर्मों में क्षमा, तपों में वैय्यावृत्ति, मनुष्यों में चक्रवर्ती, देवों में सौधर्मेन्द्र, तीर्थों में सम्मेदशिखर, भूमियों में ईषत्प्राग्भार, पदों में तीर्थकर, भाषाओं में प्राकृत, नदियों में गंगा, कर्मों में मोहनीय, कल्याणकों में तप कल्याणक, साधुओं में निर्ग्रन्थ, ज्ञानों में केवलज्ञान, रसों में नमक, बारह सभाओं में मुनि श्रेष्ठ होते हैं उसी प्रकार व्रतों में अहिंसा होती है॥77-80॥ मनोगुप्ति (मन को भले प्रकार रोकना), वचनगुप्ति (वचन को भले प्रकार रोकना), ईर्यासमिति (चार हाथ आगे की जमीन देखकर चलना), आदान-निक्षेपण समिति (सावधानीपूर्वक उठाना-रखना), दिन (सूर्य) के प्रकाश में भोजन करना ये अहिंसाव्रत की विशुद्धि की पाँच भावनाएँ हैं॥81॥ जिस प्रकार सुगुरु के वचन चित्त को शुद्ध करते हैं, अग्नि धातु को और क्षार वस्त्र को शुद्ध करता है उसी प्रकार पंच भावनाएँ अहिंसा व्रत को शुद्ध करती हैं॥82॥

2272. कोह-लोह-भय-चागो, हस्स-विसज्जणं तह मुणेदव्वा।
सुत्ताणुगं वयणं च, पंचभावणा सच्चवदस्स॥83॥
2273. सुण्णागार - विमोइद - आवासो परोपरोधाकरणं।
भिक्षासुद्धी सधम्म - अविसंवादो वदभावणा॥84॥
2274. पालिदुं णिरदिक्कमं, सीलवदं पण-भावणा भणिदा या
रायकहासवणस्स, मणोहरंगणिरिक्खणस्स थीणं॥85॥
2275. पुव्वभोयाण - सिमरण - गरिट्ठिटरसचागो सदेहस्स।
सक्कार-चागो पंच-भावणा बंभचरियवदस्स॥86॥ (जुम्मं)
2276. लोयम्मि दु विज्जमाण-अणंता चिय पोग्गलिया पयत्था।
भासेज्ज मोहि-जीवा, इट्ठणिट्ठरूवा दु सव्वा॥87॥
2277. णिद्वोसं अपरिग्गह-वदं पालेदुं परपयत्थेसुं।
ण दु रायं ण दु दोसं, करेज्ज भावणा असंगस्स॥88॥
2278. धीरो य खमाजुत्तो, सुझाणजोगम्मि तप्परो सददं।
परिसहेसुं अच्चुदो, भावणाहिं वदं पालीअ॥89॥
2279. वदपालणम्मि णिउणो, अहण्णिसं अप्पचिंतणे लीणो।
जिणकप्पो दु असोगो, मुणी एक्को साहणारदो॥90॥

क्रोध त्याग, लोभ त्याग, भय त्याग, हास्य त्याग एवं शास्त्रों के अनुसार वचन बोलना ये सत्यव्रत की पाँच भावनाएँ हैं॥83॥ शून्यागारावास (निर्जन स्थान में रहना), विमोचितावास (दूसरों के द्वारा त्यागे स्थान में निवास करना), परोपरोधाकरण (दूसरों को अपने ठहरे हुए स्थान पर आने से नहीं रोकना), भिक्षाशुद्धि एवं सधर्म अविसंवाद (साधर्मि के साथ विसंवाद नहीं करना) ये अचौर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं॥84॥ शीलव्रत के निरतिक्रम पालन हेतु पाँच भावनाएँ कही गयी हैं। स्त्रीराग, कथाश्रवण का त्याग, स्त्री के मनोहर अंगों का निरीक्षण का त्याग, पूर्व में भोगे हुए भोगों के स्मरण का त्याग, गरिष्ठ इष्ट रसों का त्याग, अपने शरीर के संस्कार का त्याग, ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं॥85-86॥ लोक में अनंत पौद्गलिक पदार्थ विद्यमान हैं। वे सभी पदार्थ मोही जीवों को इष्ट व अनिष्ट रूप प्रतिभासित होते हैं॥87॥ अपरिग्रह व्रत के निर्दोष पालन के लिए पर पदार्थों से न तो राग करना चाहिए और न ही द्वेष करना चाहिए। ये अपरिग्रह व्रत की पाँच भावनाएँ हैं॥88॥ इस प्रकार वे धीर, क्षमा से युक्त, ध्यान योग में तत्पर एवं परीषहों में च्युत न होने वाले मुनिराज निरंतर भावनाओं के द्वारा व्रतों का पालन किया करते थे॥89॥ व्रत पालन करने में निपुण, निरंतर आत्मचिंतन में लीन वे जिनकल्पी अशोक मुनिराज अकेले ही साधना में रत थे॥90॥

2280. सण्णाण-धीर-बलेहि, संजमसिद्धीए तवं कुव्वीअ।
सहिदो दु गणहरो सो, हंदि अच्चंतविसुद्धीए॥91॥
2281. तवेण अक्खणिरोहो, अक्खणिरोहेण होज्ज मणसुद्धी।
चित्तसुद्धी पहाणं, कारणं सुपसत्थझाणस्स॥92॥
2282. अक्ख-णिग्गहेण विणा, को सक्को संजमी दमी होदुं।
तवस्स मुख-कारणं, इंदिय-णिग्गहो णादव्वो॥93॥
2283. अक्ख-णिग्गहेण विणा, असंभवो तह इच्छा-णिरोहो दु।
विरागेण विणा जमो, संजमेण विणा सिवमग्गो॥94॥
2284. चंदेण विणा जुण्हा, अणलेणं विणा उण्हत्तं हु जह।
मेहेण विणा विट्ठी, चेयणाए विणा जीवो य॥95॥ (जुम्मं)
2285. पालीअ सडावसियं, पडिदिवसं णियपावणिविट्ठीए।
अट्टं रुहं वज्जिदुं, धम्मसुक्केसु पविसेदुं च॥96॥
2286. गुत्ति-समिदि-अणुवेक्खा-परीसहजय-चरियाणि णियमादो।
संवर-कारणं जाण, चिरकालंतं चिअ धारीअ॥97॥
2287. तदो झाण-जोग्गेषुं, खेत्तेसु-मेगंत-मणोहरेसुं।
राय-दोस-रहिदेसुं, णिवसीअ सज्झाणस्स मुणी॥98॥



2288. जत्थ णेव अइ-उण्हो, णेव अइ-सीदो दु साहारणा या
सुपसंत-णिज्जण-वण्ण-पदेस-गुहादी सुजोग्गा दु॥99॥
2289. जदा ण अइ-उण्हत्तं, ण अइ-सीयलत्तं णो णूणत्तं।
आणपाणवाउस्स य, सव्वसुहदा सुजोग्गयालं॥100॥ (जुम्मं)
2290. चउसंझा-यालेसुं, चित्तपणिही सहजो सज्झाणस्स।
अण्णसमए दुद्धरा, तम्हा सदुवजोगं करेज्ज॥101॥
2291. तिव्वमिच्छाइट्ठीण, मज्झे तिव्वरायदोसजुत्ताण।
जणसमूहस्स य कहं, संभवो चिय सगप्पझाणं॥102॥

सम्यग्ज्ञान, धैर्य व बल से सहित वे गणधर अत्यंत विशुद्धिपूर्वक संयम की सिद्धि के लिए तप किया करते थे॥91॥ तप से इंद्रियों का निरोध होता है, इंद्रियों के निरोध से मन की शुद्धि होती है और प्रशस्त ध्यान के लिए चित्त की शुद्धि ही प्रधान कारण है॥92॥ इंद्रियों के निग्रह के बिना कौन संयमी व दमी होने में समर्थ होता है। तप का मुख्य कारण इंद्रिय निग्रह जानना चाहिए॥93॥ इंद्रिय निग्रह के बिना इच्छाओं का निरोध असंभव है। वैराग्य के बिना संयम और संयम के बिना मोक्षमार्ग उसी प्रकार संभव नहीं है, जिस प्रकार चंद्र के बिना चांदनी, अग्नि के बिना ऊष्णता, मेघ के बिना वृष्टि और चेतना के बिना जीव संभव नहीं है॥94-95॥ आर्तध्यान और रौद्रध्यान के त्याग के लिए एवं धर्मध्यान व शुक्लध्यान में प्रवेश के लिए तथा अपने पापों की निवृत्ति के लिए प्रतिदिन छः आवश्यकों का पालन करना चाहिए॥96॥ गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र नियम से संवर के कारण जानने चाहिए। उन्होंने दीर्घकाल तक इन्हें धारण किया॥97॥ सद्ध्यान के लिए वे मुनिराज एकांत, मनोहर, राग-द्वेष से रहित, ध्यान के योग्य क्षेत्रों में निवास करते थे॥98॥ जिन क्षेत्रों में न अधिक गर्मी न अधिक सर्दी हो, साधारण मनुष्य जहाँ आ-जा सकते हैं ऐसे प्रशांत, निर्जन, वन्य प्रदेश, गुफा आदि सुयोग्य क्षेत्र होते हैं। जब न अधिक उष्णता, न अधिक शीतलता, न प्राणवायु की न्यूनता हो, सबको सुख देने वाला ध्यान के योग्य काल है॥99-100॥ चारों संध्याकालों में सद्ध्यान के लिए चित्त की एकाग्रता सहज होती है। अन्य समय में चित्त की एकाग्रता दुर्द्धर होती है। अतः समय का सदुपयोग करना चाहिए॥101॥ तीव्र मिथ्यादृष्टि, तीव्र राग-द्वेष से युक्त जीव व जनसमूह के मध्य अपनी आत्मा का ध्यान किस प्रकार संभव है अर्थात् संभव नहीं है॥102॥

2292. तिव्वकसायजुदाणं, अहभोयासत्ताणं मज्झे वा।
अट्टरुहज्झाणीण, विलावाइ - बाहुल्ल - देसे॥103॥
2293. अइ-हरिस-भय-जुगुस्सा-जुदाण असीम-रदि-अरदि-लीणाण।
मज्झम्मिचित्त-पणिही,अइदुल्लहाहुसज्झाणम्मि॥104॥(जुम्मं)
2294. सुहधम्म-सुक्कज्झाण-जुत्ता समत्तभावेण चिट्ठंति।
विम्हरंति जम्मजादवइरी वि वइरं जत्थ तत्थ॥105॥
2295. छुहादीदो उप्पण्ण-संकिलेसहाणीइ समत्थत्था।
सज्झाणस्स सुजोग्गा, भासिदा हु जिणवरिंदेहिं॥106॥
2296. णाण - वेरग्ग - समत्त - धीर - दया - खमा - मद्दव - पसंता।
इच्चाइ-भाव-जोग्गा, अप्पज्झाणस्स सिद्धीए॥107॥
2297. असुह-दव्व-खेत्त-याल-भावं विहाय विसेसेण गहेज्ज।
पुरिसट्ठेण णिमित्तं, सुहं सव्वं सुप्पारंभे॥108॥
2298. अज्झप्पतच्चविदो हु, अणुऊल-दव्वखेत्तयालभावा।
सो सेवीअ ज्ञाणस्स, अदिसय-अप्पविसुद्धीए दु॥109॥

तीव्र कषायों से युक्त, अति भोगों में आसक्त, आर्त व रौद्र ध्यानियों के मध्य विलाप आदि बाहुल्य प्रदेश में अति हर्ष, भय, जुगुप्सा से युक्त एवं निःसीम रति व अरति में लीन जीवों के मध्य सद्धान में चित्त की एकाग्रता अति दुर्लभ है॥103-104॥ जहाँ समत्वभाव से शुभ धर्मध्यान व शुक्लध्यान से युक्त मुनिराज विराजमान होते हैं वहाँ जन्मजात बैरी भी अपना बैर भूल जाते हैं॥105॥ क्षुधा आदि से उत्पन्न संक्लेश की हानि के लिए समर्थ द्रव्य सद्धान के योग्य द्रव्य हैं ऐसा जिनवरेंद्रों के द्वारा कहा गया है॥106॥ ज्ञान, वैराग्य, समत्व, धैर्य, दया, क्षमा, मार्दव, प्रशांत इत्यादि भाव आत्मध्यान की सिद्धि के योग्य भाव हैं॥107॥ प्रारंभ में योगियों को अशुभ द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव को छोड़कर विशेष रूप से पुरुषार्थ के बल से सर्व शुभ निमित्त ग्रहण करने चाहिए॥108॥ अध्यात्म तत्त्व को जानने वाले वे अशोक योगीराज ध्यान के लिए अतिशय आत्मविशुद्धि से अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव का सेवन करते थे॥109॥

मत्तयगइंद छंद

2299. सो गिरिकंदर-कुंज-णगेसु कयाइ तडे सरिदाइ समीरे,
पव्वय - संग - सिलासु कया सुचिसेगदरम्मसुसायरतीरे।
गोखुर-चिण्हविहीण-अगम्म-वणेसु उपद्व-सुण्ण-सुठाणे,
झाणठिदो अवि णत्तचरेहि भयंकर - तंडव - जुत्त - मसाणे॥110॥

द्रुतविलंबित छंद

2300. सुपरिहा - गहणेसु वणे कदा, सुगहरम्मि तवंत - सुजोगिणा।
मणसखेवविहीण पुरेसु वा, इह महीइ विहार-किदो तदा॥111॥

कभी पर्वतों की गुफा में तो कभी लतागृहों में, कभी पर्वतों पर तो कभी हवा में नदी के तट पर, कभी पर्वतों के शिखर पर तो कभी शिलाओं पर, कभी शुक्ल व पवित्र बालू से मनोहर सागर के किनारे तो कभी गाय के खुरों तक के जहाँ चिह्न नहीं ऐसे अगम्य वनों में, कभी उपद्रव से रहित श्रेष्ठ स्थान पर तो कभी राक्षसादि के द्वारा जहाँ भयंकर नृत्य किया जाता था ऐसे श्मशान में वे मुनिराज ध्यान में स्थित हुआ करते थे॥110॥ कभी खाई, वृक्ष के कोटर, वन अथवा कभी मन के विक्षेप से रहित नगरों में तप करते हुए उन योगीराज ने इस समस्त पृथ्वी पर विहार किया॥111॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित
“अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में “उपशम श्रेणी से अवरोहण”
का वर्णन करने वाला बीसवाँ नंद पूर्ण हुआ।

एगवीसइम-णंदो

2301. एयदा अइ-आसण्ण-विदूरे णेव णयरादु वणेगे।
अहिराम-णिराउल-सुइ-एगंत-णिज्जंतुगम्मि तह॥1॥
2302. झाणट्टिदो सजोगी, पुव्वाहिमुहो सुझाणासणम्मि दु।
उक्किट्टं धारंतो, लेस्सा-सुद्धिं सुहसिलाए॥2॥ (जुम्मं)
2303. अदिसय-सुविसुद्ध-बुद्धि-धारगो विचिंतीअ दु सिद्ध-गुणा।
सासय-अप्प-सरूवं, चित्त-थिरं कडुअ मोक्ख-पहे॥3॥
2304. पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधादो रहिदो सुहुमो।
अप्पा णिरंजणो णिच्चो सुद्धो वत्तो जोगीहि॥4॥
2305. विवज्जिदो दु रायाइ-भावकम्मादो लेस्साविहीणो।
अरसारूवागंधो, जाणगो दंसी तह अप्पा॥5॥
2306. सव्वविहावविहीणो, केवलणाणदंसणसुहमइओ या
केवलसत्तिसहावो, अप्पा सव्वकम्मविहीणो॥6॥
2307. दुरिदमलविगलिदस्स दु, विरागभावसंपण्ण-सुजोगिस्सा।
ण पमादो सज्झाणे, णाणदंसणाइ-बलत्तादु॥7॥

एक बार एक वन जो नगर के न अति निकट था और न अति दूर, जो सुंदर, निराकुल, पवित्र, एकांत व जंतुओं से रहित था वहाँ जाकर महायोगी अशोक लेश्या की उत्कृष्ट शुद्धि को धारण करते हुए शुभ शिला पर पूर्वाभिमुख होकर ध्यान आसन में बैठकर ध्यान में स्थित हुए॥1-2॥ वे अतिशय, विशुद्धबुद्धि के धारक मोक्ष पथ पर अपना चित्त स्थिर करके सिद्धों के गुण व शाश्वत आत्म स्वरूप का चिंतन करने लगे॥3॥ अहो! यह आत्मा प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभाग बंधों से रहित है, सूक्ष्म, निरंजन, नित्य व शुद्ध है तथा योगियों के द्वारा व्यक्त (अनुभवगम्य) है॥4॥ यह आत्मा रागादि भाव कर्मों से विवर्जित, लेश्या से रहित, रस-रूप व गंध से रहित तथा ज्ञाता-दृष्टा है॥5॥ यह आत्मा सभी विभावों से हीन, केवलज्ञान, केवलदर्शन व अनंत सुखमय है। यह केवलशक्ति स्वभावी एवं सर्व कर्मों से विहीन है॥6॥ जिनका पाप रूपी मल गल गया था, जो विराग से संपन्न थे उन योगी के सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानादि के बल से शुभध्यान में थोड़ा भी प्रमाद नहीं था अर्थात् तब उनका अप्रमत्त गुणस्थान था॥7॥

2308. मोहवाहिणिं खयिदुं, ज्ञाणत्थं सुक्कलेस्सामाढिं चा
दुसंजम-सिरत्ताणं, धरित्तु विसोहि-सेण्णेण सह॥8॥
2309. तप्परो कंतिवंतो, सो भेय-विण्णाण-सेणापदिणा।
सुणाण-मंतिणा परम-विराय-ढालेण मुणिरायो॥9॥ (जुम्मं)
2310. जह साहसेण जोद्धा, मिच्चु-इच्चाइ-भय-विमुक्को हंदि।
रिउं जयिदुं तप्परो, मोहरिउं सुदकेवली तह॥10॥
2311. इमेण मोह-सुभडेण, अणंतवारं भमाविदा ममधी।
देज्जा बहुदुक्खाइं, मोहो संसार-मूलो तह॥11॥
2312. मोहो महाउदारो, कम्मं पडि य सरणभूदो ताणं।
जीवा पडि णिद्वयो दु, णवरि तं खयिदुं णेव खमो॥12॥
2313. णेव होज्ज णिस्सेसो, दव्वेगो वि केण वि पयारेणं।
अहुणा हु मोहदप्पं, पणासिस्सामि पुरिसट्टेण॥13॥
2314. कत्तव्वं पालंतो, णिवो दंडेदि अवराहिं जह तह।
अण्णहा दु अण्णायी, मोहक्खयिदुं तप्परो सो॥14॥



2315. अप्पगुणा - सेणिगा य, णिरंतर - जोद्धा भेदण - अजोग्गा।
रायाइं पणासिदुं, समत्था य विस्सस्सणीया॥15॥
2316. सरासरिं पारंभो, किण्णु जयुज्जोगेण मुणिरायेण।
गुणसेणिणिज्जराए, संचुण्णिदा कम्म - वाहिणी॥16॥
2317. विसुद्धि-सेण्णं जह जह, उत्तर-मक्कमीअ तह तह जदिस्सा।
कम्मट्टिदीए दु सह, अणुभाग-सत्ती वि हस्सीअ॥17॥ (जुम्पं)
2318. परपड़डि - संकंतीय, तदा रसक्खयो कम्मठिदिहासो।
गुणसेणी - णिज्जरा वि, कम्मरिऊण तदा जोगिस्सा॥18॥

मोह रूपी सेना के नाश के लिए उन योगी ने ध्यान रूपी अस्त्र, शुक्ललेश्या का कवच, इंद्रिय व प्राणी संयम रूपी टोप को धारण किया। परम वैराग्य की ढाल लेकर सम्यग्ज्ञान रूपी मंत्री, भेदविज्ञान रूपी सेनापति और विशुद्धि रूपी सेना के साथ वे कांतिमान् मुनिराज कर्म क्षय के लिए तत्पर हुए॥8-9॥ जिस प्रकार मृत्यु आदि भय से रहित योद्धा साहसपूर्वक शत्रु को जीतने के लिए तत्पर होता है उसी प्रकार वे श्रुतकेवली मोह रूपी शत्रु को जीतने के लिए तत्पर हुए॥10॥ वे विचार करते हैं कि इस मोह सुभट ने अनंत बार मेरी बुद्धि भ्रमित की, अनंत बार बहुत दुःख दिया। अहो! यह मोह संसार का मूल है॥11॥ मोह कर्मों के प्रति महा उदार है और उन्हीं के लिए शरणभूत है किन्तु वही मोह जीवों के प्रति निर्दयी है विशेषता यह है कि मोह जीव को नष्ट करने में कभी समर्थ नहीं होता॥12॥ एक द्रव्य भी किसी प्रकार से नष्ट नहीं किया जा सकता। अब मैं पुरुषार्थपूर्वक मोह के दर्प को नष्ट करूँगा॥13॥ जिस प्रकार अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए राजा अपराधियों को दंडित करता है, अन्यथा अन्यायी कहलाता है, उसी प्रकार वे मुनिराज मोह का क्षय करने में तत्पर हुए॥14॥ उन योगीराज के आत्मगुण रूपी सैनिक निरंतर युद्ध करने वाले शत्रुओं के द्वारा भेदन के अयोग्य, विश्वसनीय और रागादि के नाश करने में समर्थ थे॥15॥ दोनों ओर से बाणयुद्ध प्रारंभ हो गया; किन्तु विजय का उद्योग करने वाले उन मुनिराज के द्वारा गुणश्रेणी निर्जरा से कर्म रूपी सेना चूर-चूर होने लगी॥16॥ जैसे-जैसे उन योगीराज की विशुद्धि रूपी सेना आगे-आगे कर्म रूपी सेना पर आक्रमण कर रही थी वैसे-वैसे कर्मों की स्थिति के साथ अनुभाग शक्ति भी हानि को प्राप्त हो रही थी॥17॥ उस समय उन योगी के कर्मरूपी शत्रुओं में परप्रकृतिरूप संक्रमण हो रहा था, कर्मों की स्थिति घट रही थी, रस अर्थात् फल देने की शक्ति क्षीण हो रही थी और गुणश्रेणी निर्जरा भी हो रही थी॥18॥

2319. उक्कट्टविसुद्धीए, पुण सुक्कज्झाण - किरीडं धरित्तु।
खयिय - सम्मत्त - हयजुद - खवगसेणिरहं आरुहीअ॥19॥
2320. अधापवत्तकरणादु, ठिदिअणुभागखंडयघादं सो दु।
कुणंता अपुव्वकरणो, होच्चु होज्ज अणियट्टिकरणो॥20॥
2321. विसोहि - वाहिणीए दु, पराइदं खलु मोह - राय - सेण्णं।
थाणगिद्धित्तिगं णिरयगदिं तिरियगदिं चउजादिं॥21॥
2322. दुणिरयतिरियगदि-आणुपुव्वी आदवदुगं थावरत्तिगं।
सोलसपइडिं खइत्तु, अंतोमुहुत्तम्मि गलिदम्मि॥22॥
2323. अपच्चक्खाण-पच्चक्खाण-अट्टभडा दु खयिदा समगं।
तिक्ख-झाण-अत्थेण, णिब्भय-विजयुच्छुग-रायोव्व॥23॥ (तिअं)
2324. तिवेदा छक्कसाया, हणिदा मोहस्स अंगरक्खगा वा।
पुण कोह - माण - माया - बादरलोहा संजलणस्स॥24॥

पुनः उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा शुक्लध्यान का मुकुट धारण कर वे योगी क्षायिक सम्यक्त्व के अश्व से युक्त क्षपकश्रेणी के रथ पर आरूढ़ हुए॥19॥ अधःप्रवृत्तकरण से स्थितिकांडक घात व अनुभागकांडक घात करते हुए उत्कृष्ट विशुद्धि से अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होते हुए अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती हुए॥20॥ उन योगीराज की विशुद्धि रूपी सेना ने मोह राजा की सेना को पराजित कर दिया। उन्होंने स्त्यानगृद्धित्रिक (निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि) नरकगति, तिर्यच गति, चार जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), नरकतिर्यच गत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावरत्रिक-स्थावर, सूक्ष्म, साधारण इन सोलह प्रकृतियों का क्षय कर अंतर्मुहूर्त काल बीत जाने पर अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ व प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ इन आठ सुभटों को एक साथ तीक्ष्ण ध्यान के अस्त्र से उन योगीराज ने इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे एक निर्भय, विजय के लिए उत्सुक राजा अपने शत्रु को नष्ट कर देता है॥21-23॥ उन योगीराज ने मोह के अंगरक्षक के समान तीन वेद व छः कषायों का हनन कर दिया। पुनः संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और बादर लोभ भी नष्ट कर दिया॥24॥

2325. इत्थं कम्मसत्तुणो, घादिय अपुव्वकरण - जयखेत्तम्मि।
सचरित्त - वेजयंती, पविसेदि सुहुमसंपराये॥25॥
2326. तत्थ सुहुमलोहं अवि, हणिदूणं मोहसेण्णं जयित्ता।
सहसत्ति खीण-मोही, होज्जा सासयजयो जोगी॥26॥
2327. जयावह-कंतिवंतो, खवगसेणि-समरंगणे जयित्ता।
दुद्धरं मोह-सत्तुं, छक्खंडविजयी-सुचक्कीव॥27॥
2328. जोगिरायेण तेणं, सव्वमोहवाहिणी हंदि जयिदा।
संकप्पी सग - ज्ञेयं, आवज्जेदुं चिय समत्थो॥28॥
2329. खीणमोह - ट्ठाणम्मि, एगत्तवितक्क - वीयारेण चिया।
णाणावरणं चउ-दंसणावरणं विग्घं खयिदं॥29॥
2330. महाविक्रमो राओ, अण्णायपिय - सगसत्तुणो हणदे।
असोगमुणिणा हणिदं, घादिकम्मं सुक्कङ्गाणेण॥30॥
2331. लोयालोयपयासग - सव्वण्हू य सव्वदंसी जोगी।
अणंतचउक्कजुत्तो, अट्टारस - दोस - विहीणो य॥31॥

इस प्रकार कर्मशत्रुओं का नाश अपूर्वकरण रूपी जय क्षेत्र में अपने सम्यक् चारित्र की विजय पताका फहराते हुए सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में प्रवेश किया॥25॥ वहाँ सूक्ष्म लोभ को नष्ट कर मोह की संपूर्ण सेना को जीतकर शीघ्र ही वे शाश्वत जयी योगी क्षीण मोही हुए॥26॥ क्षपकश्रेणी रूपी युद्धक्षेत्र में दुद्धर मोह शत्रु को जीतकर वे जयी योगी इस प्रकार कांतिमान् हो रहे थे जैसे षट्खंडों पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती कांतिमान् होता है॥27॥ उन योगीराज ने मोह की संपूर्ण सेना जीत ली थी। उचित ही है एक संकल्पी अपने ध्येय वा लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है॥28॥ क्षीणमोह गुणस्थान में एकत्ववितर्कवीचार नामक द्वितीय शुक्लध्यान से पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय कर्म का क्षय भी उन मुनिराज ने कर दिया॥29॥ जिस प्रकार एक महाविक्रमी राजा अपने अन्याय प्रिय शत्रुओं को नष्ट कर देता है उसी प्रकार अशोक मुनिराज ने शुक्लध्यान के द्वारा घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया था॥30॥ वे योगी लोकालोक को प्रकाशित करने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतचतुष्टय से युक्त व अट्टारह दोषों से रहित हो गए॥31॥

2332. भव्वचित्तसरसीरुह - विआसग - जिणदिवायरो असोगो।
गंधकुडि - विहूदि - जुदो, णवकेवललब्धिसंजुत्तो॥32॥
2333. मोहकम्मविजयस्स दु, केवलणाणसिरीइ जुइमंतस्स।
कुणिदो चिय जयघोसो, भत्तिपूरिद - विणयिंदेहिं॥33॥
2334. मदकलरुअभमरजुदो, णदीइ सीयल - वीइं फासंतो।
पउममयरंदपूरिद- मारुदो दसदिसासु वत्तो॥34॥
2335. आखंडलेणाणाइ, धणदेण रम्म -गंधकुडी रयिदा।
उप्पण-केवलणाणमिहिरो असोगुदयायलेण॥35॥
2336. जगज्जणहिदाय तदा, दिव्वज्जुणी णिस्सरीअ संझासु।
परमाणंददायगो, गणहर - मुख - सोदा वि तत्थ॥36॥
2337. भमर-गुंजणरूवो य, पणवबीयक्खर-ओंकारमयो हु।
अणक्खरी झुणी तहा, सव्वंगादो दु णिस्सरिदो॥37॥
2338. दोसरहिद - गंभीरं, कंठोट्टाइ - वयोणिमित्तरहिदं।
विसदं तहा-णिरुवमं, णिस्सेस-भासामयं तहा॥38॥
2339. अभिट्ठवत्थुकथगं च, समं मणोहरं सुमहुरं हिदं चा।
णो वादरोहोग्गदं, णंददायगं हु जिणवयणं॥39॥ (जुम्मं)

वे अशोक जिन रूपी सूर्य भव्यों के चित्त रूपी कमल को विकसित करने वाले थे। वे गंधकुटी की विभूति और नव केवललब्धि से संयुक्त थे॥32॥ जिन्होंने मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त कर ली थी, जो केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी से युक्त थे उन जिनराज की भक्ति से परिपूरित व उनके प्रति विनम्रता के भाव को धारण करने वाले इंद्रों ने उनका जयघोष किया॥33॥ उस समय भ्रमर के शब्दों से आकाश को गुंजायमान करने वाली नदी की शीतल लहर का स्पर्श करती हुई, कमल के पराग से पूरित वायु दसों दिशाओं में व्याप्त थी॥34॥ सौधर्म इंद्र की आज्ञा से कुबेर इंद्र ने मनोहर गंधकुटी की रचना की। अशोक जिन रूपी उदयाचल पर केवलज्ञान रूपी सूर्य उदय को प्राप्त हुआ था॥35॥ तब संसार के समस्त प्राणियों के हित के लिए परम आनंद को प्रदान करने वाली प्रभु की दिव्यध्वनि संध्याकालों में निःसृत हुई। तब वहाँ गणधर व मुख्य श्रोता भी विराजमान थे॥36॥

2340. अंग - बंग - कुरुजंगल - मगध - सोरट्टु -मालव - कच्छेसुं।
सोरट्टु - कासी - अंध - कंपिल - महाकच्छादीसुं।40॥
2341. विहिण्ण-णयर-देसेसु, विहरंतो पहुच्चीअ खलु अंगां।
तत्थ दु हिदकारग-दिव्वज्झुणी णिस्सरिदो इत्थं।41॥(जुम्मं)
2342. लोए खलु छह्व्वा, विज्जंते अणादीदु सहावेणा।
जीवो पोग्गल-धम्माधम्मा आयासो कालो य।42॥
2343. जीवो सव्वेसु वरो, चेयण-लक्खण-संजुत्तो तिविहो।
बहिरप्पंतरप्पा य, परमप्पा विसेसेण तहा।43॥
2344. जीवो दुविहो णेयो, भेयादो संसारि - मुत्ताणं चा।
सण्णिण - असण्णीणं तस - थावराण दुविह - संसारी।44॥
2345. फासिंदियगो मेत्तं, एइंदियो थावरो पंचविहो।
बे - आइ - इंदिय - जुदो, तसजीवो समयम्मि भणिदो।45॥

भगवान् की दिव्यध्वनि भ्रमर के गुंजन रूप प्रणव बीजाक्षर, ऊँकारमय, अनक्षरी व सर्वांग से निःसृत थी।37॥ उन श्री जिनेंद्र के वचन सभी दोषों से रहित, गंभीर, कंठ-ओष्ठ आदि वचो निमित्त से रहित, स्पष्ट, निरुपम, सर्व भाषात्मक, अभीष्ट वस्तुओं को कथन करने वाले, समतामय, मनोहर, सुमधुर, हितकर, पवन के रुकने से प्रगट नहीं होने वाले व आनंददायक थे।38-39॥ अंग, बंग, कुरुजांगल, मगध, सौराष्ट्र, मालव, कच्छ, काशी, आन्ध्र, कांपिल्य, महाकच्छादि विभिन्न नगर व देशों में विहार करते हुए वे अंग देश में पहुँचे। वहाँ उनकी हितकारक दिव्यदेशना इस प्रकार निःसृत हुई।40-41॥ इस लोक में अनादिकाल से स्वभाव से छः द्रव्य विद्यमान हैं। वे छः द्रव्य इस प्रकार हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।42॥ उन सभी द्रव्यों में जीव उत्तम है।; वह चेतना लक्षण से युक्त है। जीव के तीन भेद हैं—बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा।43॥ संसारी और मुक्त के भेद से जीव दो प्रकार का जानना चाहिए। संज्ञी व असंज्ञी या त्रस व स्थावर के भेद से भी संसारी जीव दो प्रकार के जानने चाहिए।44॥ मात्र स्पर्शन इंद्रिय वाला एकेन्द्रिय जीव स्थावर कहलाता है। उन स्थावर के पाँच भेद होते हैं। दो आदि इंद्रिय से युक्त आगम में त्रस जीव कहे गए हैं।45॥

2346. पुढवि - जल - तेउ - वाऊ - वणप्फदिकायिगा थावरा जाण।
फास-रसण-घाण-चक्खु-कण्णक्खेहि जुद-पणिंदिया॥46॥
2347. पंचक्खा जे ते मणजुत्ता सण्णी इदरा असण्णी या
णो सण्णी ण असण्णी, परमप्पा खलु मुणेदव्वा॥47॥
2348. देहप्प - मेगरूवं, मण्णंते चिय जे ते बहिरप्पा।
देहप्प - भेय - जुत्ता, अंतरप्पा सम्माइट्ठी॥48॥
2349. घादिकम्महीणा वा, सव्वकम्मविहीदा जे जीवा हु।
ते परमप्पा दुविहा, भेयादो सयल - णियलाणं॥49॥
2350. मिच्छाणंताणुबंधि-मिस्सपइडीण उदय-विहीणा जे।
ते खलु सम्माइट्ठी, अंतरप्पा होति णियमेण॥50॥
2351. दंसणमोहणिज्जं च, खयिय अणंताणुबंधी - चउक्कं।
खइय - सम्माइट्ठी दु, अच्चंतासण्ण - भव्वुल्लो॥51॥
2352. उक्त-सत्त-पइडीणं, अणुदय-जुत्तो उवसामगो आहु।
उवसम-सम्माइट्ठी, णादव्वो भव्वो णियमेण॥52॥

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये स्थावर कहलाते हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इन पाँच इन्द्रियों से युक्त जीव पंचेन्द्रिय कहलाते हैं॥46॥ जो पंचेन्द्रिय जीव मन युक्त हैं वे संज्ञी जानने चाहिए और इनसे इतर अर्थात् मन से रहित असंज्ञी कहलाते हैं। परमात्मा-अरिहंत व सिद्ध निश्चय से न संज्ञी हैं और न असंज्ञी हैं॥47॥ जो जीव शरीर व आत्मा को एक रूप मानते हैं वे बहिरात्मा कहलाते हैं एवं शरीर व आत्मा के भेद से युक्त अर्थात् उनके भेद को जानने वाले सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा कहलाते हैं॥48॥ जो जीव घातियाकर्म से विहीन हैं या सर्व कर्मों से रहित हैं वे परमात्मा जानने चाहिए। सकल व निकल के भेद से परमात्मा दो प्रकार के होते हैं॥49॥ जो जीव मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी कषाय व मिश्र प्रकृतियों के उदय से रहित होते हैं वे सम्यग्दृष्टि जीव नियम से अंतरात्मा होते हैं॥50॥ अत्यंत आसन्न भव्य जीव दर्शनमोहनीय (मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक् प्रकृति) एवं अनंतानुबंधी चतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ) का क्षय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है॥51॥ उक्त सात प्रकृतियों के उदय से रहित अथवा उन सात प्रकृतियों का उपशम करने वाला उपशम सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए। वह भी नियम से भव्य होता है॥52॥

2353. मिच्छाणंताणुबंधि - मिस्साण उदयाभावीखयादो।
ताण सदवत्थारूवुवसमादु सम्मत्तपइडीइ॥53॥
2354. देसघादि - पइडीए, उदयादो खओवसम - सम्मत्तं।
तेण जुदो खओवसम - सम्माइट्टी मुणेदव्वो॥54॥ (जुम्मं)
2355. जे के वि सदहंते, सत्त-तच्चं दु जहट्टियत्तेणं।
ते हु ववहार - सम्माइट्टी सव्वदा णादव्व्वा॥55॥
2356. पोग्गलाइ - पंचविहो, अजीवो इदरलक्खणो जीवादु।
पोग्गलेण सह जीवो, रायाइ-विहाव - भावेहिं॥56॥
2357. कुव्वदि आसवं सया, कम्मागम-दारं दव्वभावाण।
भेयादो दुविहो वा, आसवो तिजोग-पविट्टी य॥57॥ (जुम्मं)
2358. अप्पपदेसेहिं सह, कम्मवग्गणणोण्ण-णिबंधणं चा।
बंधतच्चं हु णेयं, णीर-खीरं व भववड्डुगं॥58॥
2359. दव्वभावाण दुविहो, पइडि-पएस-ठिदि-अणुभागाणं चा।
भेयादो य चदुविहो, बंधो कमेण मुणेदव्वो॥59॥
2360. पइडी पदेस-बंधो, जोगवसादो कसायदो अण्णो।
कसायहीणो-जीवो, कं पि बंधं करिदु-मसक्को॥60॥

मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी व मिश्र इन सर्वघाती प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय से उन्हीं के सदवस्था रूप उपशम से एवं देशघाती सम्यक् प्रकृति के उदय से क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। उस क्षयोपशम सम्यक्त्व से युक्त जीव क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए॥53-54॥ जो कोई भी जीवादि सात तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धान करते हैं वे सर्वदा व्यवहार सम्यग्दृष्टि जानने चाहिए॥55॥ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल के भेद से अजीव के पाँच भेद होते हैं। जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव है। रागादि विभाव भावों से पुद्गल के साथ मिला यह जीव सदा कर्मों का आस्रव करता है। कर्मों के आने का द्वार आस्रव है अथवा तीनों योगों की प्रवृत्ति आस्रव है। द्रव्य और भाव के भेद से वह आस्रव दो प्रकार का है॥56-57॥ नीर-क्षीर के समान आत्मप्रदेशों के साथ कर्म वर्गणाओं का अन्योन्य बंधन बंध तत्त्व जानना चाहिए, यह बंध संसार की वृद्धि करने वाला है॥58॥ द्रव्य व भाव के भेद से बंध दो प्रकार का और क्रम से प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभाग के भेद से बंध चार प्रकार का जानना चाहिए॥59॥ प्रकृति व प्रदेश बंध योग से और अन्य स्थिति व अनुभाग बंध कषाय से होते हैं। कषाय से रहित जीव कोई भी बंध करने में समर्थ नहीं होता॥60॥

2361. जीवो संवर-तच्चं, लहदि सम्मत्तसंजम-धम्महिं।
आगच्छंत-कम्माण, णिरोहणं संवर-तच्चं दु॥61॥
2362. दव्व-भावाण दुविहो, भेयादो भासिदो गणेसेहिं।
जेहिं भावेहि कम्म-णिरोहो भाव-संवरो सो॥62॥
2363. दव्व-संवरो पोग्गल-कम्म-वग्गणाणं णिरोहो जाण।
संवरो मोक्ख-हेदू, असंभवो सिवो तेण विणा॥63॥
2364. पुव्वबद्धकम्माणं, एयदेस-णिज्जरणं णिज्जरा दु।
अविवागि-सविवागीण, भेयादो बेविहो णेयो॥64॥
2365. णिज्जरंति सगसमये, पुव्वबद्धकम्माणि दायिय फलं।
जदा तदा सविवागी, णिज्जरा सव्वसंसारीण॥65॥
2366. रयणत्तय-बलेण वा, विसेस-सम्मत्तवेण णिज्जरंते।
अविवागी विवागादु, कम्म-णिज्जरा पुव्वसमये॥66॥
2367. अकामा भववड्डगा मिच्छत्तण्णाणकुतवेहि जा सा।
संवर-जुत्त-णिज्जरा, सिव-कारणं भणिदा समये॥67॥

आते हुए कर्मों का निरोध करना संवर तत्त्व है। सम्यक्त्व, संयम व धर्म से जीव संवर तत्त्व को प्राप्त करता है॥61॥ द्रव्य व भाव के भेद से गणधर देवों ने जिनागम में संवर दो प्रकार का कहा है। जिन भावों से कर्म का निरोध होता है वह भाव संवर है॥62॥ पुद्गल कर्म वर्गण ॥ओं का निरोध द्रव्य संवर जानना चाहिए। संवर मोक्ष का हेतु है, उसके बिना मोक्ष असंभव है॥63॥ पूर्वबद्ध कर्मों की एकदेश निर्जरा करना निर्जरा जाननी चाहिए। अविपाकी व सविपाकी के भेद से निर्जरा दो प्रकार की होती है॥64॥ जब पूर्वबद्ध कर्म अपने समय पर फल देकर निर्जरित हो जाते हैं तब वह सविपाकी निर्जरा कहलाती है। यह सभी संसारी जीवों के होती है॥65॥ रत्नत्रय के बल से अथवा विशेष सम्यक् तप से विपाक के पूर्व जो कर्मों की निर्जरा होती है वह अविपाकी निर्जरा कहलाती है॥66॥ मिथ्यात्व, अज्ञान व कुतप से जो निर्जरा होती है वह अकाम निर्जरा कहलाती है। यह अकाम निर्जरा संसार का वर्द्धन करने वाली है। संवर युक्त निर्जरा जिनागम में मोक्ष का कारण कही गयी है॥67॥

2368. जदा सव्वकम्माइं, जीवप्पादो पुधो पुधो होज्जा।
तदा हु कम्मविरहिदो, सो अप्पा पावेदि मोक्खं॥68॥
2369. भव्वाभव्वो दुविहो, जीवो सम्मत्तजोग्गा भव्वा हु।
तव्विवरीय-अभव्वा सहावेणं मोक्ख-अजोग्गा॥69॥
2370. सजोगिकेवलिट्ठाण-अंते हु सुहुमकिरियापडिपादिं।
तिदियसुक्कज्झाणं च, किच्चा पविसीअ अजोगम्मि॥70॥
2371. अजोगकेवलिठाणे, बेचरिमे एयवेयणीयं तह।
देवगदिं पणदेहं, पणसंघादं पणबंधणं॥71॥
2372. छसंठाण-संहणणं, तियंगुवंग-पणवण्ण-दुगंधं।
पणरसं अट्टफासं, देवाणुपुव्वि-मगुरुलहुं च॥72॥
2373. उवघादं परघादं, उस्सासं च दोण्णिविहाओगदिं।
पत्तेय - मपज्जत्तं, थिरमथिरं सुहमसुह - कम्मं॥73॥
2374. दुब्भगं सुस्सरं तह, दुस्सर-मणादेयं अजसकित्तिं।
णिम्माण-णीयगोदं, बाहत्तरि-पइडी णस्सीअ॥74॥
2375. पच्छा चरिमम्मि एगवेयणीयं णराउं णरगदिं च।
पंचिंदियजादिं णर-गदि आणुपुव्वि-तस-बादरा॥75॥
2376. पज्जत्तं तह सुहगं, आदेयं जसकित्तिमुच्चगोदं।
बारसपइडीखयिदा, चदुत्थ-सुक्कज्झाणबलेण॥76॥(छक्कं)

जब जीवात्मा से सभी कर्म पृथक्-पृथक् हो जाते हैं तब कर्मरहित वह आत्मा मोक्ष प्राप्त करती है॥68॥ जीव दो प्रकार का भी कहा गया है—भव्य व अभव्य। सम्यक्त्व के योग्य जीव भव्य कहलाते हैं और उसके विपरीत अभव्य कहलाते हैं॥69॥ सयोगकेवली गुणस्थान के अंत में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती तृतीय शुक्लध्यान करके उन्होंने अयोगकेवली गुणस्थान में प्रवेश किया॥70॥ अयोगकेवली गुणस्थान में द्विचरिम समय में दोनों में से कोई एक वेदनीय, देवगति, पाँच देह (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस व कार्माण), पाँच संघात, पाँच बंधन, छः संस्थान, तीन अंगोपांग, छः संहनन, पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, श्वासोच्छ्वास, दो विहायोगति, प्रत्येक शरीर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ,

2377. अध मारुद - वेगेणं, पचंडक्कुणहत्तेण सघणवणे।
सुक्करुक्खजुदे वंस-घसणेणं उप्पण्णग्गी जह॥77॥
2378. डञ्जिदि तं तह मुणिणा, णिम्मल-सुक्कञ्जाणबलेणं खलु।
डञ्जिद - मघादिकम्मं, अच्चंतप्पमुहुत्तयाले॥78॥ (जुम्मं)
2379. डञ्जिद-रज्जू दु कं पि, वत्थुं बंधेदुं णेव समत्थो।
सहजपवणबलेणं च, तस्स भासं चिय उड्डीदे॥79॥
2380. तह अघादिकम्मं पि ण, बंधिदुं सक्केदि दिग्घयालस्स।
खयिद-मइ-अप्पयाले, जिणेण सुक्कञ्जाणबलेण॥80॥ (जुम्मं)
2381. संसारम्मि पडंतो, मिच्छत्ताइ-पच्चय-बलादो खलु।
जीवो णियमा अणंत-दुहाणि भुंजेदि सुइरंतं॥81॥
2382. तहेव दु सम्मत्ताइ-णिमित्तेणं उद्धाअदे जीवो।
संसार-सायरादो, सहजेणं भुंजदे सोक्खं॥82॥
2383. पारंभे भवमग्गो, सिवमग्गो अवि पुरिसट्टबलेणं।
पच्छा उहयमग्गा वि, सक्कारेणं होज्ज सहजा॥83॥ (जुम्मं)

अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण व नीच गोत्र इन बाहतर प्रकृतियों का क्षय किया। पश्चात् चरिम समय में जिसका पूर्व में क्षय हो गया उसके अतिरिक्त एक वेदनीय, मनुष्यआयु, मनुष्य गति, पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति व उच्चगोत्र इन बारह प्रकृतियों का क्षय चतुर्थ शुक्लध्यान के बल से किया॥71-76॥ अभव्य जीव स्वभाव से मोक्ष के अयोग्य होते हैं। अनंतर जिस प्रकार प्रचंड सूर्य की उष्णता व पवन के तीव्र वेग से शुष्क वृक्ष से युक्त सघन वन में बाँस वृक्ष के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि उस वन को जला देती है उसी प्रकार उन मुनिराज ने निर्मल शुक्लध्यान के बल से अत्यंत अल्प मुहूर्त काल में अघातिया कर्मों को नष्ट कर दिया॥77-78॥ जिस प्रकार जली हुई रस्सी किसी वस्तु को बांधने में समर्थ नहीं होती एवं सहज पवन के बल से उसकी भस्म उड़ जाती है उसी प्रकार मात्र अघातिया कर्म भी दीर्घकाल के लिए जीव को बांधने में समर्थ नहीं होते। वे कर्म जिनप्रभु के द्वारा अति अल्पकाल में शुक्लध्यान के बल से क्षय को प्राप्त हुए॥79-80॥ मिथ्यात्वादि प्रत्ययों के बल से संसार में गिरता हुआ जीव नियम से अनंत प्रकार के दुःखों को दीर्घकाल तक भोगता है॥81॥

2384. कुणदे णिगोद-वासं, अणादीदो जीवो तिजोगेहिं।
ओरालिय-ओरालियमिस्स-कम्माणा ण चदुत्थो॥84॥
2385. णो करिदुं भवभमणं, सक्को जीवो पुरिसट्टेण विणा।
मिच्छत्तवसेण मिच्छ-पुरिसट्टो सम्मत्तेणिदरो॥85॥
2386. सम्मपुरिसट्टेण तइ, मुणिणा घादिदं पि सव्वकम्माणि।
अणंतयालंतं पुण, विज्जमाणो सिद्धालयम्मि॥86॥



उसी प्रकार सम्यक्त्वादि के निमित्त से जीव संसार सागर से ऊपर उठता है व सहजता में ही सुख भोगता है। प्रारंभ में वह संसारमार्ग व मोक्षमार्ग भी पुरुषार्थ के बल से होता है पश्चात् संस्कारवशात् दोनों ही मार्ग सहज हो जाते हैं॥82-83॥ जीव अनादिकाल से तीनों योगों से निगोद में वास करता है। वहाँ औदारिक, औदारिकमिश्र व कार्माण तीन योग ही होते हैं, चौथा नहीं होता॥84॥ जीव पुरुषार्थ के बिना संसार में परिभ्रमण करने में समर्थ नहीं होता। मिथ्यात्व के वशीभूत मिथ्यापुरुषार्थ व सम्यक्त्व के वशीभूत सम्यक्त्व पुरुषार्थ होता है॥85॥ सम्यक् पुरुषार्थ के बल से उन मुनिराज ने सभी कर्मों का घात कर दिया पुनः अनंतकाल तक के लिए सिद्धालय में विराजमान हो गए॥86॥

2387. सम्मत्त -णाण - दंसण - वीरिय - सुहुमं अवगाहणत्तं च।
अगुरुलहु - मव्वावाह - मट्टगुणा पावीअ णिच्चा॥87॥
2388. णिक्कम्मो णिल्लेवो, चरमदेहादु किंचूणो सिद्धो।
लोयग्गठिदो णिच्चो, सुद्धरूवपरिणदो मुत्तो॥88॥
2389. अखंडो अमुत्त-सुद्ध-चेयणा सासयो विगद-देहु।
कम्मजभावरहिदो य, णाणाइ-अणंतगुण-जुत्तो॥89॥ (जुम्मं)
2390. ववहारेणं सिद्धो, सव्वणहु-सव्वदंसी अबाहिदो।
अक्खयभोत्तु अणंत-यालंतं सगप्पजसुहस्स॥90॥
2391. अप्पणहु-अप्पदंसी, णिच्छयेणं दु सिद्धो अणवेक्खी।
सया णियप्पम्मि रदो, विरहिदो सव्वपरदव्वादु॥91॥
2392. रोहिणि-वद-पहावेण, लहिदो सव्वकम्मविहीण-मोक्खो।
ते सिद्धे णमंसामि, भत्तीइ तं हिदकर-वदं पि॥92॥
2393. रोहिणीइ वि पालिदं, तं वदं च लहिदा अज्जादिक्खा।
कडुअ वर-सल्लेहणं, सग्गम्मि महड्ढिओ देवो॥93॥
2394. सग्गस्स सुपुण्णाउं, भुंजिय होज्ज भूवदी तत्था।
समणधम्मं गहित्ता, तवं कडुअ पाविदो मोक्खो॥94॥

उन्होंने क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व व अव्याबाधत्व इन शाश्वत अष्ट गुणों को प्राप्त किया॥87॥ वे सिद्ध निष्कर्म, निर्लेप (कर्म रूपी लेप से रहित) चरम देह से किंचित् न्यून, लोक के अग्रभाग पर स्थित, नित्य, शुद्ध रूप में परिणत, मुक्त, अखंड, अमूर्तिक, शुद्ध चेतना, शाश्वत, देह से रहित, कर्म निमित्तक भाव रहित व ज्ञानादि अनंत गुणों से युक्त होते हैं॥88-89॥ व्यवहार से सिद्ध सर्वज्ञ व सर्वदर्शी होते हैं। वे अबाधित और अनंतकाल तक निज आत्मा से उत्पन्न सुख के अक्षय भोक्ता होते हैं॥90॥ वे सिद्ध निश्चय से आत्मज्ञ व आत्मदर्शी होते हैं। अनपेक्षी सदैव निजात्मा में रत एवं सभी परद्रव्य से विरहित होते हैं॥91॥ जिन्होंने रोहिणी व्रत के प्रभाव से सर्व कर्म से विहीन मोक्ष पद प्राप्त किया उन सिद्धों को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ एवं उस हितकारी व्रत को नमस्कार करता हूँ॥92॥ रोहिणी ने भी उस व्रत का पालन किया पुनः उत्तम सल्लेखना करके स्वर्ग में महर्दिक देव हुआ॥93॥ वहाँ वह देव स्वर्ग की पूर्ण आयु को भोगकर राजा हुआ। वहाँ श्रमण धर्म को ग्रहण कर तप कर मोक्ष प्राप्त किया॥94॥

2395. अण्णा अणेगजीवा, अस्स वद-पहावेण विहि-सव्वाणि।
खयिय लहिस्संति, सिवं लहीअ ते सय वंदणीया॥95॥
2396. रोहिणि-वदं जे के वि, भव्वा पालंते सुद्ध-बुद्धीइ।
आरोग्ग-विहव-सुकुला, सुहाउं सुसंगदिं लहंति॥96॥
2397. पुणो बोहिं समाहिं, णर-सुराण वर-सोक्खं भुजिदूण।
पच्छा लहंति सस्सद-सुहं होज्ज किदकिच्चा ते॥97॥ (जुम्मं)
2398. णरा कम्मभूमीए, सडावसियं पालंतु णिट्ठाए।
सव्वत्थ धम्मविद्धी, वड्ढु अहिंसा वच्छल्लं॥98॥
2399. सुद्धसाहगतवस्सी, लोयमंगल्ला य सया सव्वत्था।
ताण णाणं संजमो, झाणं तवादी पवड्ढेदु॥99॥
2400. णिवो पया धम्मिट्ठा, खेमसंजुदा णियकत्तव्वरदा।
मंदकसायी सरला, होज्ज गंभीर-सुधीवंता॥100॥
2401. सव्वतित्थयरा जिणा, उसहाइ-वीर-जिणिंद-केवलिणो।
वंदित्तु सव्व-सिद्धा, शुवमि सूरि-पाढगा साहू॥101॥
2402. सत्तविहकेवलिणो य, णमामि अणंतचउक्क-लद्धीए।
सुद्धप्पाणंतगुणा, पप्पोदुं अप्पविसुद्धीइ॥102॥

इस व्रत के प्रभाव से अन्य अनेक जीव भी सर्व कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करेंगे वा जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, वे सभी भी सदैव वंदनीय हैं॥95॥ जो कोई भी भव्य जीव शुद्ध बुद्धि से रोहिणी व्रत का पालन करते हैं वे आरोग्य, वैभव, सुकुल, शुभ आयु व सुसंगति प्राप्त करते हैं। पुनः बोधि व समाधि भी प्राप्त करते हैं। पश्चात् मनुष्य व देवों के उत्कृष्ट सुख को भोगकर शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं और वे कृतकृत्य हो जाते हैं॥96-97॥ कर्मभूमि के मनुष्य निष्ठापूर्वक षडावश्यक का पालन करें। सर्वत्र धर्म की वृद्धि हो, अहिंसा और वात्सल्य की वृद्धि हो॥98॥ शुद्ध साधक व तपस्वी साधु सदा सर्वत्र लोक मंगलकारी हैं। उनका ज्ञान, ध्यान, संयम व तप आदि सदैव वृद्धि को प्राप्त हो॥99॥ राजा व प्रजा धर्मिष्ठ, कुशल युक्त, अपने कर्तव्य में रत, मंदकषायी, सरल, गंभीर, सम्यक् बुद्धि से युक्त हो॥100॥ सर्व तीर्थकर, जिनेंद्र, श्री ऋषभदेव से श्री महावीर तक सभी जिनवर, सर्व केवलियों व सर्व सिद्धों की वंदना करके मैं आचार्य, उपाध्याय व साधुओं की स्तुति करता हूँ॥101॥ अनंतचतुष्टय, शुद्धात्मा के अनंतगुण की प्राप्ति व आत्मविशुद्धि के लिए मैं सात प्रकार के केवलियों को नमस्कार करता हूँ॥102॥

2403. तियालिंगसव्वसूरी, पणविहायारा णमामि भत्तीइ।
पंचाचारेहि विणा, पंचविहभवस्स खओ णेव॥103॥
2404. एयारस - अंगाणं, चउदसपुव्व - पुण्णबारसंगाण।
अंगबज्झस्स णाणं, लहिदुं सव्वपाढगा थुवमि॥104॥
2405. गहिदुं सण्णाण-फल्य-मुत्तमज्झाण-असिं च णमंसामि।
सव्वसाहू वद-समिदि-गुत्तीण कवयं तिजोगेहि॥105॥
2406. अणेगभवेसु संचिद-पुण्णफलेण पत्त-अणाइणिहणं।
जिणधम्मं भत्तीए, थुवमि भवे भवे लहिदुं तं॥106॥
2407. किट्टिमाकिट्टिमाइं, चेइय-चेइयालयाणि तियाले।
वंदामि सुद्ध-चेयण-चेइयं लहिदुं भत्तीए॥107॥
2408. इंदभूदिं सुधम्मं, विण्हुं णंदिमिच्चं अवरजिदं।
गोवड्डुण-भद्दबाहु-विसाहा-पोट्टिल-खत्तिया दु॥108॥
2409. जयणायधिदिसेणा य, सिद्धत्थं विजयं गंगदेवं पि।
धम्मसेण-णक्खत्ता, जयपालं पंडु-धुवसेणा॥109॥
2410. कंससूरिं सुभदं, जसोभद-गुणहरा चंदणंदि।
बलदेवं जिणणंदिं, णमामि सुहभत्तिरायेण॥110॥ (तिअं)

त्रैकालिक सभी आचार्यों व पाँच प्रकार के आचार को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। पंचाचार के बिना पाँच प्रकार के संसार का क्षय नहीं हो सकता॥103॥ ग्यारह अंग, चौदह पूर्व, पूर्ण द्वादशांग व अंग बाह्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैं सभी उपाध्यायों की स्तुति करता हूँ॥104॥ सम्यग्ज्ञान रूपी ढाल, उत्तम ध्यान रूपी तलवार एवं व्रत, समिति व गुप्ति के कवच को प्राप्त करने के लिए तीनों योगों से सभी साधुओं को मैं नमस्कार करता हूँ॥105॥ अनेक भवों में संचित पुण्य फल से प्राप्त अनादिनिधन जिनधर्म को भव-भव में प्राप्त करने के लिए उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥106॥ कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्य व चैत्यालयों को शुद्ध चेतन रूपी चैत्य की प्राप्ति के लिए मैं त्रिकाल में भक्तिपूर्वक मस्कार करता हूँ॥107॥ श्री इंद्रभूति गौतम गणधर, श्री सुधर्म स्वामी, श्री विष्णु, श्री नंदिमित्र, श्री अपराजित, श्री गोवर्धन, श्री भद्रबाहु, श्रीविशाखाचार्य, श्री प्रोष्ठिल, श्री क्षत्रिय, श्री जयसेन, श्री नागसेन, श्री धृतिषेण, श्री सिद्धार्थ, श्री विजय, श्री गंगदेव, श्री धर्मसेन, श्री नक्षत्र, श्री जयपाल, श्री पांडु, श्री ध्रुवसेन, श्री कंसाचार्य, श्री सुभद्र, श्री यशोभद्र, श्री गुणधराचार्य, श्री चंद्रनंदि, श्री बलदेव एवं श्री जिननंदि आचार्य को शुभ भक्ति के राग से नमस्कार करता हूँ॥108-110॥

2411. अज्जसव्वगुत्तं तह, मित्तणंदि सिवकोडि-विणयहरा।
गुत्तिसुदि-गुत्तिइङ्गी, सिवगुत्तं रयणसुहणंदी॥111॥
2412. बप्पदेवं च कुमार-णंदिं अरिहबलिं अरिहदत्तं च।
सिव-विणय-सिरि-दत्ता दु, माघणंदि सिरिधरसेणं॥112॥
2413. पुप्फदंत-भूदबली, मंदज्जं मित्तवीर-माइरियां।
दिवायरसेणं अज्जमंखु णमामि सुविसुद्धीए॥113॥ (तिअं)
2414. सूरि जसोबाहु-णायहत्थी जदिउसहं तह जिणचंदं।
कोंडकुंडं चिअ उमासामिं समंतभद्द-सूरिं॥114॥
2015. अरिहसेण-सीहणंदि-कुमारसामिणो बलागपिच्छं च।
जसकित्तिं जसणंदिं, सामकुंडारिइयं विजयं॥115॥
2416. देवणंदि-सिरिदत्ता, पुज्जपाद-मल्लवादि-जयणंदी।
गुणणंदि-वज्जणंदी, परियंदामि सव्वाइरिया॥116॥ (तिअं)
2417. सव्वणंदिं सिरिलोयचंदं पहाचंदं च जोगिंदुं।
णेमिचंद-भाणुणंदि-सिद्धसेण-पत्तकेसरी य॥117॥
2418. वसुणंदि - मरिहसेणं, वीरणंदि - माणतुंग - अकलंका।
कुमुदचंदं च लखमण-सेणं कणगसेणं सूरिं॥118॥
2119. माणिक्कणंदिं धम्म-रवि-जिण-सेणा मेहबालचंदं।
सुमदिं तह जडासीह-णंदिं काणभिच्छुं वंदे॥119॥

आचार्य श्री आर्यसर्वगुप्त, श्री मित्रनंदि, श्री शिवकोटि, श्री विनयधर, श्री गुप्तिश्रुति, श्री गुप्तिऋद्धि, श्री शिवगुप्त, श्री रत्ननंदि, श्री शुभनंदि, श्री बप्पदेव, श्री कुमारनंदि, श्री अर्हदबलि, श्री अर्हदत्त, श्री शिवदत्त, श्री विनयदत्त, श्रीदत्त, श्री माघनंदि, श्री धरसेनाचार्य, श्री पुष्पदंत, श्री भूतबलि, श्री मंदार्य, श्री मित्रवीर, श्री दिवाकरसेन, श्री आर्यमंक्षु आचार्य को मैं विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥111-113॥ आचार्य श्री यशोबाहु, श्री नागहस्ति, श्री यतिवृषभ, श्री जिनचंद्र, श्री कुंदकुंद, श्री उमास्वामी, श्री समंतभद्र स्वामी, श्री अर्हसेन, श्री सिंहनंदि, श्री कुमार स्वामी, श्री बलाकपिच्छाचार्य, श्री यशःकीर्ति, श्री यशोनंदि, श्री शामकुंडाचार्य, श्री विजय, श्री देवनंदि, श्रीदत्त, श्री पूज्यपाद, श्री मल्लवादि, श्री जयनंदि, श्री गुणनंदि, श्री वज्रनंदि सभी आचार्यों की मैं स्तुति करता हूँ॥114-116॥

2420. चरित्तभूषणं सेट्ट - विज्जाणादि - मज्जणादिं सूरिं।
वादीभसीहं वादिरायं तथा एलाइरियं॥120॥
2421. वीरसेणं सिरिधरं, महावीरं च वीर-पउमसेणा।
उग्गदित्ताइरियं च, देवसेणं वामदेवं पि॥121॥
2422. गुणभद्द-ममियचंदं, गोलाइरियं कलधोदणादिं च।
णयणादिंणयसेणं,सुह-सिरि-चंदाहुणमंसामि॥122॥(तिअं)
2423. बालणादिं तह मल्लि-राम-णाय-णरिंद-हरिसेणा चिअ।
देवचंद-रविचंदा, कुलभद्दं तह इंदणादिं॥123॥
2424. पारसदेवं कणगामरं दामणादिं माधवचंदं।
अमिदगदि-मभयणादिं, पउमणादिं अमोघवस्सं॥124॥
2425. चामुंडरायं सयलकित्ति-मज्जिदसेणं सव्वाइरिया।
जिणसासणुण्णदियरा,पणमामिसगप्पसिद्धीए॥125॥(तिअं)
2426. चरियचक्किं सज्झाण-मेरुं संतिसायरं जुगपुरिसं।
तियाले परियंदामि, णाण-चरिय-मुत्ति-माइरियं॥126॥

श्री सर्वनंदि, श्री लोकचंद, श्री प्रभाचंद, श्री योगेंदु देव, श्री नेमिचंद, श्री भानुनंदि, श्री सिद्धसेन, श्री पात्रकेसरी, श्री वसुनंदि, श्री वीरनंदि, श्री मानतुंग, श्री अकलंक देव, श्री कुमुदचंद, श्री लक्ष्मणसेन, श्री कनकसेन, आचार्य श्री माणिक्यनंदि, श्री धर्मसेन, श्री रविषेण, श्री जिनसेन, श्री मेघचंद्र, श्री बालचंद, श्री सुमतिदेव, श्री जटासिंहनंदि, श्री काणभिक्षु आचार्य की मैं वंदना करता हूँ॥117-119॥ श्री चारित्रभूषण, श्रेष्ठ श्री विद्यानंद, श्री आर्यनंदि, आचार्य श्री वादीभसिंह, श्री वादिराज, श्री एलाचार्य, श्री वीरसेन, श्री श्रीधर, श्री महावीर, श्री वीरसेन, श्री पद्मसेन, श्री उग्रदित्याचार्य, श्री देवसेन, श्री वामदेव, श्री गुणभद्र, श्री गोलाचार्य, श्री कलधौतनंदि, श्री नयनंदि, श्री नयसेन, श्री शुभचंद्र, श्री श्रीचंद्र आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ॥120-122॥ आचार्य श्री बालनंदि, श्री मल्लिषेण, श्री रामसेन, श्री नागसेन, श्री नरेंद्रसेन, श्री हरिषेण, श्री देवचंद, श्री रविचंद, श्री कुलभद्र, श्री इंद्रनंदि, श्री पारसदेव, श्री दामनंदि, श्री माधवचंद, श्री अमितगति, श्री अमोघवर्ष, श्री सकलकीर्ति, श्री अजितसेनादि जिनशासन की उन्नति करने वाले सभी आचार्यों को मैं स्वात्मसिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ॥123-125॥ चारित्र चक्रवर्ती प्रशस्त ध्यान के मेरु, युग पुरुष, ज्ञान व चारित्र की मूर्ति आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज को मैं त्रिकाल में नमस्कार करता हूँ॥126॥

2427. बारस-तव-जुद-मप्पाणुसासगं तह हिमगिरीव धीरं।
सजुत्तिजुत्त-वयणं च, पणमामि पायसिंधु-सूरिं॥127॥
2428. अज्झप्प-सायरस्स दु, मराल-मपुव्वकित्ति-जुदं णमामि।
बहुगुणरयण-संजुदं, चेयणसिंधुं जयकित्तिं हु॥128॥
2429. सव्वमण्णगुरुं पुज्ज-णिग्गंथ-गोरवं देसभूसणं।
देसस्स सुह-भूसणं, धम्मपहावग-पमुहं थुवमि॥129॥
2430. सिद्धंतचक्किं रट्ट-संतं विस्सधम्म - संपेरगं च।
सेदपिच्छिधारगं दु, सण्णाण-विस्सविज्जालयं॥130॥
2431. जुग-पवट्टगं, णाणक्कं सव्वसंदेहतमणासगं च।
सव्वविदूसुं मण्णं, जेट्टं सेट्टं च आइरियं॥131॥
2432. पच्चक्ख-उवयारिं हु, मम हिदकरं सया विज्जाणंदं।
गुरुदेवं सु पणमामि, खालिदुं अप्पपावपंकं॥132॥ (तिअं)
2433. अक्कोव्व ओजंसी य, णमामि मिअंगोव्व सीयलचित्ता।
सायोव्व गंभीरा, सव्वसूरिणो दु अज्जंतं॥133॥

बारह तप से युक्त, आत्मानुशासक, हिमालय के समान धीर, युक्तियुक्त वचनों को कहने वाले, चेतन सिंधु आचार्य श्री पायसागर जी को मैं प्रणाम करता हूँ॥127॥ अध्यात्म रूपी सागर के राजहंस, अपूर्व कीर्ति से युक्त, बहुत गुण रूपी रत्नों से संयुक्त, चेतन सिंधु आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज को नमस्कार करता हूँ॥128॥ सर्वमान्य गुरु, पूज्य, निर्ग्रन्थ गौरव, प्रमुख धर्म प्रभावक, देश के शुभ आभूषण रूप आचार्य श्री देशभूषण जी को मैं नमस्कार करता हूँ॥129॥ सिद्धांतचक्रवर्ती, राष्ट्रसंत, विश्वधर्म संप्रेरक, श्वेतपिच्छीधारक, सम्यग्ज्ञान के विश्व विद्यालय, युग प्रवर्तक, सर्व संदेह रूपी अंधकार को नष्ट करने वाले, ज्ञान रूपी सूर्य, सभी विद्वानों में मान्य, मेरे प्रत्यक्ष उपकारी, हितकारी ज्येष्ठ व श्रेष्ठ आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंद जी मुनिराज को आत्मा के पाप रूपी पंक के प्रक्षालन के लिए सदा नमस्कार करता हूँ॥130-132॥ सूर्य के समान ओजस्वी, चंद्रमा के समान शीतलचित्त व सागर के समान गंभीर आज तक के सभी आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ॥133॥

2434. सायरोव्व णिस्सीमं, सुदणाणं णो को वि णित्थरेदुं।
इदमप्पविसुद्धीए, लिहिदं सुगुरुक्किवाए तहवि॥134॥
2435. संजद-बहुसुदणाणी, सुद्धप्पज्झाणरदा सिवमग्गी।
मुणी सोहयंतु इमो, बालोव्व जाणिय खमंतु मे॥135॥
2436. परमसङ्काइ पढेज्ज, चिंतेज्ज सुणेज्ज भव्वा जे के वि।
सवर-मोह-मण्णाणं, गालिदुं सक्कंति णियमेण॥136॥
2437. अस्स गंथ-लेहणम्मि, मए अणभुविदो दु परमाणंदो।
वसुगुणणंदं लहिदुं, कम्मं खयिय सिवोव्व लिहिदो॥137॥

शार्दूल विक्रीडित छंद

2438. देवेहिं थुद-सोक्खदं हिदयरं णिव्वाण - संसाहगं,
साहिंसं दुरिदंतगं वर-सिआवायंग-जुत्तं सया।
गंभीरं अजिदं तिलोयमहिदं, सव्वणहुणा भासिदं,
वंदे हं जिणधम्म-दोसरहिदं णाणीहि संसेविदं॥138॥
2439. जावच्चंद-दिवायरा सुगगणे, जोदिग्गहा सोहिदा,
णिस्सीमे रयणायरे सुरयणं, खीरोदही उज्जलं।
पाणेहिं खलु जीवदे य पददे, सेलादु मंदाइणी,
भव्वाणं सुहिदं च ताव सिवदो संतिप्पदो गंथिमो॥139॥

सागर के समान निःसीम श्रुतज्ञान को पार करने में कोई समर्थ नहीं है। आत्मविशुद्धि के लिए गुरु की कृपा से यह ग्रंथ लिखा गया॥134॥ संयत, बहुश्रुतज्ञानी, शुद्धात्मध्यान में रत, मोक्षमार्गी मुनिराज इस ग्रंथ को संशोधित करें एवं मुझे बालक के समान जानकर क्षमा करें॥135॥ जो कोई भी भव्य जीव परम श्रद्धा से इस ग्रंथ को पढ़ते हैं, सुनते हैं, इसका चिंतन करते हैं वे स्वपर मोह व अज्ञान का नाश करने में नियम से समर्थ होते हैं॥136॥ इस ग्रंथ के लेखन में मुझे परमानंद का अनुभव हुआ। सर्व कर्मों का क्षय कर सिद्धों के समान वसु-अष्ट गुणों को प्राप्त करने के लिए इस ग्रंथ का लेखन किया॥137॥ देवों के द्वारा संस्तुत, सुख को देने वाले, निर्वाण के संसाधक, अहिंसा से सहित, उत्तम स्याद्वाद चिह्न से युक्त, गंभीर, अजेय, तीनों लोकों में महिमावान्, सर्वज्ञ के द्वारा भाषित, ज्ञानियों के द्वारा सेवित, दोष रहित जिनधर्म की मैं वंदना करता हूँ॥138॥

2440. सद्धम्मस्स सुवङ्गुगा मुणिवरा, अग्गिधणं डज्झदे।
सिप्पीए सुहमोत्तिअं महितले, धम्मो अहिंसाजुदो।
तित्थेसो खलु जाव ताव सददं कल्लाणजुत्तो तहा,
गंथेसो वसुणंदि-सूरि-रयिदो, मादूव संपोसगो॥140॥

2441. सद्धम्मस्स पहावगं वरगणिं, सव्वक्खजेदुं सया,
जेदुं आइरियं सगप्प-रसिगं, सिद्धंतचक्किं तहा।
मुत्तित्थीइ सुकंत - भावि - सुमुणिं, वंदित्तु भत्तीइ तं,
विज्जाणंद-सुअंतवासि पडुणा, गंथो मए भासिदो॥141॥

जब तक आकाश में सूर्य-चंद्रमा हैं, ज्योतिष ग्रह सुशोभित हैं, रत्नाकर में निःसीम रत्न हैं, क्षीरोदधि का जल उज्ज्वल-धवल है, जीव प्राणों से जीता है, पर्वत से नदी गिरती है तब तक यह ग्रंथ भव्य जीवों का हित करने वाला, मोक्ष देने वाला और शांति प्रदान करने वाला होवे॥139॥ जब तक जिनधर्म का वर्द्धन करने वाले मुनिवर हैं, अग्नि ईंधन को जलाती है, सीप में शुभ मोती है, पृथ्वीतल पर अहिंसा धर्म है तथा तीर्थकर कल्याणक से युक्त हैं तब तक आचार्य वसुनंदी द्वारा रचित यह ग्रंथ माता के समान संपोषण करने वाला है॥140॥ जिनधर्म प्रभावक, उत्तम गणी (संघ नामक) सर्व इंद्रियों के जेता, ज्येष्ठ स्वात्मा के रसिक, सिद्धांतचक्रवर्ती, मुक्ति रूपी स्त्री के भावी कांत आचार्य श्री विद्यानंद जी को भक्तिपूर्वक वंदन करके मेरे-आचार्य श्री विद्यानंद के अंतेवासी शिष्य के द्वारा यह ग्रंथ कहा गया है॥141॥

अनुष्टुप् छंद

2442. पुण्णाहे य वीरद्धे, अत्थ - गइ - रसंबरे।
तित्थेखेत्ते महावीरे, पुण्णो उच्च-रविम्मि य॥142॥

पदार्थ (9), गति (4), रस (5), अंबर (2) “अंकानां वामतो गतिः” से 2549 वीर निर्वाण संवत् में उच्च के सूर्य में शुभ दिन में श्री महावीर जी तीर्थ क्षेत्र पर यह “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ॥142॥

इस प्रकार परम पूज्य अभीक्षण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा विरचित “अशोक रोहिणी चरित्र” नामक महाकाव्य में श्री अशोक मुनि के केवलज्ञान, दिव्यध्वनि व मोक्षप्राप्ति का वर्णन करने वाला इक्कीसवाँ नंद पूर्ण हुआ।

महाकाव्य में निहित “सूक्तियाँ”

1. सेवित्तु णाणामियं णंददि णिहिपत्तणिद्धणोव्व। -1/16
ज्ञानामृत का सेवन कर भव्यजीव ऐसे आनन्दित होता है जैसे रंक को कोई निधि ही प्राप्त हो गई हो।
2. चरियं सोहदि गुरु-क्विवाए। -1/33
चारित्र गुरु-कृपा से शोभित होता है।
3. सगकुल-मज्जादा हु अलंघणीया। -1/67
स्वकुल मर्यादा उल्लंघन के योग्य नहीं होती।
4. भूसणं संजमो णिग्गंथाणं। -1/71
निर्ग्रन्थों का आभूषण संयम है।
5. बालभूसणं चंचुरत्तं। -1/73
बच्चों का आभूषण चंचलता है।
6. भिच्चाण विणय धम्मो, विज्जत्थीणं महागुणो विणओ। -1/81
सहावो पदिवदाणं, जोगीणं च मोक्खकुंजीव।।
सेवकों के लिए विनय धर्म है, विद्यार्थियों के लिए विनय महागुण है, पतिव्रता स्त्रियों का विनम्रता स्वभाव है एवं विनम्रता ही योगियों के लिए मोक्ष ही कुंजी है।
7. अचिंत-इड्डीओ पुण्णेण। -1/91
अचिन्त्य ऋद्धियाँ पुण्य से प्राप्त होती हैं।
8. दोसादु परमविरत्ती पुण्णेण। -1/92
पुण्य द्वारा दोषों से परम विरक्ति होती है।
9. पुण्णेण जिणदंसणं -1/98
पुण्य से ही जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन मिलते हैं।
10. सम्मपुरिसट्ठं विणा सुणिमित्तं णेव कयावि फलदं हु -1/101
सम्यक् पुरुषार्थ के बिना सुनिमित्त कभी भी फलप्रद नहीं होते।

11. पुण्णेणं आरोगं। -1/102
पुण्य से आरोग्य प्राप्त होता है।
12. अहिंसावरूव-कम्म-वररूवं तिव्वपुण्णेणं। -1/103
तीव्र पुण्य से अभिशाप भी वरदान हो जाते हैं।
13. वंदगा विस्सवंदणीया। -1/126
जिनवंदना से वंदना करने वाले विश्ववंदनीय हो जाते हैं।
14. गुणवड्ढगा जिणत्थुदी। -1/128
जिनस्तुति गुणों का वर्द्धन करती है।
15. पुण्णप्पेसुं पावी हंसेसुं बगोव्व ण सोहंति। -2/45
पुण्यात्माओं के मध्य पापी उसी प्रकार शोभित नहीं होते जिस प्रकार हंसों के मध्य बगुला।
16. समयं वीईव ण एगसरिसो। -2/72
पानी की लहरों के समान समय एक सा नहीं रहता।
17. जिणवयणं णियमेणं चित्तथिरिमाए संति-सुह-हेदू। -2/76
जिनवचन नियम से चित्त की स्थिरता, शान्ति व सुख का हेतु हैं।
18. पुण्णोदये को वि णो जाणेदि गच्छमाण-यालं। -2/120
पुण्योदय में व्यतीत हुए समय का पता किसी को नहीं लगता।
19. सुपुण्णवंताणं किं इड्ढत्थं दुल्लहं लोए। -2/129
पुण्यवानों के लिए कौन सी इष्ट वस्तु लोक में दुर्लभ है।
20. उण्हवेस्साणरस्स वि पहावो दिस्सदे उण्हो। -3/8
उष्ण अग्नि का प्रभाव भी उष्ण ही दिखता है।
21. गवेसेज्जा णरो तह मित्तं कत्थ वि सभाविल्लं। -3/9
व्यक्ति अपने स्वभाव वाले मित्र को खोज ही लेता है।
22. अज्जदि पुण्णुदये बहुपुण्णं सुकिदेहि णरो। -3/11
पुण्योदय में जीव पुण्यकार्यों द्वारा बहुपुण्य का अर्जन करता है।

23. पुण्णवंताण सोक्खं पुण्णेणं सव्वपयारेण। -3/18
पुण्यवानों के पुण्य से सभी प्रकार से सुख होता है।
24. सुहेण बहुगच्छमाण-समयं विआणेदि णो। -3/137
सुख से बीता हुआ बहुत समय भी ज्ञात नहीं होता
25. कुणसु पुण्णकज्जं सया। -3/138
सदा पुण्यकार्य करो।
26. पुण्णं विणा ण सक्कदि गहिदुं सिक्खं पिदर-गुरूणं। -4/18
पुण्य के बिना जीव माता-पिता व गुरु की शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता।
27. दुल्लहं सेट्ठ-माणुसभवपावणं च। -4/53
श्रेष्ठ मनुष्यभव पाना दुर्लभ है।
28. अइदुल्लहा णरभवपत्ती। -4/55
मनुष्यभव की प्राप्ति अति दुर्लभ है।
29. दुल्लहो माणुस-पज्जाओ। -4/57
मनुष्य पर्याय दुर्लभ है।
30. दस्समाणत्थ-सव्वं णस्सरं दु पडंत-उक्का व्वा। -4/61
दृश्यमान सभी पदार्थ उल्कापातवत् नश्वर है।
31. गूढप्पमंतो परमंतभेदी पराण अजेयो। -4/78
अपनी मंत्रणा गुप्त रखने वाला, दूसरों की गुप्त मंत्रणा को प्रकट करने वाला शत्रुओं के लिए अजेय होता है।
32. सोगभय-सत्तुत्तं रोयं उहट्टंति मुणिदंसणेण। -4/85
शोक, भय, शत्रुता, रोग मुनिदर्शन से नष्ट हो जाते हैं।
33. संसारीणं सुपुण्णं इग-वर-सरणं रक्खिदुं वा दुहादो। -4/140
दुःखों से रक्षा करने के लिए संसारी जीवों के लिए पुण्य ही एकमात्र उत्तम शरण है।
34. अट्टरुद्धज्जाणाणि भववड्डगाणि। -5/42
आर्तरीद्रध्यान भववर्द्धक होते हैं।

35. सगचित्ते धम्मुप्पत्तीइ हेदू धम्मज्झाणां। -5/52
धर्मध्यान चित्त में धर्मोत्पत्ति का हेतु है।
36. असदो संभवो णेव। -5/64
असत् संभव नहीं है।
37. गदि-हेदुत्तं धम्मो। 5/67
गति कराने का हेतु धर्म है।
38. ठिदिहेदुत्तमधम्मो। -5/67
ठहराने का हेतु अधर्म है।
39. पुण्णं विणा भवसोक्खं णो। -5/116
पुण्य के बिना सांसारिक सुख भी प्राप्त नहीं होता।
40. णण्णहावादी मुणी। -5/119
मुनि अन्यथावादी नहीं होते।
41. मुणिवयणं अमोहं णियमा। -5/119
मुनिवचन नियम से अमोघ होते हैं।
42. पुण्णवंतो सुपुत्तो कस्स दु सोक्ख-कारणं णेव। -6/5
पुण्यवान् सुपुत्र किसके सुख का कारण नहीं होता।
43. सेट्ठगुरू णिच्छयेण तिलोयादो उत्तमधणं वा। -6/10
श्रेष्ठ गुरु तीनों लोकों से भी उत्तम धन के समान हैं।
44. णिप्फलं जीवणं तस्स सुहगुणरहिदो जो को वि खलु। -6/11
जो कोई भी शुभगुणों से रहित है उसका जीवन निष्फल है।
45. पढम गुरू पिदरं चिय मंगलजीवणाय पुत्तस्स। -6/15
पुत्र के मंगलजीवन के लिए माता-पिता ही प्रथम गुरु होते हैं।
46. पत्तेयं जीवो सय पभुंजेदि णिय-सुपुण्य-पावफलं। -6/31
प्रत्येक जीव सदा ही स्वपुण्य व पाप का फल भोगता है।

47. शीलवन्त-इत्थीए मज्जादा भूसणं च कुलविज्जा। -6/58
शीलवती स्त्री का आभूषण मर्यादा व कुलविद्या है।
48. पावोदयम्मि हवेदि दुहं सोग-कट्टपीडादी। -6/62
पाप के उदय में दुःख, शोक, कष्ट व पीड़ा होते हैं।
49. कोहो णासदि बुद्धिं विवेगं पदिट्ठं वत्तं च। 6/66
क्रोध बुद्धि, विवेक, प्रतिष्ठा व आरोग्य को नष्ट कर देता है।
50. देहरूवकाणणं दु डज्झदि तिक्खवेगेण कोहग्गी। -6/67
क्रोध रूप अग्नि तीव्रवेग से देह रूपी वन को जला देती है।
51. असहिण्हुभावम्मि सदि उप्पज्जदि कोहो चित्तम्मि। -6/70
असहिष्णुभाव होने पर चित्त में क्रोध उत्पन्न होता है।
52. सुपुण्णवन्तस्स कं वि वत्थुं दुल्लहं ण तिलोए। -6/84
पुण्यवान् के लिए तीनों लोकों में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।
53. वदहीणो मण्णेज्जा णेरइयोव्व पसूव अहवा। -6/85
व्रत से हीन व्यक्ति नारकी व पशुवत् है।
54. अणुव्वदं सीलव्वदं पालेज्ज। -6/85
अणुव्रत और शीलव्रत का पालन करना चाहिए।
55. अवदि-असुहलेस्साजुदा णेरइया। -6/86
नारकी अव्रती व अशुभलेश्या से युक्त होते हैं।
56. मुणिदंसणेण खयदे पावां। -7/14
मुनिदर्शन से पापों का क्षय होता है।
57. वंदणेण चित्तविसुज्झं। -7/14
वन्दना से चित्त विशुद्ध होता है।
58. अभव्वचित्ते कया वि जिणुवएसो णो समट्ठो हिदाय। -7/45
अभव्य के चित्त में जिनोपदेश कभी भी हित करने में समर्थ नहीं होता।

59. सव्वदुहं अण्णाणं विहावं खयिदुं खलु धम्मो। -7/48
सर्वदुःख अज्ञान व विभाव का क्षय करने वाला धर्म ही है।
60. परमधम्मो जीवस्स सुद्धसहावो। -7/49
जीव का शुद्ध स्वभाव परमधर्म है।
61. णिगंथ-दिक्खं विणा ण सक्को मोक्खमग्गो। -7/59
निर्ग्रन्थ दीक्षा के बिना मोक्षमार्ग शक्य नहीं।
62. मेत्तं बहिणग्गतं णो समत्थं मोक्खं देदुं। -7/60
मात्र बाह्य नग्नता मोक्ष देने में समर्थ नहीं।
63. सावयेहि दव्व-भावलिंगी सव्वा वंदणीया। -7/66
श्रावकों के द्वारा द्रव्यलिंगी व भावलिंगी सभी साधु वंदनीय हैं।
64. गहेज्ज सावयधम्मं मुणिधम्मं पालिदुमसक्को। -7/67
यदि श्रमणधर्म का पालन करने में अशक्य हो तो श्रावक धर्म पालन करना चाहिए।
65. चउसिक्खावदाइं दु देति सिक्खं पालिदुं मुणिधम्मं। -7/73
चार शिक्षाव्रत मुनिधर्म पालने की शिक्षा देते हैं।
66. तव-सिव-भूमी णियमा पुज्जणीया सहिद्धीहिं। -7/78
तपभूमि और निर्वाणभूमि नियम से सम्यग्दृष्टियों द्वारा पूज्यनीय है।
67. अज्जावग्गा पेया महव्वदी सत्थेण उवयारेण। -7/79
जिनागम के अनुसार आर्यावर्ग उपचार से महाव्रती जानना चाहिए।
68. धम्मेणं विणा को वि णेव सस्सद-सुहं लहिदुं समत्थो। -7/88
धर्म के बिना कोई भी शाश्वत सुख प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता।
69. को वि विवागम्मि णो सहाओ। -7/90
विपाक के समय कोई भी जीव का सहायक नहीं होता।
70. रयणत्तयं हि मोक्ख-उवाओ। -7/90
रत्नत्रय ही मोक्ष का उपाय है।

71. परोवयार-सहावो पड़डीए हि महापुरिसाण। -8/4
महापुरुषों का परोपकार-स्वभाव प्रकृति से ही होता है।
72. जिणणिंदगो य पावी। -8/7
जिनेन्द्र प्रभु का निंदक पापी होता है।
73. कुलणासगो जिणधम्मणिंदगो। -8/7
जिनधर्म का निंदक कुल का नाशक होता है।
74. साहुणिंदगो दुट्टो। -8/7
साधु-निंदक दुष्ट कहलाता है।
75. जिणवयण-णिंदगो मूढो। -8/7
जिनवचनों का निंदक मूर्ख होता है।
76. अइपाविट्टो जिणसुद-णिग्गंथ-सुधम्म-णिंदगो य। -8/9
जिनश्रुत, निर्ग्रन्थ निंदक और धर्मनिंदक अतिपापी कहलाता है।
77. णिरंकुस-सुदो सिस्सो वड्ढदि दुग्गइ-दुक्ख-मग्गे। -8/37
निरकुंश पुत्र व शिष्य दुर्गति व दुःख मार्ग में बढ़ता है।
78. बंधणजुदो पदंगो समत्थो उड्डीदुं आयासे। -8/39
बंधन युक्त पतंग आकाश में उन्नत होने में समर्थ होती है।
79. अणुसासणविहीणो दु चुण्णं होज्ज पददलणादो। 8/41
अनुशासनविहीन पाषाण पैरों से रौंदे जाने से चूर्ण बन जाता है।
80. अणुसासणेणं विणा को वि ण लहिदुं सक्को परमपदं। -8/45
अनुशासन के बिना कोई भी परमपद पाने में समर्थ नहीं है।
81. सम्मपुरिसट्टहीणो लहदि दुहं दुग्गदिं दोत्थं। -8/46
सम्यक् पुरुषार्थहीन व्यक्ति दुःख, दुर्गति व दरिद्रता प्राप्त करते हैं।
82. सगपाण-रक्खाए मणुओ किं किं ण कुव्वेदि? -8/52
अपने प्राणों की रक्षा के लिए मनुष्य क्या-क्या नहीं करता।

83. जीवो पुण्णोदयम्मि गुंजिदूण बंधदि पाव कम्माणि। -8/56
जीव पुण्योदय में हंसकर पापकर्म को बांधता है।
84. धम्मं विणा ण कस्स वि को वि रक्खगो सहायगासया। -8/61
धर्म के बिना कोई भी किसी का रक्षक, सहायक व आश्रय नहीं है।
85. संचिणिदव्वो सया धम्मो। -8/61
सदा धर्म का संचय करो।
86. णिंदं णेव सुणेज्ज करेज्ज। -8/73
कभी भी निंदा न सुननी चाहिए और न करनी चाहिए।
87. णेया सुपुण्ण-हेदू सगदोसणिंदा परगुणपसंसा। -8/74
स्वदोष की निंदा व परगुणप्रशंसा पुण्य का हेतु जानना चाहिए।
88. परणिंदप्पपसंसा दुहायरो दुग्गइ-हेदू य। -8/74
परनिंदा व आत्मप्रशंसा दुःख की खान है एवं दुर्गति का हेतु है।
89. सव्वजणेसुं सेट्ठा सव्वदा हु सुसक्कारिदा णारी। -8/82
सुसंस्कारित नारी सर्वदा सभी जनों में श्रेष्ठ है।
90. णारीइ विणा गेहे सुहसंतीइ कप्पणा णेव। -8/82
नारी के बिना घर में सुख शान्ति की भी कल्पना नहीं की जा सकती।
91. णारी चिय मंगल्ला, लोगिग-सव्वमंगलेसुं। -8/83
नारी सभी लौकिक मंगलों में मंगल होती है।
92. जत्थ अइवत्तिज्जदे मज्जादं णेव सो वरो देसो। -8/84
जहाँ कोई अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता वह श्रेष्ठ देश माना जाता है।
93. सुसंसारी अप्पा उसरसबलेणं भयवदो। -8/100
संसारी आत्मा धर्म रूपी रसायन के बल से भगवान्/परमात्मा हो जाती है।
94. विसुद्धीए पावक्खयिदुमह णिग्गंथवयणं। -8/100
निर्ग्रन्थ मुनि के वचन पापक्षय व आत्मविशुद्धि के लिए होते हैं।

95. को वि जीवो ण भुंजदि कया वि अण्णकिदकम्मफलं। -9/11
कोई भी जीव अन्य द्वारा किए गये कर्मों का फल नहीं भोगता।
96. समत्थो दु णेव को वि अण्णकिदकम्मं अण्णहा। -9/12
कोई भी जीव अन्य द्वारा कृत कर्म अन्यथा करने में समर्थ नहीं है।
97. लहिदुं मोक्खपहं णो सक्कदि विणा सम्मजदणेण। -9/14
जीव समीचीन पुरुषार्थ के बिना मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता।
98. उक्कट्ट-पुण्णफलेण जीवो पाउणेदि मोक्खमग्गं दु। -9/16
उत्कृष्ट पुण्य के फलस्वरूप ही जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करता है।
99. पावो हु महातमोव्व देदि दोत्थं दुरावत्थं दुक्खं। -9/23
पाप महाअंधकारवत् है यह जीव को दुर्गति, दुरावस्था व दुःख देता है।
100. पुण्णं पयासरूवो। -9/24
पुण्य प्रकाशरूप है।
101. मुत्तिकारणमाहारदाणं। -9/49
आहारदान मुक्ति का कारण है।
102. वरपुरिसाण-सहावो सीदंति परपीडाइ णो सगस्स। -9/65
महापुरुषों का तो स्वभाव ही होता है कि वह परपीड़ा से दुःखी होता है।
103. मुणिण्णिंदगो वा हणगो जिणसासण-घादगो णिच्छयेणं। -9/84
मुनि-निंदक या मुनिघातक निश्चय से जिनशासन का घातक है।
104. तिक्काले तियलोए अचिंतं जिण्णिंद-वयण-माहप्पं। -10/45
तीनों कालों और तीनों लोकों में जिनवचनों का माहात्म्य अचिन्त्य है।
105. जिणसासणं समत्थं कुव्विदुं सिद्धो भव्वप्पं। -10/45
भव्यात्मा को सिद्धात्मा करने में जिनशासन ही समर्थ है।
106. सुहसक्कारविहीणा सवरपडण-णिमित्तं णिच्चं। -10/48
शुभ संस्कार विहीन स्त्री नित्य स्व-पर के पतन का निमित्त है।

107. जिणधम्मरसायेण विणा अण्णा ओसही णेव का वि। -10/54
जिनधर्म रूपी रसायन के बिना अन्य कोई औषधि नहीं है।
108. जिणसासणं हि परमसरणं। -10/61
जिनशासन ही परम शरण है।
109. दुहदा य णासवंता चित्तरंजग-पंचिंदियविसया। -10/63
इन्द्रियविषय दुःखद, नाशवान् और मन को अनुरंजित करने वाले होते हैं।
110. वाहिमंदिरो देहो। -10/63
शरीर व्याधियों का मन्दिर है।
111. वेरग्ग-सारभूदं। -10/64
वैराग्य ही सारभूत है।
112. वेरग्गं वीयरायत्त-जणगं। 10/65
वैराग्य ही वीतरागता का जनक है।
113. रयणत्तयं ण जणदे चित्तम्मि दु विणा वेरग्गं। -10/65
वैराग्य के बिना चित्त में रत्नत्रय की उत्पत्ति नहीं होती।
114. विणा णिमित्तेण को वि णेव समत्थो सवरहिदाय। -10/69
निमित्त के बिना कोई भी स्व-पर हित के लिए समर्थ नहीं होता।
115. दुज्जणो पुण्णकज्ज-विमुहो। -10/77
दुर्जन पुण्यकार्य से विमुख होता है।
116. णिग्गंथा मुणिराया लोयम्मि मंगलकारगा णिच्चं। -10/94
निर्ग्रन्थ मुनिराज लोक में नित्य ही मंगलकारक होते हैं।
117. जत्थ णिग्गंथ-साहू सुब्भिक्ख-मंगल-जया तत्थ। -10/94
जहाँ निर्ग्रन्थ साधु होते हैं वहाँ सुभिक्ष मंगल और विजय होती है।
118. णिग्गंथा मंगल्ला सव्वहिदकारगा बंधू व्वा। -10/96
निर्ग्रन्थ साधु मंगलकारी एवं बंधुवत् सभी के हितकारक होते हैं।

119. णिग्गंथ-मुण्डिसणं सव्वकज्जसिद्धिकारणं णिच्चं। -10/97
निर्ग्रन्थ मुनिराज के दर्शन सर्व कार्यकी सिद्धि करने वाले होते हैं।
120. सुक्क-तडागं वि होदि णीरपूरिदं मुणिवर-पहावेण। -10/99
निर्ग्रन्थ मुनिवरों के प्रभाव से सूखे तालाब भी जलपूरित हो जाते हैं।
121. साहू दंडभायगा णेव। -10/100
साधु कभी भी दण्ड के भाजक नहीं होते।
122. णिग्गंथ-दंसणेणं दुब्भिक्खं दोत्थमघं खयदि। -10/105
निर्ग्रन्थों के दर्शन से दुर्भिक्ष, दुर्गति व पाप नष्ट होते हैं।
123. जत्थ णिग्गंथ-साहू विजयलच्छी सया सागदं करदि। -10/106
जहाँ निर्ग्रन्थ साधु होते हैं वहाँ सदैव विजयलक्ष्मी स्वागत करती है।
124. पावकम्मं णस्संति मुण्डिसण-वंदण-भत्तीहि। -10/109
मुनियों के दर्शन, वंदन और भक्ति से पापकर्म क्षय हो जाते हैं।
125. पावफलेणं जीवो किं दुक्खं च णेव पप्पोदि। -10/121
पाप के फल से जीव किस दुःख को प्राप्त नहीं करता।
126. जह कम्मं तह फलां। -10/123
जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है।
127. पावं वि ण सिहदि पाविट्ठं। -10/124
पाप भी पापिष्ठ को नहीं चाहता।
128. जो कुणदि सो भुंजदि। -10/125
जो करता है वह नियम से फल भोगता है।
129. भुंजदि पावी घोर दुहाणि। -11/2
पापी घोर दुःखों को भोगता है।
130. मुण्डिघाद-महापावं। -11/17
मुनि का घात करना महापाप है।

131. मुणिगिंदाए फलेण रोधि-दुभगा वियलंगो दरिद्वो। -11/18
मुनि-निंदा के फल से जीव रोगी, दुर्भग, विकलांग और दरिद्र होता है।
132. पावोदये जिणमुणिदंसणं णो। -11/21
पाप के उदय में जीव को जिनेन्द्रदर्शन और मुनिदर्शन प्राप्त नहीं होता।
133. पुण्णकज्जेहि खयंति पुव्वसंचिद-पावकम्माणि। -11/45
पूर्वसंचित पापकर्म पुण्यकार्य से ही नष्ट होते हैं।
134. मोह-विणासगं सण्णाणं। 11/47
सम्यग्ज्ञान मोह का विनाशक है।
135. पुण्णाइं पूरयिदुं सिवं दायिदुं वदं सक्कं। -11/58
पुण्य से भरने एवं मोक्षपद देने में व्रत समर्थ है।
136. सेट्ठ-सुगुरु-साणिज्जे रदा सिवमग्गे पुण्णकज्जेसुं। -11/71
श्रेष्ठ सुगुरु के सान्निध्य में भव्यजीव पुण्य कार्यो व मोक्षमार्ग में रत रहते हैं।
137. गुरुवासणाए विणा सण्णाणं जुण्हा व विणा चंदं। 11/72
गुरु उपासना के बिना सम्यग्ज्ञान चन्द्र के बिना ज्योत्स्नावत् है।
138. सुगुरुचरणेसुं सया गुणो सहावो वरधम्मो। -11/73
गुरु चरणों में सदैव गुण, स्वभाव और उत्कृष्ट धर्म होता है।
139. सुसिस्सेसुं फुट्टेदि गुण-धम्मो सहावो गुरुणा। -11/74
गुरु के माध्यम से सुशिष्यों के गुण, धर्म व स्वभाव प्रकट होता है।
140. सम्मत्ताइ-गुणं सिवमग्गं भव्वो लहदि गुरुक्किवाए। -11/75
गुरुकृपा से भव्यजीव सम्यक्त्वादि गुणों और मोक्षमार्ग को प्राप्त करता है।
141. पिदरोव्व पुज्जो गुरू। -11/76
गुरु पिता के समान पूज्य होते हैं।
142. गुरु-आसीवायेणं वड्ढदि तव-संजमा सीलं। 11/77
गुरु के आशीर्वाद से तप, संयम और शील वृद्धिगत होते हैं।

143. गुरुदंसणं च णेहो चित्त-विआसगो णियड-भव्वाणं। -11/78
गुरु का दर्शन और स्नेह निकट भव्यों के चित्त का विकासक है।
144. समादुं पस्सिय तुट्ट-हरिसिद-बालोव्व सय सिस्सो गुरुं। -11/79
अपनी माता को देखकर बालक सन्तुष्ट व हर्षित होता है उसी प्रकार गुरु को देखकर शिष्य भी हर्षित होता है।
145. गुरुसेवाए पावदि णाणं संजमं वेरग्गं। -11/79
गुरुसेवा से शिष्य ज्ञान, संयम और वैराग्य प्राप्त करता है।
146. गुरुणा रक्खिदा तव-णाण-झाण-संजमाइ-गुणा। -11/80
गुरु के द्वारा तप, ज्ञान, ध्यान और संयमादि गुण सुरक्षित होते हैं।
147. गुरुदंसणं पावणासगं। -11/83
गुरुदर्शन पापनाशक होता है।
148. गुरुपसादेण भव्वो होज्ज बहुगुणपुंजविज्जावंतो। -11/95
गुरु के प्रसाद से भव्यजीव बहुत गुण का पुंज व विद्यावान् होता है।
149. णिग्गंथ-गुरु-णेहेण फलदि सव्वमणोरहं सिस्साणं। -11/96
निर्ग्रन्थ गुरु के स्नेह से शिष्यों के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।
150. जहट्ट-मेत्ती छलविहीणा। -12/14
यथार्थ मैत्री छल रहित होती है।
151. सक्कारेहिं विणा अणिट्टकारी सिक्खा। -12/16
संस्कारों के बिना शिक्षा अनिष्टकारी ही होती है।
152. वरसक्कारेहि विणा सेट्टविज्जा वि सुफलदायगा णो। -12/17
उत्तम संस्कारों के बिना श्रेष्ठ विद्या फलप्रद नहीं होती।
153. विज्जाइ वरो सुसक्कारो। -12/18
विद्या से श्रेष्ठ सुसंस्कार होते हैं।
154. सज्जणाणं सहावो अयलो सयायाले सव्वखेत्ते। -12/85
सर्वकाल व सर्वक्षेत्रों में सज्जनों का स्वभाव अचल होता है।

155. णेव किदं उवयारं विम्वरंति सज्जणा कया वि। -12/85
सज्जन किसी के द्वारा किए गए उपकार को कभी नहीं भूलते।
156. जुज्झं विणासहेदू। -12/110
युद्ध विनाश का हेतु है।
157. वेज्जावच्चेणं तह सेवाए खयंति रोया दु। -13/10
वैय्यावृत्ति और सेवा से रोग निश्चय ही नष्ट होते हैं।
158. जोव्वणं रूव-लावण्णं अथिरं। -13/22
यौवन, रूप-लावण्य अस्थिर है।
159. कयावि णो विम्वरेज्ज धम्मं जिणं सुदं णिग्गंथ-गुरुं। -13/38
जिनधर्म, जिनेन्द्रप्रभु, जिनागम और निर्ग्रन्थ गुरुओं को कभी भी विस्मृत नहीं करना चाि।
हए।
160. कत्तव्वं विम्वरित्तु णेव दुरुवओगं अहियाराणं। -13/39
कर्तव्यों को भूलकर अधिकारों का दुरुपयोग कभी भी नहीं करना चाहिए।
161. पुण्णेणं विणा णेव मूलुत्तरगुण-पालणं णिद्वोसं। -13/65
पुण्य के बिना मूलगुण व उत्तरगुणों का निर्दोष पालन भी नहीं होता।
162. करेज्ज सुहक्ज्जाइं सत्तीए। -13/68
यथाशक्ति शुभकार्य करो।
163. करेज्ज महाविवेगी पावमुज्झित्ता सय पुण्णं। -13/72
महाविवेकी को सदा पापों का त्यागकर पुण्य करना चाहिए।
164. पुण्ण-पाव-उदयादु सव्वदा उण्णदिं अवणदिं च पावदे। -13/85
जीव पुण्य व पाप से उन्नति व अवनति को प्राप्त करते हैं।
165. णिंदणीय-दुरिदं व सव्वदा संसदीदु जदि मुत्तिकारणं। -13/86
जीवन में पाप भी सर्वदा निंदनीय नहीं है यदि वह संसार से मुक्ति का कारण हो तो।
166. सव्वदा णहि पसंस-सक्किदं दुग्गदीइ जदि होज्ज कारणं। -13/86
पुण्य भी सर्वदा प्रशंसनीय नहीं यदि वह दुर्गति का कारण हो तो।

167. कस्स पिदरस्स ण होदि अच्चंतपिया सुजोग्गा पुत्ती दु। –14/23
किस माता-पिता को अपनी योग्य पुत्री अतिप्रिय नहीं होती।
168. सस्सियो अप्पतुट्ठो सस्सेण सह लहित्तु बहुपलालं। –14/30
फसल के साथ बहुत सारा भूसा पाकर किसान अतितृप्त होता है। (कन्या के साथ वैभव प्राप्त कर)
169. णरभवम्मि दारिद्दं अहिसावोव्व य भयंकररोगोव्व। –14/35
मनुष्यभव मे दरिद्रता एक अभिशाप एवं भयंकर रोग के समान है।
170. दारिद्दं पक्खोडदि पद-पदिट्ठा जह सरजलं सेवालं। –14/37
दरिद्रता पद व प्रतिष्ठा को उसी प्रकार आच्छादित कर देती है जिस प्रकार शैवाल जलाशय के जल को।
171. दारिद्दं पावफलं। –14/39
दरिद्रता पाप का फल है।
172. सम्मत्तं सण्णाणं सच्चरियं वेरग्गफलं णियमा।
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नियम से वैराग्य का फल है।
173. मुणिदंसणं ण मेत्तं पुण्णस्स अहणास-हेदू वि। –14/44
मुनिदर्शन न केवल पुण्य का अपितु पाप नाश का हेतु भी है।
174. धम्मो दयाविसुद्धो। –14/56
दया से विशुद्ध धर्म होता है।
175. सुद्धप्पलीणत्तं धम्मो। –14/56
शुद्धात्मलीनता धर्म है।
176. सम्मत्तहीणचरियं मोक्खकारणं णेव कया वि। –14/58
सम्यक्त्वहीन चारित्र मोक्ष का कारण कभी भी नहीं होता।
177. जदि बहुसद्दणाणी वि मिच्छो ण पुज्जो धम्मीहिं। –14/61
यदि मिथ्यादृष्टि बहुत शब्दज्ञानी भी हो तो भी वह धर्मात्माओं के द्वारा पूज्य नहीं होता।
178. धम्मो सस्सद-सुहदो। –14/64
धर्म शाश्वत सुख प्रदान करने वाला है।

179. उज्झित्तु मिच्छत्तयं कसायं समेज्ज जदणेणं। -14/66
मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का त्याग कर यत्नपूर्वक कषायों का शमन करना चाहिए।
180. पुण्णफलेणं अरिहो। -14/69
पुण्य के फल से जीव अरिहंत अवस्था को प्राप्त करता है।
181. संपइ कुव्वदु पुरिसट्टं। -14/121
वर्तमान में पुरुषार्थ करना चाहिए।
182. पंचगुरुवंदणं जिणपूयादि-सावयधम्मं पालेज्ज। -15/29
श्रावकों को पंचगुरुवंदन, जिनपूजादि श्रावकधर्म को पालन करना चाहिए।
183. अच्चासत्ती णेया अच्चंत-पाव किच्छ-हेदू। -15/35
अत्यासक्ति को अत्यन्त पाप व दुःख का हेतु जानना चाहिए।
184. णिसिभुंजगो अज्जदे महाअहं बहुजीवघादत्तादु। -15/36
बहुत जीवों का घात होने से रात्रिभोजन करने वाला महापाप का अर्जन करता है।
185. सत्तवसणाणि णियमा दुहसिंधु-सत्त-णिरयाण-दाराणि। -15/48
सप्तव्यसन नियम से दुःख के सिन्धु स्वरूप सात नरकों का द्वार है।
186. करेज्ज कम्मक्खयिदुं उववासं हु सग-सत्तीए। -15/53
स्वशक्ति अनुसार कर्मक्षय के लिए उपवास करें।
187. को वि पुण्णेणं विणा पाउणेदि णेव इट्टफलं। -15/55
कोई भी जीव पुण्य के बिना इष्टफल को प्राप्त नहीं करता।
188. जिणागम-सज्झायेण विणा ण संभवो सण्णाण-विड्डी। -15/57
जिनागम के स्वाध्याय के बिना सम्यग्ज्ञान की वृद्धि संभव नहीं है।
189. सण्णाणं च संवेग-विराग-वच्छल-भत्तिहेदू। -15/57
सम्यग्ज्ञान संवेग, वैराग्य, वात्सल्य और भक्ति का हेतु है।
190. अंततवो सज्झाओ सम्मत्त-संवर-णिज्जरा-हेदू। -15/59
स्वाध्याय अंतरंग तप, सम्यक्त्व, संवर और निर्जरा का हेतु है।

191. पस्सिय पुत्तत्थाणं को जणगो होदि पसण्णो ण। -16/8
पुत्र के उत्थान को देखकर कौन सा पिता प्रसन्न नहीं होता।
192. सुह-संती संतोसो जत्थ णायो तत्थ समिद्धी। -16/20
जहाँ न्याय होता है वहीं सुख, शान्ति, संतोष और समृद्धि होती है।
193. सायरो णेव लंघदि सगसीमं कयावि आपदयाले। -16/26
आपत्तिकाल में भी समुद्र कदापि अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता।
194. पुण्णहीणा लहंते णेव कयावि इट्ठवत्थूणि। -16/59
पुण्यहीन जीव इष्ट वस्तुओं को कदापि प्राप्त नहीं करते।
195. दायग-मेहो उच्चो गाहसर-खादिगा अहट्ठिदा। -16/79
देने वाले (दाता) बादल ऊँचे होते हैं ग्रहण करने वाले सरोवर व खाई नीचे होते हैं।
196. दाणधम्ममि वसणी धवलुज्जलो णिज्जलघणोव्व। -16/79
दानधर्म में व्यसनी जन निर्जल मेघों के समान उच्च, उज्ज्वल और धवल होते हैं।
197. मुणिदंसणेण खयंति मिच्छत्तं अण्णाणं भव्वाणं। -16/107
मुनिदर्शन से भव्यों के मिथ्यात्व व अज्ञान नष्ट हो जाते हैं।
198. सय सिवसुहहेदू पत्तदाणं कमेण। -16/121
पात्रदान नियम से सदैव मोक्ष सुख का हेतु है।
199. सयल-विहवदाणं पत्तदाणं समं णो। -16/122
सकलवैभव का दान भी पात्रदान के समक्ष कुछ नहीं है। (पात्रदान के समान सकल वैभव का दान भी नहीं)
200. थेज्जमसंभवो जिण्णसहाविस्स चिय रोयमयदेहस्स। -17/10
जीर्ण स्वभावी रोगमय देह की स्थिरता असंभव है।
201. भोयेसु कसायेसुं पावेसुं लीणो दुट्ठो जो सो। -17/15
जो भोगों, कसायों और पापों में लीन है वह दुष्ट है।
202. भोयाणं सहावो वि संसारवड्ढगो कम्म-बंधगो। -17/32
भोगों का स्वभाव ही संसार का सम्बर्द्धन करना और कर्मबंधन करना है।

203. मोहोदयेण ससरुवमजाणंतो परत्थं मण्णदि। -17/42
मोहोदय से जीव अपने स्वरूप को न जानता हुआ पर पदार्थ को अपना मानता है।
204. परिवट्टणं अत्थ-सहावो। -17/45
परिवर्तन प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है।
205. जलबुदबुदोव्व देहो। -17/46
देह पानी के बुलबुले के समान है।
206. भोया रोय-कारणं। -17/46
भोग रोगों का कारण है।
207. संसारो अणुऊलो भासदि तावदु जावदु पुण्णुदयो। -17/47
जब तक पुण्य का उदय है तब तक प्रत्येक जीव को यह संसार अनुकूल प्रतिभासित होता है।
208. ववहारजगे सव्वा सगजगा भासंते इट्ठरूवा। -17/64
व्यवहार जगत् में सभी आत्मीयजन इष्टरूप प्रतिभासित होते हैं।
209. देह-सुंदरो सुहदो भासदि पुण्णोदये इट्ठरूवो। -17/66
पुण्य के उदय में शरीर सुन्दर, सुखद व इष्ट रूप प्रतिभासित होता है।
210. भोया भुजंगसरिसा। -17/67
भोग सर्प के समान हैं।
211. धम्मो खलु सासय-सुहहेदू सया सव्वभव्वाणा। -17/76
सभी भव्यजनों के लिए धर्म शाश्वत सुख का हेतु है।
212. पुण्णं विणा कज्जसिद्धी ण। -17/80
पुण्य के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती।
213. पयाए उण्णदीए रज्जुण्णदी ताए रायस्स। -17/82
प्रजा की उन्नति से राज्य की उन्नति और राज्य की उन्नति से राजा की उन्नति होती है।
214. पयाइ विणा रायस्स ठिदी संभवो णेव कयावि। -17/82
प्रजा के बिना राजा की स्थिति कभी भी संभव नहीं है।

215. विणिक्कट्टवत्थुं च मुंचेदि पाणी
सहावादु वत्थुं सुसेट्टं लहेदुं। -17/98
संसारी प्राणी श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त करने के लिए स्वभाव से ही निकृष्ट वस्तु को स्वतः छोड़ देता है।
216. जिणवयं परमोसही जम्मजरामरणवाहि-णासगं च। -18/24
जिनवचन जन्म-जरा-मृत्यु को नाश करने वाली परमौषधि है।
217. सियावायजुत्तधम्म-तित्थेण कल्लाणं कुणंति। -18/25
स्याद्वाद युक्त धर्मतीर्थ से ही लोग कल्याण कर सकते हैं।
218. जिणभत्तीए भव्वो सक्को बंधिदुं तित्थयरकम्मं। -18/35
भव्यजीव जिनभक्ति से तीर्थकर नामकर्म का बंध करने में समर्थ होता है।
219. अकारणं सेट्टसुही दियंबरो। -18/73
दिगम्बर संत प्रत्येक प्राणी के अकारण श्रेष्ठ बंधु हैं।
220. तवेण अक्ख-णिरोहो। -20/92
तप से इन्द्रियों का निरोध होता है।
221. चित्तसुद्धी पहाणं कारणं सुपसत्थ-झाणस्स। -20/92
प्रशस्तध्यान के लिए चित्त की शुद्धि प्रधान कारण है।
222. अक्ख-णिग्गहेण विणा को सक्को संजमी दमी होदुं। -20/93
इन्द्रियनिग्रह बिना कौन संयमी और दमी होने में समर्थ है।
223. अक्खणिग्गहेण विणा असंभवो तह इच्छा-णिरोहो दु। -20/94
इन्द्रिय निग्रह के बिना इच्छाओं का निरोध असंभव है।
224. संकप्पी सगझेयं आवज्जेदुं चिय समत्थो। -21/28
संकल्पी अपने ध्येय (लक्ष्य) को प्राप्त करने में समर्थ होता है।
225. णंददायगं हु जिणवयणं। -21/39
जिनेन्द्र भगवान् के वचन आनन्ददायक होते हैं।
226. जीवो सम्मत्तजोग्गा भव्वा हु। -21/69
सम्यक्त्व के योग्य जीव भव्य कहलाते हैं।

महाकाव्य में निहित “विशेषण”

[अ]

1. अइसय – अतिशय
2. अकंठ – अकम्प
3. अक्कतविद – सूर्य से तपा हुआ
4. अक्खम – अक्षम
5. अगम्म – अगम्य
6. अगाध – अगाध
7. अगग – अग्र
8. अग्गिम – अग्रिम
9. अग्गेय – अज्ञेय
10. अचिंत – अचिन्त्य
11. अच्चंत – अत्यन्त
12. अच्चग – अर्चग
13. अच्चुद – अच्युत
14. अज्झयणरद – अध्ययनरत
15. अणिच्च – अनित्य
16. अणिट्ट – अनिष्ट
17. अणुऊल – अनुकूल
18. अणुकंपय – दयावान्
19. अणुगामिअ – अनुगामी
20. अणुयर – अनुचर
21. अणुरत्त – अनुरक्त
22. अणुवम – अनुपम
23. अणुसासग – अनुशासक
24. अणेग – अनेक
25. अण्णुत्तरा – अन्य उत्तर दिया
26. अत्तकथिद – आप्तकथित
27. अत्थमाण – अस्तमान
28. अथिर – अस्थिर
29. अप्पडिय – अप्रतिम
30. अभिज्झिय – वाञ्छित
31. अभिट्ट – अभिष्ट
32. अमणुण्ण – अमनोज्ञ
33. अयल – अचल
34. अलस – आलसी
35. अवऊढ – आलिंगित
36. अवरुद्ध – अवरुद्ध
37. अविवित्त – अविवेकी
38. अविस्सस्सणीय – अविश्वसनीय
39. असंखेज्ज – असंख्यात
40. असब्भ – असभ्य
41. असुह – अशुभ
42. अस्सुपूरिद – अश्रुपूरित
43. अहणासग – पापनाशक
44. अहिय – अधिक
45. अहिराम – अभिराम (मनोहर)
46. अहिसंचिद – अभिसंचित

[आ]

47. आउर – आतुर
48. आउल – आकुल
49. आगरिसग – आकर्षित
50. आढत्त – प्रारब्ध

51. आणदित – आनन्दित
 52. आणाइत्त – आज्ञाकारी
 53. आणाणुअत्तय – आज्ञाकारी
 54. आयंस – आदर्श
 55. आयाम – लम्बाई
 56. आवसिय – आवश्यक
 57. आविअ – आवृत्त

[इ]

58. इट्ट – इष्ट

[उ]

59. उक्कलंत – उबला हुआ
 60. उक्किट्ट – उत्कृष्ट
 61. उग्गुग्ग – उग्रोग्र
 62. उग्घोसिद – उद्घोषित
 63. उच्च – उच्च
 64. उच्छंखल – उच्छंखल
 65. उच्छाहजुद – उत्साहयुक्त
 66. उण्ह – उष्ण
 67. उत्तम – उत्तम
 68. उत्तर – उत्तर (दिशा)
 69. उदत्त – उदात्त
 70. उद्धुसिय – रोमांचित
 71. उब्बिंबल – मलिन
 72. उराल – उदार
 73. उवजुत्त – उपयुक्त
 74. उवयारग – उपचारक
 75. उवरत्त – उपरक्त (अनुरक्त)
 76. उवरिल्ल – उपर्युक्त

77. उवासग – उपासक
 78. उविक्खणीय – उपेक्षणीय

[क]

79. कंतिजुद – कान्तियुक्त
 80. कंविद – कम्पित
 81. कडुअ – कड़वा
 82. कत्तव्वणिट्ट – कर्तव्यनिष्ठ
 83. कदिवय – कतिपय
 84. कमणीय – कमनीय
 85. कयंविद – अलंकृत
 86. कयग्घ – कृतघ्न
 87. कलहप्पिय – कलहप्रिय
 88. कलाजुद – कलायुक्त
 89. कहग – कथक
 90. कायहीन – कायहीन
 91. कारुणिक – करुणायुक्त
 92. कुडिल – कुटिल
 93. कुद्धित – कूदा
 94. कुलकलंकिद – कुलकलंकित
 95. कुलीण – कुलीन
 96. कुविद – कुपित
 97. कुसल – कुशल
 98. क्रूरपरिणामिअ – क्रूरपरिणामी

[ख]

99. खमासील – क्षमाशील
 100. खार – क्षार
 101. खिविद – क्षिपित फेंका

102. खेम – क्षेम

103. खेमंकर – क्षेमंकर

[ग]

104. गयगामुअ – गजगामी

105. गसिद – ग्रसित

106. गुणगाहग – गुणग्राहक

[घ]

107. चंचल – चंचल

108. चिंताउर – चिंतातुर

109. चित्तभेदिअ – चित्तभेदी

110. चित्त-रंजक – चित्तरंजक

111. चित्त-विगासग – चित्तविकासक

112. चित्तविचित्त – चित्रविचित्र

[छ]

113. छुहाउर – क्षुधातुर

[ज]

114. जंगम – चलता-फिरता

115. जडिद – जडित

116. जम्मंध – जन्मान्ध

117. जस – यशस्वी

118. जसवंत – यशवंत

119. जहण्ण – जघन्य

120. जहत्य – यथार्थ

121. जिणाणाइत्त – जिनाज्ञापालक

122. जिणाराहग – जिनाराधक

123. जिणुवासग – जिन उपासक

124. जुज्झुच्छुग – युद्ध का इच्छुक

125. जुद – युक्त

126. जेट्ट – ज्येष्ठ

127. जोग्ग – योग्य

128. जोवण्णिय – यौवन के

[झ]

129. झाणट्टिद – ध्यान में स्थित

[ण]

130. णम्म – नम्र

131. णयणवासिअ – नयनवासी

132. णवीण – नवीन

133. णायप्पिय – न्यायप्रिय

134. णायसील – न्यायशील

135. णासवंत – नाशवान्

136. णिंदिद – निंदित

137. णिउण – निपुण

138. णिक्कंख – निःकांक्ष

139. णिक्कंडग – निष्कण्टक

140. णिगिण्ण – नागन्य

141. णिगंथाणुयायिअ – निर्ग्रन्थानुयायी

142. णिच्छल – निश्छल

143. णित्तुल – निस्तुल (असाधारण)

144. णिदिवंत – नीतिवान्

145. णिद्वंद – निर्द्वन्द

146. णिद्वंभ – निर्दम्भ (अभिमान रहित)

147. णिद्वय – निर्दय

148. णिद्वोस – निर्दोष

149. णिब्भिच्च – निर्भीक

150. णिबद्ध – निबद्ध

151. णिब्भीअ – निर्भीक
 152. णिमग्ग – निमग्न
 153. णिम्मल – निर्मल
 154. णिम्मिद – निर्मित
 155. णिम्मोह – निर्मोह
 156. णियद – नियत
 157. णियमिद – नियमित
 158. णिरंभर – वस्त्र रहित
 159. निरभिस्संग – निःस्पृह
 160. णिरवइक्खा – निःस्पृह
 161. णिरवज्ज – निरवद्य
 162. णिरामगंध – अत्यन्त सुगन्धित
 163. णिरुवट्ठा – निरुद्यमी
 164. णिरुवम – निरुपम
 165. णिव्वेर – निर्वैर
 166. णिसागिगय – नैसर्गिक
 167. णिस्संग – निःसंग
 168. णिस्सद्द – निःशब्द
 169. णिस्सीम – निःसीम
 170. णिस्सेस – निःशेष

[त]

171. तप्पर – तत्पर
 172. तिप्प – तृप्त
 173. तिक्ख – तीव्र
 174. तिसाउर – तृषातुर
 175. तिसिद – तृषित
 176. तिरक्करिद – तिरष्कृत
 177. तुच्छ – तुच्छ

178. तुट्ठ – संतुष्ट

[द]

179. दंडभायग – दण्डभाजग
 180. दक्खिण – दक्षिण
 181. दिट्ठिगोयर – दृष्टिगोचर
 182. दिस्समाण – दृश्यमान
 183. दीण – दीन
 184. दुक्कंदिर – अत्यन्त आक्रंद करने वाला
 185. दुक्कुह – असहिष्णु
 186. दुक्खपूरिद – दुःखपूरित
 187. दुगंधिद – दुर्गन्धित
 188. दुच्चार – दुराचारी
 189. दुच्चिण्णजुद – दुराचार युक्त
 190. दुट्ठ – दुष्ट
 191. दुत्तुंड – दुर्मुख
 192. दुद्धर – दुर्दर
 193. दुब्भग – दुर्भग
 194. दुम्मणिय – दुर्मन
 195. दुम्मदी – दुष्ट मनोभावी
 196. दुरज्झवसिय – दुश्चितनयुक्त
 197. दुरब्भास – खोटी आदत वाला
 198. दुरायारिय – दुराचारी
 199. दुरासय – दुराशयी
 200. दुरुल्ल – दूरवर्ती
 201. दुल्लह – दुर्लभ
 202. दुहद – दुःखद
 203. देहज – देहज
 204. देहवंत – देहवान्

205. दोसरहिद – दोषरहित

[ध]

206. धंसग – ध्वंसक

207. धम्मचित्त – धर्मचित्त

208. धम्मपणोल्लय – धर्मप्रेरक

209. धम्ममगगधंसग – धर्ममार्गध्वंसक

210. धम्मविवरीद – धर्मविपरीत

211. धारग – धारक

212. धारिद – धारित

213. धीमंत – बुद्धिमान्

214. धीर – धीर

215. धीरवंत – धैर्यवान्

[प]

216. पश्चिम – पश्चिम

217. पडिफद्ध – प्रतिस्पर्धा

218. पढम – प्रथम

219. पणोल्लय – प्रेरक

220. पत्थिव – पार्थिक

221. पदंसग – प्रदर्शक

222. पदायग – प्रदायक

223. पदिट्टिद – प्रतिष्ठित

224. पफुल्लिद – प्रफुल्लित

225. पमिलान – म्लान

226. पयल्ल – बिखरे हुए

227. पयावच्छल – प्रजावत्सल

228. पयोजणभूद – प्रयोजनभूत

229. परिअड्डमाण – प्रवर्द्धमान

230. पवट्टगं – प्रवर्तक

231. पवित्त – पवित्र

232. पसंत – प्रशान्त

233. पसंसग – प्रशंसक

234. पसण्ण – प्रसन्न

235. पसत्थ – प्रशस्त

236. पसारग – प्रसारक

237. पसिद्ध – प्रसिद्ध

238. पहट्टु – आनन्दित

239. पहाण – प्रधान

240. पारंगद – पारंगत

241. पाणप्पिय – प्राणप्रिय

242. पाणवल्लह – प्राणवल्लभ

243. पाडच्चर – आसक्त चित्त वाला

244. पारिओसिअ – पुरस्कार

245. पिय – प्रिय

246. पुज्ज – पूज्य

247. पुज्जणीय – पूज्यनीय

248. पुणीण – पुनीत

249. पुण्णवंत – पुण्यवान्

250. पुव्व – पूर्व

251. पूरिद – पूरित

252. पोसग – पोषक

[फ]

253. फलदायग – फलदायक

254. फासिद – स्पर्शित

[ब]

255. बज्झमाण – बध्यमान

256. बहुविह – बहुत प्रकार

257. बुद्धिमंत — बुद्धिमान्

[भ]

258. भक्खग — भक्षक

259. भदंत — सुखकारक

260. भद् — भद्र

261. भयंकर — भयंकर

262. भयुप्पायग — भयोत्पादक

263. भवतारग — भवतारक

264. भाग — भाग

265. भाजिद — भाजित

266. भामिणी — भाग्यवान्

267. भारजुत्त — भारयुक्त

268. भावहीन — भावहीन

269. भीद — भीत

270. भीसण — भीषण

271. भुंजिद — भुंजित (भोगा हुआ)

272. भोयपद — भोगप्रद

[म]

273. मंजुल — कोमल

274. मंगल्ल — मंगल

275. मंगलसूयग — मंगलसूचक

276. मज्जाइल्ल — मर्यादित

277. मणहर — मनहर

278. मणोहर — मनोहर

279. मणोणुळल — मनोनुकूल

280. मणोण्ण — मनोज्ञ

281. मलिण — मलिन

282. महलंपड — महालम्पट

283. महुरभासिअ — मधुरभाषी

284. माणणीय — माननीय

285. माणसिग — मानसिक

286. मिट्टु — मिष्ट

287. मिदु — मृदु

288. मिलाण — म्लान

289. मिस्स — मिश्र

290. मुच्छिद — मूर्च्छित

291. मुद्ध — मुग्ध

292. मूढ — मूढ़

[र]

293. रक्खग — रक्षक

294. रज्जोइद — राज्योचित

295. रूववइ — रूपवान्

[ल]

296. लंपड — लालची

297. लद्ध — प्राप्त

298. लद्धायर — आदर को प्राप्त

299. लीण — लीन

[व]

300. वड्डुग — वर्द्धक

301. वर — उत्तम

302. वाउल — व्याकुल

303. वायव्व — वायव्य विदिशा

304. वासंग — आसक्त

305. विअड — लज्जावान्

306. विअसिद — विकसित

307. विअड्ड – निपुण
 308. विउल – विपुल
 309. विकिट्ट – उत्कृष्ट
 310. विकोकिय – कुशल
 311. विक्खाद – विख्यात
 312. विगारहीण – विकारहीन
 313. विजुत्त – वियुत्त
 314. विज्जंत – विद्यमान
 315. विज्जाजुत्त – विद्यायुत्त
 316. विणिक्कट्ट – निकृष्ट
 317. विणय – विनीत
 318. विणीद – विनीत
 319. विण्ण – विज्ञ
 320. विद्धंसग – विध्वंसक
 321. विदूसग – विदूषक
 322. विभंग – विभंग
 323. विमुत्त – विमुत्त
 324. विमुह – विमुख
 325. वियारग – विचारक
 326. विरहिद – विरहित
 327. विवइण्ण – बिखरा हुआ
 328. विवज्जित – विवर्जित
 329. विवण्ण – निस्तेज
 330. विवत्थिद – व्यवस्थित
 331. विसद – विशद
 332. विसद्दस – विसदृश
 333. विसाल – विशाल
 334. विसिट्ट – विशिष्ट

335. विह – विध
 336. विहवजुत्त – वैभवयुत्त
 337. विहववंत – वैभववान्
 338. विहसंत – खिले हुए
 339. विहिण्ण – विभिन्न
 340. वेरग्गप्पायग – वैराग्य उत्पादक

[स]

341. संकिद – शंकित
 342. संगठिद – संगठित
 343. संजुद – संयुक्त
 344. संतिद – शान्तिदायक
 345. संपण्ण – सम्पन्न
 346. संभव – संभव
 347. संरक्खग – संरक्षक
 348. संवड्डुग – सम्बद्धक
 349. संवाहग – संवाहक
 350. सुंदर – सुन्दर
 351. सकीय – स्वकीय
 352. सक्कारिद – संस्कारित
 353. सगज्जिद – स्वार्जित
 354. सगासिद – स्वाश्रित
 355. सघण – सघन
 356. सच्चाणुरद – सत्य में अनुरक्त
 357. सच्छंद – स्वच्छन्द
 358. सच्छ – स्वच्छ
 359. सज्जिद – सज्जित
 360. सिट्ट – शिष्ट
 361. सत्थग – सार्थक

362. सद्दातीद – शब्दातीत
 363. सम – सम
 364. समण्णद – समन्वित
 365. समत्थ – समर्थ
 366. समाकिण्ण – समाकीर्ण
 367. समिद्ध – समृद्ध
 368. समुद्द – समुचित
 369. समोलुग्ग – रोगी
 370. सरल – सरल
 371. सव्व – सर्व
 372. ससंग – ससंग
 373. सस्सद – शाश्वत
 374. सहज – सहज
 375. सहिद – सहित
 376. साउलय – आकुलता सहित
 377. सागार – गृहसहित (आगार)
 378. साणुक्कोस – दयावान्
 379. सारभूद – सारभूत
 380. सासिद – शासित
 381. साहग – साधक
 382. साहणारद – साधनारत्
 383. सिद – श्वेत
 384. सीअल – शीतल

385. सुक्क – शुष्क
 386. सुद्ध – शुद्ध
 387. सुप्पसिद्ध – सुप्रसिद्ध
 388. सुभासिल्ल – मधुरभाषी
 389. सुरम्म – सुरम्य
 390. सुवड्डमाण – सुवर्तमान
 391. सुलह – सुलह
 392. सुसासिद – सुशासित
 393. सुसोहिद – सुशोभित
 394. सूर – शूर
 395. सेट्ट – श्रेष्ठ
 396. सेवग – सेवक
 397. सेस – शेष
 398. सोसग – शोषक
 399. सोसिद – शोषित
 400. सोहग्गिअ – सौभाग्यशाली

[ह]

401. हरिद – हरित
 402. हिंदकर – हितंकर
 403. हियकारिअ – हितकारी
 404. हरिसाइय – हर्षित
 405 . हीण – हीन

महाकाव्य में निहित “क्रियापद”

[अ]

1. अइया – जाना
2. अइवत्त – उल्लंघन करना
3. अंगीकर – स्वीकार करना
4. अक्कम – आक्रमण करना
5. अच्च – अर्चना करना/ पूजना
6. अच्चीकर – प्रशंसा करना
7. अणुकड्ड – खींचना
8. अणुगूह – नहीं छिपाना
9. अणुगह – कृपा करना
10. अणुवगूह – नहीं छिपाना
11. अणुवज्ज – जाना
12. अब्भ – भेदन करना
13. अभिपत्थ – प्रार्थना करना
14. अल्लीअ – लीन होना
15. अल्लव – बोलना
16. अल्लाद – आह्लादित होना
17. अवअक्ख – देखना
18. अवअच्छ – आह्लादित होना/खुश करना
19. अवयच्छ – देखना
20. अवयर – अवतरण लेना
21. अवरज्ज – अपराध करना
22. अवलोय – देखना
23. अवहर – अपहरण करना
24. अवहाव – दया करना
25. अवहेड – त्याग करना

26. अहिणंद – अभिनंदन करना
27. अहिपच्चु – ग्रहण करना

[आ]

28. आअंछ – (खेत) जोतना
29. आअक्ख – देखना
30. आइक्ख – उपदेश देना
31. आकंद – क्रन्दन करना
32. आगच्छ – आना
33. आढव – प्रारम्भ करना
34. आपुच्छ – आज्ञा लेना
35. आमंत – आमन्त्रित करना
36. आयंब – काँपना
37. आयण्ण – सुनना
38. आयाम – देना
39. आयास – खिन्न करना
40. आरड – चिल्लाना
41. आराह – आराधना करना
42. आरुह – सवार होना
43. आरोह – आरूढ़ होना/ऊपर चढ़ना
44. आलव – कहना
45. आलिंग – आलिंगन करना
46. आलुंख – जलाना
47. आलोअ – देखना
48. आव – आना
49. आवआस – आलिंगन करना

50. आवज्ज – प्राप्त करना
 51. आवड – आना
 52. आवत्त – आवृत्त करना
 53. आविहव – उत्पन्न होना
 54. आसय – आश्रय लेना
 55. आसाव – बैठना
 56. आसास – सांत्वना देना
 57. आहम्म – आना/आगमन करना
 58. आहव – बुलाना

[इ]

59. इच्छ – इच्छा करना

उ

60. उक्कल – उबलना
 61. उक्कुद्द – कूदना
 62. उक्कुस – जाना
 63. उग्घड – खुलना
 64. उग्घोस – घोषणा करना
 65. उग्घोसाव – घोषणा कराना
 66. उच्छ – उन्नत होना
 67. उज्झ – त्यागना
 68. उट्टु – उठना
 69. उट्टी – उड़ना
 70. उत्तर – उत्तर देना
 71. उपदिश – उपदेश देना
 72. उप्पज्ज – उत्पन्न होना
 73. उप्पाल – कहना
 74. उप्पुलइ – रोमांच होना
 75. उप्फाल – उखाड़ना

76. उल्लस – उल्लसित होना
 77. उल्लुट्ट – नष्ट होना
 78. उल्लूर – उखाड़ना
 79. उवउंज – उपयोग में लाना
 80. उवएस – उपदेश देना
 81. उवकस – प्राप्त करना
 82. उवसम – उपशम करना
 83. उविक्ख – उपेक्षा करना
 84. उस्सिक्क – त्याग करना
 85. उहट्ट – नष्ट होना

[ओ]

86. ओअत्त – उल्टा लटकाना
 87. ओअग्ग – विस्तृत करना
 88. ओकट्ट – आकर्षित करना
 89. ओगाह – पग रखना
 90. ओग्गह – ग्रहण करना
 91. ओच्छव – आच्छादित करना
 92. ओरस – नीचे उतरना
 93. ओसम्म – सूखना

[क]

94. कंख – आकांक्षा करना
 95. कंप – काँपना
 96. कट्ट – काटना
 97. कड – करना
 98. कढ – कढ़ाई में उबालना
 99. कण – आवाज करना
 100. कय – खरीदना

101. कर – करना
 102. कराव – करवाना
 103. कह – कहना
 104. किङ्काव – क्रीड़ा कराना
 105. कित्त – कीर्तन करना
 106. कुच्छ – निंदा करना
 107. कुण – करना
 108. कुद् – कूदना
 109. कुव्व – करना
 110. कोक्क – बुलाना

[ख]

111. खंड – खण्डित करना
 112. खंभ – ठहरना
 113. खण – खोदना
 114. खय – क्षय करना
 115. खिस – निंदा करना
 116. खिव – फेंकना

[ग]

117. गच्छ – जाना
 118. गड – जाना
 119. गस – ग्रसना
 120. गह – ग्रहण करना
 121. गाअ – गाना
 122. गुंज हंसना

[घ]

123. घस्स – घर्षण करना
 124. घाड – च्युत होना

125. घाद – घात करना
 126. घोस – घोषणा करना
 127. घोसाव – घोषणा कराना

[च]

128. चय – च्युत होना
 129. चर – गमन करना
 130. चिट्टु – बैठना
 131. चेअ – सावधान होना

[छ]

132. छंद – छोड़ना
 133. छड्डु – छोड़ना
 134. छिंद – छेदना

[ज]

135. जज्जर – जर्जर होना
 136. जप्प – बोलना
 137. जम्म – उत्पन्न होना
 138. जव – जपना
 139. जव – व्यतीत करना
 140. जागर – जागना
 141. जाण – जानना
 142. जाय – मांगना
 143. जीह – पराजित होना

[झ]

144. झणज्झण – झन झन की आवाज
 145. झलझल – चमकना
 146. झाण – ध्यान करना
 147. झुल्ल – लटकना

[ट]

148. टलवल – तड़फड़ाना
149. टिविडिक्क – मण्डित करना

[ठ]

150. ठव – ठहरना
151. ठव – बैठाना
152. ठाअ – ठहरना

[ड]

153. डंस – डसना

[ण]

154. णंद – आनंद होना
155. णच्च – नाचना
156. णम – नमस्कार करना
157. णा – जानना
158. णाद – जानना
159. णास – नष्ट करना
160. णिअ – देखना
161. णिअच्छ – देखना
162. णिक्कम – निकलना
163. णिज्जर – निर्जीण होना
164. णिज्झ – स्नेह करना
165. णिद्दह – जला देना
166. णिप्पज्ज – उत्पन्न होना
167. णिम्म – निर्माण करना
168. णिम्माव – निर्माण कराना
169. णियट्ट – निवृत्ति होना
170. णिरिणास – पलायन करना
171. णिरुव – निरूपण करना
172. णिरुवार – ग्रहण करना

173. णिरुंभ – रोकना
174. णिरुंभिव – प्रदान करना
175. णिल्लुंछ – छोड़ना
176. णिल्लूर – नष्ट करना
177. णिवज्ज – बैठना/स्थित होना
178. णिवस – निवास करना
179. णिवार – दूर करना
180. णिवेद – निवेदन करना
181. णिस्सर – निःसृत होना
182. णीसारय – निकालना
183. णुमज्ज – बैठना
184. णेय – जानना

[त]

185. तर – पार करना
186. तव – तपना
187. तज्ज – भर्त्सना करना
188. ताड – पीटना
189. तार – पार कराना

[थ]

190. थंग – ऊँचा करना
191. थक्कव – हँसना
192. थड्डु – स्तब्ध रहना
193. थुव – स्तुति करना

[द]

194. दंस – डसना
195. दंसाव – दिखाना
196. दण्ड – दण्डित करना
197. दविय – द्रवित होना

198. दा – देना
 199. दिप्प – चमकना
 200. दुगुंछ – द्वेष करना
 201. दुह – दुहना
 202. दूस – दोष लगाना
 203. दूहव – दुःख देना
 204. देक्ख – दिखना

[ध]

205. धर – धारण करना
 206. धाव – दौड़ना
 207. धिक्कार – धिक्कारना

[प]

208. पक्कर – फेंकना
 209. पक्खाल – धोना
 210. पक्खुब्भ – वृद्धिगत होना
 211. पक्खोड – ढकना
 212. पगिण्ह – लेना
 213. पच्चक्ख – त्याग करना
 214. पच्चागच्छ – लौटना
 215. पच्चापड – लौट कर आना
 216. पच्छंद – जाना
 217. पज्जर – कहना
 218. पज्जल – प्रज्वलित करना
 219. पट्टव – भेजना
 220. पड – गिरना
 221. पडिक्खल – गिराना
 222. पडिच्छ – ग्रहण करना
 223. पडिणिय – लौटना

224. पडिभास – प्रतिभासित होना
 225. पडिमंत – उत्तर देना
 226. पडिलंभ – प्राप्त करना
 227. पडिवक्क – बताना
 228. पडिसंध – स्वीकार करना
 229. पडिसंविक्ख – विचारना
 230. परिसाहर – दूर करना
 231. परिहम्म – नष्ट होना
 232. पढ – पढ़ना
 233. पणम – नमस्कार करना
 234. पणिवय – प्रणाम करना
 235. पणोल्ल – प्रेरणा देना
 236. पदा – देना
 237. पबंध – विस्तार से कहना
 238. पभुंज – भोगना
 239. पमिलाय – मुरझाना
 240. पम्हुस – चोरी करना
 241. पयर – स्मरण करना
 242. पराजिण – हराना
 243. परामरिस – विमर्श करना
 244. परिअट्ट – बदलना
 245. परिअली – जाना
 246. परिओस – सन्तुष्ट करना
 247. परिदेव – विलाप करना
 248. परिभम – घूमना
 249. परिभू – पराजित करना
 250. परियंद – नमस्कार करना
 251. परिलीह – लीन होना

252. परिसुज्झ – साफ करना
 253. परिहा – पहनना
 254. परिहाव – पहनाना
 255. पलाय – भागना
 256. पलोट्ट – लौट आना
 257. पवट्ट – भेजना
 258. पवड्ड – बढ़ना
 259. पविस – प्रवेश करना
 260. पसंस – प्रशंसा करना
 261. पसिक्ख – प्रशिक्षण देना
 262. पस्स – देखना
 263. पहुच्च – पहुँचना
 264. पहुच्चाव – पहुँचाना
 265. पाउण – पाना
 266. पागड – प्रकट करना
 267. पारंभ – शुरु करना
 268. पाव – पाना
 269. पाल – पालन करना
 270. पिच्छ – पूछना
 271. पुच्छ – पूछना
 272. पुरोकर – पुरस्कार देना
 273. पुलआ – पुलकित होना
 274. पुलोअ – देखना
 275. पेच्छ देखना
 276. पेल्ल – पेलना
 277. पेस – भेजना
 278. पोक्क – बुलाना
 279. पोस – पोषण करना

[फ]

280. फास – स्पर्श करना
 281. फिट्ट – गिरना
 282. फुक्क – फूं-फूं की आवाज करना
 283. फुर – लहराना
 284. फोड – फोड़ना

[ब]

- 285 बंध – बंधना
 286. बड्ड – बढ़ना
 287. बुड्ड – डूबना
 288. बूड – डूबना
 289. बोल – बोलना
 290. बोल्ल – बोलना
 291. बोह – समझना
 292. बोहाव – समझाना

[भ]

293. भंज – तोड़ना
 294. भक्ख – खाना
 295. भण – कहना
 296. भम – घूमना
 297. भर – भरना
 298. भाज – विभक्त होना
 299. भास – प्रतिभासित होना
 300. भिंड – आपस में लड़ना
 302. भिंद – झगड़ना
 303. भुंज – खाना
 304. भुल्ल – भूलना

[म]

305. मंथ – मथना
306. मज्ज – मरना
307. मण्ण – मानना
308. मर – मरना
309. मरह – क्षमा करना
310. मरिस – सहन करना
311. मिल – मिलना
312. मिल्ल – छोड़ना
313. मुंच – छोड़ना
314. मुक्क – मुक्त करना
315. मुच्छ – मूर्च्छित होना
316. मुण – जानना
317. मोअ – छोड़ना
318. मोआव – छुटकारा दिलाना

[र]

319. रंज – रंजायमान होना
320. रज्ज – रंजायमान होना
221. रय – रचना करना
322. रव – आवाज करना
323. राज – विराजमान होना
324. रिअ – गमन करना
325. रुच्च – अच्छा लगना
326. रुद – रोना
327. रोअ – रुचि होना
328. रोह – उत्पन्न होना

[ल]

229. लल – विलास करना
330. लह – पाना

331. लिह – लिखना
332. लुक्क – छिपना
333. लुढ – लोटना

[व]

334. वंछ – चाहना
335. वंद – वंदना करना
336. वच्च – जाना
337. वज्जर – सुनाना
338. वज्जाव – बजाना
339. वज्जावाव – बजवाना
340. वड्ड – बढ़ना
341. वण्ण – वर्णन करना
342. वर – वरण करना
343. वरिस – बरसाना
344. वस – रहना
345. वह – बहना
346. वह – सवारी करना
347. विअर – वितरित करना
348. विअस – विकसित करना
349. विआण – जानना
350. विच्च – बेचना
351. विच्छ – छोड़ना
352. विजह – त्यागना
353. विज्ज – वेधना
354. विज्ज – बैठना
355. विज्ज – विद्यमान होना
356. विणस – विनाश करना
357. विण्ण – जानना

358. विप्पसीअ – प्रसन्न होना
 359. विमुंच – छोड़ना
 360. विम्हर – याद करना
 361. विम्हाव – आश्चर्यचकित करना
 362. वियार – विचार करना
 363. विरस – क्रंदन करना
 364. विराज – विराजमान होना
 365. विराय – विराजमान होना
 366. विलव – रोना-चिल्लाना
 367. विलाव – विलाप करना
 368. विलिज्ज – शर्माना
 369. विलुंप – अभिलाषा करना
 370. विहर – विचरण करना

[स]

371. संक – शंका करना
 372. संकम – संक्रमित होना
 373. संकुच – संकोच करना
 374. संगच्छ – स्वीकार करना
 375. संगह – संग्रह करना
 376. संछुह – स्थापित करना
 377. संधुक्क – धू-धू कर नष्ट होना
 378. संबुज्झ – संबोधित करना
 379. संबोह – संबोधना
 380. संभल – संभलना
 381. संलाव – चर्चा करना
 382. संविद – जानना
 383. सक्क – सकना
 384. सम – शान्त होना

385. समाकार – बुलाना
 386. सय – शयन करना
 387. सर – खिसकना
 388. सास – कहना
 389. सिक्खाव – सिखाना
 390. सिमर – स्मरण करना
 391. सिर – बनाना
 392. सिलाह – सराहना कर
 393. सीद – दुःख पाना
 394. सीस – कहना
 395. सुण – सुनना
 396. सुमर – याद करना
 397. सेव – सेवा करना
 398. सोढ – सहन करना
 399. सोस – अवशोषण करना
 400. सोल्ल – गिराना
 401. सोह – शोभित होना

[ह]

402. हण – घातना
 403. हर – नाश करना
 404. हरिज्ज – हरण करना
 405. हरिस – हर्षित होना
 406. हव – होना
 407. हस्स – कम करना
 408. हास – घटना
 409. हिंस – हिंसा करना
 410. हो – होना

श्लोकानुक्रमणिका

संकेत : श्लोकानुक्रमणिका में दिया गया पहला अंक 'नंद' का, दूसरा अंक 'नंदगत गाथा' का एवं तीसरा अंक 'समग्र गाथा' का जानना चाहिए।

[अ]	
अइ-उच्छाहविहवेण 3.134.415	अंतरभावणाहि हं 3.81.362
अइ-उच्छाहेण सव्व 4.23.442	अंत समाहिमरणं 13.40.1505
अइगिद्धपरिणामेहि 11.29.1240	अंतोकोडाकोडी 19.26.2091
अइतिव्वदाए कसायाणं 10.126.1210	अंतोमुहुत्त-पच्छा 9.57.1032
अइदुग्गंधजुत्ता हु 11.3.1214	अंतोमुहुत्तवसंत 19.122.2187
अइदुग्गंधादो पहि 10.121.1205	अंतोमुहुत्तूण-बत्तीस 19.73.2138
अइदुहेण पीडाजुद 11.1.1212	अंतोमुहुत्तू गदे 19.15.2080
अइपावफल-भोयगा 13.14.1479	अकामा भववड्डगा 21.67.2367
अइपुण्णवंतत्तादु 8.14.889	अकारणं सेट्टसुही 18.73.2065
अइपुण्णवंत राओ 4.137.556	अकिट्टिम-चेइयालय 14.80.1631
अइमहुरो संबंधो 2.63.206	अकिट्टिमजिणबिंब 14.113.1664
अइविआउल असोगो 4.2.421	अकिट्टिम जिणबिंबाण 15.79.1753
अइ-विसवो दु णिय पुव्व 11.24.1235	अकिट्टिमजिणसदणाण 16.119.1890
अइसय पुण्ण जुदं 18.32.2024	अक्ककित्ति अणुमदेण 12.34.1357
अइ-हरिस-भय-जुगुस्सा 20.104.2293	अक्कतित्त्व-तावेणं 13.24.1489
अइ-हरिसिदो असोगो 3.105.386	अक्कोदय-समये जह 6.72.763
अंगदेसो पवित्तो 3.2.283	अक्कोव्व ओजंसी य 21.133.2433
अंग-बंग-कुरुजंगल 21.40.2340	अक्कोव्व तेजपुंजं 7.35.818
अंतकोडाकोडी य 19.7.2072	अक्ख-णिग्गहेण विणा 20.93.2282
अंतगांठिं पि मुंचेदि 18.71.2063	अक्ख-णिग्गहेण विणा 20.94.2283
अंत-तवो सज्झाओ 15.59.1733	अखंडो अमुत्त-सुद्ध 21.89.2389
	अग्गितत्तभूमीए 6.57.748

अगिगमंदिर-समीवे 3.5.286
 अगिगम्मि दहणं तहा 9.74.1049
 अग्गी जह उण्हत्तं 12.86.1409
 अच्चंत-कट्टुदायगा 9.71.1046
 अच्चंत-मलिणभावो 11.4.1215
 अच्चंतरूववंता 9.53.1028
 अच्चंत विसुद्धीए 15.76.1750
 अजसकित्ति-अरदि-सोग 19.2.2067
 अजोगकेवल्लिठाणे 21.71.2371
 अज्जं पुण्णुदयेणं 17.74.1967
 अज्जसव्वगुत्तं तह 21.111.2411
 अज्जावग्गा पेया 7.79.862
 अज्जिगाइ पज्जरिदं 8.68.943
 अज्जिगाए कण्णाइ 3.31.312
 अज्जेज्ज सेट्टुपुण्णं 9.22.997
 अज्झप्पतच्चविदो हु 20.109.2298
 अज्झप्प-सायरस्स दु 21.128.2428
 अट्टज्झाणा-यालाम्मि 5.45.604
 अट्टपाडिहेरेहिं जुत्तं 11.111.1322
 अट्ट-भावेहि पाविय 9.72.1047
 अट्टम-चवखुस्माणो 2.95.238
 अणंतरं अंजणगिरि 12.70.1393
 अणंतरं असोगण 4.19.438
 अणंतरं कुव्विदा य 11.97.1308
 अणंतरं णिवसहाइ 9.68.1043
 अणंतरं पणमंतो 16.110.1881

अणंतरं सगचित्तं 10.43.1127
 अणंतवीरादो सिरि 1.14.14
 अणलेण डज्झिद-सुक्क 4.56.475
 अणसणं-ऊणोदरं 18.50.2042
 अणसणाइ-वज्झ-तवं 13.30.1495
 अणाइणिहणो सुद्धो 18.53.2045
 अणाणुपुव्वि संकमो 20.36.2225
 अणादि-भव-संददिं दु 10.73.1157
 अणादीदु मोहंतो 10.55.1139
 अणादीदो इह भवे 17.38.1931
 अणादीदो जीवो दु 17.35.1928
 अणादीदो य जीवा 9.28.1003
 अणियट्टी अद्धाए 19.27.2092
 अणुभागो बंधेणं 19.42.2107
 अणुव्वद-महव्वदेहि 8.13.888
 अणुव्वदाणि अहिंसा 14.94.1645
 अणुव्वदेहिं सावयो 15.15.1689
 अणुसासण बलेणं हि 8.41.916
 अणुसासणेणं विणा 8.45.920
 अणेगचरमदेहीण 1.99.99
 अणेग-णिवा कुमारा 3.52.333
 अणेगभवेसु संचिद 21.106.2406
 अणेगरयणझल्लरी 3.66.347
 अणेगवण्णजुदादो 6.22.713
 अणेगविहपुप्फेहिं 16.56.1827
 अणेग सुलक्खणजुदा 16.72.1843

अण्ण-णेरइया तस्स 11.5.1216	अपमत्तविरदो मुणी 5.99.658
अण्णजलं आमुहिदं 17.95. 1988	अपराजयंतो तुमं 4.52.471
अण्ण-देसस्स राओ 14.15.1566	अपसत्थ-तिरिय-गदीइ 9.79.1054
अण्णपढमठिदी कदा 19.113.2178	अपुव्वंतठिदिबंधो 19.60.2125
अण्णपयाजणेहि जम 4.59.478	अपुव्वकरणट्टाणे 19.12.2077
अण्ण-मित्त-रायादी 17.53.1946	अपुव्वकरण-पाविट्टो 20.62.2251
अण्णा अणेगजीवा 21.95.2395	अपुव्वकरणस्स-चरिम 19.20.2085
अण्णाण-तम-णासगं 7.40.823	अपुव्वकरणस्स पढम 19.4.2069
अण्णाणेणं भुंजदि 9.19.994	अपुव्वट्टिदी बंधो 19.23.2088
अण्णायेण अपुट्टे 2.38.181	अप्पकल्लाण-हेदू 7.67.850
अण्णा सव्व-पदत्था 17.37.1930	अप्पगगणंगणे सुपवित्ते 11.106.1317
अत्थणाणं विणा जह 2.8.151	अप्पगुणं पावेदुं 7.27.810
अत्थमाण-रत्तक्को 9.64.1039	अप्पगुणा-सेणिगा य 21.15.2315
अत्थ हु बे आवरणं 5.108.667	अप्पण्हु-अप्पदंसी 21.91.2391
अदिट्टपुव्व-संताणा 2.96.239	अप्पपदेसेहिं सह 21.58.2358
अदिसय पुण्णवंता य 2.50.193	अप्पवायग-कयारो 2.10.153
अदिसय-पुण्णवंतो य 12.80.1403	अप्पसत्थकम्माणं 20.3.2192
अदिसय सुपुण्णवंतो 2.125.268	अफुडवयणेहिं तहा 11.43.1254
अदिसय-सुविसुद्ध-बुद्धि 21.3.2303	अभव्वचित्ते कया वि 7.45.828
अध चयित्तु भो राओ! 15.80.1754	अभव्वस्स संसारो 17.23.1916
अध जसोहर-मुणिराय 14.41.1592	अभिट्टवत्थु-कथगं च 21.39.2339
अध पवण वेगेणं 21.77.2377	अमियं व पुट्टिमंतं 16.63.1834
अध सिद्धपदं लहिंदु 12.136.1459	अमियं व रोहिणिवदं 13.80.1545
अधापत्तकरणादु 21.20.2320	अमियासव-मुणी तदा 8.98.973
अपच्चक्खाण-पच्चक्खाण 21.23.2323	अमियाहारं दु एग 13.60.1525
अपच्चक्खाणुदयादु 5.94.653	अम्हाणं कुल-रीदी 16.14.1785

अरिहंतो सण्णाणं 12.89.1412
 अरिहसेण-सीहर्णादि 21.115.2415
 अरिहादी परमेट्टी 7.78.861
 अरे दहुरो दुट्टो 12.100.1423
 अवगाहंति सायरे 16.37.1808
 अवगाहण हेदुत्तं 5.68.627
 अवच्छलेण विवाद 6.69.760
 अवदि सम्माइट्टी य 14.70.1621
 अवयच्छिदूणं तत्थ 10.89.1173
 अवरुहिय सगरहादो 12.123.1446
 अवस्समेव भुंजेदि 10.125.1209
 अविरदसम्माइट्टी 11.52.1263
 अविवागि-णिज्जराए 1.30.30
 अविवागि-णिज्जराए 15.70.1744
 असंखेज्जकोडिवास 2.82.225
 असंखेज्जकोडिवास 2.87.230
 असंखेज्जगुणं दव्व 19.10.2075
 असंखेज्जगुणहीणा 19.103.2168
 असंखेज्ज-गुणाए य 19.72.2137
 असंज्जगुणिदो तह 20.37.2226
 असंखेज्जवस्सट्टिदि 20.52.2241
 असंखेज्जवस्साइं 20.34.2223
 असाहारणं पुण्णं 12.61.1384
 असि गहंतो कहदे 3.112.393
 असिणादुधादिदोहा 10.116.1200
 असि-संचालणं तहा 16.97.1868

असी मसी किसि-विज्जा 4.135.554
 असुरकुमार-देवाणं 11.40.1251
 असुह-कम्माण-मणंत 19.6.2071
 असुह-दव्व-खेत्त-याल 20.108.2297
 असोग अणुद्धयेणं 8.1.876
 असोगो-पुण्णवंतो 5.119.678
 असोरायपुत्तस्स 4.17.436
 असोग-रोहिणीणं च 1.31.31
 असोगेणं सह राय 15.82.1756
 असोगेण पक्खिवणे 6.76.767
 असोगेण सपुत्तस्स 6.20.711
 अस्स अवक्कित्तिस्स दु 12.14.1337
 अस्स गंथ-लेहणम्मि 21.137.2437
 अस्स-गयाइ-पसूणं 2.94.237
 अस्स जंबुस्स भरदे 8.15.890
 अस्स दु अण्णायि राय 3.122.430
 अस्स देसस्स सोहा 3.7.288
 अस्स रायस्स दु चित्त 14.19.1576
 अस्सि जंबूदीवे 9.36.1011
 अस्सि भरदखेत्तम्मि 3.1.282
 अस्सि वदे पसिद्धा 2.1.144
 अस्सिणी-मुरजवदं च 11.57.1268
 अह बंधिदुं देवाउ 10.127.1211
 अहवा माणुसलोए 9.26.1001
 अहिंसा धम्मजुत्ता 14.9.1560
 अहिंसा सच्चं अचोरियं 4.43.462

अहिंसा सच्चं च अत्थेयं 11.46.1257
 अहिंसा सच्चं तहा 14.55.1606
 अहिचंदो दसम-मणू 2.99.242
 अहुणा तव णिअडत्तं 12.133.1456
 अहुणा विवाह-जोग्गा 3.40.321
 अहुणा संजलण-चउक्काण 19.78.2143
 अहे णिरुवट्टाणिणा 14.48.1599
 अहो इमो पुत्तो मम 12.122.1445
 अहो करुणासायरो 13.46.1511
 अहो णाणदिवायरो 18.12.2004
 अहो णिअडभव्वो हं 10.67.1151
 अहो णिरावकंखी हु 14.47.1598
 अहो णिवो पुण्णप्पा 7.47.830
 अहो देवी! तुमं कह 5.61.620
 अहो पढमबालजदिं! 18.19.2011
 अहो पुढवीपालगो 10.90.1174
 अहो पुत्ती! इह भवे तुमं 9.87.1062
 अहो पुतो! पालेसु 11.61.1272
 अहो भयवदो! राओ! 17.92.1985
 अहो भयवदोव्व पिदू! 12.132.1455
 अहो भव्वुल्लो तुमं 6.85.776
 अहो! भव्वुल्लो सया 13.68.1533
 अहो महामंतिवरो 7.16.799
 अहो रत्तिपुधत्तिओ 20.9.2198
 अहो रत्तिपुधत्तियादु 20.11.2200
 अहो राओ असोगो 14.2.1553

अहो रायसिरोमणी! 12.106.1429
 अहो सज्जणो! इमो दु 9.61.1036

[आ]

आइच्च मिअंगोव्व हु 8.88.963
 आउ-वज्जिदाणं पुण 19.39.2104
 आखंडलेणाणाइ 21.35.2335
 आगच्छेज्ज मए सह 12.62.1385
 आगद-णिवा कुमारा 3.70.351
 आगम-वयणाणि सुणिय 1.16.16
 आदावणाइ-जोगं 12.139.1462
 आमुहंते समणा दु 4.41.460
 आयंसियो गिहत्थो 12.23.1346
 आयण्णिदूण गणहर 11.59.1270
 आयण्णिय पुव्वभवं 15.1.1675
 आयण्णिय वत्तमिदं 7.10.793
 आयरेणं सुदाणं 16.113.1884
 आयामिदा बहुविहव 3.135.416
 आयासेण कुव्विदा 3.128.409
 आरंभचागी हु किसि 14.103.1654
 आरोहीअ उवसमं 10.12.1096
 आवआसिदो पुत्तो 12.124.1447
 आवत्तीअ णिमिदं 6.78.769
 आवलि-पच्चावलीइ 19.76.2141
 आवलियाबाहिरम्मि 20.19.2208
 आसण्णभव्व जीवा 1.63.63
 आसावित्ता ढोल्लं 9.69.1044

आहारम्मि अइकडुग 9.55.1030
आहाराइं विहाय 11.88.1299
आहाराइ-चउविहं 5.124.683

[इ]

इंदपत्थ-कण्णाडय 1.59.59
इंदभूदिं सुधम्मं 21.108.2408
इंदभूमिगोदमं च 1.11.11
इंदुणा सह जुण्हा व 8.78.953
इक्खुवाडम्मि इक्खू 1.64.64
इक्खुस्स सव्वंगेसु 3.18.299
इगतीस कण्णणाण 12.67.1390
इग-रत्तीइ राणीइ 2.67.210
इट्ठ-विज्जा-सत्ति-गुण 1.104.104
इत्थं एयदिवसम्मि 8.35.910
इत्थं कम्मसत्तुणो 21.25.2325
इत्थं चिंतंतो सो 10.70.1154
इत्थं तस्स सासणे 16.20.1791
इत्थं देज्जा सव्वा 16.118.1889
इत्थं मुणिरायेणं 15.72.1746
इत्थं सत्त-कम्माण 20.53.2242
इत्थं समये समये 5.112.671
इत्थं सिक्खाए सह 4.80.499
इत्थ-मंतोमुहुत्तं 19.11.2076
इत्थिसहावेणं चिय 10.46.1130
इत्थीइ दुरायार 10.41.1125
इत्थीणं सुंदरिमा 13.22.1487

इभपालेहि सज्जिदं 12.96.1419
इमं रज्जं गहिता 12.131.1454
इमा णेव को विकला 6.60.751
इमा पुढवी पविता 2.26.169
इमाणि बारसवदाणि 14.97.1648
इमाणि सव्व दस्साणि 6.83.774
इमेण कमेण बहूणि 20.50.2239
इमेण मोह-सुभडेण 21.11.2311
इमेहि तिय-कारणेहि 5.34.593
इमो णिच्छयोधम्मो 14.51.1602
इमो विदियतिभागो 19.104.2169
इमो सेट्ठरायसुदो 3.96.377
इरियं भासमेसणं 18.45.2037
इरिया भासेसणा य 13.50.1515
इह देसे महापुरिस 12.84.1407
इह भूमीए अंतिम 2.23.166
इह ममकुलम्मि पुव्वे 17.75.1968
इह विजयद्ध-पव्वदे 12.55.1371
इह सुहुमसंपराइय 20.4.2193
इह हुंडवसप्पिणीइ 2.73.216

[ई]

ईसाणे मल्लवाण 1.53.53

[उ]

उइद-दंडं दायेमि 3.115.396
उक्कस्सेण मुणिवरो 5.39.598
उक्किट्ठपुण्णफलेण 9.16.991

उक्किट्टुपुण्णफलेण 13.66.1531
 उक्किट्टुविसुद्धीए 21.19.2319
 उक्किट्टो खुड्डादो 7.77.860
 उच्छाहजुद-सेणिगा 12.98.1421
 उज्जयंतसेलादो 9.37.1012
 उज्झिदं विसयसोक्खं 5.121.680
 उट्टित्ता पकुप्पंत 3.107.388
 उत्तम-खमाइ-दसहा 7.49.832
 उत्तमगुरु-सिस्साणं 6.11.702
 उत्तम-पुट्टिग-सादू 16.90.1861
 उत्तमरयणेहि कट्टु 12.48.1371
 उत्तमसामाहिबलेण 14.78.1629
 उत्तरगुण-चउतीसा 7.56.839
 उत्त-सत्त-पइडीणं 21.52.2352
 उदयसमये दिणंते 2.65.208
 उदयाभावखयादु 5.83.642
 उदयावलिय-बाहिरे 19.8.2073
 उदीरणाइ ण णियमो 20.35.2224
 उदीरणा पडिहम्मदि 20.43.2232
 उदीरणा होज्ज तदा 19.41.2106
 उट्टिट्टु-चाग-पडिमा 14.106.1657
 उप्पण्णा गिरी णदी 2.104.247
 उप्पाय-वय धुवेहिं 5.64.623
 उल्लंघणेण सुविहीइ कया 1.142.142
 उवघादं परघादं 21.73.2373
 उवजुत्त कारणेणं 2.92.235

उवयारे वासंगो 8.76.951
 उवरत्तो ससंगो दु 5.3.562
 उवरि गच्छंतस्स बहु 19.40.2105
 उववाद-सेज्जाए दु 11.90.1301
 उववासेण दिस्सेदि 15.71.1745
 उववासेण लहंते 1.136.136
 उववासेण वड्ढंति 15.69.1743
 उवसामगस्स हु पढम 20.72.2261
 उवसामणाकरणं च 19.25.2090
 उवसामदि सेणीइ दु 19.117.2182
 उवहाररूवधणं 2.59.202
 उवासगो सुगिहत्यो 14.91.6442
 उवासय-धम्मो खमो 17.72.1965
 उसहसेणाइ-सव्वा 1.9.9
 उसहेण सह भरदोव्व 6.19.710
 उहयकरा थंगंता 6.39.730
 उहपरिगहहीणा 10.102.1186

[ए]

एअस्स अभूदपुव्व 1.141.141
 एक्कसराहेण अण्ण 20.49.2238
 एक्को करेदि पुण्णं 13.27.1492
 सक्को कुणदि हिंसाइ 13.26.1491
 एक्को हि मोक्खमगे 13.28.1493
 एगट्टाणीयुदओ 19.57.2122
 एगतीस-कण्णण्णा 12.67.1390
 एगरायपुत्तेणं 4.46.465

एग-रोहिणिवदेणं 11.64.1275
 एगवारं दु गहीअ 13.59.1524
 एग-समयवत्ती खलु 5.103.662
 एगो तुमं चिय अकारण 1.143.143
 एत्तो संखेज्जगुणं 20.73.2262
 एदम्हि ठिदिबंधम्मि 20.8.2197
 एदादो अट्टारस 1.119.119
 एयंतवाददूसिद 7.86.869
 एयणयरवासिणा य 9.62.1037
 एयदा अइ-आसण्ण 21.1.2301
 एयदा अंतउरम्मि 5.1.560
 एयदा गच्छीअ मुणि 14.84.1635
 एयदा तम्मि णयरे 8.65.940
 एयदा तम्मि णयरे 12.75.1398
 एयदा तेणा णिवेण 12.59.1382
 एयदा मज्झंदिणे 6.34.725
 एयदा रुक्खमूले 19.1.2066
 एयदा रोहिणीए 3.35.316
 एयदा विमलमदणो 10.9.1093
 एयदा सव्वरीए 5.113.672
 एयदा सीहासणे 8.85.960
 एयदा सोमप्पहेण 10.79.1163
 एयादिवसम्मि सोम 10.35.1119
 एयदिवसे सेणिगो 1.83.83
 एवारस-अंगाणं 21.104.2404

एयारस-पडिमा सग 14.111.1662
 एलगो गहदि पिच्छि 14.108.1659
 एवंविह बोहिदूण 12.135.1458

[ओ]

ओणेज्जाव्व पइडीइ 3.86.367
 ओदइयो उवसमियो 5.76.635
 ओरालिय-विवज्जिदा 19.19.2084
 ओहिणाण णयणेणं 11.91.1302
 ओहिणाण-दंसणावरणिज्ज 19.43.2108
 ओहीणाणदंसणावरणिज्जं 20.41.2230

[क]

कंखदि पुण्णवंतस्स 14.26.1577
 कंखंति सगप्पसिद्धि 18.41.2033
 कंखेमि सकल्लाणं 4.70.489
 कंटियेण वणिदो सो 11.37.1248
 कंठो कलयंठीव य 5.8.567
 कंससूरिं सगप्पसिद्धि 18.41.2033
 कट्टं सोग दुहं जं 6.50.741
 कट्टणिम्मिद-वाहणं 16.89.1860
 कट्ट-लगुडादीहिं च 2.88.231
 कडुअ सम्माण-मित्थं 3.75.356
 कडुओ णिंबं खारो 3.33.314
 कढंते पेल्लंते य 11.9.1220
 कणगपुर-रम्म-णयरे 10.25.1109
 कणगभूसण-धारगा 16.60.1831
 कण्णा-विक्कई भादु 8.10.885

कत्तव्वं पालंतो 21.14.2314
 कत्तव्वं पालिदं दु 4.71.490
 कत्तव्वं विम्हरित्तु 13.39.1504
 कत्थ वि पदिद-पदादी 12.116.1439
 कप्परुक्खं च सिंधू 2.111.254
 कप्परुक्ख-दंसणादु 2.114.257
 कम्परुक्खाण ताणं 2.90.233
 कमसो भोयभूमीइ 2.78.221
 कमसो य थंभगारी 10.21.1105
 कम्मक्खयंतो विदिय 10.13.1097
 कम्मणिज्जराए चिय 4.93.512
 कम्मविवाग-चिंतणं 5.54.613
 कम्महीण-सव्वसुद्ध 3.80.361
 कम्माणं उदयादो 5.79.638
 कम्माणं खओवसम 5.86.645
 कम्माणं दु खयादो 5.81.640
 कम्माण-मुवसमादो 5.80.639
 कम्मि गुणट्टाणम्मि दु 5.75.634
 कम्मो तिविहो णेयो 9.2.977
 कयाइ पावुदयादो 8.69.944
 कयाइं तच्चणाणी 17.96.1989
 कया य धणुटंकारो 12.47.1440
 कया वि णो विम्हरेज्ज 13.38.1503
 कया वि समवसरणम्मि 14.118.1669
 करपत्ताहारी पग 7.62.845
 करभार-विमुत्तपया 2.58.201

करिदं सव्व-पबंधण 4.20.439
 करिदं सहस्सवारं 18.65.2057
 करिदु-मवकस्साण 1.124.124
 करिदूणं पहु-वंदणं 11.112.1323
 करीअ अणेगवारं 12.1.1324
 करीअ उग्गुग्ग घोरतवं 13.55.1520
 करुणाइ गुरुवयणेहि 11.83.1294
 करुणाइ-मिस्सिद-वयणं 9.96.1071
 करेज्ज मच्छरं रदी 5.4.563
 करेज वि अण्णदिणेसु 15.54.1728
 करेज्जा विसुद्धीए 9.100.1075
 कलमल-पहावेणं 8.24.899
 कल्लाकल्लि करीअ 4.26.445
 कवोलमंडल-गोरं 3.21.302
 कवोलो अवसण्णो य 8.21.896
 कसाय पिवत्तीए हि 5.56.615
 कसायं पावविट्ठिं 1.134.134
 कस्स पिदरस्स ण होदि 14.23.1574
 कहदि संकुचंता सा 2.70.213
 कहदि सुणित्तु रोहिणी 6.63.754
 कहिदं उप्पुलइदेण 11.66.1277
 कहिदं तदा भो जणा! 2.86.229
 कहिदं रायेण तदा 4.47.466
 कहिदमित्थं सुपुत्ती 4.5.424
 काइ भाले कज्जलं 3.55.336
 काए णियसंताणं 3.58.339

काणणम्मि विज्जमाण 16.49.1820
 कालक्खयादो पडदि 20.1.2190
 कालविजुत्ता सेसा 5.69.628
 किंचणवस्स-पच्छ य 4.102.521
 किंचण वासंतं पुण 12.90.1413
 किं णो णंदसि राओ 17.44.1937
 किं देज्जा रज्जमिदं 17.87.1980
 किं सोगो किच्छं वा 6.46.737
 किच्चा चदुत्थ-ण्हाणं 2.110.253
 किच्छाइं भुंजंतो 11.26.1237
 किट्टिमाकिट्टिमाइं 21.107.2407
 किण्णु गुरुमुहादु मए 6.53.744
 किण्णु पाणपिया हु तव 2.69.212
 किण्णु पावदे जीवो 11.21.1232
 किण्णु सो दोसजुत्तो 5.2.561
 किदण्हु-भाव-जुदाए 9.102.1077
 किदा अपुव्वकिट्टी य 19.114.2179
 किमिकुलसंकुलेहिं च 11.11.1222
 किमीकुलेहिं पूरिद 9.75.1050
 कुणंतो सवरघादं 10.68.1152
 कुणदे णिगोदवास 21.84.2384
 कुणित्था तित्थजत्तं 3.16.297
 कुणिदं विवाहलगं 3.51.332
 कुदेव-कुधम्म कुसत्थ 7.87.870
 कुमुइणीए जुण्हा व 8.83.958
 कुमुदं व सद्धिणी 4.125.544

कुरंगच्छी कुमारी 3.88.369
 कुरुजंगलदेसादो 4.1.420
 कुलकलंकिदा य धम्म 10.66.1150
 कुलदीविगा विणीदा 1588.1682
 कुलमज्जादा सक्किदि 12.111.1434
 कुलो सुपुत्तेणं तह 15.16.1690
 कुविद दंडपासिग 8.48.923
 कुव्वंते जिणभत्तिं 14.115.1666
 कुव्वंतो महारायो 3.117.398
 कुव्वदि आसवं सया 21.57.2357
 कुव्वीअ धम्मकज्जं 9.40.1015
 कुव्वेसि तच्चचित्तण 5.15.574
 कूखयणं सुणिच्चा 10.93.1177
 के के कुलयरा हु ते 2.75.218
 केणं दु अइ-तराए 3.61.342
 केण कारणेण इमा 12.54.1377
 केण कारणेण णेव 8.2.877
 केण कारणेण लोय 8.3.878
 केत्तिय-भववड्डगाणि 5.42.601
 केवलणाणं लहिदुं 15.58.1732
 केवलणाणिजिणस्स 2.52.195
 केवलणाणी लोया 2.115.258
 केवलणाणुच्छवम्मि 10.15.1099
 के वि उव्वसी रंभा 3.91.372
 के वि सूरी मणंति दु 5.58.617
 केहि भव्वेहि मोक्खो 4.101.520

कोक्कय णिउणपंडिदं 12.66.1389
कोडि-कोडि-जीहाहिं 11.12.1223
कोडि-वास-अणंतरं 2.97.240
कोडि-वास अणंतरं 2.101.244
को णेव विआणेदि दु 6.26.717
को णेव जाणदि जीवो 17.16.1909
को जाणादि देहाउं 17.48.1941
कोमलंगि महरुभासि 6.59.750
को मूसगो य सीहो 12.103.1426
को वि अपक्कघडम्मि 3.62.343
को वि लहिदुं ण सक्को 14.52.1603
कोहग्गि डज्झंताइ 9.50.1025
कोहरुक्खस्सुवेक्खा 6.71.762
कोह-लोह-भय-चागो 20.83.2272

[ख]

खंडिज्जेदि णायोव्व 18.34.2026
खणिओ सिविणं व हंदि 4.62.481
खज्जं सज्जं लेहं 14.101.1652
खमो असंखुवहिजलं 11.7.1218
खयदि देहीण आउं 13.23.1488
खयदि सय रयं च 15.95.1779
खामेमि लहुभावेण 17.78.1971
खिसिदं णियचित्तम्मि 9.51.1026
खिच्चडिअं खादंते 2.5.148
खिविदा णिय णावा खलु 3.54.335
खीणमोह-ट्टाणम्मि 21.29.2420

खीणमोहठाणे पण 11.108.1319
खीरोव्व सिंधूसू 2.17.160
खुड्डया खुड्डिया वा 7.84.867
खेत्तवेक्खाइ भरदो 1.49.49

[ग]

गंगदत सेट्टिणा खलु 9.48.1023
गंग-सिंधूहिं बे 2.19.162
गंधसवणस्स सत्ती 4.68.487
गंधकुडीइ विज्जंत 4.100.519
गंधरायेण पुप्फं 3.13.294
गंभीरो सुगुणीसुं 12.125.1448
गगणंगणे तारिगा 2.83.226
गगणम्मि इंदधणुं व 17.12.1905
गच्छंताए ताणं 3.59.340
गच्छिद-एगखणं अवि 2.121.264
गच्छीअ अक्ककित्ती 13.41.1506
गच्छीअ एयदिवसे 12.47.1370
गच्छीअ पुव्व-वासे 16.103.1874
गच्छीअ वदं गहित्तु 15.75.1749
गणिद-सिद्धंत-णिमित्त 6.54.745
गदरायं गददोसं 18.21.2013
गद-संखेज्जठिदिबंध 20.38.2227
गदि-हेदुत्तं धम्मो 5.67.626
गदेसुं कमेणं ठिदि 19.66.2131
गदेसुं संखेज्जठिदि 19.58.2123
गदेसुं संखेज्जठिदि 19.63.2128

गदेसुं संखेज्जठिदि 19.65.2130
 गदेसुं संसेज्जठिदि 20.45.2234
 गदेसुं संखेज्जठिदि 20.47.2236
 गदेसुं संखेज्जठिदि 20.66.2255
 गदेसु खंडयणुभाग 19.53.2118
 गदेसु संखेज्जठिदि 20.16.2205
 गब्भसंविद्धीइ सह 2.119.262
 गलिदकुट्टवाहीए 10.120.1204
 गहिदुं सण्णाण-फल्य 21.105.2405
 गहेज्ज धम्मकारणं 14.66.1617
 गिहत्थाण वर-धम्मो 15.44.1718
 गुणगाहगभावो तह 1.92.92
 गुणागाहगो गुणीसुं 2.41.184
 गुणजुदसुंदरिमाए 3.45.326
 गुणधम्ममुणिचरणेसु 4.83.502
 गुणधम्ममुणि-समीवे 4.89.508
 गुणपुंज-कलाजुदेण 4.114.533
 गुणभद्द-मुमियचंदं 21.122.2422
 गुणसंकम-वोच्छिण्णो 20.71.2260
 गुणुप्पण्णो मणोण्णो 2.136.279
 गुत्तयरेहिं च पया 4.73.492
 गुत्ति समिदि-अणुवेक्खा 20.97.2286
 गुरु-दंसणं च णेहो 11.78.1289
 गुरु-पसादेण भव्वो 11.95.1306
 गुरुवासणाए विणा 11.72.1383

[घ]

घाइय-कम्मे णट्टे 5.82.641
 घादि-कम्मं विणासिय 5.60.619
 घादिकम्मविहीणा वा 21.49.2349
 घोरदुहं भुंजित्ता 11.15.1226
 घोसणाणुसारेणं 4.33.452
 [च]
 चउगइजुदे लोए 7.92.875
 चउगदीसु भमंतो 3.11.292
 चउणाणधारगं तित्थयर 18.48. 2040
 चउतीस-अदिसय-जुदो 18.28.2020
 चउदसम-णाहिरायो 2.107.250
 चउदिसासु चउगोउर 18.6.1998
 चउद्दह-ठाण-यालो 5.109.668
 चउमाणत्थंभा चउ 18.8.2000
 चउरिंदियोव्व-ट्टिदी 19.28.2093
 चउविहभावेहि जहा 5.78.637
 चउविह-संघो दु पुण्ण 5.11.570
 चउविहाहार-मुज्झदि 15.43.1717
 चउविहाहारो जाण 15.61.1735
 चउवीस मुहुत्ता ठिदि 19.121.2186
 चउसंझा-यालेसुं 20.101.2290
 चउसट्टि-कलाजुत्ता 3.26.307
 चउसाला पणवेदी 18.7.1999
 चउसिक्खावदाइं दु 7.73.856
 चउसीदि-लक्खा गुण 7.57.840
 चउहत्थबाहल्लजुद 18.4.1996

चंदकंतमणिजलं व 7.39.822
 चंदकला जह वड्ढुदि 2.131.274
 चंदविमाणं देक्खिज्जदे 6.27.718
 चंदुदयेण कुमुदाणि 15.21.1695
 चंदेण विणा जुण्हा 20.95.2284
 चक्क-धणु-कुंतादीहि 12.95.1418
 चक्कीणं विहवो खण 13.21.1486
 चक्कीव रज्जलच्छं 13.15.1480
 चक्खुदंसणावरणिज्जस्स 19.45.2110
 चदुवक्खारगिरीदो 1.47.47
 चरित्तभूसणं सेट्ठ 21.120.2420
 चरित्त-मोहणीयस्स 5.100.659
 चरिमसमयुवसामगो 19.95.2160
 चरिमो अंतमुहुत्तो 19.107.2172
 चरियचक्किं सज्झाण 21.126.2426
 चरियमोहुदयेण 17.90.1983
 चामुंडरायं सयलकित्ति 21.125.2425
 चायगोव्व ठिद-भवीहि 8.97.972
 चारित्तं खलु धम्मो 14.58.1609
 चिंतिय जो सो णहि 14.121.1672
 चिंतेदि भव-सरूवं 17.33.1926
 चित्तपयंगोव्व सा वि 5.27.586
 चित्तविसुद्धीए वा 9.13.988
 चित्ते तिक्खहिलासा 1.133.133
 चेयणाचेयणो तह 5.73.632

[छ]

छ-कुलायलेहिं हिमवण 1.40.40
 छट्टमतमणिरयम्मि दु 11.16.1227
 छट्टमो सीमंधरो 2.91.234
 छत्त-चमर-भामंडल 11.110.1321
 छरिदूण फल-फूलाणि 1.85.85
 छसंठाण-संहणणं 21.72.2372
 छुहाउरो जह जहेच्छ 7.6.789
 छुहा तिण्हा य रोसो 1.118.118
 छुहादीदो उप्पण्ण 20.106.2295
 छुहादी बावीसा दु 5.40.599
 छुहावेयणाए सो 11.6.1217

[ज]

जइ पराइदो हु तदा 8.34.909
 जं पलिलंभिदूणं दु 3.77.358
 जंबुदीवस्स भरदे 10.4.1088
 जंबुदीवस्स भरदे 10.20.1104
 जंबुदीवस्स भरदे 14.3.1554
 जंबूदीवस्स पुव्व 15.3.1677
 जगज्जणहिदाय तदा 21.36.2336
 जणग-सुपुत्त-पदीदो 8.59.934
 जणरंजणत्थं विदूसगो 13.13.1478
 जत्थ अइवत्तिज्जदे 8.84.959
 जत्थ णिगंथसाहू 10.106.1190
 जत्थ णेव अइ-उण्हो 20.99.2288
 जत्थ दु मोहणीयस्स 5.106.665
 जत्थ दुहजुत्तणारी 8.81.956

जत्थ लोहो कसाओ 5.105.664
जत्थ सुसक्कारजुदा 8.80.955
जदवि रयणायर-तडे 16.33.1804
जदवि सुलहा य गणणा 4.55.474
जदा ण अइ-उण्हत्तं 20.100.2289
जदा णिवेण-जाणियो 10.74.1158
जदा पक्खि-पसूणं च 6.6.697
जदा रोहिणीए पुण 3.106.387
जदा सव्वकम्माइं 21.68.2368
जदि कंखसि सुह-संतिं 10.91.1175
जदि कुणमि असुहभावं 10.58.1142
जदि सण्णि-पंचिंदियो 15.37.1711
जम-णियमाण धारगं 7.28.811
जम-सोचुवकरणेहिं 7.76.859
जम्मादीणं कुणदि हि 5.132.691
जम्हा पूदीगंधा 8.60.935
जम्हा सीदुण्हेसुं 5.41.600
जयंतु पुण्णकारगा 7.12.795
जयणायधिदिसेणा य 21.109.2409
जयदु रायपहंजणो 12.83.1406
जयमदी सुकंता ता 12.74.1397
जयावह कंतिवता 21.27.2327
जयिदुं णिय-पदि हिअयं 4.9.428
जराउ अणुकड्डणस्स 2.106.249
जलबुब्बुदोव्व देहो 17.46.1939
जलमंथणेण घिदं व 17.22.1915

जलरासीव विसालो 4.117.536
जलसिंचणेण वड्ढिद 11.77.1288
जलासयस्स सोहा य 1.68.68
जलासयेण पउमं च 6.14.705
जवंतो भत्ति-जत्तादीहि 14.119.1670
जवो महामंतस्स तह 6.91.782
जस्स आसयेण भवी 2.29.172
जस्स देसे पउमिणी 10.103.1187
जस्स पहावेण सिद्ध 12.60.1383
जस्स वंदणा भत्ती 4.84.503
जह अइसंतत्तमहिं 13.47.1512
जह अक्क णिमित्तेणं 1.33.33
जह आबालवुड्ढा दु 2.4.147
जह इक्खुरसेण विणा 2.9.152
जह कम्मं तह फलं दु 10.123.1207
जह कलिगा सु विअसिदं 17.6.1899
जह कुणदि पवणो अमल 6.18.709
जह कुलीण-सक्कारिद 1.69.69
जह कुहिलो कुहुं कुहुं 1.37.37
जह को वि विज्जत्थी ण 2.7.150
जह घण-पज्जणं चिय 1.36.36
जहण्णंतो-मुहुत्तो 9.7.982
जहण्णेणुक्कस्सेण 19.17.2082
जह तह पावकम्माणि 11.45.1256
जह तह राय-समीवे 16.51.1822
जहत्थ-बोह-कारगं 10.72.1156

जहत्थे एरिसो को 6.51.742
 जह पचंड-आइच्चो 10.109.1193
 जह पराइदो जोद्धो 3.129.410
 जह पाविट्टु-मित्ताणि 6.74.765
 जह रयणाण भूसणं 10.76.1160
 जह रयणेसुं वइरं 20.77.2266
 जह रसालरुक्खेसुं 3.9.290
 जह वइस्साणरेणं 15.86.1760
 जहवि णव-गेविज्जेसु 7.61.844
 जह वि णो समत्थो हं 1.32.32
 जहवि तुमं सुजोग्गो हु 12.128.1451
 जहवि धम्मजुत्ता थी 10.48.1132
 जहवि पुण्णोदयादो 8.25.900
 जहवि लहु-भूवदी हं 10.81.1165
 जह विलिज्जेदि सप्पि 15.87.1761
 जहवि लोए विज्जंत 18.52.2044
 जहवि सीह-पज्जाये 11.20.1231
 जह सहजदाए किण्ह 17.4.1897
 जह साहसेण जोद्धा 21.10.2310
 जह सुविसालदेसम्मि 16.43.1814
 जह सेट्टु-विज्जधराण 1.78.78
 जहाजाद-दियंबरो 18.43.2035
 जहायाले उण्हम्मि 18.66.2058
 जहेच्छ-मिट्टुण्णं वा 15.22.1696
 जा आसत्ती हवदे 15.35.1709
 जाण छसामण्णगुणा 5.72.631

जाणह पंच-चिण्हाणि 4.94.513
 जाणावमि तुज्झं हं 6.65.756
 जाणिय सोमसम्मणो 10.118.1202
 जाणेज्जा सुजणाण 7.90.873
 जाणेमि इमा सव्वा 6.55.746
 जादिसिमरणेण पुव्व 2.25.168
 जादो णेरइयो चिय 11.23.1234
 जाधे विड्डी ताधे 20.57.2246
 जायगा चोर-दुट्टा 2.35.178
 जायणया खलु णिंदा 8.9.884
 जावइय-जरावत्था 4.67.486
 जावइय-तिव्वभत्ती 13.82.1547
 जावच्चंद-दिवायरा 21.139.2439
 जाव ण लहदे मोक्खं 13.83.1548
 जावदि जीवो रच्चदि 18.55.2047
 जावदु जलं सरिदाइ 17.8.1901
 जिणचरणंबुज-फासिद 1.34.34
 जिणचरण-वंदणाए 15.90.1764
 जिणच्चणं किच्चा पुण 3.38.319
 जिणजत्तं महुच्छवं 3.17.298
 जिणणिंदिगो य पावी 8.7.882
 जिणण्णं सद्दहंतो 14.88.1639
 जिणण्णा-संगच्छणं 5.53.612
 जिणपत्ताणि कया वि 13.25.1490
 जिणत्थुदि-मित्थं कडुअ 1.132.132
 जिणदंसणं च वंदण 9.41.1016

जिणदंसणेण णस्सदि 15.31.1705
जिणधम्मम्मि थिरा सग 12.28.1351
जिणधम्मरसायणेण 10.54.1138
जिणपूयं गुरुसेवं 1.96.96
जिणपूयं तिक्काले 13.69.1534
जिणपूयणं कडुअ सा 5.114.673
जिणपूयणमच्चणं च 1.112.112
जिवापूयाए लहंति 1.127.127
जिणबिंब-जिणालयाण 13.71.1536
जिणबिंबवंदणेणं 15.30.1704
जिणभत्ता धम्मभाव 1.80.80
जिणभत्तिं गुरुपूयं 8.71.946
जिणभत्ति पहावेणं 14.116.1667
जिणभत्तीए भव्वो 18.35.2027
जिण-मुणीण दंसणाय 4.32.451
जिणवंदणाइ भव्वा 1.126.126
जिणवयं परमोसही 8.24.2016
जिणवयणं णियमेणं 2.76.219
जिणवयण बोहो य 10.62.1146
जिणसासण-पहावगं 1.26.26
जिणसासणुण्णदिकरं 1.24.24
जिणसुदणिग्गंथाणं 14.86.1637
जिणागम-सज्झायेण 15.57.1731
जिणिंद-पूयाए सिरि 8.12.887
जिणिंदभत्ती पूया 15.88.1762
जिणिंदवयण-सरूवं 15.56.1730

जिणिंद-सिमरणं च 3.82.363
जिम्हवेदगस्स तिविह 20.13.2202
जिम्हस्स पढमठिदीइ 19.93.2158
जीवणंतम्मि हु मिच्चु 14.90.1641
जीवरक्खंता तित्थ 16.53.1824
जीवाजीवासवो य 5.70.629
जीविमो कुणदि पुण-पुण 9.33.1008
जीवो दुविहो णेयो 21.44.2344
जीवो पुण्णोदयम्मि 8.56.931
जीवो संवर तच्चं 21.61.2361
जीवो सव्वेसु वरो 21.43.2343
जुग-पवट्टगं णाणक्कं 23.131.2431
जुगलमुणिवंदणाए 7.19.802
जुगवं णिट्ठिदा तदो 19.13.2078
जुण्हा दु सीयला जह 3.32.313
जुत्ताणंतचउक्कं 11.104.1315
जे के अवि दुट्टा 13.5.1470
जे के अवि सेवंते 15.50.1724
जे के वि दंसंति तं 18.26.2018
जे के वि सद्दहंते 21.55.2355
जे के वि हु णिग्गंथा 4.95.514
जेट्टे मेहधाराइ 7.42.825
जेहि हिंसाइ-पावं 9.17.992
जो को अवि भव्वुल्लो 13.81.1546
जो को वि दूसदे जिण 8.6.881
जोगिरायेण तेणं 21.28.2328

जोगेहि कुव्वेदि सुहे 9.109.1084
जोग-समय-अणंतरं 2.103.246
जो जीवदि जीवस्सदि 5.65.624
जो लहदे गुरुमुहेण 6.9.700
जो लोयाम्मिवित्तो 17.9.1902
जोवणम्मि पविसंतो 2.135.278

[झ]

झसच्चिंधयोव्व दु 3.98.379
झाणट्टिदो सजोगी 21.2.2302

[ठ]

ठाणणेगेषु किड्डा 16.80.1851
ठाविदुमेगरत्ती वि 8.54.929
ठिदिखंडगं हु जोगी 19.5.2070
ठिदिखंडयपुधत्तम्मि 19.14.2079
ठिदिबंधसहस्सेसुं 20.29.2218
ठिदिबंधसहस्सेसुं 20.61.2250
ठिदिबंधसहस्सेहिं 20.65.2254
ठिदिबंधे पुण्णे पुणे 20.58.2247
ठिदिबंधो एइंदिय 20.60.2249
ठिदिबंधो य तिण्हं 19.105.2170
ठिदीए विणा मेरू 17.55.1948
ठिदीबंधो तिघादीण 20.2.2191
ठिदीबंधो संखेज्ज 19.106.2171

[ड]

डज्झदि तं तह मुणिणा 21.78.2378
डज्झिद-रज्जू दु कं पि 21.79.2379

डिंडीरेण जह होदि 16.36.1807

[ण]

ण अददि रत्तिभोयणं 15.42.1716
णउंसय-अणुवसंतो 20.33.2222
णउंसय वेदस्स चिय 19.56.2121
णंदंत विहरंत उड्डंत 16.48.1819
णंदवत्तं कुव्वीअ 6.36.727
णंदीसरम्मि कत्तिय 4.25.444
णंदो णेहो हणिहणि 5.131.690
ण कंखेमि तव मिच्चुं 12.101.1424
णगगो हि मोक्खमग्गो 7.60.843
णत्ते सम्माइट्टी 4.31.450
णदि-भूसणं च णीरं 1.70.70
ण पहुच्चीअ विवाहे 8.53.928
ण पालिदो मए सयल 17.73.1966
णमो अणतसुहेणं 1.115.115
णमो णमो सिरिजिण 11.100.1311
णमोयार-णंदीसर 11.55.1266
णमो सवरकल्लाणे 1.116.116
णमो सोहम्मिदाइ 1.120.120
णयणं व सुहगो तेसु 2.22.165
णयणादो वरिसंतो 12.105.1428
णयरवासीण धणं ण 16.27.1798
णयर-सेट्टि-गंगदत्त 9.43.1018
णरभवमिदमुवकसीअ 4.64.483
णरभवम्मि दारिहं 14.35.1586

णरमुंडपंतीए 12.118.1441
 णरा कम्मभूमीए 21.98.2398
 णरेगो भणदि सामी! 16.2.1773
 णवदेवदा य तित्थं 2.31.174
 णवरि तादो भवादो 4.39.458
 णवरि धम्ममग्गे सय 2.56.199
 णवरि पारिणामियो दु 5.77.636
 णवरि पुरिस-वेदस्स दु 19.67.2132
 णवरि पुव्वपावादो 8.32.907
 णवरि भद्दपरिणामी 10.34.1118
 णवरि महापुरिसो णो 12.104.1427
 णवरि य तिव्वकसायी 6.86.777
 णवविह-मोहबंधगो 20.63.2252
 णहस्सवगाहणत्तं 17.31.1924
 णागरिआण भावणा 16.21.1792
 णाणग्गिं पज्जलित्तु 18.68.2060
 णाणज्झाणतवाणं 7.36.819
 णाणज्झाणतवलीणो 7.65.848
 णाण-दंसणावरणं 15.89.1763
 णाण-दंसणावरणंतरायाण 19.61.2126
 णाण-दंसणावरणी 19.36.2101
 णाण-पयासं देदुं 1.17.17
 णाण-वेरग्ग-समत्त 20.107.2296
 णाणस्स अजिण्णं वा 6.47.738
 णाणा-दंसणावरण 19.48.2113
 णाणदु सुददेवीव 6.24.715

णाणाविह-संसारिय 1.137.137
 णाणी अण्णाणी वा 8.63.938
 णादव्वं सत्थेहिं 5.44.603
 णादव्वं समयेहिं 15.34.1708
 णादुं सगसरूवं ण 17.41.1934
 णामकम्माण जाणं 19.16.2081
 णामा सुदाण कमसो 6.29.720
 णायणीदीइ पालसु 12.129.1452
 णायप्पिय-तुट्टु-णिवो 16.7.1778
 णायेणं सव्वपया 13.2.1467
 णायेण रज्जकज्जं 4.110.529
 णारीए ति-आसयो 8.58.933
 णारीणं अंगाणं 5.7.566
 णारी सुपुण्णवंता 8.79.954
 णासिय जेण मोहविहि 11.105.1316
 णाहिणालं दिस्सिदं 2.108.251
 णिउरं धरिदं कंठे 3.56.337
 णिंदणीय दुरिदं ण 13.86.1551
 णिक्कम्मो णिल्लेवो 21.88.2388
 णिक्खेवो ओरयंत 20.68.2257
 णिग्गंथ-गुरु-णेहेण 11.96.1307
 णिग्गंथ-दिक्खं विणा 7.59.842
 णिग्गंथ-माहप्पं दु 10.100.1184
 णिग्गंथ मुणिदंसणं 10.97.1181
 णिग्गंथ-लोयवालो 10.104.1188
 णिग्गंथाणुवासगो 4.122.541

णिगंगा मुणिराआ 10.94.1178
 णिगघत्तं विणा घिदं 17.56.1949
 णिच्छयमोक्खमग्गो य 17.70.1963
 णिच्छय-ववहारादो 11.49.1260
 णिच्छयेण विणयेण 10.112.1196
 णिज्जणारण्ण-गमणं 16.98.1869
 णिज्जरंति सगसमये 21.65.2365
 णिट्ठ-जिणभत्ताए 3.36.317
 णिट्ठो जिणधम्मो सत्तीइ 7.81.864
 णिण्णिमेस-अवलोयंता 14.42.1593
 णिदोसं अपरिग्गह 20.88.2277
 णिद्धणो य बहुकंखा 2.36.179
 णिब्भया य णिस्संका 16.77.1848
 णिमिच्छणाणिणा कहिद 3.130.411
 णिम्मलणीरेणं सह 15.85.1759
 णिम्मलरयणत्तयेण 10.10.1094
 णिम्मलसद्धाए गुरु 11.81.1292
 णिम्माविदो सयंवर 3.65.346
 णियडे पच्चिदूण धण 8.50.925
 णियणामक्खरेहिं दु 12.121.1444
 णियदि-आइ-कारणेण 9.10.985
 णिय-पिदु-संगेदेणं 3.84.365
 णियप्पझाणि-मुणिस्स दु 5.98.657
 णिय-बद्ध-कम्मफलं 9.11.986
 णियबुद्धावत्थाए 11.22.1233
 णिय-मिच्छत्तदसाए 14.33.1584

णियमिद-गमणसीलो हु 16.42.1813
 णियमेणं पव्वेसुं 15.53.1727
 णियसंजमपालणस्स 14.107.1658
 णियसंताणेहिं सह 2.102.245
 णियसत्तभवं सक्का 18.40.2032
 णियसुकुलसासण-रीदि 16.17.1788
 णियुवायं कुणंति सयमेव 17.61.1954
 णिरयादो णिस्सरित्तुं 11.19.1230
 णिरहंकार-पवित्ती 4.8.427
 णिरुंभिदुं सव्वासव 10.44.1128
 णिरूविदा सिआवाया 1.3.3
 णिव सोमप्पह-कुमार 2.24.167
 णिवादु सोमभूदीव 10.37.1121
 णिविड-कम्माणि खयिदुं 15.66.1740
 णिवेदंते सगजणग 17.51.1944
 णिवेददि अइविणयेण 11.60.1271
 णिवेण समाकारिदो 4.66.485
 णिवो पया धम्मिट्ठा 21.100.2400
 णिव्विअप्प-झाणी तह 10.11.1095
 णिव्विअप्प-धम्मझाण 5.55.614
 णिव्वेरो सुहणीदि 2.137.280
 णिसिभुंजगो अज्जदे 15.36.1710
 णिसिभोयणफलेण वा 8.28.903
 णिस्सरिदूणं ततो 11.28.1239
 णीदियारेहि कहिदा 3.79.360
 णीदिविदू वज्जरंति 4.74.493

णीयगोदं असादं 8.73.948
 णीरं विणा सरिदा व्व 17.54.1947
 णीरक्ककिरणादीहि 1.129.129
 णीरे सीयलत्तं व 11.75.1286
 णीसारयीअ चिय सग 10.119.1203
 णेंता जणा पस्सित्तु 9.60.1035
 णेया दु असुहपइडी 9.9.984
 णेया सुपुण्णहेदू 8.74.949
 णेव करेज्ज सिविणे वि 8.72.947
 णेव कस्स मणुस्सस्स 1.105.105
 णेव चिंतेज्ज इत्थं 12.134.1457
 णेव तत्थ अण्णायो 16.22.1793
 णेव तव समवसरणे 18.30.2022
 णेव पदिसुहं अस्सि 9.83.1058
 णेव भुंजंति भोया 17.20.1913
 णेव विवेगरित्तदा 2.130.273
 णेव होज्ज णिस्सेसो 21.13.2313
 णो इच्छुगो पस्सिदुं 3.114.395
 णो एगवराडिगा वि 10.82.1166
 णो कंखीअ परधणं 16.87.1858
 णो कया वि आहारो 18.31.2023
 णो करिदुं भवभमणं 21.85.2385
 णो जाण कधं राओ 4.116.535
 णो पइडि पकोवो 16.86.1857

[त]

तए विणा णेव को वि 13.45.1510

तए सिंधुमदि-भवम्मि 9.82.1057
 तं अइ-विवइं सोदुं 12.77.1400
 तं दायिदं सुणामं 2.126.269
 तं दिस्सं पस्सित्ता 12.35.1358
 तं दिस्सं पस्सित्ता 13.18.1483
 तं पत्तेयं पिदरं 8.44.919
 तंब-वण्णी भव्वाण 18.11.2003
 तं भेरिं सुणिदूणं 12.94.1417
 तं लहिय मघवा सगं 3.22.303
 तक्काले गयपुरीइ 8.75.950
 तत्तो णिस्सरिदूणं 11.39.1250
 तत्थ आगच्छीअ 16.32.1803
 तत्थ ठाण-सुरक्खगो 12.53.1376
 तत्थ णरा णारीओ 16.55.1826
 तत्थ दु सुमंगलाए 3.89.370
 तत्थ पभुजंता चिअ 9.107.1082
 तत्थ पया संतुट्टा 4.134.553
 तत्थ पहुच्चिदूणं दु 4.34.453
 तत्थ बाला जुवदी य 16.64.1835
 तत्थ भूमि-फासेण 11.2.1213
 तत्थ मुणि-पहावेणं 8.94.969
 तत्थ वि वेरभावेण 10.23.1107
 तत्थ सत्त-भादुणो दु 14.32.1583
 तत्थ समट्ठं हरिदुं 7.22.805
 तत्थ सोडस-अकिट्टिम 1.44.44
 तत्थ हस्स-रदि-दुगुंछ 19.21.2086

तदवि णिरेय-विसुद्धो 14.46.1597
 तदा असोगो भणदे 3.113.394
 तदा उग्घोसिदं चिय 8.90.965
 तदा गगणमग्गादो 16.106.1877
 तदा जयमदी पहुदी 12.45.1368
 तदा णवमासा गदा 2.120.263
 तदा णिमित्तणाणिणा 6.4.695
 तदा णिमित्तणाणिणा 12.42.1365
 तदा तस्स सुचित्तं दु 13.17.1482
 तदा ताइ णयरीए 2.45.188
 तदा दक्खिण-भारदे 12.32.1355
 तदा दक्खिण-मथुराइ 12.22.1345
 तदा देज्ज बहुविहवं 14.28.1579
 तदा देसस्स कित्ती 16.25.1796
 तदा देसस्स वि सव्व 3.68.349
 तदा पूदीगंधा वि 8.96.971
 तदा महामच्चादी 21.16.2316
 तदा महामच्चो तह 10.95.1179
 तदा महुर-वत्ताए 6.35.726
 तदा मोहस्स बंधो 20.24.2213
 तदा रायदरबारे 2.113.256
 तदा रोहिणी भणदे 17.50.1943
 तदा समयिगे चउविह 20.31.2220
 तदा सहाइ पविट्ठो 8.86.961
 तदा सहीहि कुव्विदा 3.104.385
 तदा सुहधम्मसहाइ 9.30.1005

तदा हु मंतिमंडलो 10.85.1169
 तदो ज्ञाण-जोग्गोसुं 20.98.2287
 तद्विस्सम्मि विरत्तो 15.64.1738
 तप्परो कंतिवंतो 21.9.2309
 तम्मि अब्भपुर-णयरे 12.68.1391
 तम्मि णयरम्मि सेट्ठी 8.30.905
 तम्मि देसम्मि होज्जा 2.64.207
 तम्मि देसे विहरेज्ज 3.12.293
 तम्मि याले विवाहे 14.31.1582
 तम्मि वि णिप्फलो वरं 3.126.407
 तम्हा मम पाणपिया 2.77.220
 तयपयाससंजुत्तं 7.37.820
 तरंगिणीइ वीई वि 13.19.1484
 तव अप्पविसुद्धीए 7.34.817
 तव दंसणं हरदि सय 1.122.122
 तव दंसणेण होज्जा 1.123.123
 तव पदी अवि अइ 5.116.675
 तव पसादेणं मए 11.70.1281
 तव पहाणो सिस्सो हु 18.16.2008
 तव पुण्णोदयादो हि 7.8.791
 तव भत्ति-दंसणेणं 18.37.2029
 तव भत्तीए पावदि 18.36.2028
 तव वंदणेण खयंति 18.33.2025
 तव सुहणाम-चिंतणं 7.30.813
 तवेण अक्खणेरोहो 20.92.2281
 तवेणं होदि जीवो 13.63.1528

तवेण लोगिग-सिद्धी 13.62.1527
 तवेसु वेज्जावच्चं 20.78.2267
 तव्विवरीय-दूसणं 16.114.1885
 तसहिंसादु विरत्तो 7.70.853
 तस्स उवदेसेणं दु 2.98.241
 तस्स उवरि णियमेणं 5.37.596
 तस्स करपउमम्मि चिय 17.3.1896
 तस्स गुरु-णिगंथस्स 4.29.448
 तस्स चक्कि-भरदेणं 6.42.733
 तस्स चरिमसमए ठिदि 19.100.2165
 तस्स जंबूदीवस्स 2.18.161
 तस्स णामं सुणित्ता 4.133.552
 तस्स णीदीइ सोहा 4.121.540
 तस्स दु णाण-दंसण 19.120.2185
 तस्स दु पाणवल्लहा 2.53.196
 तस्स देसस्स राओ 12.38.1361
 तस्स देसस्स राओ 14.11.1562
 तस्स धम्मणुचारिणी 8.16.891
 तस्स धम्म-पणोल्लया 8.77.852
 तस्स धम्म-सुपोसिगा 1.76.76
 तस्स परमपीदिजुदा 14.12.1563
 तस्स पाणपिया धम्म 12.24.1347
 तस्स पाणवल्लहा दु 10.6.1090
 तस्स पालण पोसणं 12.15.1338
 तस्स भज्जा वसुमदी 8.31.906
 तस्स रायकुमारस्स 12.65.1388

तस्स रायस्स देसे 16.24.1795
 तस्स रायस्स रज्जे 14.6.1557
 तस्स वयणं सुणिच्चा 3.108.389
 तस्स वरपहावेण 10.98.1182
 तस्स सुउवदेसेणं 2.100.243
 तस्स हिअय-वल्लहा दु 14.4.1555
 तस्स हिअयवासिया दु 12.72.1395
 तस्स हिदयर-पिय-कडुअ 4.10.429
 तस्सि अज्जखंडम्मि 2.21.164
 तह अघादिकम्मं वि ण 21.80.2380
 तह कट्टु मुणिदंसणं 15.23.1697
 तह तह अणुभाग-ठिदी 18.57.2049
 तह ताए णयरीए 2.49.192
 तह पढमाणुजोगं दु 2.6.149
 तह भरद-हेमवद-हरि 1.41.41
 तह मूलुत्तरगुणेहि 15.18.1692
 तह राय-मंति-किलाहि 17.84.1977
 तह लोए अम्हाणं 17.59.1952
 तह वि अक्ककित्ती णो 12.102.1425
 तहवि इदं वित्तंतो 10.69.1153
 तह सीलगुत्त मुणिणा 13.48.1513
 तह हवंतो असक्को 1.35.35
 तहा संजलणलोहे 20.14.2203
 तहेव दु सम्मत्ताइ 21.82.2382
 ता आलस-विहीणा य 16.76.1847
 ताइ णासिगा सददं 8.20.895

ताइ पदं अवदलिदं 8.23.898
 ताइ पूदिगंधाए 13.73.1538
 ताए चिंतिदं तदा 9.52.1027
 ताए परमाणंदं 1.114.114
 ताए रायसहाए 10.26.1110
 ताए रूवविहवेण 3.29.310
 ताए सह भुंजंतो 14.7.1558
 ताए सह सो सुहेण 2.57.200
 ताण अइरूववंता 14.21.1572
 ताण अणुवम-सुंदरी 14.5.1556
 ताणं अइ-दुग्गांधिद 10.7.1091
 ताणं अट्टरिद्धीव 12.73.1396
 ताणं चउपुत्ती चउ 14.7.1558
 ताणं णामुच्चारण 10.108.1192
 ताणं बे पुत्ती सग 12.26.1349
 ताणं सुकलापेम्मी 12.13.1336
 ताणं सुरुवरसिं 12.33.1356
 ताणं सुपुण्णवंता 12.58.1381
 ताणं सुपुण्णवंतो 14.14.1565
 ताण णो जम्म-मासो 3.133.414
 ताण परिवार-णदीउ 2.20.163
 ताण पाविट्ट-पुत्ती 8.18.893
 ताण-मट्टपुत्तीओ 12.39.1362
 ताण रासीइ चंदो 3.131.412
 ताण वत्तं सुणिच्चा 12.36.1359
 ताण सत्तपइडीणं 5.93.652

ताण सुद्धवट्टणस्स 2.14.157
 ताण सुमंदिरो सुदो 12.21.1344
 ताण सुहणामा कमल 14.9.1560
 ताणि चेइयालयाणि 1.45.45
 ता णीदी आढविदा 3.48.329
 तादु ठिदिबंध-पुण्णे 20.54.2243
 तादु णिग्गद-वग्गणा 10.124.1208
 तादो ठाणादो चिय 12.37.1360
 तारगाहि विणा ससी 17.83.1976
 तावइया मुत्तिगा हि 4.50.469
 तावं मरिसंतो अवि 16.34.1805
 ताव ठिदिबंधपुण्णे 19.35.2100
 तिक्काले तिमलोए 10.45.1129
 तिक्काले तियलोए 18.61.2053
 तिक्खसरपहारेणं 3.123.404
 तिजोग-संजमो सुदा 14.75.1626
 तित्थपयरजपुणीदा 2.27.170
 तित्थ महीइ वंदणा 2.28.171
 तित्थयर-गिरीदो चउ 18.23.2015
 तित्थयर-पुरुदेव 16.95.1866
 तित्थयर-समवसरणे 12.4.1327
 तित्थयर-सुकेवलिणा 18.49.2041
 तित्थयरस्स मादू वि 10.49.1133
 तित्थयराणं कया वि 12.5.1328
 तित्थवंदणाइ तस्स 14.17.1568
 तिदिय-णिरयंतं हंदि 11.32.1243

तिमिंगलजादिमच्छो 11.14.1225
 तियपडिमा पज्जंतं 14.110.1661
 तियदक्खिणं किच्चा 15.19.1693
 तिय-रयणमइ पीढुवरि 18.9.2001
 तियसंज्ञाकालेसुं 14.98.1649
 तियालिगसव्वसूरी 21.103.2403
 तिरिया वा णिज्झंते 14.24.1575
 तिलगणयरस्स राओ 3.93.374
 तिलोए णियप्पस्स 17.99.1992
 तिलोयमंडल-करिणं 10.80.1164
 तिलोयमंडलगयेण 10.114.1198
 तिबिहकोहमोकट्टय 20.21.2210
 तिबिहमाणमोकट्टिय 20.18.2207
 तिबिह-माणुवसामगो 19.83.2148
 तिबिहमायमोकट्टिय 20.12.2201
 तिबिहमायुवसामगो 19.89.2154
 तिबिह-सावयो पक्खिग 14.87.1638
 तिवेदा छक्कसाया 21.24.2324
 तिक्कंखाए गहिद 17.27.1920
 तिक्कसायजुदाणं 20.103.2292
 तिक्कसायुदयादो 5.48.607
 तिक्ककोहे वरिसंति 6.73.764
 तिक्क पावकम्मुदये 3.10.291
 तिक्कमिच्छाइट्टीण 20.102.2291
 तिक्कवेगजुदसरिदा 21.134.277
 तिसंज्ञासु वदंतो 14.114.1665

तिसा-पीडाइ भासदि 11.7.1218
 तिसिद कपिंजलोव्व चिय 4.35.454
 तिसिद-चायग पक्खीव 7.41.824
 तीसूण-बेसय-अज्ज 1.56.56
 तुच्छलाहस्स वि णरो 1.108.108
 तुज्झ अट्टमपुत्तस्स 14.82.1633
 तुज्झं दिक्कज्झुणी हु 18.27.2019
 तुज्झ णाम-मेत्तेणं 18.15.2007
 तुज्झ ता सव्वोवमा 5.9.568
 तुज्झ दंसणं विग्घ 11.102.1313
 तुज्झ वयणं उत्तमं 16.15.1786
 तुज्झ सव्व-पदिट्टिदा 3.60.341
 तुमं अच्चंतधीरा 5.14.573
 तुमं जाणित्तु बालं 3.111.392
 तुमं णेव कमल-मुही 5.6.565
 तुमं दु विप्पसीदेसु 2.72.215
 तुमं मज्झं दु गव्वो 12.126.1449
 तुमं वा को वि अप्पा 5.59.618
 तुमं सत्तिजुत्तो मम 3.116.397
 तुम्हे वि धम्ममग्गं 17.76.1969
 तुरंगीणं रहीणं 12.113.1437
 तुरंगीहिं तुरंगी 12.115.1438
 तुरिययालस्स पढमं 1.5.5
 तुल्लो विसेसाहिओ 20.46.2235
 तुल्लो विसेसाहिओ 20.48.2237
 तुल्लो विसेसाहिओ 20.51.2240

तुह विणा णिय-जीवणं 5.21.580
 तुहेव मे सोहग्गो 5.19.578
 तेण सह मेहसेणो 12.19.1342
 तेतीस-सायरो चिय 13.20.1485
 ते थंभंसेदगारी 10.28.1112
 ते दाएज्जा सत्तिं 1.10.10
 ते पहावहीणा जोदि 2.81.224
 तेरसविहचारित्तं 7.54.837
 तेसट्टीपइडिं णासित्ता 11.109.1320
 ते सव्वा पाविट्टा 8.8.883
 तेहिं सह दु चउवीस 13.53.1518
 तेहि गुणेहि संजुदो 4.104.523
 तेहि णिट्टाणं तत्थ 16.91.1862
 तो धणमिदं अण्णाइ 16.18.1789

[थ]

थीए भाल-तिलगं व 3.103.384
 थीलिंगं छिंदेदुं 9.91.1066
 थीवेद-अणुवसंते 20.30.2219
 थीवेदे उवसंते 19.64.2129
 थूल-पाव-चागादो 7.68.851
 थेज्ज-मसंभवो जिण्ण 17.10.1903

[द]

दंपत्ति-सुहं विहवो 5.28.587
 दंसणमोहविज्जं च 21.51.2351
 दंसणमोहणीयस्स 5.92.651
 दंसण-वय-सामाइय 7.74.857

दंसणादो छट्टमं 7.83.866
 दंसणावरणिज्जस्स 19.31.2096
 दक्खंता भव्वा तव 1.125.125
 दक्खिण्णे भरदखेत्तं 1.42.42
 दप्पजुत्तेगागिणा 3.118.399
 दयदि सुमुणिदाणं 16.121.1892
 दया-थीइ अवऊढो 20.76.2265
 दवियदि दविस्सेदि जो 5.63.622
 दव्वकम्माण बंधो 9.4.979
 दव्वभावलिंङ्गि-मुणी 7.66.849
 दव्वभावाण दुविहो 21.59.2359
 दव्व-भावेण दुविहो 21.62.2362
 दव्वरूवेण गहदे 7.63.846
 दव्व-वय-धारणादो 6.88.779
 दव्व-संवरो पोग्गल 21.63.2363
 दहविह-धम्मो उत्तम 14.54.1605
 दाइदो पुरक्कारो 6.3.694
 दाएज्ज भो गणेशो! 11.69.1280
 दाणंतराइयं अणुभागो 20.42.2231
 दाणं वरपत्ताण 6.92.783
 दायग मेहो उच्चो 16.79.1850
 दायगस्स सत्तगुणं 9.49.1024
 दायगो णंददि इट्ठ 2.62.205
 दायित्तु महापुरिसा 8.5.880
 दायिदो सुसक्कारो 13.49.1514
 दारिदं पक्खोडदि 14.37.1588

दारिद्रं पावफलं 14.39.1590
 दारु-आघाडगेणं 11.36.1247
 दिअ अस्स-रह-पदादी 4.115.534
 दिग्घयालंतं तत्थ 3.136.417
 दिग्घयालपज्जंतं 14.77.1628
 दियंबरेसु रयणं व 1.23.23
 दियंबरो अणगारो 10.107.1191
 दिवसेगे पहुच्चीअ 15.11.1685
 दिवस्स अमरावदीव 3.6.287
 दिव्वजोदि-संजुत्तो 16.40.1811
 दिव्वदं देसवदं च 7.71.854
 दिव्वदं देसव्वदं 14.95.1646
 दीण हीण-दुहिणो पडि 4.126.545
 दीवजोदिं गहेदुं 17.26.1919
 दुग्गदिं विणासेदुं 11.58.1269
 दुट्ट-पाविट्टा असुह 9.21.996
 दुट्टो विवेगहीणो 9.20.995
 दुणिरयतिरियगदि 21.22.2322
 दब्भगं सुस्सरं तह 21.74.2374
 दुमासट्टिदिअ बंधो 19.88.2153
 दुम्मदी दुम्मणियेण 10.39.1123
 दुरिताइ कुवियारा 16.85.1856
 दुरिदज-दारिद्रस्स य 14.36.1587
 दुरिदमलविगलिदस्स दु 21.7.2307
 दुविह-कोहो संछुहदि 19.80.2145
 दुविह-लोह उवसंतो 19.112.2177

दुविह-लोहो संछुहदि 20.6.2195
 दुविहाणुभाग-बंधो 9.8.983
 दुसंजलणाणबंधो 20.17.2206
 दुहद-वसणेहिं तस्स 2.133.276
 दुहदा य णासवंता 10.63.1147
 दुह-हेदू रोहिणीइ 6.77.768
 दूरादो पस्सिता 18.3.1995
 देंता परिचय-मित्थं 3.92.373
 देज्ज आयरं णेहं 4.7.426
 देज्ज दोसं ण कस्स वि 4.11.430
 देज्जा करुणा-दाणं 5.12.571
 देवणंदि-सिरिदत्ता 21.116.2416
 देवपूया दया जव 1.62.62
 देवा सुरासुरिंदा 6.87.778
 देविंदो अहमिंदो 15.40.1714
 देवेहिं थुद-साक्खदं 21.138.2438
 देवेहि माणणीयं 6.80.771
 देसाघादिकरणादो 19.49.2114
 देसघादि-पइडीए 21.54.2354
 देसभत्ती सूरस्स 1.72.72
 देसम्मि सुसक्कारो 16.39.1810
 देसविरदगुणट्टाण 5.96.655
 देसस्स वर-णेदूण 1.27.27
 देसूण-दु अहोरत्ती 20.7.2196
 देहप्प-मेगरूवं 21.48.2348
 देहरूवकाणणं दु 6.67.758

देह-सुंदरो सुहदा 17.66.1959
देहसुहं दिता अवि 17.11.1904
देहे महावाहीइ 6.61.752
देहो दु रोयजुत्तो 10.52.1136
दोत्थ-दुरावत्थाणं 9.95.1070
दोस-तुडीहिं च समय 14.122.1673
दोस रहिद-गंभीरं 21.38.2338

[ध]

धणत्थी अप्पधणं वि 3.46.327
धणमित्त-णयरसेट्टी 8.17.892
धणसंपण्णा बहवा 2.34.177
धण-सजण-सुदेहादी 5.18.577
धणुटंकारेण तदा 3.120.401
धणुद्धरेण अक्केण 12.44.1367
धणुविज्जाविसारदं 3.125.406
धण्णं रोहिणीवदं 13.79.1544
धण्णा सिरिमुणिराया 8.93.968
धम्मं विणा ण कस्स वि 8.61.936
धम्मज्झाण-विड्डीइ 14.104.1655
धम्मज्झाणेणं सह 15.62.1736
धम्मज्झाणेण ताइ 5.129.608
धम्मणिमित्तं अणिट्ट 1.90.90
धम्मवत्ताइ इत्थं 2.109.252
धम्मविवरीदो तस्स 10.32.1117
धम्मसत्थेसु लिहिदो 10.105.1189
धम्मसिक्खाणिमित्तं 8.29.904

धम्मसुक्कज्झाणं च 14.76.1627
धम्माइ-णिमित्तेणं 9.27.1002
धम्मार्चित पहावो 11.47.1258
धम्माणंदेण देसवासी 16.30.1801
धम्मिट्ट-दुब्बलाणं 4.16.435
धम्मवएसं दिता 4.44.463
धम्मवएसं सुणित्तु 7.43.826
धम्मे धम्मफले वा 5.52.611
धम्मो दयाविसुद्धो 14.56.1607
धम्मो दुविहो णेयो 4.38.457
धम्मो दुविहो णेवो 14.63.1614
धम्मो वत्थु-सहावो 14.50.1601
धम्मो सस्सद-सुहदो 14.64.1615
धरिदं अहिंसा सच्च 18.44.2036
धरेज्ज खमाभावं दु 13.36.1501
धवलमेहोव्व पुरिसा 16.78.1849
धादगि-पुक्करद्धेसु 1.55.55
धारीअ पुण्णवंता 16.59.1830
धीरं दु जस्स जणगो 14.74.1625
धीरेण सुणसु पुत्ती 9.94.1069
धीरो य खमाजुत्तो 20.89.2278

[प]

पइडी पदेस-बंधो 18.56.2048
पइडी पदेस बंधो 21.60.2360
पउमं विणा सरोव्व य 5.20.579
पउम-पमाणं आउं 2.93.236

पउमाणि विअसति जह 15.20.1694
 पंचकल्लाण-विहूदि 1.7.7
 पंचक्खजयस्स सडा 13.52.1517
 पंचक्खा जे ते मणा 21.47.2347
 पंचगुरुवंदणं जिण 15.29.1703
 पंच-परमेट्टि-गुणा हु 12.6.1329
 पंचमादो णिग्गदो 11.33.1244
 पंचवासंतं अक्क 12.69.1392
 पंचिदियं जयेदुं 18.46.2038
 पंचिदियं-भोयाइं 14.13.1564
 पंचिदिय भोया खलु 17.19.1912
 पंचिदिय-विसयं खलु 17.25.1918
 पंडिदो सण्णाणेण 15.14.1688
 पच्चक्ख उवयारिं च 21.132.2432
 पच्चक्खणाणजुत्ता 2.51.194
 पच्चक्खणाणबलेण 8.4.879
 पच्चक्खाणणुदयादु 5.97.656
 पच्चक्खाणुदयादो 5.95.654
 पच्छा असोगराओ 14.1.1552
 पच्छा करिणी वडवा 9.80.1055
 पच्छा चरिमम्मि एग 21.75.2375
 पच्छा पुरिसवेदस्स 20.25.2214
 पच्छा रज्जं उज्झिय 15.41.1715
 पच्छा राय-असोगो 4.105.524
 पच्छा रायभवणम्मि 16.9.1780
 पच्छा विजयी जणा दु 16.101.1872

पच्छा सत्तम-णिरये 9.78.1053
 पज्जत्तं तह सुहगं 21.76.2376
 पडदि संसार-कूवे 13.29.1494
 पडिआवलिय-सेसाइ 19.94.2159
 पडिआवलीए एग 19.110.2175
 पडिग्गहं करेज्ज सग 16.108.1879
 पडिदिणे जिणपूयणं 5.123.682
 पडिदिणे पक्खुब्भीअ 4.24.443
 पडिदेगित्थी कोक्कदि 3.63.344
 पडिमा-धारगाणं दु 14.109.1660
 पडिवस्से महुच्छवं 13.3.1468
 पडिवासे कत्तिय-सिद 16.99.1870
 पडिवासोव्व हु पडिहा 16.102.1873
 पडिसुदि-आइ-चउद्दस 2.74.217
 पढम-करण-चरण-दव्व 2.2.145
 पढम-बाल-बंधयारि 18.2.1994
 पढम-रयणप्पहाए 11.38.1249
 पढम समयअणियट्टी 19.22.2087
 पढमसमय-अवेदस्स 19.71.2136
 पढमसमय अवेदी हु 19.74.2139
 पढमसमयधापवत्त 20.69.2258
 पढमसमयम्मि किद 19.115.2180
 पढम-सुक्क-मुवसंते 5.57.616
 पढम-सोहम्म-सग्गे 15.78.1752
 पढमाणुजोगं सव्व 2.3.146
 पढमेण भासिदं मे 16.10.1781

पढमो जंबूदीवो 2.15.158
 पण-महव्वदं समिदिं 18.59.2051
 पणमामि अहं घादि 11.103.1314
 पणमामि तस्स सिस्सं 1.20.20
 पणमीइ सिदपक्खस्स 15.74.1748
 पणमीवद माहप्पं 15.73.1747
 पणमेरु-वंदणाए 12.2.1325
 पणसमिदि-अक्खणिरोह 4.91.510
 पणिंदिय-विसय-मुज्झिय 9.98.1073
 पण्णासाहिय-सयूण 1.57.57
 पत्तुदयसंजलणस्स 19.50.2115
 पत्तेयं जीवो सय 6.31.722
 पत्तेयं ठिदिबंधे 19.75.2140
 पत्तेयं भव्वेण 14.67.1618
 पदक्खणित्ता पुण पुण 13.42.1507
 पदवीसुं तित्थयरो 20.79.2268
 पदेसो अणंतविहो 9.5.980
 पमाणं एगफद्दय 19.102.2167
 पयं पडि जदि कयाइं 4.15.434
 पयडिडिदिअणुभाग 21.4.2304
 पयरिदुं णो समत्थो 11.41.1252
 पयरिय गुरोवयारं 11.99.1310
 पयाइ अण्ण-दायगो 4.107.526
 पयाइ पोसिदा भद्द 2.85.228
 पयाए उण्णदीए 17.82.1975
 पयाए भयवदोव्व हु 4.120.539

पया पुत्तोव्व मज्झं 16.8.1779
 पया-वच्छला सगपइ 1.82.82
 परपइडि-संकंती य 21.18.2318
 परमवेरग्गिअ-धम्म 10.71.1155
 परमसड्डाइ पढेज्ज 21.132.2432
 परमेट्टि-अच्चणाए 5.32.591
 परमेट्टित्थवणेणं 1.130.130
 परववदेसो य तहा 16.115.1886
 परसण्णिदि-बंधिदो हु 3.127.408
 परिग्गहचागो तहा 7.75.858
 परिचयं दु दाएज्जा 3.95.376
 परिणयणं कराविदं 8.52.927
 परिहाइदूणं हु सो 3.87.368
 परिहाएज्ज विवत्थिद 16.52.1823
 परोप्परे घसणेणं 16.46.1817
 परोप्परे णेरइया 11.8.1219
 परोप्परे पस्सित्ता 5.24.583
 परोवयारणुरत्ता 9.42.1017
 परोवयार-सुभावो 5.127.666
 पलिदोवमट्टिदिगादु 19.32.2097
 पल्लस्स दसमभागो 2.79.222
 पवण-छलेण पइडी वि 9.66.1041
 पवाहिदस्सुं पस्सिदुं 17.93.1986
 पविट्टि-मग्गो गोणो 7.32.815
 पवेसं कराविदूण 16.109.1880
 पवेसे णिग्गमणे तु 10.110.1194

पव्वयादो पडंता 12.114.1437
 पव्वेसु आमंतीअ 16.92.1863
 पसंत-रोहिणीए 3.27.308
 पसंता सय पसण्णा 5.126.685
 पसण्णचित्तो सुपुण्ण 14.16.1567
 पसत्थ-विहायोगदी 19.18.2083
 पसुपक्खीहि पाविदं 6.2.103
 पस्स मोहमाहप्पं 20.75.2264
 पस्सह णेरइया ते 9.25.1000
 पस्सहि धम्मपहावं 11.82.1293
 पस्सिदा पइडि-सोहा 13.16.1481
 पस्सिय तं चिंतदि 12.119.1442
 पहुच्चीअ इगदिवसे 14.10.1561
 पहुदिं वियारंताइ 9.54.1029
 पाणणाहो! लोयम्मि 5.62.621
 पाणादु सेट्टो जिणो 14.92.1643
 पाणिगहण-सक्कारो 12.31.1354
 पाणिगहण सक्कारो 12.82.1405
 पारंभे भवमग्गो 21.83.2383
 पारसदेवं कणगामरं 21.121.2421
 पारिणामियो तिविहो 5.87.646
 पालंति सगसत्तीइ 15.47.1721
 पालण-पोसणत्तादु 2.127.270
 पालदि अप्पहिदत्थं 14.89.1640
 पालय-मादु-सहिदा य 3.85.366
 पालिदुं णिरदिव्कमं 20.85.2274

पालीअ सडावसियं 20.96.2285
 पालेज्ज मुणिवरो चउ 13.54.1519
 पालेज्ज सगसत्तीइ 7.88.871
 पालेज्जा सीलवदं 13.72.1537
 पावकज्जपुट्टीए 14.34.1585
 पावकम्मं खयित्ता 9.59.1034
 पावणासगं सुहदं 9.103.1078
 पावदि जं आणदं 7.7.790
 पावाणि विणस्संते 1.135.135
 पाविडयालम्मि रुक्ख 4.97.516
 पाविदं दोण्णिक्कलसं 16.6.1777
 पावीअ अप्पयाले 2.129.272
 पावोदयम्मि सव्वा 17.65.1958
 पावो दु महातमोव्व 9.23.998
 पासाद-छायणादो 6.66.757
 पासाद-सम्मूहे कइ 6.37.728
 पाहण्णेणं राओ 16.61.1832
 पाहण्णेण णिरोगी 13.10.1475
 पिदर-अज्झावयेहिं 6.7.698
 पिदरं व संरक्खगं 1.28.28
 पिदर-सुसक्कारेहिं 3.34.315
 पिदराण अइ-पेम्मेण 8.36.911
 पिदरोव्व पुज्जो गुरू 11.76.1287
 पिदु वयणाणि सुणिच्चा 17.86.1979
 पिवासं समिदूणं जह 16.28.1799
 पीदीए सद्धाए 5.111.670

पुक्कलावदी-देसे 12.10.1333
 पुच्छिदं सुराणीए 5.31.590
 पुच्छीअ भो भयवदो 10.18.1102
 पुज्ज-पण-परमेट्टीण 1.15.15
 पुज्जेसु विणओ जिणे 13.6.1471
 पुढवि-जल-तेउ-वाउ 21.46.2346
 पुढवीए देवं सिव 7.33.816
 पुढवीव खमासीलं 7.38.821
 पुण अमियासव मुणिणा 9.35.1010
 पुण अमियासव-मुणिवर 10.1.1085
 पुण गुणसेणी सेसे 19.24.2089
 पुण घाडिदूणं तादु 13.74.1539
 पुण जुगलमुणि-पदेसुं 8.91.966
 पुण ठिदिबंधपुधत्ते 19.29.2094
 पुण ठिदिबंधपुधत्ते 19.30.2095
 पुण णंदीसर-पव्वे 16.100.1871
 पुण तस्स पढमसमये 20.67.2256
 पुण तेरसम-कुलयरो 2.105.248
 पुण पत्थिवं सरीरं 9.58.1033
 पुण परिणय-संबंधे 3.41.322
 पुण पुच्छंते सामी! 15.60.1734
 पुण पुण परियंदित्ता 9.86.1061
 पुण पुण वंदिदूणं च 8.67.942
 पुरा सव्वं संबोहिय 4.81.500
 पुण सा कहदि विणयेण 9.93.1068
 पुण सीमंकर-पणगो 2.89.232

पुणो असंखेज्ज-कोडि 2.84.227
 पुण्णो इंगिणीमरणं 13.57.1522
 पुणो उहयो कवोदो 10.24.1108
 पुणो धम्मवएसस्स 4.36.455
 पुणो बोहिं समाहिं 21.97.2397
 पुणो विज्जाबलेणं 12.93.1416
 पुणो सोडसंतं खलु 5.36.595
 पुण्णं पयास-रूवो 9.24.999
 पुण्णं वड्ढेज्ज सया 4.13.432
 पुण्णकज्जं फलं पुण्णं 6.90.781
 पुण्णचंदोव्व जदिणो 7.13.796
 पुण्णपाव-उदयादु 13.85.1550
 पुण्णपुरिसजुत्तपुण्ण 2.40.183
 पुण्णफलेणं अहवा 6.48.739
 पुण्णफलेणं केवलि 1.91.91
 पुण्णफलेणं देसे 1.93.93
 पुण्णम्मि ठिदिबंधम्मि 19.34.2099
 पुण्णवंत पुरिसाणं 3.8.289
 पुण्णवंत-सव्वपया 1.110.110
 पुण्णवंतस्स किंचिवि 6.81.772
 पुण्णहिंसाचागी य 10.101.1185
 पुण्णाणि पुण मोह 19.55.2120
 पुण्णाहे च वीरद्धे 21.142.2442
 पुण्णाहे सुहजोगे 2.122.265
 पुण्णुदयादो जीवो 1.94.94
 पुण्णुदयेण संपत्त 5.23.582

पुण्णेणं आरोग्गं 1.102.102
 पुण्णेणं पाविदा वा 4.139.558
 पुण्णेणं विणा णेव 13.65.1530
 पुण्णेण जिणदंसणं 1.98.98
 पुण्णेण लहदि जीवो 1.95.95
 पुण्णेण सुपत्तदाण 1.97.97
 पुण्णेसु पावपइडी 14.44.1595
 पुण्णोदयेणं विणा 13.64.1529
 पुत्तकिरण-दायगोव्व 6.16.707
 पुत्त-मित्तं कलत्तं 4.61.480
 पुत्तमुहं अवलोयिय 6.5.696
 पुत्ती तुमं गहेज्जा 8.70.945
 पुध पुध कुणदि पवट्टिं 17.14.1907
 पुप्फदंत-भूदबली 21.113.2413
 पुप्फपुंजमज्झे अवि 14.18.1569
 पुप्फम्मि दुगंधोव्व 16.23.1794
 पुप्फाइं पस्सित्ता 16.74.1845
 पुरिसवेदणुवसंते 20.28.2217
 पुरिसवेदम्मि अंतर 19.70.2135
 पुरिसवेदस्स कुव्वदि 20.26.2215
 पुरिसवेदोदयेणं 19.59.2124
 पुरिसस्स पढमठिदीइ 19.69.2134
 पुरोकरीअ आयंस 4.132.551
 पुव्वकम्मोदयेणं 17.62.1955
 पुव्व-पच्छिमा भागा 1.46.46
 पुव्वबद्धकम्माणं 21.64.2364

पुव्वभवं जाणिय जण 14.120.1671
 पुव्वभवसक्कारेहि 3.101.382
 पुव्वभवे रोहिणीइ 6.84.775
 पुव्वभोयाण-सिमरण 20.86.2275
 पुव्ववेरेण भिंडिय 10.22.1106
 पुव्वोव्व ण ठिदिघादो 19.3.2068
 पूदिगंधाए दुहेण 8.57.932
 पूदीगंधाए अवि 8.66.941
 पूयं कुव्वंताए 3.37.318
 पूयच्चणे पसंसे 7.31.814
 पेयसी तस्स कमला 15.5.1679
 पोग्गलदव्वो णेयो 18.63.2055
 पोग्गलाइ-पंचविहो 21.56.2356
 पोयणपुर-इंदपत्थ 3.94.375

[फ]

फलाणि सव्वसिविणाण 2.118.261
 फासाइपणिंदियाण 15.63.1737
 फासिंदियगो मेत्तं 21.45.2345
 फिट्टंतफलस्स ताल 4.57.476
 फुक्कंता-सराण अवि 3.121.402

[ब]

बंधणजुद-पासाणो 8.40.915
 बंधणजुदो पदंगो 8.39.914
 बंधिदं जेणं पुव्व 9.15.990
 बंधीअ चदुत्थ-णिरय 11.25.1236
 बंधु-आदीहि णिंदिद 9.81.1056

बंभि-पहुदि-लिवी 16.96.1867
 बज्झ-दसविह-संगादु 7.64.847
 बत्तीस-उवविदेहा 1.48.48
 बत्तीस वस्सा पुरिस 20.27.2216
 बद्धकरंजलीए दु 8.87.962
 बद्धकरेण णिवेणं 3.71.352
 बप्पदेवं च कुमार 21.112.2412
 बहिर-तवं अंतरं पि 18.51.2043
 बहिरम्मि इमो देहो 17.13.1906
 बहुआ सम्माइट्टी 16.66.1837
 बहुइड्ढिसंजुदो वर 13.61.1526
 बहुगुणासज्जिदो 2.32.175
 बहुविज्जाधारगो दु 14.12.1663
 बहुहा णरा तिरिया वि 3.14.295
 बारस-तव-जुद-मप्पा 21.127.2427
 बारसम-सगंतं च 5.35.594
 बारसविह-कसायस्स 20.22.2211
 बालणंदि तह मल्लि 21.121.2421
 बाल-बालिगा तत्थ य 16.69.1840
 बालोव्व सुह-महुर 12.92.1415
 बालो सुपुण्णवंतो 6.8.699
 बावीस-परिसहं बेदह 18.47.2039
 बावीस-परिसह-जयो 4.92.511
 बावीस सायरंतं 9.73.1048
 बुद्ध-पुरोह मंतीहि 4.77.496
 बुहे मिहुणरासीए 2.124.267

बे भववड्ढुगझाणं 5.43.602
 बेरयण-धारगा चिय 11.51.1262
 बेवस्साणमंतो दु 19.108.2173
 बेविहो पोग्गलो चिय 5.66.625
 बेविहोमाणो णेव 19.85.2150
 बेसहस्सवासेसुं 14.79.1630
 बेसायरपज्जंतं 14.81.1632
 बोद्धणुयायि-संघसिरि 1.100.100
 बोहिदूण असोगेण 4.108.527
 बोहिय विरायभावं 4.106.525

[भ]

भंजिद-मयससंकलं 12.76.1399
 भंडा परित्थीरदा 2.39.182
 भद्दो मंदकसायी 2.42.185
 भमर-गुंजण रूवो य 21.37.2337
 भमरा हवेज्ज भमिदा 16.58.1829
 भय दुगुंछाण वि सया 20.64.2253
 भरदस्स अज्जखंडे 1.58.58
 भरदस्स छक्खंडा हु 1.54.54
 भल्लूव ताइ केसा 8.19.894
 भवदुक्ख-मोयणाए 10.3.1087
 भवतणुभोयसरूवं 14.40.1591
 भव-मिच्चु-जरादु सया 12.141.1464
 भव-सरीर-भोयादो 4.65.484
 भव-सरीर-भोयादो 13.33.1498
 भव-सरीर-भोयादो 17.85.1978

भव्वचित्तसरसीरुह 21.32.2332
 भव्वाभव्वो दुविहो 21.69.2369
 भव्वुल्लो किं णेव दु 17.28.1921
 भव्वुल्लो-चित्तेज्जा 10.65.1149
 भामिणी सरल-हिअया 12.27.1350
 भारदे जस-पसारग 1.21.21
 भारिअं तस्स चित्तं 10.42.1126
 भावि-मुणि-दंसणाय हु 17.94.1987
 भासिदं गणेसेणं 11.44.1255
 भासिदो मोक्खमग्गो 17.69.1962
 भासीअ दु पंचवण्णि 7.23.806
 भासीअ बालिगा ता 16.70.1841
 भासेदि मिच्चुयालो 10.84.1168
 भिंडिमाल कुंत-फरसु 12.43.1366
 भिच्चाण विणयधम्मो 1.81.81
 भिज्झा कव्वा माणं 6.75.766
 भिण्ण-समयवत्तीणं 5.102.661
 भुंजंत-इत्थीइ अघेहि 9.108.1083
 भुंजित्ता अइकिच्छं 11.13.1224
 भुंजेदुं धणलच्छिं 14.38.1589
 भुल्लीअ हं सव्वं 3.64.345
 भूवइ-सेणिगेणं वि 1.113.113
 भूवदिं पणमिदूणं 7.2.785
 भूवदि-पहंजणेणं 12.71.1394
 भूवदि-वीदसोगस्स 3.97.378
 भूवदी पवणवेगो 12.56.1379

भूवाल-सासगेणं 9.38.1013
 भूवियारहीण-सुप्पसण्ण 19.123.2188
 भो करुणालयो पहू! 14.45.1597
 भोगुवभोग-परिमाण 14.96.1647
 भो णरपुंगवो पस्सं 13.75.1540
 भो णायप्पिय-राओ! 16.12.1783
 भो णिग्गंथगणेसो! 11.65.1276
 भो णिवो! जीवो इमो 10.2.1086
 भो णिवो! पस्ससु तत्थ 17.60.1953
 भो देवी! पीदीए 5.110.669
 भो देवी! पुव्वभवे 5.10.569
 भो देवो! मे अप्पा 5.50.609
 भो पुण्णवंत-राणी! 5.117.676
 भो पुत्त-लोयपालो! 17.89.1982
 भो भव्वो! तव अप्पा 9.1.976
 भो भव्वो! तव बुद्धी 8.64.939
 भो मम णेत्ततारिगा 4.14.433
 भो मुख-सोदू णिवो! 1.139.139
 भोयभूमीए णेव 2.80.223
 भोयाणं सहावो वि 17.32.1925
 भोया भुजंगसरिसा 17.67.1960
 भोयेसु कसायेसुं 17.15.1908
 भो रयणत्तयपुंजो! 13.44.1509
 भो राओ! तव पुत्तो 2.117.260
 भो विण्णो! मम सरिसो 17.39.1932
 भो सामि-महारायो! 2.68.211

भो सामी भयवन्तो! 9.31.1006
भो सामी! मइ सुणिदा 5.74.633
भो सुदो! संपइणिवो 13.35.1500

[म]

मए कयिदं खेत्तं हि 16.3.1774
मए ण सुणिदो पढिदो 6.56.747
मए पंचिंदिय-सुहं 17.30.1923
मंगलसूयग-सउणा 12.97.1420
मंडलीगो तह अद्ध 15.39.1713
मंतिमंडलेणं सह 14.27.1578
मंथणीइ मंथन्तो 10.56.1140
मंद-मंद हसन्तो 17.45.1938
मंदाइणी सलिलं च 12.87.1410
मंसं मज्जं जूअं 15.49.1723
मघवाराय-समच्छे 4.3.422
मज्जदि मलिण-जलं णो 17.17.1910
मज्जाइल्लो विणयो 13.4.1469
मज्जादा-रक्खिगा य 15.6.1680
मज्जादिदं कुव्वेदि 14.93.1644
मज्जादिदाइं गहदि 14.100.1651
मज्झ परमोवयारी 12.127.1450
मज्झलोए सुहणाम 1.39.39
मणवयगुत्ती इरिया 20.81.2270
मणवयणकायाणं च 13.51.1516
मणो मक्कडो मच्छो 10.47.1131
मत्तंड-दंसणेणं 3.100.381

मत्तंडपयासेणं 15.91.1765
मदकलरुअभमरजुदो 21.34.2334
मदणहलिपदं वा 16.120.1891
मदिणाणावरणिज्जं 20.39.2228
मदि-सुदोहि-मणपज्जय 5.84.643
मम चित्तविसुद्धीए 1.38.38
मम जणगो जणणी वा 17.36.1929
मम पडिवक्खिया अत्थ 3.3.284
मम पावकम्मदयेण 16.11.1782
मम रयणं व पुत्तीण 12.81.1404
मम हत्थेहिं मरणं 12.108.1431
ममिदं अहमिद-महवा 4.63.482
मरणं लहिय अच्चंत 11.27.1238
मरहेमि वि सव्वाणं 17.79.1972
मलकम्मविहीण 12.142.1465
महड्डिय पुण्णवन्तो 14.117.1668
महव्वदं धारेदुं 11.67.1278
महव्वद-समिदि-गुत्ती 9.88.1063
महाकट्टेण भुंजिय 9.77.1052
महाजणा उराला दु 13.8.1473
महापुण्णवन्तेहिं 1.60.60
महापुण्णवन्तो चिय 16.44.1815
महापुण्णोदयादो 12.8.1331
महापुण्णोदये वा 8.62.937
महापुरिसो सय सव्व 1.106.106
महाभिसगोव्व सय जो 1.6.6

महाभूदि-जिणालये 7.21.804
महामंतस्स जवं च 4.12.431
महाविक्कमो राओ 21.30.2330
महुकंखी छप्पया दु 6.23.714
महुच्छिगा पुप्फेसु 5.26.585
महुरभासिया धम्मी 3.20.301
माण-खंडिदे धीरे 6.70.761
मायावसेण सच्छंद 10.78.1162
माणसिग-देहज-तिव्व 9.18.993
माणिककणंदिं धम्म 21.119.2419
माणुसभवं धरित्ता 12.7.1330
माणुसोत्तर-सेलस्स 12.3.1326
मादूइ तदायाले 4.4.423
मादूइ सिक्खं गहिय 4.18.437
मादूए अइपियो वि 14.25.1576
मिअंगस्स रोहिणीव 2.55.198
मिअंगो कलंक-जुदो 16.41.1812
मिगणयणी दु ससलंछणोव्व 3.28.309
मिगो कत्थूरि-मिक्खु 12.88.1411
मिच्छत्तवसेण भमदि 18.58.2050
मिच्छत्तस्सुदयादो 5.89.648
मिच्छत्तेणं जीवो 17.68.1961
मिच्छाणंताणुबंधि 21.50.2350
मिच्छाणंताणुबंधि 21.53.2353
मिट्ठिट्ठसिट्ठा मणोहरा 3.39.320
मित्तं व सहायो 12.130.1453

मुच्छाबाणेण तदा 12.120.1443
मुणिघादमहापावं 11.17.1228
मुणिणा वीदसोगेण 4.96.515
मुणि-णिंदगो व हणगो 9.84.1059
मुणिणिंदाए फलेण 11.18.1229
मुणिदंसणफलमिदं हु 10.111.1195
मुणिदंसणेण खयंति 16.107.1878
मुणिदंसणेण खयदे 7.14.797
मुणिरायं णमंसामि 7.29.812
मुणिवयणं सुणिदूणं 9.85.1060
मुणिवर-वह-पावेणं 9.70.1045
मुणिवरेण सुह समत्त 9.56.1031
मुणी उवसमसेणीइ 20.74.2263
मुणी पदक्खिणिदूणं 8.92.967
गुणी सावय-साविया 1.111.111
मुद्दिगा पदंगुलीइ 3.57.338
मूलं जिणधम्मस्स दु 14.57.1608
मूले सीयल-सूरो 18.13.2005
मे अप्पणो सहावो 10.57.1141
मेत्तं ण गिहकज्जेसु 16.67.1838
मेरुस्स चउविदिसासु 1.52.52
मेसे दिवायरम्मि य 2.123.266
मोक्खलच्छी-णिवासा 1.2.2
मोत्तिअ रयणहारं दु 7.15.798
मोहकम्म विजयस्स दु 21.33.2333
मोह-जोग-णिमित्तेण 5.88.647

मोहणिज्जस्स तिभाग 19.37.2102
मोहवाहिणिं खयिदुं 21.8.2308
मोहस्स ठिदिबंधो 20.44.2233
मोहस्स य ठिदिबंधो 19.38.2103
मोहाइ-जणिद-भावा 2.11.154
मोहाइ-सव्वकम्म-णासगं 11.101.1312
मोहीणं संसारो 17.34.1927
मोहुदयेण स-सरूव 17.42.1935
मोहेण रज्ज-सहाइ 17.91.1984
मोहो महाउदारो 21.12.2312

[य]

याले याले करीअ 5.30.589

[र]

रंभा व्व रदी राणी 5.16.575
रजदसुकलधोदं 16.122.1893
रज्जं संचालंतो 17.77.1970
रज्जं संचालिदुं ण 17.52.1945
रज्जपत्ती दुल्लहा 4.53.472
रज्ज-संचालणं चिय 4.79.498
रट्ट-संतं सिद्धंत 1.25.25
रणसूरोव्व धारिदं 18.69.2061
रत्तिभुत्तिं जो कुणदि 15.33.1707
रत्ती जुणहाए जह 15.12.1686
रत्तेण णो जह धुवदि 17.18.1911
रदी कप्पणा मेत्तं 5.5.564
रम्मा सुरूववता 9.39.1014

रयणत्तय-बलेण वा 21.66.2366
रयणत्तय-संजुत्तं 7.25.808
रयणत्तय-संजुत्ता 9.89.1064
रयणत्तय-सीयलत्त 18.14.2006
रयणात्तयेणं विणा 13.32.1497
रयणायर-जल-वड्डुग 1.128.128
रयणायरम्मि अणेग 11.73.1284
रवि-उदयोव्व पाईइ 5.130.689
रविवदं धूवदसमी 11.56.1267
रसालरुक्खेहि जुत्त 7.4.787
रहट्टिदासोगेणं 3.119.400
राओ सो जागरिओ 13.9.1474
राणीइ घोसाविदं 6.1.692
राणीइ विणा राओ 2.54.197
राणी सुपुण्णवता 3.19.300
राय-असोगेणं सह 18.1.1993
राय-असोगेण तत्थ 18.10.2002
रायअसोगेण रज्ज 16.1.1772
रायणायं सुणित्ता 16.19.1790
रायदंडादो मुत्त 8.51.926
रायपरिसदेणं सह 4.30.449
रायपुरिसेहि सह 12.79.1402
रायभवणम्मि अस्सि 4.48.467
रायम्मि परोवयार 16.45.1816
राय-विमलवाहणेण 12.41.1364
रायसदं सुणित्ता 5.17.576

रायसुदरबारं पडि 8.49.924
 रायस्स धम्मभावं 4.37.456
 रायस्स रज्जसहाइ 2.33.176
 रायहंसा दु तेसुं 4.49.468
 रायाणाए एगे 9.44.1019
 रायाणाए णिम्मावीअ 16.83.1854
 रायेगेण भासिदं 17.49.1942
 रायेणं अल्लविदं 7.11.794
 रायेणं सह सेट्टी 9.45.1020
 रायेण अलिंगिदा 2.71.214
 रास-दुराविणीणं च 6.41.732
 रिसिणा पाविदं ओहि 4.98.517
 रुइर-महुर-पुप्फजेहि 15.97.1771
 रुक्खकट्ट-पहुदी जह 15.93.1767
 रुक्खा फलभारेणं 16.75.1846
 रुक्खेसु पुप्फाइं व 2.46.189
 रुक्खो पुप्फफलाइं 2.60.203
 रुदणं कदणं तदा 6.62.753
 रुद्धट्टज्झाणं अह 2.37.180
 रुद्धज्झाण-याले ण 5.47.606
 रूवकुंभ-मुणिवरेण 15.81.1755
 रोहिणिं पस्सिदूणं 3.90.371
 रोहिणि-वदं जे के वि 21.96.2396
 रोहिणि-वद-पहावेण 21.92.2392
 रोहिणिवद-पालणादु 9.105.1080
 रोहिणि-वद-पालणेण 1.140.140

रोहिणिवदपालणेण 11.84.1295
 रोहिणिवदमेगं चिअ 11.62.1273
 रोहिणीइ वि पालिदं 21.93.2393
 रोहिणी तह असोगो 3.102.383
 रोहिणी-धत्तीए य 6.64.755

[ल]

लद्धलोयणंधोव्व य 7.18.801
 लवासायरस्स उहय 4.45.464
 लववो रायकुमारो 12.49.1372
 लहंति त्तिजोगसुद्धिं 1.131.131
 लहदि सारज्जं सिवं 15.52.1726
 लहित्तु वसुकण्णाओ 12.46.1369
 लहिदा केवलदिट्टी जेणं 11.107.1318
 लहिय विज्जुदपहं तं 2.66.209
 लीणं अप्पज्झाणे 7.26.809
 लोए खलुछद्दव्वा 21.42.2342
 लोए पोग्गला होंति 18.64.2056
 लोए विज्जंत-अण्ण 18.25.2017
 लोगोत्तर सोहग्गं 6.49.740
 लोयपसिद्धो सिंधू 16.35.1806
 लोयम्मि अणादीदो 2.13.156
 लोयम्मि दु विज्जमाण 20.87.2276
 लोयालोयपयासग 21.31.2163
 लोहवेदगद्धाइ दु 19.98.2163

[व]

वंदुरा गो-मेस-गय 16.84.1855
 वच्छत्थलं दु माए 4.118.537

वङ्गति बद्धकेसा 8.43.918
 वङ्गदि उववासेणं 15.67.1741
 वङ्गदि सायर-णीरं 16.31.1802
 वणट्टिठदिभूदि-महा 15.83.1757
 वणपालो आवडीअ 7.1.784
 वत्थुट्टाणे माणं 3.60.341
 वदं असुह-संवरस्स 1.29.29
 वदपालणम्मि णिउणो 20.90.2279
 वदसमिदिंदियरोहो 7.55.838
 वदह अणुग्गहिदूणं 9.32.1007
 वदे पुण्णे हरिसेण 9.101.1076
 वरं कुलं च सुवित्तं 3.78.359
 वरं पुव्वपावादो 8.26.901
 वरपुरिसाण सहावो 9.65.1040
 वरसक्कारेहि विणा 12.17.1340
 वरिसंत-ओसबिंदू 9.63.1038
 ववत्थिद-मज्जाइल्ल 13.12.1477
 ववसायीणं मित्तं 1.79.79
 ववहारजगे सव्वा 17.64.1957
 ववहारयणत्तयं 7.52.835
 ववहारेणं णेयो 11.50.1261
 ववहारेणं सिद्धो 21.90.2390
 वसण-संजुदं होच्चा 8.33.908
 वसणादो दूरचरो 4.72.491
 वसुंधरा सुरकंता 6.30.721
 वसुइङ्गीव जदीणं 6.28.719

वसुणंदि-मरिहसेणं 21.118.2418
 वसुवाल-पयावाला 3.24.305
 वसुहाए सुपुज्जं च 18.18.2010
 विउल-धण-धण्ण-साहण 4.21.440
 विउसिदा-कुमुदणी व य 12.29.1352
 विंसदिसहस्ससुरयण 18.5.1997
 विक्कंतो सीहोव्व य 10.5.1089
 विक्कमो णायसीलो 1.75.75
 विग्घं कडुअ दाणाइ 8.27.902
 विजज्जर-अंबफलं व 8.22.897
 विजयद्ध-पव्वदे ठिद 12.50.1373
 विजय-महुच्छवं तदा 10.115.1199
 विजोग-हरिस-भावेहि 4.82.501
 विज्जंताणंतत्था 18.60.2052
 विज्जत्थीणं विज्जा 1.71.71
 विज्जाहर-सिरिभदो 14.83.1634
 विणयेणं सुगुरुचरण 6.13.704
 विणयेण अहो राओ! 1.84.84
 विणस्सेदि जह रुक्खं 15.92.1766
 विणा अत्थसत्थेहिं 12.78.1401
 विणिक्कट्टवत्थुं च 17.98.1991
 विणिम्मल-पुण्णिणदूव्व 12.30.1353
 विण्हुं च णंदिमित्तं 1.12.12
 विदिय-विरयम्मि पच्छा 11.31.1242
 विदियाणिरयाउं तदा 11.35.1246
 विदियसमयम्मि ते ठिद 19.9.2074

विद्यावलियादो चिय 19.77.2142
 विदियो कहदि दायिदं 16.13.1784
 विदियो बोल्लेदि तदा 16.4.1775
 विदियो मंती रवीअ 3.44.325
 विदूण सुजोग्ग-सिस्सो 4.131.550
 विदेहमज्जे उत्तर 1.51.51
 विदेहस्स चिय मज्जे 1.43.43
 विपच्चिहिदि चिय थिउक्क 19.97.2162
 विपच्चिहिदि जिम्हुदये 19.91.2156
 विपच्चिहिदि य विदियम्मि 19.118.2183
 विप्पसीअ सुकुमारो 12.51.1374
 विमलकित्तिस्स हु तस्स 13.34.1499
 विमलकित्ती भासेदि 12.99.1422
 विमलणाणसरिदाए 18.22.2014
 विमलप्पहा सम्मत्त 12.40.1363
 विमल भावेहि भक्खं 16.62.1833
 विमलमदण-केवलिजिण 11.92.1303
 विमलमदण-केवलिस्स 10.17.1101
 विम्हइअं दस्सं तं 6.40.731
 विम्हयकारग-वयणं 6.45.736
 विम्हियमिदं पस्सित्तु 11.85.1296
 वियड्ढिमेणं तेणं 4.109.528
 वियारित्ता गुरुक्किवं 11.93.1304
 विरोयणेणं च सुक्क 15.65.1739
 विलावंतो रुदंतो 9.76.1051
 विवइण्णा-केसी ता 6.38.729

विवज्जिदो दु रायाइ 21.5.2317
 विवत्थिद-वेस-भूसं 16.54.1825
 विवदादो रक्खाए 4.75.494
 विवरीअ पुरक्कार 2.61.204
 विवरीय-वक्क-रुक्खा 16.50.1821
 विवाह-उज्जोग-पहुदि 14.105.1656
 विविह-सेट्ट-सिक्खाणं 12.16.1339
 विसयेहि डक्कंताण 10.53.1137
 विसुद्धि सेण्णं जह तह 12.17.2317
 विसेसेणं कमेणं 19.54.2119
 विसोहि वाहिणीए 21.21.2321
 विस्सदेवस्स हु तदा 10.113.1197
 विस्सभूदि महाभूदी 14.8.1559
 विस्सासी सुदयाउसे 2.138.281
 विहवसंपण्णरायो 3.109.390
 विहवेण विणा इंदो 17.57.1950
 विहाय उहयसंगं दु 12.138.1461
 विहाव-सहावेणं दु 9.34.1009
 विहिं रोहिणी वदस्स 9.97.1072
 विहिक्खयं विणा सिवो 15.28.1702
 विहिण्ण-णयर-देसेसु 21.41.2341
 विहिण्ण-रयण-चुण्णेहि 3.67.348
 विहूदि-सुह-संति-धण्ण 3.138.419
 वीईहि सायरो जह 16.29.1800
 वीयं विणा रुक्खोव्व 15.26.1700
 वीरसेणं सिरिधरं 21.121.2421

वीसपक्खणंतरे दु 11.98.1309
वेज्जावच्चं मुणीण 15.46.1720
वेरगिआ हरिसिदा 17.97.1990
वोच्छेमि पुव्वभवं हं 10.19.1103
वोच्छिण्णो आगालो 19.86.2151

[स]

संकमदे पढम-समय 20.20.2209
संकमिद-पदेसगं 19.92.2157
संखेज्जठिदि-बंधेसु 19.46.2111
संखेज्जठिदि-बंधेसु 19.47.2112
संखेज्जदिभागं खलु 20.10.2199
संखेज्जदिभागो खलु 20.55.2244
संखेज्जबंधसहस्स 20.32.2221
संखेज्जाइं च वस्स 20.15.2204
संखेवेणं देसो 4.136.555
संगच्छिदो णिवेणं 3.50.331
संगठिद-चमू व्व तम्मि 2.132.275
संघे-आयंस-संत 1.22.22
संजद-बहुसुदणाणी 21.135.2435
संजदेसु अवदी णो 14.61.1612
संजम-सज्झाय-धम्म 16.111.1882
संजमासंजमो तह 5.85.644
संजलण-कोहस्स दो 19.79.2144
संजलण-चउक्काणं 19.68.2133
संपरायहीण-मुत्तमं 19.124.2189
संबोहदि सगपुत्ता 17.80.1973

संभवो पुरिसट्टेण 9.14.989
संवुडचित्तविट्ठिं हि 4.78.497
संसार-तण-भोयादु 4.87.506
संसारम्मि पतंतो 21.81.2381
संसार-विरत्तीए 13.43.1508
संसारस्स भवभमण 10.61.1145
संसारीणं सुपुण्णं 4.140.559
संसारो अणुऊलो 17.47.1940
सगं-उच्छिट्ठं भुंजदि 17.29.1922
सगं पंडिद-विदू वा 14.60.1611
सगकत्तव्वेसु णिट्ठा 10.36.1120
सगकल्लाणाय ताहि 15.24.1698
सगचित्ते संतुट्ठो 10.117.1201
सगचेयण-विसुद्धीइ 15.84.1758
सगडदेसम्मि भूवदि 10.86.1170
सगपइदुब्भावादो 8.55.930
सग परिवारजणेहिं 5.125.684
सगपाणवल्लहाए 5.25.584
सगपिदर-सक्कारेण 10.29.1113
सगपिदर-सिमरणादो 12.91.1414
सगपिदरस्स हु आणा 14.22.1573
सगपुत्तस्स असोगो 6.15.706
सगपुरिसट्टबलेणं 18.54.2046
सगभाव-उट्टाणाय दु 10.59.1143
सगभवभयं खयेदुं 18.39.2031
सगभालम्मि तवचरण 18.20.2012

सगवस्सविद्धिदिवसे 17.1.1894
 सगसंताणा णिवेण 16.93.1864
 सगसत्तिं अणुगूहिय 7.82.865
 सगसत्तीए उत्तम 9.104.1079
 सगसत्तीए गहिदं 9.29.1004
 सगसत्तीए सावय 4.27.446
 सगसामिस्स किवाए 10.75.1159
 सगसामिस्स वा पाण 14.20.571
 सग-सीसे णिरंकुसो 8.37.912
 सगसुद्धप्पे लीणं 1.121.121
 सगसेट्टु-धणुविज्जाइ 12.109.1432
 सगस्स सुपुण्णाउं 21.94.2394
 सगासणादो उट्टिय 1.88.88
 सगिट्टुकज्जसिद्धिं दु 16.47.1818
 सगित्थीए सह सव्व 14.102.1653
 सगोहिणाणेणं चिय 14.72.1623
 सगगंथा सुगुरू णो 7.85.868
 सग्गादो चयिदूणं 12.9.1332
 सग्गे आखंडलोव्व 6.32.723
 सग्गे जा पिया तव 13.76.1541
 सघण-रुक्खावलि-जुत्त 2.48.191
 सच्च-उदारत्त-खमा 4.119.538
 सच्चं-अचोरियं सग 4.42.461
 सच्च-गायणीदी कुल 13.37.1502
 सच्चरियेण विणा णो 11.48.1250
 सच्चा महव्वदं सया 1.13.13

सची सक्कंगणा खलु 10.50.1134
 सजोगिकेवलिट्टाण 21.70.2376
 सज्जणाणं सहावो 12.85.1408
 सज्जणेसुं हु मण्णो 15.38.1712
 सज्जिदा थोगयाले 10.87.1171
 सट्टाणे उवसंतो 19.109.2174
 सणेहादिरेगेणं 5.22.581
 सण्णाण-धीर-बलेहि 20.91.2280
 सत्त-खेत्तेसु दाणं 4.123.542
 सत्तमणिरयादो चिय 11.34.1245
 सत्तवसणाणि णियमा 15.48.1722
 सत्तवासमासंतं 9.99.1074
 सत्तविहकेवलिणो य 21.102.2402
 सत्त-सरा अस्सिं णो 6.44.735
 सत्तीइ चउपव्वेसु 14.99.1650
 सत्तूणं कालोव्व हु 4.124.543
 सत्तू होज्ज मित्ताणि 1.103.103
 सदेसस्स रायहाणि 7.3.786
 सद्धविज्जा-सिद्धंतं 16.68.1839
 सद्धस-परिणामा सय 5.104.663
 सद्धम्मस्स पहावगं 21.141.2441
 सद्धम्मस्स सुवड्डगा 21.140.2440
 सद्धाइ पालिस्सामि 11.68.1279
 सद्धाए पालेज्जा 11.54.1265
 सद्धाए वदपालणेण 13.84.1549
 सण्णाण-धीर-बलेहि 20.91.2280

सद्धा भक्ती तुट्टी 16.112.1883
 सप्पमुहे विसरूवो 7.46.829
 सबलाण बलं राओ 4.130.549
 सब्भदा-सक्किदीणं 6.43.734
 समऊणदोआवलिय 19.87.2152
 समऊणदो आवलिय 19.111.2176
 समणव्वद-पालणस्स 11.53.1264
 समणाण सावयाण य 4.40.459
 समणोवासग-धम्मा 17.71.1964
 समत्थो दु णेव कोवि 9.12.987
 सम-पत्तदत्तीहिं दु 13.7.1472
 समयूणति-आवलिया 19.81.2146
 समयूणावलियाए 19.82.2147
 समरंगणे अजेयो 4.127.546
 समवसरणो आवीअ 1.86.86
 समादुं पस्सिय तुट्ट 11.79.1290
 समाहिगुत्त-मुणिवरो 9.47.1022
 समिच्चादी बहुगुणा 15.68.1742
 सम्मत्तं सण्णाणं 7.50.833
 सम्मत्तं सण्णाणं 14.43.1594
 सम्मत्त-णाण-दंसण 21.87.2387
 सम्मत्त-विप्फत्तीइ 5.33.592
 सम्मत्तहीणपाणं 14.59.1610
 सम्मताइ-गुण-जुदो 2.44.187
 सम्मत्ताइ-गुणा णो 7.51.534
 सम्मत्तादु पडंतो 5.90.649

सम्मत्तेणं विणा दु 17.58.1951
 सम्मपुरिसट्टं विणा 1.101.101
 सम्मपुरिसट्टेण तइ 21.86.2386
 सम्ममिच्छपइडीए 5.91.650
 सम्मसट्टाए जो वि 9.92.1067
 सम्माइट्टी अवदी 14.62.1613
 सम्माणीया सव्वा 3.73.354
 सयंभुरमण-समुद्दे 4.54.473
 सयंवरं गच्छेदुं 3.53.334
 सयंवरविही सेट्टा 3.49.330
 सयल-सुजणा णिच्चं 7.91.874
 सया मंगलकारगं 15.32.1706
 सयायार-संजुत्तो 12.112.1435
 सरद-वसंत-हेमंत 16.81.1852
 सरासरिं पारंभो 21.16.2316
 सरिदाए हि पलावो 12.107.1430
 सरिदाहि सायरोव्व य 17.21.1914
 सरीरम्मि हु चरणं व 2.12.155
 सरीरेगे विणट्टे 17.7.1900
 सव्वकल्लाणकारग 14.49.1600
 सत्वजणेसुं सेट्टा 8.82.957
 सव्वणंदिं सिरिलोय 21.117.2417
 सव्वणहु-सव्वदंसी 10.14.1098
 सव्वतित्थयरा जिणा 21.101.2401
 सव्वदव्वतच्चेसुं 5.71.630
 सव्वदा ताण चित्तं 3.23.304

सव्वराणी कोक्किदा 13.1.1466
 सव्वरायकुडुंबेण 16.116.1887
 सव्व-रायविज्जाणं 4.112.531
 सव्ववत्तं सुणिय बहि 17.63.1956
 सव्ववित्तंतमित्थं 11.42.1253
 सव्वविहावविहीणो 21.6.2306
 सव्वमण्णगुरुं पुज्ज 21.129.2429
 सव्वसंसारी अट्ट 5.49.608
 सव्वसोक्खकारणं च 5.128.687
 सव्वाउला वाउला 10.16.1100
 सव्वाणं ठिदिबंधो 9.6.981
 सव्वाण-णिवज्जेदुं 3.69.350
 सव्वा णयरजणा तं 6.89.780
 सव्वाणिट्टुं खयिदुं 10.92.1176
 सव्वा तित्थयरा खलु 1.1.1
 सव्वा सम्माइट्टी 1.109.109
 सव्वा सुहट्टाणेसु 3.132.413
 सव्वित्थी दोसजुदा 10.51.1135
 सव्वुक्किट्टेण भवी 13.67.1532
 ससंगकला व कण्णा 3.30.311
 ससुरस्स जणगोव्व 4.6.425
 ससेट्ट-मंतिमंडलं 3.42.323
 सस्सदं तिव्वभूमिं 16.104.1875
 सस्सियो अप्पतुट्टो 14.30.1581
 सहजजीवणं वियार 4.138.557
 सहसत्ति एगदिवसे 4.28.447

सहसत्ति एयदिवसे 15.77.1751
 सहसत्ति ओअक्खिदो 9.46.1021
 सहसा एगभुवदी 17.43.1936
 सहसा जलविट्टीए 11.30.1241
 सहसा पस्सिदो ताइ 17.2.1895
 सहस्स-विच्छिअेहिं च 10.122.1206
 सहा सिट्टपुरिसेहिं 15.17.1691
 सहिण्हू पिदर-भत्तो 2.43.186
 सा णिम्मलचिता पइ 12.57.1380
 सादि-णक्खत्तस्स जह 5.122.681
 सादिणक्खत्ते पडिद 7.44.827
 सादिरेगेणूणयं 20.56.2245
 सा पया अवि भुंजीअ 6.33.724
 साफल्लं विवरीय-माहु 14.123.1674
 साम-दाम-दंड-भेय 4.76.495
 सामाइयं पोसहो 7.72.855
 सामाइयाइ-वदेहि 12.25.1348
 सायरदत्तो सेट्टी 12.20.1343
 सायरस्स गंभीरं 16.38.1809
 सायरे रयणाइं व 2.47.190
 सायरो णेव लंघदि 16.26.1797
 सायरोव्व णिस्सीमं 21.134.2434
 सावगाण एयारस 14.85.1636
 सावय-सद्धिटी जो 7.80.863
 सावय-सावियाहिं च 7.69.852
 सा सुपहादे पसण्ण 2.112.255

सा सुहग-रायहाणी 1.61.61
 साहम्मीसुं वच्छल 15.45.1719
 सा हु गब्भयालादो 5.120.679
 साहूसुं णिगंथो 20.80.2269
 सिआवाय लंछण-जुद 1.18.18
 सिंधुविमलणीरेणं 6.79.770
 सिंधू व्व गंभीरेण 15.2.1676
 सिक्खगाणं धवलं च 16.88.1859
 सिक्खावेज्ज सुपुत्ता 16.94.1865
 सिग्घगामि विमाणं व 5.29.588
 सिग्घागद-रायेणं 3.124.405
 सिदपक्खमिअंगेणं 18.38.2030
 सिद्धंतचक्किं रट्ट-संतं 21.127.2427
 सिद्धाणं अट्टगुणा 4.103.522
 सिद्धीव एगपुत्ती 3.25.306
 सिया वड्ढेदि य सिया 20.70.2259
 सिरिगुणधम्म-मुणिवरं 4.86.505
 सिरिजिणबिंबदंसणं 12.52.1375
 सिरिणिगंथं-गुरूणं 13.70.1535
 सिरिमुणिवरदंसणाय 7.17.800
 सिरिसेणो पराइदो 8.47.922
 सिरिसेणो पुण्णे सदि 8.46.921
 सिरिहर-जोगि-समीवे 12.137.1460
 सिरोमणी रायेसुं 4.128.547
 सिस्सा सुपुण्णवंता 6.10.701
 सीदयालम्मि जोगी 18.67.2059

सीयल-सुंदर-मणहर 17.24.1917
 सीलवंत-इत्थीए 6.58.749
 सीलवदं णिदोसं 5.13.572
 सीलवदाइं भव्वा 1.65.65
 सीलस्स होज्ज णियम 7.58.841
 सीहत्थो दु पसण्णो 14.29.1580
 सीहपुर-समीवम्मि दु 10.8.1092
 सीह-सिसू पिवीअ तह 8.95.970
 सीहस्स परक्कमो य 1.73.73
 सीहो परक्कमेणं 15.13.1687
 'सु'-अक्खरस्स अट्टो य 15.10.1684
 सुंदर-सुहग-सुगांधिद 16.57.1828
 सुकज्जेसु सहयारी 12.12.1335
 सुक्कज्झाणबलेणं 4.99.518
 सुक्कण्झाणबलेणं 13.31.1496
 सुक्क-तडागं वि होदि 10.99.1183
 सुगंथाण-मज्झयणं 3.15.296
 सुगांधिवाहणो पुणो 11.89.1300
 सु-गज्ज-पज्ज-रयणा य 8.42.917
 सुगदीए सुहस्स तं 8.38.913
 सुगिहत्थो अणुव्वदी 14.69.1620
 सुगुरु-क्किवा तियलोए 11.94.1305
 सुगुरुवयणं चित्तं दु 20.82.2271
 सुजोग्ग-कण्णाए सह 11.86.1297
 सुणाणं पसारेदुं 16.82.1853
 सुणिच्चा उदय-वत्तं 16.5.1776

सुणिच्चा समायारं 1.87.87
 सुणिच्चु धम्मवएसं 4.58.477
 सुणिच्चु सगपुव्वभवा 13.78.1543
 सुणित्तु धम्मवएसं 14.71.1622
 सुणित्तु सगपुव्वभवा 14.73.124
 सुणिय इमाणि वयणाणि 10.83.1167
 सुणिय कोहजुदवयणं 6.52.743
 सुणिय ताए वयणाणि 3.99.380
 सुणिय समायारं तं 8.89.964
 सुणिय सव्ववित्तंतं 12.64.1387
 सुणिय सव्व-वित्तंतं 9.67.1042
 सुण्णागार-विमोइद 20.84.2273
 सुत्ते वत्थुम्मि रज्जुम्मि 18.70.2062
 सुदं वदं तह धम्मो 2.30.173
 सुदणाणावरणिज्जं 20.40.2229
 सुदणाणावरणिज्जस्स 19.44.2109
 सुदसायराइ-णिम्मल 3.47.328
 सुदुंदुभि-वादणं खे 16.117.1888
 सुदे मूलसक्कारं 6.21.712
 सुद्धं मज्जाइल्लं 13.11.1476
 सुद्ध गुणपज्जाय-जुद 18.62.2054
 सुद्धप्पगुणभात्तुस्स 1.117.117
 सुद्धप्पज्झाण-लीण 7.24.807
 सुद्धप्पस्स सहावो 17.40.1933
 सुद्धप्पे संलीणा 9.90.1065
 सुद्धसाहगतवस्सी 21.99.2399

सुद्ध-सिद्ध-णिक्कम्मा 7.48.831
 सुधण-धण्ण-रयण 3.4.285
 सुपरिहा-गहणेस 20.111.2300
 सुपुण्णपावफलं 7.89.872
 सुभावेहिं वंदामि 1.8.8
 सुमदि पहाणमंतिणा 3.43.324
 सुमहुर-बलिणा य 15.96.1770
 सुमुत्ता सिप्पीए 8.99.974
 सुमे गंधोव्व अणले 15.27.1701
 सुमेरु-णिअच्छणादो 2.116.259
 सुरभिदं गेहगणं 16.73.1844
 सुरयणजडिद-कलहोय 7.20.803
 सुरुववंत-रोहिणी 13.77.1542
 सुवे पहादम्मि सव्व 1.107.107
 सुव्वदमहाजोगिणा 15.25.1699
 सुव्वय-संजम-समाहि 1.4.4
 सुसंसारी अप्पा 8.100.975
 सुसक्खीइ उज्झिदाणि 18.42.2034
 सुसक्किदिं सब्भदं च 17.81.1974
 सुसक्किदी सब्भदा य 1.67.67
 सुसेणाए रज्जं व 11.80.1291
 सुह-अलगाणयरीए 15.4.1678
 सुहं सारो ण किंचिवि 10.64.1148
 सुहेण बहुगच्छमाण 3.137.418
 सुहगइगामिया देव 16.71.1842
 सुहणामधारगा चिय 7.9.792

सुहतिथ्वंदणाए 15.55.1729
 सुहदा काधेणू व्व 1.77.77
 सुहधम्म-सुक्कज्झाण 20.105.2294
 सुहलेस्सा सुविकिरिया 6.82.773
 सुहसक्कारवंतो दु 12.18.1341
 सुहासयसंजुद-सोम 10.40.1124
 सुहुमसंपरायम्मि 5.107.666
 सुहेण रायुज्जाणे 12.63.1386
 सुहेण सासिदो तेण 12.11.1334
 सूरत्तं सीहादो 4.113.532
 सूरिं जसोबाहु-णाय 21.114.2414
 सूरिं संतिसायरं 1.19.19
 सेट्टदेसस्स सोहा 1.74.79
 सेट्टधम्मधारगा य 18.17.2009
 सेट्टपाढगादो बहु 2.128.271
 सेट्टपुण्णकज्जाइं 14.68.1619
 सेट्टवर-चयणाय खलु 3.76.357
 सेट्ट-सुगुरु-साणिज्जे 11.71.1282
 सेमरतरुछायाए 11.10.1221
 सेलेसु सुदंसणोव्व 2.16.159
 सेलोव्व कम्मभारो 13.56.1521
 से विदियतियभागस्स 19.101.2166
 सेस-कम्माण संखेज्जाणि 19.84.2149
 सेसणियट्टिकरणस्स 20.59.2248
 सेसाओ सव्वाओ 19.116.2181
 सेसाणं च पुव्वोव्व 20.23.2212

सेसाणं ठिदिबंधो 19.33.2098
 सेसाणं ठिदिखंडयो 19.90.2155
 सेसाण पुव्वोव्व अध 19.99.2164
 सेसाण संखेज्ज-वस्साणि 19.96.2161
 सेसुत्तरपइडीणं 19.62.2127
 सेसोयारसकसाय 19.51.2116
 सोक्खेण गदो यालो 11.87.1298
 सो गणहरो दु जादो 20.5.2194
 सोगं भय-सत्तुत्तं 4.85.504
 सो गिरिकंदर-कुंज 20.110. 2299
 सो जण-णिअरो धण्णो 6.12.703
 सो ण पाउणदि पुण्णं 8.11.886
 सो णिवो सग-पयाए 6.17.708
 सोमदत्त-मुणिं सह 10.88.1172
 सोमदत्तस्स कंता 10.33.1117
 सोमसम्मणो भज्जा 10.31.1115
 सोमसम्मणो मूढा 10.38.1122
 सोमसम्मा अवि पदं 10.77.1161
 सोमसम्मा य रुद्द 10.30.1114
 सोमसम्मो हु मिच्छं 10.96.1180
 सोमिला तस्स पिया य 10.27.1111
 सोम्ममुत्ती य सुगठिद 4.129.548
 सोलसमच्चुदसग्गे 9.106.1081
 सोलसमच्चुदसग्गे 13.58.1523
 सोसदे संतिणीरं 6.68.759
 सोहग्ग-संविट्ठीइ 3.83.364

सोहदि ण राहुणा सह 3.110.391

[ह]

हं अइविम्हियचित्तो 7.5.788

हं तावइय-दियंवर 4.69.488

हणिहणिं व तद्दिणे वि 16.105.1876

हत्थिणायपुरणयरिं 4.22.441

हत्थिणायपुरणयरी 6.25.716

हम्मिण् ठिद-णिवेणं 4.60.479

हरिद-पत्ताण पीदे 17.5.1898

हार-मिगिगं जयंतो 4.51.470

हिंस-मलीगं थेयं 4.90.509

हिंसाइं विजहिता 10.60.1144

हिंसाइ पावाण 7.53.836

हिंसा-मिसाणंदी य 5.46.605

हिंसा मुसा चोरियं 15.51.1725

हियमियपियवयणेहिं 4.111.530

हे चउणाण-धारगो 1.138.138

हेट्टदी अपुव्वमसंखेज्जदि 19.119.2184

हेट्टा दु विसमट्टिदी 19.52.2117

हे तिलोयणाहो! तव 18.29.2021

हे पढमगुरू-जणगो! 17.88.1981

हे पुण्णवंता! हिअय 5.51.610

हे पुत्ती। लहिस्सेसि 5.115.674

हे भयवो! अणुग्गहिय 4.88.507

हेमवद हेरण्णवद 1.50.50

होति अपुव्व-भावा हु 5.101.660

होति पुण्णवंताणं 1.66.66

होज्ज अइ-आणंदिदा 5.118.677

होज्ज असंखेज्ज-लोय 9.3.978

होज्ज णिक्कंखपुण्णं 1.89.89

होज्ज तिदिय-णिरयंतं 5.38.597

होज्ज धम्मविवज्जिदा 16.65.1836

होज्ज भूदत्थरूवो 14.53.1604

होज्ज सजोग-केवली 12.14.1463

होज्जा मे जामादू 3.74.355

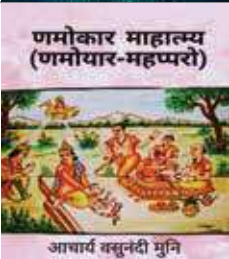
होदि णियामग-हेदू 14.65.1616

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

द्वारा रचित प्राकृत ग्रंथ

1.		<p>णदिणंदसुत्तं (नंदीनंद सूत्र)–84 श्लोकों में लिपिबद्ध इस ग्रंथ में जीवन को सुनियोजित और सुव्यवस्थित करने वाली श्रेष्ठ नीतियाँ समाहित हैं।</p>
2.		<p>अज्जसक्किदी (आर्य संस्कृति)–111 श्लोकों में निबद्ध इस ग्रंथ में धर्म, सदाचार, दया, मर्यादा, अतिथि देवो भवः, सेवा, पारस्परिक सौहार्दता इत्यादि आर्यसंस्कृति के तत्त्वों का विवेचन है।</p>
3.		<p>रट्ट-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)–राजा से लेकर मंत्री, न्यायाधीश, अधिवक्ता, वणिक्, विद्यार्थी, नारी आदि के कर्तव्य तथा राष्ट्र में सुख-शांति में कारक शाकाहार, अहिंसा, जल, वृक्ष, संस्कृति आदि के विवेचन से यह 87 श्लोकों में अलंकृत है।</p>
4.		<p>णिगगंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)–इसमें 111 गाथाओं में यथाजात निर्ग्रन्थ साधुओं की विभिन्न उपमाओं से व मूलगुणादि का वर्णन कर स्तवन किया गया है।</p>
5.		<p>जदि-किदि-कम्मं (यति कृतिकर्म)–156 श्लोकों में लिपिबद्ध इस ग्रंथ के अंतर्गत मुनियों के 28 मूलगुण व 34 उत्तरगुणों के साथ नित्य व नैमित्तिक कृतिकर्मों का वर्णन है।</p>

6.		<p>धम्मसुत्तं (धर्म सूत्र)—प्रश्नोत्तर शैली में लिपिबद्ध 120 श्लोकों वाला यह अनुपम ग्रंथ है। इसमें जीवनोपयोगी, व्यवहार पक्ष में काम आने वाले तथ्य निहित हैं। यह ग्रंथ अत्यंत रोचक है।</p>
7.		<p>अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)—सभी प्रकार से स्वस्थ रहने के लिए मानव की भोजन पद्धति द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि के अनुसार कैसी हो इन सबका कथन इस ग्रंथ में किया गया है।</p>
8.		<p>जिणवरथोत्तं (जिनवर स्तोत्र)—इस ग्रंथ में जिन दर्शन, भक्ति, स्तुति का महत्व दर्शाकर जिनमंदिर निर्माण, जिनबिंब स्थापना, अष्ट प्रातिहार्य, अष्ट मंगलद्रव्य स्थापनादि के फल का कथन 156 श्लोकों में किया है।</p>
9.		<p>तच्च-सारो (तत्त्व सार)—सप्त तत्त्वों को समाहित करने वाले इस ग्रंथ में व्यक्ति के पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक व आध्यात्मिक जीवन का भी अनुपम कथन है।</p>
10.		<p>विज्जावसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)—453 गाथाओं में लिपिबद्ध इस ग्रंथ में श्रावक की आचार संहिता का कथन है।</p>
11.		<p>अणुवेखा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)—वैराग्य की जननी कही जाने वाली द्वादश अनुप्रेक्षाओं (बारह भावना) का वर्णन इस ग्रंथ में 297 श्लोकों में निबद्ध है।</p>
12.		<p>सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)—174 गाथाओं में निबद्ध यह एक गूढ़ आध्यात्मिक ग्रंथ है। इसका प्रत्येक काव्य मानो भेदविज्ञान का सूत्र है।</p>

13.		<p>रयणकंडो—इसमें लगभग 600 विषयों पर 3333 सूक्तियाँ लिपिबद्ध हैं। इसमें सभी के लिए अकारादि क्रम से नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक, ज्योतिष, वास्तु आदि विषयों पर भी अनुपम सूक्तियाँ हैं।</p>
14.		<p>मंगलसुत्त (मंगलसूत्र)—यह ग्रंथ जीवन को मंगल व प्रशस्त करने वाले सूत्रों से युक्त, व्यवहार व निश्चय से संयुक्त, आध्यात्मिकता का बोध कराने वाला है।</p>
15.		<p>अष्टांगजोगो (अष्टांग योग)—273 गाथाओं में निबद्ध इस ग्रंथ में देह व आत्मा को स्फूर्तिदायक योग के आठ अंग—यम, नियम, आसनादि का वर्णन है।</p>
16.		<p>णमोयार-महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)—इसमें 159 गाथाओं में णमोकार मंत्र के माहात्म्य व प्रभाव का कथन है। जाप विधि आदि सहित मंत्र में प्रयुक्त प्रत्येक अक्षर के प्रभावादि का भी वर्णन है।</p>
17.		<p>विस्मपुज्जो दियंबरो (विश्वपूज्य दिगंबर)—दिगंबर साधुओं के स्वरूप व उनकी चर्या क्या, क्यों, कैसे इत्यादि 165 गाथाओं में वर्णित है।</p>
18.		<p>अप्प-विहवो (आत्म वैभव)—आत्मा के वैभव का दिग्दर्शन कराने वाला यह ग्रंथ 378 गाथाओं में निबद्ध है। इसमें द्रव्य, उपयोग, गुणस्थान, पदार्थ, रत्नत्रय, निश्चय चारित्र, ध्यान, आत्मसंबोधन, समयसार व समाधिसिद्धि का निरूपण है।</p>

19.		<p>मूलवर्णो (मूलवर्ण)—वर्णों की पृथक्-पृथक् शक्ति व प्रभाव का वर्णन करने वाला यह ग्रंथ 84 गाथाओं में निबद्ध है।</p>
20.		<p>विस्सधम्मो (विश्व धर्म)—सर्व जाति, वर्ण, पंथ, आम्नाय व संप्रदाओं से निरपेक्ष इस ग्रंथ में सर्वसामान्य मानवीय धर्म का वर्णन 165 गाथाओं में किया गया है।</p>
21.		<p>अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)—देश किस प्रकार से आत्मनिर्भर हो सकता है, किन कार्यों को प्रोत्साहन दिया जाए आदि का वर्णन इस ग्रंथ में 156 गाथाओं में किया गया है।</p>
22.		<p>समवसरण-सोहा (समवसरण शोभा)—786 गाथाओं में निबद्ध यह ग्रंथ समवसरण के सम्यक् स्वरूप व शोभा का निरूपण करने वाला है।</p>
23.		<p>पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)—228 गाथाओं में निबद्ध इस ग्रंथ की प्रत्येक कारिका पुण्य की प्रेरिका है। जीव के पुण्यार्जन के हेतुओं का वर्णन इसमें किया गया है।</p>
24.		<p>को विवेगी (विवेकी कौन)— 84 गाथाओं के माध्यम से विवेकी व्यक्ति के लक्षणों का कथन करने वाला यह अनुपम ग्रंथ है।</p>

25.		<p>तिथ्यर-णामथुदी (तीर्थकर नाम स्तुति)—138 गाथाओं में निबद्ध इस ग्रंथ में तीस चौबीसी अर्थात् 720 तीर्थकरों का स्मरण किया गया है।</p>
26.		<p>कलाविष्णणं (कला विज्ञान)—372 गाथाओं में निबद्ध इस ग्रंथ में पुरुषों की 72 व नारियों की 64 कलाओं का मनोरम विवेचन है।</p>
27.		<p>अप्पसत्ती (आत्म-शक्ति)—इस अध्यात्म के पिंड रूप ग्रंथ में 138 गाथाओं में आत्मा की लगभग 61 शक्तियों का निरूपण किया गया है।</p>
28.		<p>वयणपमाणत्तं (वचनप्रमाणत्व)—16 अधिकार में 543 गाथाओं में निबद्ध इस ग्रंथ में द्रव्य के लक्षण, गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण, नय, निक्षेपादि का कथन है। नय व न्याय में प्रवेश करने वालों के लिए यह अति महत्वपूर्ण है।</p>
29.		<p>सिरिसीयलणाहचरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)—714 गाथाओं में निबद्ध व 12 सर्गों में विभाजित इस महाकाव्य में दसवें तीर्थकर श्री शीतलनाथ प्रभु का चरित्र वर्णित है।</p>
30.		<p>अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)—यह सूत्र ग्रंथ विश्व की सर्वोच्च विद्या, आध्यात्मिक विद्या के सूत्रों का प्रतिपादन करने वाला है।</p>
31.		<p>असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र)—21 नंदों में 2442 छंदों में दिगंबर जैन वाङ्मय का यह प्रथम प्राकृत महाकाव्य है। जिसमें रोहिणी व्रत के फल को प्राप्त करने वाले राजा अशोक व रानी रोहिणी का जीवन वृत्त वर्णित है।</p>

32.		<p>खवगराय-सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)—इस ग्रंथ में परम पूज्य सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज का संपूर्ण जीवन वृत्त वर्णित है।</p>
33.		<p>लोगुत्तर-वित्ती (लोकोत्तर वृत्ति)—इस ग्रंथ में श्रमणों की अलौकिक प्रवृत्ति वर्णित है। इसमें शुभाशुभ भाव, ध्यानादि का कथन है।</p>
34.		<p>पसमभावो (प्रशम भाव)—क्रोध, मान, माया, लोभ कषायों के शमन से उत्पन्न भाव व उसके माहात्म्य का वर्णन इस ग्रंथ में है।</p>
35.		<p>समणभावो (श्रमण भाव)—श्रमण अपने मूलगुण, उत्तरगुणों का पालन करते हुए क्या भावना रखते हैं अथवा क्या रखनी चाहिए, इसका अनुपम वर्णन 228 गाथाओं में है।</p>
36.		<p>इड्डिसारो (ऋद्धिसार)—इस ग्रंथ में 156 गाथाओं में ऋद्धियों के भेद व स्वरूप का विवेचन किया गया है।</p>
37.		<p>झाणसारो (ध्यान सार)—111 गाथाओं में निबद्ध इस ग्रंथ में चार प्रकार के ध्यानों का महत्वपूर्ण वर्णन है।</p>
38.		<p>समणायारो (श्रमणाचार)—द्विसहस्राधिक गाथाओं में लिपिबद्ध इस ग्रंथ में श्रमणों की संपूर्ण पवित्र आचार संहिता का वर्णन है।</p>

39.		सम्मोदशिखर-माहर्ष्यं (सम्मोद शिखर माहात्म्य)-इस ग्रंथ में शाश्वत सिद्ध क्षेत्र श्री सम्मोदशिखर जी के माहात्म्य का वर्णन है।
40.		जिणवयण-सारो (जिनवचन सार)-यह एक सूत्र ग्रंथ है जिसमें चारों अनुयोग समाहित हैं। शलाका पुरुष, नय, न्याय, लोक संस्थान, सिद्धान्तादि वर्णित है।
41.		अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त)-इस ग्रंथ के अंतर्गत आर्यावर्त की स्थिति व उसमें रहने वाले नागरिकों की भाषा, वेषभूषा, भोजनादि से समन्वित संस्कृति व सभ्यता का कथन है।
42.		विणयसारो (विनय सार)-इस ग्रंथ में पाँच प्रकार की विनय व उसके माहात्म्य का वर्णन है।
43.		भक्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)-इस ग्रंथ के अंतर्गत दैवसिक वा नैमित्तिक श्रमणों द्वारा की जाने वाली सिद्ध, श्रुत आदि 21 प्रकार की भक्तियाँ निहित हैं।
44.		तव-सारो (तप सार)-इसके अन्तर्गत तप के स्वरूप, भेद व माहात्म्य का विशद वर्णन है।
45.		भाव-सारो (भाव सार)-इस ग्रंथ में जीव के भावों का कथन किया गया है। जीव के भाव संसार व मोक्ष का कारण हैं, अतः भावों की विशुद्धि का माहात्म्य भी इसमें वर्णित है।
46.		दाण-सारो (दान सार)-इस ग्रंथ में श्रावक के आवश्यक कर्तव्य दान, उसके स्वरूप, भेद व माहात्म्य का मनोहर विवेचन है।

47.		लेस्सा-सारो (लेश्या सार)-षट्लेश्या व उसके प्रभाव का वर्णन करने वाला यह अनुपम ग्रंथ है।
48.		वेरग-सारो (वैराग्य सार)-तीन लोक में सारभूत सम्यक् वैराग्य व उसके माहात्म्य को दर्शाने वाला यह अद्भुत ग्रंथ है।
49.		णाण-सारो (ज्ञान सार)-इस ग्रंथ में ज्ञान के स्वरूप, भेद व माहात्म्य का महत्वपूर्ण विवेचन किया गया है। एवं सम्यक ज्ञानार्जन के लिए सबको प्रेरित भी किया है।
50.		णीदि-सारो (नीति सार)-इस ग्रंथ में व्यवहारिक जीवन से अनुस्यूत श्रेष्ठ नीतियाँ समाहित हैं।
51.		धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)-इस ग्रंथ में मानव जीवनोपयोगी सूक्तियाँ गर्भित हैं।
52.		कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)-कर्म के मूल भेद, उत्तर भेद और प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभाग इन 4 प्रकार के बंधनों का कथन एवं कर्म बंध कारणों का विवेचन इस ग्रंथ में 597 गाथाओं में किया गया है।

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

टीका ग्रंथ	
1. प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2. वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3. नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4. श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र

इंग्लिश साहित्य	
1. Inspirational Tales Part& 1&2	2. Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य	
1. मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2. बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3. शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4. स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य	
1. आईना मेरे देश का	2. उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3. उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4. उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दुःखदानी)
5. उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6. उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7. उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहीं जिनराज सीझे)	8. उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9. उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10. उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दुःख ही मानो)
11. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12. खुशी के आँसू
13. खोज क्यों रोज-रोज	14. गुरुत्तं भाग 1
15. गुरुत्तं भाग 2	16. गुरुत्तं भाग 3
17. गुरुत्तं भाग 4	18. गुरुत्तं भाग 5
19. गुरुत्तं भाग 6	20. गुरुत्तं भाग 7
21. गुरुत्तं भाग 8	22. गुरुत्तं भाग 9
23. गुरुत्तं भाग 10	24. गुरुत्तं भाग 11
25. गुरुत्तं भाग 12	26. गुरुत्तं भाग 13
27. गुरुत्तं भाग 14	28. गुरुत्तं भाग 15
29. गुरुत्तं भाग 16	30. गुरुत्तं भाग 17
31. चूको मत	32. जय बजरंगबली
33. जीवन का सहारा	34. ठहरो! ऐसे चलो
35. तैयारी जीत की	36. दशामृत
37. धर्म की महिमा	38. ना मिटना बुरा है न पिटना
39. नारी का धवल पक्ष	40. शायद यही सच है
41. श्रुत निर्झरी	42. सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
43. सीप का मोती (महावीर जयंती)	44. स्वाती की बूँद

हिंदी गद्य रचना	
1. अन्तर्यात्रा	2. अच्छी बातें
3. आज का निर्णय	4. आ जाओ प्रकृति की गोद में
5. आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6. आहारदान

7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्पदेशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्प सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि

13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च विचारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)		
32.	वसुन्नाद्धि		
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिकराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चरित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारुदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी

43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1.	अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)		
2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान		
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक		
4.	शाश्वत शातिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शातिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मदेशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहडाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्षण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		